खण्ड ३

मेरा गुणवान और आज्ञाकारी दाऊ, मेरे हृदयरूपी भूमण्डल के लिये सजल मेघरूप, कन्हैया का स्नेही, आत्मा को सुख देनेवाला और सब प्रकार से योग्य मेरा वह बालक कहाँ है?

दोहा- परम ललित सिसुकेलि कर पूरनता धर जेइ।
नेहसिंधु उमगाव पुनि कत मम दुहुँ ससि तेइ॥७६॥

जो परम मनोहारी बाललीलारूपी पूर्णता को धारण करनेवाले हैं और जो मेरे ममतारूपी समुद्र को उमड़नें के लिये विवश करनेवाले हैं, मेरे वे दोनों चन्द्रमा कहाँ हैं?

चौ.- बार बार अति आरत बानी। उन्ह सन पूछ मातु अकुलानी॥
नंद किन्तु दुहुँ लोचन ढारी। रहे अचल दारुन चुप धारी॥

व्याकुल हुई मैय्या अत्यन्त आर्त्त-वाणी से बार-बार उनसे पूछ रही है। किन्तु नन्दरायजी अपने दोनों नेत्रों को नीचा किये, कठोर मौन धारण करके, अचल ही बैठे रहे।

ब्रजनारिन्हँ हरि बिरहुँ अपारा। प्रानन्ह कहँ गन तनु हित भारा॥
जसुदा देखेहुँ पिय सिरु ढारी। बैठे चुप रस भा रिस भारी॥

व्रजस्त्रियों का कृष्णविरह, उनके प्राणों को उनके शरीर के लिये भार समझनें लगा। यशोदाजी ने देखा कि पति सिर नीचा किये चुप बैठे हैं, तो उनकी ममता क्रोध में ढल गई।

जातें बिसरि नारि मरजादा। कहा सरिस उन्ह करत बिषादा॥
ब्रजहि मोदनिधि मोर कुमारा। कत मम प्रान उभय आधारा॥

जिससे नारीविषयक मर्यादा छूट गई और क्रुद्ध हो विषाद करते हुए उन्होंने नन्दजी से इस प्रकार कहा- व्रज के लिये आनन्द के समुद्ररूप मेरे पुत्र, मेरे प्राणों के वे दोनों आधार कहाँ है?

जीवनधन मम अरि कर हारी। पिय फिरेहुँ तुम कस ब्रज धारी॥
अहहिं जे मम तुअ दृग उजिआरा। तेहिं बिनु तैं कस ब्रज पग धारा॥

मेरे जीवन की सम्पदा को शत्रु के हाथों हारकर हे प्रिय! आप व्रज की भूमि पर लौटे कैसे। जो पुत्र मेरे और आपके नेत्रों की ज्योति हैं, उनके बिना-ही आपनें व्रज में कैसे पैर रखा?

प्रानसुखद दुहुँ तनय गँवाई। हा अब जिउँ केहिं कारन पाई॥
मोर नेहनिधि परम अभागा। अवचट सुतबियोग जेहिं लागा॥

प्राणों को सुख पहुँचानेंवाले दोनों पुत्रों को गँवाकर हा अब मैं किस कारण जीवित रहूँ। मेरी ममता का समुद्र बड़ा-ही अभागा है, जो उसे इस प्रकार अचानक पुत्रवियोग व्याप गया।

अब उठि प्रात कहत मृदुबानी। माँखन जाँचिहिं को हठ ठानी॥
अब को थिरकि अजिर सुख देहीं। मलय केर उबटन को लेहीं॥

सवेरा होने पर हठ-ठानकर मधुर वाणी कहते हुए, अब कौन मुझसे माखन माँगेगा। नाचते हुए अब आँगन में कौन मुझे सुख पहुँचायेगा और कौन मुझसे चन्दन का उबटन लगवायेगा।

जिन्हँ बिधुबदनु आस हिय लाई। अजिर जुरत रहे सब नित धाई॥
सो ब्रज चूड़ामनि कत त्यागी। आनि संग तुम यह बिरहागी॥

जिसके चन्द्रमुख के दर्शन की आशा लिये, सभी गोपी-ग्वाल दौड़कर सदैव मेरे आँगन में इकट्ठे हो जाया करते थे, व्रज के लिये चूड़ामणिरूप मेरे उन पुत्रों को कहाँ त्यागकर आप अपने साथ व्रज के लिये विरह की यह अग्नि ले आए हैं?

दोहा- एहिबिधि रोदत सब बिकल मनहुँ भइ बिनु प्रान।
करुना करि ब्रजराज तब कहा जे हरि समुझान॥७७॥

इस प्रकार रुदन करते हुए वे सब व्याकुल हो रही थी, मानों निष्प्राण-ही हो गई हों। तब नन्दरायजी ने करुणकृंदन करते हुए, उनसे वही बात कह दी जो कन्हैया ने उन्हें समझाई थी।

चौ.- सुनतहि जनु भइ मातु अनाथा। यह तुम पोच कीन्ह ब्रजनाथा॥
नामकरन सवँ गरग जे कहा। सो बच आजु सत्य होइ रहा॥

जिसे सुनते-ही मैय्या जैसे अनाथ-ही हो गई। फिर उन्होंने कहा- हे नाथ! यह तुमनें बड़ा ही नीच कार्य किया। उनके नामकरण पर मुनि गर्ग ने जो कहा था, आज वह वचन सत्य हुआ।

कंत मंदमति यह का कीन्हा। सुनि कन्हँ पृह किन तन तजि दीन्हा॥
सुनतहि उन्ह पुर बसन बिचारा। किउँ न दरि गयउ हृदयँ तुम्हारा॥

हे मन्दबुद्धि पति! तुमनें यह क्या कर डाला, कन्हैया की इच्छा सुनते-ही, तुमनें शरीर क्यों न छोड़ दिया? नगर में बसनें सम्बन्धी उनका विचार सुनते-ही तुम्हारा हृदय फट क्यों न गया?

दसरथ बिरहुँ कि सुनेउँ न काना। जिअत जे परपुर सुत बिसराना॥
अब सोउ रस मैं करौं निबाहा। तजौं प्रान सुत बिरहुँ अगाहा॥

क्या तुमनें दशरथजी के पुत्रवियोग के विषय में नहीं सुना, जो अपने जीते-जी अपने पुत्र को पराये नगर में छोड़ आए। किन्तु पुत्र के प्रति उसी ममता का निर्वाह अब मैं करूँगी और पुत्र के महावियोग में अवश्य ही अपने प्राण त्याग दूँगी।

अहहिं तोर हिय जे निठुराई। समरथ को सक सारद गाई॥
तुअ त कठिन सत कुलिस समाना। सुत बचकान बचन सुनि काना॥

तुम्हारे हृदय में जो निष्ठुरता है, सरस्वतीजी की क्या सामर्थ्य? जो वे उसे गा सके। तुम तो सौ-सौ वज्रों के समान कठोर है, जो पुत्र के द्वारा लड़कपन में कही गई बातों को सुनकर भी,

परिहरि लाज जिअत फिरि आए। अब इहँ स्वाँग करहिं दुख छाए॥

लज्जा त्यागकर, जीवित लौट आए और अब यहाँ आकर दुःखी होने का ढोंग कर रहे हो।

दोहा- बदनु जासु सुषमा जिअत सपनेहुँ जाहिं न खोरि।
सोउ मम जीवन सम्पति तुअ कस परपुर छोरि॥७८॥

जिसका मुखमण्डल जीवन्त सुन्दरता ही है और जिसमें स्वप्न में भी कोई दोष नहीं है, मेरे जीवन की उसी सम्पदा को तुमनें पराये नगर में कैसे त्याग दिया?

चौ.- यह ब्रज चारु मानसर आहीं। गोपि ग्वाल बारिज जेहिं माहीं॥
कान्हँ भानु बिगसावनिहारा। तेहिं कत तुम घन माँझ बिसारा॥

हे नाथ! यह व्रज सुन्दर सरोवर है, गोपगोपियाँ जिसमें उगे हुए कमल हैं और मेरा कन्हैया उन्हें खिलानेवाला सूर्य है, किन्तु तुम उसे कहाँ बादलों (पराये लोगों) के मध्य छोड़ आए हो?

तुम बसुदेव चरन किन धरेहूँ। कवन लाहु लगि ब्रज हित फिरेहूँ॥
चितवहुँ तनक त नयन उघारी। उन्ह बिनु ब्रज बूड़हि तम भारी॥

तुमने वसुदेवजी के चरण क्यों न पकड़ लिये; किस लाभ की आशा से व्रज लौटे हो? हे स्वामी! तनिक नेत्र खोलकर देखो तो, उन दोनों के बिना यह व्रज गहन अन्धकार में डूब रहा है।

ब्रज कइ धेनु कन्हँ बिरहुँ मारी। श्रवहि निरंतर दृग मग बारी॥
जासु बिरहुँ नभ जल बनवासी। एक एक करि भए उदासी॥

कन्हैया के दारुण वियोग से आहत व्रज की गायें, नेत्रों से निरन्तर अश्रुपात कर रही है। जिसके वियोग में आकाश, जल व वन में रहनेंवाले जीवजन्तु भी एक-एक करके, उदास हो गए,

ऐसे सुत त्रिलोक सुखधामा। कस मथुरा बिसरे दिनु बामा॥
जीवन एक अवधपति केरा। रहा राम जिन्हँ नेह घनेरा॥

त्रिलोक को सुख देनेवाले, मेरे ऐसे पुत्रों को, विपरीत दिनों में तुम मथुरा कैसे छोड़ आए? जीवन तो एक अयोध्यानरेश दशरथजी का ही था, जिन्हें पुत्र राम के प्रति अत्यधिक स्नेह था।

दोहा- **तव मुख तनय बिछोह सुनौ तदपि न निकसे प्रान।**
सूझ मोर संचित अकृत दुख मोहि देइ महान॥७९॥

तुम्हारे मुख से पुत्र के वियोग के विषय में सुनकर भी मेरे प्राण नहीं निकले। इसलिये मुझे लगता है कि मेरेपूर्वकाल के संचित पापकर्म मुझे अवश्य-ही घोर दुःख सहावेंगे।

चौ.- **हा नटखट मम प्रान पिआरे। तोहि बिनु ब्रज सब लोग दुखारे॥**
ब्रज बूड़ेहुँ तव बिनु निसि कारी। तुअहिं पाइ पुरि भइ उजिआरी॥

हा प्राणों से भी अधिक प्रिय नटखट पुत्र! तुम्हारे बिना व्रज के सब लोग दुःखी हैं। अब तुम्हारे बिना व्रज अन्धकारमय रात्रि में डूब गया, जबकि तुम्हें-ही पाकर मथुरा प्रकाशित हो गई।

भाबि कुभाग सैन यह नाथा। आए जे न तनुज तव साथा॥
जो मैं होति तहाँ ब्रजनाथा। अवसि फिरावति उभयहुँ साथा॥

हे स्वामी! यह आगे आनेंवाले दुर्भाग्य का ही सङ्केत है, जो मेरे पुत्र तुम्हारे साथ नहीं लौटे। हे व्रजनाथ जो यदि मैं स्वयं वहाँ होती, तो अवश्य उन दोनों को अपने साथ लौटा लाती।

अजहिं लाग हरि चह जिव मोरा। बृथा अकृत मैं मानति तोरा॥
जनमतही जिन्हँ कहँ हिय लाई। पाले बहुबिधि जतन जुड़ाई॥

लगता है, विधाता-ही मेरे प्राण लेना चाहते हैं, मैं व्यर्थ-ही तुम्हारा दोष मान रही हूँ। जन्म लेते-ही अपने जिन पुत्रों को मैंने हृदय से लगाकर अनेक प्रकार के यत्न करके, पाला था,

चारु चरित देखत जिन्हँ नाना। तोतरि मधुर बानि सुनि काना॥

मैं अज तें जीवन बड़ जाचा। सो मनरथ अज भयउँ असाँचा॥

जिनकी अनेक सुन्दर बाललीलाएँ देखते हुए, जिनकी तोतली व मधुर वाणी कानों से सुनकर ही मैंने विधाता से दीर्घ-जीवन माँगा था, किन्तु मेरा वह मनोरथ आज झूठा पड़ गया।

अब जनि लाहु जिअन जग स्वामी। तदपि न तन छूटहि खल बामी॥

हे स्वामी! अब मेरे जीने का कोई अर्थ नहीं, फिर भी यह दुष्ट, वाममार्गी शरीर छूटता नहीं।

दोहा- एहिबिधि हेरि सुतन्हि जननि घुर्मित परि बिलखाइ।
रोम रोम अनचेतनी उमगि बिरहुँ घन पाइ॥८०॥

इस प्रकार अपने पुत्रों का स्मरण करके, बिलखते हुए मैय्या यशोदा चक्कर खाकर भूमि पर गिर पड़ीं। विरह की तीवृ अनुभूति के कारण, उनके रोम-रोम में निश्चेतना उमड़ पड़ी।

चौ.- लखि दयनीय दसा अस ताहीं। नंद कहा उन्ह धीर बँधाहीं॥
प्रिये खलहिं हति जब दुहुँ आए। निज मुख बसुद्यौ तनय कहाए॥

उनकी ऐसी दयनीय दशा देख नन्दजी ने धैर्य बँधाकर कहा कि हे प्रिये! दुष्ट कंस का वध करके, जब वे दोनों भाई लौटे, तब उन्होंने अपने मुख से स्वयं को वसुदेवजी का पुत्र बताया।

तहि बताहुँ करतो मैं काही। कीन्हें तद्यपि जतन अथाहीं॥
उभय परन्तु न सुनि कछु बाता। कहा फिरिहिं हम कछु दिनु जाता॥

अब तुम ही बताओ मैं क्या करता? फिर भी मैंने बहुत प्रयत्न किये; किन्तु उन दोनों ने मेरी कोई बात नहीं सुनी और कहा कि हम कुछ दिन बाद लौट आयेंगे।

बासुदेव सो बालक दोई। हम निज गनत रहे भ्रम भोई॥
सुनि अस बात जानि पुनि साँची। सहसहुँ कील जननि उर घाँची॥

वे दोनों बालक वसुदेवजी के पुत्र हैं और हम भ्रमवश उन्हें अपना समझते रहे। इस बात को सुनकर और उसे सच्चा जानकर मैय्या यशोदा के हृदय में सहस्रों-सहस्र कीलें-सी चुभ गई।

पै एहि कहत निपट अपवादा। गोपि ग्वाल करि लाग बिषादा॥
तब कहेउ मैय्या अकुलानी। कुटिल देअँ गति जाइ न जानी॥

किन्तु इसी बात को निरा अपवाद कहकर वहाँ उपस्थित गोप-गोपियाँ विषाद करने लगे। तब मैय्या ने अकुलाकर कहा कि कुटिल विधाता की गति जानी नहीं जाती।

हा पिय रचि प्रपंच बसुद्यौहीं। दारुन पीर दीन्ह अज मोहीं॥
सुत जीवनु तोहिं तें बिलगाहीं। जिअत रहौं मैं कारन काहीं॥

हा प्रियतम! वसुदेवजी ने ही प्रपञ्च रचकर मुझे पुत्र-वियोगरूपी यह भयङ्कर पीड़ा दी है। हे पुत्र! तुझसे अलग होकर मैं किस कारणवश जीवित रहूँ।

किन्तु फिरन तेहिं आस बँधाई। जिअँ अभागि कस देउँ बिहाई॥
मैं तिन्ह प्रति करि अगनित खोरी। सुत मम तदपि न नयता छोरी॥

किन्तु उसनें लौट आने की आशा जो बँधा दी है, अब मैं अभागिनी अपने प्राण कैसे त्याग दूँ? मैंने उसके प्रति अनेक अपराध किये हैं, फिर भी मेरे उस पुत्र ने अपनी विनम्रता नहीं छोड़ी।

घाम बाँधि राखेउ मैं ताहीं। दुख तेहिं तद्यपि मानेहुँ नाहीं॥
सुनि सिरु धुनि पितु कह पछिताहीं। बयस तासु अबुही अह काहीं॥

मैंने उसे धूप में बाँधे रखा, किन्तु इस बात का उसने (कुछ भी) दुःख नहीं माना। यह सुनते ही सिर धुनकर पछताते हुए नन्दरायजी ने कहा कि अभी तो उसकी अवस्था ही क्या है?

दोहा- **तद्यपि दुरगम बिपिन नित सखन्हँ संग उठि प्रात।**
हमरेहुँ धेनु उदार सिसु प्रमुदित रह्यो चरात॥८१॥

फिर भी वह उदार बालक बड़ी प्रसन्नता से अपने सखाओं के साथ नित्य प्रातः उठकर दुर्गम वनों में हमारी गायों को चराता रहा।

चौ.- **प्रिये असीम सो भा अपराधा। अलपहिं दधि हित तुम तेहिं बाँधा॥**
ब्रज रच्छा करि तेहिं बहुबारा। कीन्ह सक्र पन्नग प्रतिकारा॥

हे प्रिये! वह बड़ा ही असीम अपराध हुआ था जब तुमनें थोड़े से दहीं के लिये उसे बाँध दिया था। उसने अनेक बार व्रज की रक्षा की और देवराज इन्द्र व कालिय सर्प का विरोध किया।

बरुन मोहि जब पास बँधावा। तिन्हहिं आइ मोहि सहज छरावा॥
देखु किन्तु मम सुतबछलाई। पुर पठवा तेइहिं भय पाई॥

जब वरुणदेव ने मुझे पाश में बँधा लिया था तब उसने ही आकर मुझे सहजता से छुड़ाया था। किन्तु मेरा पुत्र प्रेम तो देखो! दुष्ट कंस का भय पाकर मैंने उसी को मथुरा भेज दिया।

तद्यपि कछु बिलगान न तेई। अवसर परै सपथ मम लेई॥
हाय प्रिये यह का करि बीता। राखेउ तनु भयऊँ जिअँ रीता॥

किन्तु फिर भी उसने कुछ बुरा नहीं माना और समय आने पर वह मेरी शपथ उठाता है। हा प्रिये! मैं यह क्या कर बैठा, प्राण खोकर मैंने शरीर रख लिया!

अब लिखेहुँ जे देअँ लिलारा। सहन परिहिं सो बिरहुँ अपारा॥
तातें परिहरि दुख यह भारी। धरहुँ धीर गिरिधर महतारी॥

अब विधाता ने मेरे माथे पर जो लिख दिया है, वह अपार वियोग तो मुझे सहना ही पड़ेगा। इसलिये इस महान दुःख का त्याग करके, हे गिरधर की मैय्या! तुम धीरज धारण करो।

सुनि बेदनि कठोर परसाई। लगि महितल मैय्या अकुलाई॥
तब मृदु बचन धीर उन्ह देता। आनिसि नंद तुरन्त निकेता॥

यह सुनकर भयङ्कर वेदना के स्पर्श से आहत हुई मैय्या व्याकुल होकर भूमि पर गिर पड़ी। तब कोमल वचनों से धैर्य बँधाते हुए नन्दरायजी उन्हें शीघ्र ही घर ले आए।

गिरिधर माखनचोर लला रे। कहत पाछ सब लोअ सिधारे॥
अस बर अवसर माहुर पाई। लग चहुँदिसि निज सीवँ बढ़ाई॥

उनके बाद गिरिधर, माखनचोर, लल्ला इस प्रकार कहते हुए वहाँ उपस्थित गोपगोपियाँ भी घरों को लौट आए। ऐसे उत्तम अवसर को पाकर सूनापन वहाँ चारों ओर अपनी सीमा बढ़ाने लगा।

दोहा- ब्रज कन कन तें लोअन्हँ हृदय केर गहनाइ।
घोरेहुँ तेहिं प्रभाउँ निज दुसह दाव उपजाइ॥८२॥

उस सूनेपन ने असहनीय दाह उत्पन्न करके, व्रज के कण-कण से लेकर वहाँ रहनेवाले स्त्री-पुरुषों के हृदयों की गहराई तक अपना प्रभाव घोल दिया।

चौ.- अवध सरिस गति भइ ब्रज केरी। पीर लपट उठि लागि घनेरी॥
ठाढ़ अजिर जसुमति ब्रजराई। पुर दिसि चितवहि नयन लगाई॥

व्रज की दशा उस समय अयोध्या के समान हो गई थी। नन्दरायजी और यशोदाजी अपने आँगन में खड़े होकर मथुरा की ओर नेत्र लगाकर देख रहे हैं।

मोचहि प्रेम अमिअ दृग दोना। जनु कोउँ कीन्ह तेन्ह सिरु टोना॥
ब्रज मृग बिरहु बिसिख कर मारा। समय ब्याध पुनि लाग प्रतारा॥

नेत्रपुटों से वे निरन्तर अश्रुपात कर रहे हैं। जैसे किसी ने उन पर टोना कर दिया हो। व्रजरूपी मृग विरहरूपी बाण से आहत है और उसी को समयरूपी व्याध दुःख देने लगा।

दंपति कबहुँ हेरि सुत रोवत। कबहुँक ब्रह्म जानि मग जोवत॥
निसि न नींद पर उन्ह अति पीरा। दिवस बीत सब होत अधीरा॥

वे दम्पति कभी तो अपने पुत्र कन्हैया का स्मरण करके रोते हैं और कभी ब्रह्म जानकर उनकी प्रतीक्षा करते हैं। पीड़ा की अधिकता के कारण रात्रि में उन्हें नींद नहीं आती है और सम्पूर्ण दिन अधीर होते हुए ही बीत जाता है।

रहे ग्वाल जे मथुरा माहीं। फेरे कान्हँ सबनि समुझाहीं॥
छिन सो उन्ह असि दीन्ह निरासा। चित मुख गा उन्ह मीचु कुहासा॥

पहले जो ग्वाले मथुरा में रह गए थे, भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाकर व्रज लौटा दिया। उस क्षण ने उन्हें ऐसी निराशा दे दी कि उनके मुख और चित्त मृत्युरूपी कुहासे में डूब गए।

दोहा- आइ सबन्हँ गोपिन्हँ कहेउ सकल चरित कन्हँ केर।
पुर अह कुबुजा चेरि एक पिय तव भा तिन्ह चेर॥८३॥

तब उन सबने आकर कन्हैया का सारा चरित्र गोपियों को कह सुनाया कि नगर में एक कुब्जा नाम की दासी है। तुम्हारा प्रियतम जिसका दास हो गया है।

चौ.- जेहिं सुनि गोपिन्हँ भा बिस्वासा। पिय के फिरन बृथा अब आसा॥
सोक कठिनतम तब हिय पाई। गोपि परसपर कह अकुलाई॥

जिसे सुनकर गोपियों को विश्वास हो गया कि अब प्रिय के लौटने की आशा व्यर्थ है। तब मन में प्रियवियोगरूपी कठोरतम दुःख का अनुभव करके, अकुलाकर वे आपस में कहने लगी कि,

अनुचित उचित बिचार बिहाई। हरि चेरिहिं प्रति प्रीति बढ़ाई॥
पेमु रहा पुनि जेइ हमारा। पुर पराय पिय सहज बिसारा॥

अनुचित व उचित का विचार भुलाकर कन्हैया ने एक दासी के प्रति प्रेम बढ़ा लिया और उनके प्रति हमारा जो प्रेम था उसे उन्होंने पराये नगर में जाकर सहज ही में भुला दिया।

नित्यप्रिया करि एकौ चेरी। कान्हँ कटानि नाक हमु केरी॥
चेरि एक पिय के प्रिय होती। मुख हमरे लग जनु मसि पोती॥

एक दासी को नित्यप्रिया बनाकर कन्हैया ने हमारी नाक कटवा दी। हे सखियों! प्रियतम को एक दासी प्रिय हो रही है। ऐसा लगता है, जैसे हमारे मुखों पर कालिख पुत गई हो।

तेहिं हरिहिं बस कीन्हेंउँ आपन। अब हमार तें हर परिताप न॥
लग अक्रूर तिन्हहिं मत आवा। जेहिं पिय हिय अस भेद बढ़ावा॥

उसने कन्हैया को अपने वश में कर लिया है, इसलिये अब वे हमारा दुःख नहीं हरेंगे। लगता है अक्रूर उसी का मत पाकर आया था, जिसने प्रियतम के हृदय में ऐसा भेद बढ़ाया है।

थिरता रंच रह न हिय जाकें। प्रीति अधिक दिनु चलहिं न ताकें॥
सोइ सुभाय इहँ कान्हँ देखावा। कछु दिनु पेमु किए बिहरावा॥

जिसके हृदय में रञ्चमात्र भी स्थिरता नहीं होती उसका प्रेम भी अधिक दिनों तक नहीं चलता। कन्हैया ने भी यहाँ वहीं स्वभाव दिखाया है, जो कुछ दिनों का प्रेम करके, छोड़ गए।

दोहा- **अली कि लखि कबहुँक कुबरि जे लखि कहु तिन्ह रूप।**
ते कि अपछरा सुरतनुजा की कमलहिं प्रतिरूप॥८४॥

हे सखि! क्या तुमनें कभी कुबड़ी को देखा है? यदि देखा है तो उसके रूप का बखान करो। क्या वह अप्सरा है या देवाङ्गना है अथवा क्या लक्ष्मी का ही प्रतिरूप है?

चौ.- **री बावरि यह भ्रम तउ कोरा। तें कुरूप कूबरधर घोरा॥**
तन त्रिभंग निसिचरि सम आनन। कच कंटक झारी जनु कानन॥

तब उसने कहा- अरी बावरी! यह केवल तेरा कोरा भ्रम है। वह कुरूप है और अपनी पीठ पर भयानक कूबड़ धारण किये रहती है। उसका शरीर तीन स्थानों से टेढ़ा है, मुख राक्षसी के समान और बाल तो ऐसे है जैसे वन की कटीली झाड़ी ही हो।

खगपति चोंच सरिस घनि नासा। अवचट दरसन दायक त्रासा॥
लोग निरखि कर तिन्ह उपहासा। तेहिं निरखि सिसु लहँ अति त्रासा॥

पक्षिराज गरुड़ के समान उसकी नाक बड़ी ही विशाल है। उसका अचानक किया गया दर्शन भय उत्पन्न करनेवाला है। लोग उसे देखकर उसका उपहास किया करते हैं और बच्चे उसे देखकर अत्यन्त भयभीत हो जाया करते हैं।

बचन सत्य जे सखि यह तोरा। रीझे किमि त्रिलोक चितचोरा॥
उतरु त तेहिं देइ सक तेई। लज्जा बेचि खाइ सखि जेई॥

हे सखि! जो यदि तुम्हारी यह बात सत्य है, तो तीनों लोकों का चित्त चुरानेवाले श्रीकृष्ण उस पर कैसे रीझ गए? हे सखि! इसका उत्तर तो वे ही दे सकते हैं, जिन्होंने लज्जा बेच खाई है।

एहिंभाँति कुबरिहिं सौभागा। तीछ डाह सब के हिय लागा॥

राखा अवसि रूप निज भारी। कूबर महुँ दुराइ तेहिं प्यारी॥

इस प्रकार कुब्जा के सौभाग्य के प्रति उन सबके हृदय में तीक्ष्ण डाह हो गया। हे प्यारी सखि! अपने महान सौन्दर्य को अवश्य ही उसने अपने कूबड़ में छिपा रखा होगा।

पुनि जब देखेउँ कान्हँ किसोरा। छबि माया पसारि चहुँओरा॥

और जब कन्हैया को देखा तब उसने अपनी सुन्दरतारूपी माया चारों ओर फैला दी।

दोहा– अपछरान्हँ जे पूँछ निज देन दिएहुँ नहिं पैर।
बाँधेहुँ तेइहिं चेरि एक सवँ गति कुटिल घनेर॥८५॥

अहो! जो अप्सराओं के भी वश में नहीं आया, उसे ही एक दासी ने अपने वश में कर लिया है, अहो! समय की गति भी बड़ी टेढ़ी है।

चौ.– हरि भूले कि कंस के त्रासा। उन्ह गोकुल कस कीन्ह निवासा॥
अब दिनु फिरतहिं तें ब्रज त्यागी। गए चलहिं जिमि केउ बिरागी॥

क्या वे हरि भूल गए कि कंस के भय से उन्होंने कैसे गोकुल में आकर निवास किया था? अब अपना अच्छा समय आते ही व्रज को छोड़कर चले गए, जैसे कोई वैरागी चला जाता है।

प्रथम त करत रहे दधि चोरी। चित हरि गै पाछे बरजोरी॥
सखि जिमि कोकिल अंडन्हि कागा। सेअ आपनेहिं गनि अनुरागा॥

पहले तो दहीं चुराया करते थे, फिर बाद में बलपूर्वक हमारे चित्त चुरा लिये। हे सखि! जिस प्रकार कोयल के अण्डों को कौआ अपने ही अण्डे समझकर प्रेम से उन्हें सेता है,

ज्योंहि सीख पै चूज उड़ाई। तजि पालकन्हि जाति मिल जाई॥
तिमि हरि जनम छत्रिकुल भयऊ। तातें गोपन्हि तजि पुर गयऊ॥

किन्तु चूजे जैसे ही उड़ना सीख जाते हैं, वैसे ही वे अपने पालकों को त्यागकर अपनी जाति में जा मिलते हैं। उसी प्रकार कन्हैया का जन्म भी क्षत्रियवंश में हुआ है, इसी कारण वे गोपों को छोड़ मथुरा चले गए।

अब राजतो होब नृप पासा। करते होइ सेव बहु दासा॥
सो अब हेरत नाउँ हमारा। होति होब तेहिं लाज अपारा॥

वहाँ अब वे राजा के पास विराजमान रहते होंगे और बहुत से दास उनकी सेवा किया करते होंगे। अतः हमारा नाम लेते हुए तो उन्हें अत्यधिक लज्जा ही आती होगी।

छाछ सुनत अस नाक सकोरी। मुख फेरतो होब बरजोरी॥
बासुदेव करि तहँ निज नाऊँ। पाएहुँ अचल नृपति गृह ठाऊँ॥

'छाछ' यह नाम सुनते-ही वे नाक सिकोड़कर अपना मुख फेर लेते होंगे। वहाँ अपना नाम वासुदेव करके उन्होंने राजा के घर अचल स्थान बना लिया है।

अब त कहात होब जुबराजा। बिसरब नाउँ गोपिसिरताजा॥
लागति होब लाज तेहिं भारी। कहतो होइ पुर कोउ बनवारी॥

अब तो वे युवराज कहलाते होंगे इसलिये 'गोपीवल्लभ' यह नाम उन्होंने त्याग दिया होगा। यदि नगर में उन्हें कोई 'बनवारी' कहता होगा तो उन्हें अत्यधिक लज्जा आती होगी।

सखि भ्रम यह तव हृदय बिराजा। निस्सरेन्हँ कहँ लाग न लाजा॥
देखेसु जब तेहिं सुरति हमारी। तावहि पुनि फिर कुंजबिहारी॥

हे सखि! यह भ्रम है जो तुम्हारे मन में बस गया है, अन्यथा निर्लज्जों को लाज नहीं आती।

दोहा- **सखि अब तें कि बिसारिहि राजसि भोग बिलास।**
कबहुँ न तातें ब्यरथ अह ताहि फिरन कइ आस॥८६॥ (क)

हे सखि! अब क्या वे राजसी भोग त्यागेंगे? कभी नहीं! अतः उनके लौटनें की आशा व्यर्थ है।

दावानल तें रच्छेउँ सखि एक दिनु असुरारि।
अब पराय सौं तजि गयउ जरत बिरहु निज भारि॥८६॥ (ख)

हे सखि! उन असुरनिकन्दन श्रीकृष्ण ने एक दिन दावानल से हमारी रक्षा की थी और अब हमें परायों के समान अपने विरह की भयङ्कर अग्नि में जलती हुई छोड़कर चले गये।

चौ.- **हरि छबि ढीठ मोर मनु छाई। जे जतने जनि जाति बिहाई॥**
पिय निरखे सपनेहुँ एक बारा। मोर कंठ ताकर भुजहारा॥

उन कन्हैया की ढीठ छवि मेरे मन पर छाई हुई है। जो यत्न करने पर भी भुलाई नहीं जाती। एक बार स्वप्न में मैंने उन प्रियतम को देखा था, तब उनकी भुजा मेरे कण्ठ में थी।

इरिषा करि तेहिं समय समीरा। कीन्ह सबद पट तारि गभीरा॥
जाते उचटि नींद सखि मोरी। बिकल भवन इत उत फिरि दौरी॥

किन्तु उसी समय ईर्ष्या के वश होकर वायु ने द्वार को वेगपूर्वक खड़-खड़ाकर शब्द कर दिया; जिससे मेरी नींद उचट गई और मैं व्याकुल होकर भवन में ही इधर-उधर दौड़ती फिरी।

हरि बिनु ब्रज बन मंदिर मोहीं। लाग उजार सान्ति सुख द्रोही॥
खग कलरव जे मधुमय कानहि। सलहि सोइ अब सूल समानहिं॥

उनके बिना मुझे व्रज के वन और भवन उजाड़ व सुखशान्ति के द्रोही लगते हैं। पक्षियों का वह कलरव जो मेरे कानों के लिये मधुमय हुआ करता था, वही अब उनमें शूल-सा चुभता है।

चंदनजुत पिय गातन्हि केरी। मधुर गंध मम हृदय गहेरी॥
चंदन अजही सखि सोउ पासा। पै न मिलति सो मधुर सुबासा॥

चन्दन से युक्त प्रियतम के अङ्गों की मधुर गन्ध मेरे हृदय में गहरी बसी हुई है। हे सखि! चन्दन तो मेरे पास अब भी वही है, किन्तु उससे वह मधुर सुगन्ध नहीं मिलती।

लाग अगिनिमय सो तरु छाहा। जहँ बिश्राम कीन्ह हियनाहा॥
पुनि बिषमय अब सरि सो नीरा। कबहुँ कीन्ह जेहिं सुध रनुधीरा॥

उन वृक्षों की छाया भी अग्निमय लगती है, जहाँ हृदयेश श्रीकृष्ण ने विश्राम किया था। यमुना का वह जल भी पुनः विषैला हो गया है, जिसे कभी उन रणधीर ने शुद्ध किया था।

दोहा- सक्र दम्भ गिरिधर मथेहुँ अब भा बिरहु सुरेस।
नयन घनन्हि परतारि जे अति बरषहिं हिय देस॥८७॥

उन गिरिधर ने देवराज का मान भङ्ग किया था। किन्तु अब यह विरह ही इन्द्र हो गया है। जो मेरे नेत्ररूपी बादलों को प्रताड़ित करके, मेरे हृदयरूपी देश पर अत्यधिक बरसता रहता है।

चौ.- इत ब्रज बिरहाकुल नरनाहा। उत मथुरा होइ रहेउ उछाहा॥
बसुद्यौ देअकि सम्मति पाई। निज कुलगुर कहँ लीन्ह बोलाई॥

हे परीक्षित्! इधर व्रजमण्डल विरह से व्याकुल था और उधर मथुरा में उत्सव हो रहा था। वसुदेवजी ने अपनी स्त्री देवकीजी की सम्मति पाकर अपने कुलगुरु को बुला लिया।

कान्हतात पुनि कह कर जोरे। मुनि उपबीत करिअ सुत मोरे॥
श्रुति अनुहार तदुप मुनिराई। उभयन्हँ नरमरजाद धराई॥

फिर श्रीकृष्ण के पिता ने हाथ-जोड़कर कहा कि हे मुनि! आप मेरे पुत्र का यज्ञोपवीत कर दीजिये। तब मुनि गर्गजी ने वेदोक्त रीति से दोनों ही भाईयों को यज्ञोपवीत धारण करवाया।

पुरजन समाचार जब पाए। आतुर हरषि राजगृह आए॥
तहाँ दंपतिहिं पुलकित देही। सुभकामना दीन्ह सब ऐहीं॥

जब मथुरावासियों को इसका समाचार मिला तो वे उतावली से दौड़कर राजभवन आए। फिर वहाँ उन सबनें वसुदेवजी व देवकीजी को पुलकित शरीर से, इस बात की शुभकामनाएँ दी।

नागरि करि बहुभाँति सिंगारा। उमगि हृदयँ धरि मोद अपारा॥
बसन नवीन श्रवन ताटंका। रोलि बिरंजित भाल मयंका॥

नगर की स्त्रियाँ अनेक प्रकार का शृङ्गार करके, अपने हृदय में अपार आनन्द धारण किये उमड़ पड़ी। उन्होंने अपने शरीर पर नवीन वस्त्र व कानों में कुण्डल धारण कर रखे हैं और उनके ललाटरूपी चन्द्रमा पर रोली की बिन्दी लगी है।

सुदृढ़ बेनि कुसुमावलि छाई। माँग सिंदूर अधर अरुनाई॥

उनकी सुदृढ़ वेणियाँ पुष्पहारों से शृङ्गारित है, माँग में सिन्दूर व अधरों पर लाली लगी है।

छन्द- अरुनाइ अधरन्हि बात बहुबिधि घोरि आतुर सब चली।
कंचन परातन्हि धरे मंगल भेंट मन इच्छा फली॥
दस पाँच मिलि हरि सुजसु गावहि कछुक मुदबस नाचही।
निद्राभवन प्रांगन सपुन दीपन्ह अवलि जनु झालही॥

अपने अधरों की लालिमा में अनेक प्रकार की बातें घोलकर वे समस्त स्त्रियाँ आतुर होकर चली। उन्होंने सोने की परातों में मङ्गलमय वस्तुओं की भेंट ले रखी थी। उनके मन की इच्छा पूर्ण हो गई। पाँच-दस स्त्रियाँ भगवान श्रीकृष्ण का सुन्दर यश गा रही है और कुछ आनन्दवश नृत्य कर रही है, जैसे निद्रारूपी भवन के आँगन में स्वप्नरूपी दीपकों की कतार झलमलाती है।

दोहा- साजे मंगल कलस उन्ह गावहि अति मृदु बानि।
एहिंभाँति आतुर सबनि नृप मंदिर प्रबिसानि॥८८॥

उन्होंने मङ्गल कलश सजा रखे हैं और अत्यन्त मधुर वाणी से वे गा रही हैं। इस प्रकार वे सब बड़ी ही उतावली से राजभवन में प्रविष्ट हुई।

चौ.- कंतन्ह नाउँ सुहागिनि नारी। लेत परसपर रहि दै गारी॥
मान कीन्ह देवकि सबुही का। देत दूब गोरोचन टीका॥

सुहागिनी स्त्रियाँ एक-दूसरे के पतियों का नाम लेकर मधुर गालियाँ दे रही है। (उस समय) माता देवकी ने दूब व गोरोचन का तिलक लगाकर उन सबका आदर किया।

हरषि भेंट धरि सब उन्ह चरना। बन्दे पद सुख जाइ न बरना॥
पुरजन बसुद्यौ कहँ सनमानी। मनिमय कंठि एक पहिरानी॥

उन सबने हर्षित हो भेंट की सब वस्तुएँ उनके चरणों में रखकर उनकी चरणवन्दना की। उनके सुख का वर्णन नहीं होता। नागरिकों ने सम्मान करके, वसुदेवजी को मणियुक्त कण्ठी पहनाई।

बसुद्यौ फिरि निज आस बहोरी। उन्ह बहु भेंट दीन्हि कर जोरी॥
मागध सूत बंदिजन उमगे। अमल सुजसु जदुकुल गाइ लगे॥

तब वसुदेवजी ने भी अपनी ओर से हाथ जोड़कर उन्हें बहुत-सी वस्तुएँ भेंट की। (यह देखकर) मागध, सूत व बन्दीजन उमड़ पड़े और यदुकुल का निर्मल यश गाने लगे।

उमगि लाग घर घर मुद भारी। लखि लहिं सान्ति जदुन्हँ हितकारी॥
नृत्य होइ पुर सकल बिभागा। जरठ तरुन सिसु चर अनुरागा॥

घरों-घर महान आनन्द उमड़ने लगा। यह देखकर यादवों के हितैषी श्रीकृष्ण ने संतोष प्राप्त किया। नगर में सब ओर नृत्य-सा होने लगा और बच्चे, युवा व बूढ़े प्रेमसहित विचरने लगे।

छन्द- अनुराग बस चर सिसु तरुन अरु जरठ संकट सब टरे।
पुर बीथि मारग सब मलय अरु दधि हरदि कीचहि भरे॥
घरसिखर तोरन धुज पताका चारु चौक अजिर पटे।
अति सघन होत उछाह देखन बिबुधगन अम्बर डटे॥

बच्चे, बूढ़े और युवा अनुराग के वश होकर घूम रहे हैं, उनके सारे सङ्कट टल गए। नगर की गलियाँ और समस्त रास्ते चन्दन, दहीं और हल्दी के कीचड़ से भर गए। घरों के शिखरों पर तोरण, ध्वजा व पताकाएँ लहरा रही है। भवनों के आँगन सुन्दर स्वस्तिक चिह्नों से पटे पड़े हैं। वह उत्सव बड़ा ही भव्य हो रहा था। जिसे देखने के लिये आकाश में देवतागण आ डटे।

सो.- मथुरा घर घर माँझ नित नव मंगल होइ लग।
दिवस निसा अरु साँझ जेहिं तें जात न जानि पर॥८९॥

मथुरा में घर-घर नित्य-नवीन मङ्गल होने लगे, जिसके कारण दिन, रात्रि व संध्या जाती (बीतती हुई) नहीं जान पड़ती।

चौ.- बसुद्यौ द्विजन्ह दान दए नाना। अन धन धेनु पुरट मनिखाना॥
पुनि जाचकन्ह अजाचक कीन्हें। जसि रुचि जिन्हँ तिन्ह तैसेहिं दीन्हें॥

वसुदेवजी ने ब्राह्मणों को अन्न, धन, गायें, स्वर्ण व मणियों की खाने आदि अनेक प्रकार के दान दिए। फिर उन्होंने याचकों को जिनकी जैसी रुचि थी उन्हें वैसा दान देकर सन्तुष्ट किया।

गगन बिबुधगन सुमन खसाए। बिद्याधरिन्ह सुमंगल गाए॥
कछु सवँ बिगत पठन दोउँ भाई। गै गुरकुल पितु आयसु पाई॥

यह देखकर आकाश से देवताओं ने पुष्प बरसाए और विद्याधरियों ने सुन्दर मङ्गल गीत गाए। कुछ समय बीतने पर श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई पिता की आज्ञा से पढ़ने गुरुकुल गये।

सिप्रा तीर राजहि सो धामा। जगत प्रसिद्ध उजैनी नामा॥
बसइ सांदिपनि तहँ मुनि ग्यानी। आगम निगम धरे निज बानी॥

शिप्रानदी के तट पर वह नगर था, जिसका नाम संसार में उज्जयिनी प्रसिद्ध है। वहाँ अपनी वाणी में वेद पुराणों को धारण करनेवाले, सांदिपनी नाम के एक ज्ञानी मुनि निवास करते थे।

तासु चरन बन्दन दोउँ कीन्हा। हरषि मुनीस निजाश्रय दीन्हा॥
नाउँ सुदामा तहँ द्विज एकू। करहिं अध्ययन निपुन बिबेकू॥

वहाँ जाकर दोनों ने उन मुनि के चरणों में प्रणाम किया। तब मुनि ने प्रसन्न हो उन्हें आश्रय में ले लिया। वहीं पर विवेक में निपुण सुदामा नाम का एक ब्राह्मण भी विद्याध्ययन करता था।

जेहिं आपन सुभाय मधुराई। हरि सँग साधि अभंग मिताई॥
राजन एक दिनु पाबस माहीं। देखा गुरइनि ईंधनु नाहीं॥

जिसने अपने स्वभाव की मधुरता के बल पर भगवान श्रीकृष्ण से अभङ्ग मित्रता साध ली थी। हे परीक्षित! वर्षा ऋतु में एक दिन गुरु माता ने देखा कि आश्रम में ईंधन नहीं है।

दोहा– **तब सुदामहीं कहेहुँ उन्ह आश्रमु बरवनु नाहिं।**
तातें कन्हँ सँग जाइ बन आनहुँ काठ जुड़ाहिं॥९०॥

तब उन्होंने सुदामा से कहा कि आश्रम में ईंधन नहीं है। इसलिये कन्हैया को साथ ले जाकर तुम वन से कुछ ईंधन जुटा लाओ।

चौ.– **देत चबेन कहा गुरुमाता। बन लग भूख गहेहुँ दुहुँ भ्राता॥**
सुनतहिं उन्ह बच सीस चढ़ाई। चले सुदाम कान्हँ हरषाई॥

फिर गुरुमाता ने चबेना देकर कहा कि जब तुम दोनों भाईयों को वन में भूख लगे; तब इसे खा लेना। सुनते-ही उनके वचनों को सिर पर चढ़ाकर सुदामा व श्रीकृष्ण हर्षित होकर चले।

जातहिं बन जुड़ानि बहु काठा। आतुर लगे आश्रमहिं बाटा॥
तबहि वात उठि जलधर गाजे। लखि दुहुँ तरु एक जाइ बिराजे॥

फिर वन में जाते ही उन्होंने खूब लकड़ियाँ इकट्ठी की और उतावली से आश्रम के मार्ग पर चल पड़े। उसी समय वायु उठी और मेघ गरजने लगे। यह देख दोनों एक वृक्ष पर जा चढ़े।

जब भइ राति जलद झर भारी। मग न सूझ तब हृदयँ बिचारी॥
पटुक बाँधि श्रव कह सुखधामा। प्रातकाल हम चलिहिं सुदामा॥

जब रात्रि हो गई और मेघ अत्यधिक बरसनें लगें, तब मार्ग न सूझने पर मन में विचार करके, अपने कानों को पीताम्बर से बाँधते हुए सुखधाम श्रीकृष्ण ने कहा- हे सुदामा हम सवेरे चलेंगे।

चलन कष्ट बल तव बकघाती। मैंपि इहहिं गुजारि चहुँ राती॥
इहिंबिच छुधा सुदामहिं लागी। लोभ बिबस तब धीरज त्यागी॥

चलनें में कष्ट ही है, अतः हे बकासुर के शत्रु! तुम्हारे बल से मैं भी रात्रि में यहीं रुकना चाहूँगा। इसी बीच सुदामाजी को भूख लग आई, तब लोभ के वश होकर धैर्य का त्याग करके,

वदनु ढापि एखल अतुराई। खाइ लाग चन दसन दबाई॥
किन्तु चन त चन करहिं रव न कस। बुद्धिहीन नर चुप न रहहिं जस॥

मुख ढंके सुदामाजी दाँतों से होनेंवाले शब्द को दबाकर, शीघ्रता से अकेले ही चनें खाने लगे। किन्तु चने तो चने थे, शब्द कैसे नहीं करते; जैसे बुद्धिहीन पुरुष चुप नहीं रह सकते।

कटकट धुनि सुनि हरि कह भाई। दीन्ह कि कछुक खाद्य गुरमाई॥

कट-कट ध्वनि सुनकर कृष्ण ने कहा- हे भाई। क्या गुरुमाता ने खाने को कुछ दिया है?

दोहा- **सख न चबावन सबद यह तनु लहँ अति सितलाइ।**
जातें कटकट धुनि करइ दसन मोर टकराइ॥९१॥

तब सुदामाजी ने कहा- हे भाई! ये चबाने की ध्वनि नहीं है, मेरा शरीर अत्यधिक ठण्ड का अनुभव कर रहा है। जिससे मेरे दाँत आपस में टकराकर कट-कट की ध्वनि कर रहे हैं।

चौ.- **द्विज एहि अघ कारन नरनाहा। पावा दारिद अकथ अगाहा॥**
तदुप देअकिहि दोउँ मुद जलधी। भै प्रबुद्ध चौसठ दिनु अवधी॥

हे परीक्षित्! सुदामा नाम के उन विप्र ने इसीलिये अकथ्य व अगाध दरिद्रता पाई। तदुपरान्त देवकीजी के लिये आनन्द के समुद्ररूप, वे दोनों चौंसठ दिनों में पढ़कर परम पण्डित हो गए।

चारिउँ बेद उए जिन्हँ स्वासा। तेइ मनुज सम पढ़ गुर पासा॥
नृप एहि मिस जग महुँ गुनरासी। गुर महिमा निज हाथ प्रकासी॥

चारों वेद जिनके श्वास से उत्पन्न हुए हैं वे भगवान ही गुरु के पास मनुष्य जैसे शिक्षा पाते हैं। हे परीक्षित्! इसी बहाने गुणों की राशि प्रभु ने इस संसार में गुरुमहिमा प्रकाशित की।

तदुप गुरहिं कह हरि सिरु नाई। नाथ कृपा हम बिद्या पाई॥
गुर दछिना मिस कछु सेवकाई। चलत करै चह हम दुहुँ भाई॥

तदुपरान्त श्रीकृष्ण ने गुरुदेव से जाकर कहा कि हे नाथ! आपकी कृपा से हमनें सब विद्या प्राप्त कर ली है। अब चलते समय हम दोनों भाई, गुरुदक्षिणा में कुछ सेवा करना चाहते हैं।

सिव पसाउ प्रति तब कर जोरे। कह मुनिबर न पृहा कछु मोरे॥
पर निज गुर माता पहि जाई। पूछिअ जे इच्छा हिय छाई॥

तब शिवानुग्रह के प्रति हाथ जोड़कर मुनिवर ने कहा कि मुझे तो कुछ भी इच्छा नहीं है; किन्तु तुम अपनी गुरुमाता के पास जाओ और यदि उनके मन में कोई इच्छा है, तो उनसे पूछ लो।

तब दुहुँ गुरमातहि समुहाए। कहन लाग चरनन्हि सिरु नाए॥
माता अब हम घर चलि चहहीं। मनु हमार तुम्हरे पद बसहीं॥

तब वे दोनों गुरुमाता के सन्मुख जाकर चरणों में सिर नवाकर कहने लगे कि हे गुरुमाता! अब हम दोनों भाई अपने घर चलना चाहते हैं, आपका स्नेह हमारे हृदय में सदैव बना रहेगा।

एहिं अवधि तव ममता पाई। घरनि सुरति हमरे नहिं आई॥
तातें पृह केउ लेहुँ सराई। बिद्या लहँ हमार सुफलाई॥

इस अवधि में आपकी ममता के कारण हम भाईयों को घर की याद तक न आई। इसलिये अब आप अपनी कोई मनोकामना हमसे पूर्ण करवा लीजिये, ताकि हमारी विद्या सफल हो जाय।

तेहिं सवँ निज नारिहिं अति चाऊ। मुनिबर कहि लग दुहुन्हँ प्रभाऊ॥

उसी समय मुनिश्रेष्ठ अपनी स्त्री को बड़ी ही रुचि के साथ उन दोनों का प्रभाव बतानें लगे।

दोहा- **पढ़े उभय अलपहि अवधि श्रुति उपनिषद पुरान।**
सो मोरे निस्चय भयऊ ए कोउँ बिबुध महान॥९२॥

इन दोनों भाईयों ने बहुत कम समय में ही समस्त श्रुतियों, उपनिषदों व पुराणों को पढ़ लिया है। अतः मुझे यह निश्चय हो गया है कि ये दोनों अवश्य ही कोई महान देवता है।

चौ.- **तातें जे मनरथ तव होई। इन्ह कहु अवसि फुरिहि ए दोई॥**
तब गुरइनि ममतहि उमगानी। कहि लगि सोकसिक्त अस बानी॥

अतः तुम्हारे मन में जो भी इच्छा हो, इन्हें बता दो। ये दोनों भाई उसे अवश्य ही पूर्ण कर देंगे। तब वे गुरुपत्नि वात्सल्य से ओतप्रोत हो गई और शोकसिक्त वाणी से इस प्रकार बोली-

बूड़ेहुँ पूरब जलधि हमारा। सुत आनिब सुख होइ अपारा॥
तब दोउँ नाइ सीस कर जोरी। चले सगुन भै सुभ चहु ओरी॥

हमारा पुत्र जो पहले समुद्र में डूब गया था, यदि तुम उसे ला दो तो मुझे अपार सुख हो। तब दोनों भाई हाथ-जोड़कर और सिर नवाकर चले। उस समय चारों ओर अनेक शुभशकुन हुए।

सिंधु तीर जब गै दुहुँ भाई। तब निज गृह उन्ह आवत पाई॥
करन जोहार धरे सुकलेवर। प्रगटि तुरत कहि लाग समुंदर॥

जब वे दोनों भाई समुद्र के तट पर गए, तब उन्हें अपने घर आते हुए जानकर उनका स्वागत करने के लिये, सुन्दर वेष धारण करके, तुरन्त ही प्रकट होकर समुद्र कहने लगा कि,

परमब्रह्म तिहुँपुर कर राजा। सेवक यह तत्पर तव काजा॥
एक दिवस गुरदेव हमारे। निज सुत तिय सँग इहाँ पधारे॥

हे परब्रह्म! हे त्रिलोकीनाथ! आपके कार्य के लिये यह सेवक तत्पर है। तब उन दोनों भाईयों ने कहा कि एक दिन हमारे गुरुदेव अपने पुत्र व स्त्री सहित यहाँ (आपके तट पर) पधारे थे।

तब उन्ह सुत तैं लीन्ह बहाई। देहुँ हमहिं तेहिं सद्य फिराई॥

तभी तुमनें उनके पुत्र को बहा लिया था। अतः तुम उसे शीघ्र ही मुझे लौटा दो।

दोहा- **मैं न कीन्ह अपराध यह नाथ कहउँ सतिभाउँ।**
अवसि गयउ लै तेहिं असुर जासु मोर जल ठाउ॥९३॥

तब समुद्र ने कहा कि हे नाथ! मैं सत्यभाव से कहता हूँ, मैंने यह अपराध नहीं किया। उस बालक को अवश्य ही वह राक्षस ले गया होगा, जिसका निवास मेरे जल में है।

चौ.- **पाइ सिंधु तें गुरसुत सैना। कूदे जल महुँ दुहुँ झखनैना॥**
सो छिनु धरेउ त्रिपुर उन्हँ भारा। उन्नत उमगि तरंग अपारा॥

तब समुद्र से गुरुपुत्र का सङ्केत पाकर श्रीकृष्ण व दाऊ जल में कूद पड़े। उस समय उन्होंने अपने शरीर में त्रिलोक का भार धारण कर रक्खा था, जिससे अनेक ऊँची लहरें उठनें लगी।

प्रबल भयंकर भँवर परेऊ। बज्रकूट गिरि जनु तिन्हँ मथेऊ॥
तेहिं सवँ पाँचजन्य अस नाऊँ। असुर सो सुअत रहा जलथाऊ॥

प्रबल व भयङ्कर भँवर पड़ने लगा, मानों वज्रकूट पर्वत ने उसे मथ दिया हो। उस समय पाञ्चजन्य नाम का वह राक्षस (समुद्र के) जल के तल में सो रहा था।

जलतल प्रबल भँवर जे परेऊ। कंबुगात तेहिं बल गरबरेऊ॥
जातें नींद उचटि करि क्रोधा। उभय बंधु सन भा सो जोधा॥

जल के तल में जो प्रबल भँवर पड़ा था, उसी के बल से वह राक्षस लुढ़कनें लगा। जिससे उसकी नींद टूट गई और कुपित होकर वह योद्धा उन दोनों भाईयों के सन्मुख आ गया।

रिसबस आव न ताव निहारा। उभयन्हि पर निज सूल प्रहारा॥
तब हरि खंडि सूल सो भारी। उभय करन्हि तिहि मुठिका मारी॥

क्रोधवश आव देखा न ताव और उन दोनों पर उसने अपने शूल से प्रहार किया। तब श्रीहरि ने उस भयङ्कर शूल को नष्ट करके, दोनों हाथों का मुक्का बनाकर उस दुष्ट को मारा।

तब तुरंत निसिचर तजि प्राना। करि गा बर बैकुंठ पयाना॥
तासु कंबु तनु स्याम जुड़ाना। पांचजन्य जिन्हँ जान जहाना॥

तब वह निशाचर तुरन्त ही प्राण त्यागकर उत्तम वैकुण्ठलोक को चला गया। फिर उसके शङ्खसदृश शरीर को भगवान ने उठा लिया, जिसे संसार पाञ्चजन्य के नाम से जानता है।

दोहा- गुर सुत जब न मिलेउँ तहँ जमपुर गै दोउँ भाइ।
संजमनी के द्वार पुनि लग सोउ संख बजाइ॥९४॥

फिर जब गुरु का पुत्र वहाँ नहीं मिला, तब वे दोनों भाई यमलोक जा पहुँचे और उस संयमनीपुरी के द्वार पर वे उसी शङ्ख को बजाने लगे।

चौ.- घनगर्जन सम नाद प्रचंडा। होन लाग तेहिं समय अखंडा॥
जेहिं सुनि सहित सभासद काला। कम्पित खसि परेउँ ततकाला॥

उस समय (उस शङ्ख से) मेघों की गड़गड़ाहट के समान अखण्ड और प्रचण्ड नाद होने लगा। जिसे सुनकर सभासदों सहित स्वयं यम भी कम्पायमान होकर तत्काल गिर पड़े।

नरक गई धुनि जिन्हँ जिन्हँ काना। कीन्ह सबनि गोधाम पयाना॥
बूझि तुरत जम गहि उपहारा। हाथ जोरि प्रभु सनमुख ठारा॥

वह शङ्खध्वनि नर्क में जिस-जिसके भी कानों में पड़ी, वे सब गोलोक प्रस्थान कर गये। तब सारी बात समझकर यम भेंट लेकर हाथ जोड़े हुए तुरन्त भगवान के सन्मुख खड़े हो गए।

तब हरि निज आगवन जनावा। जम तुरंत गुरसुतहिं बोलावा॥
पावतही तिन्हँ बिदा कराई। गुर सनमुख आए दुहुँ भाई॥

तब श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने आने का कारण बता दिया, जिसे सुनकर यम ने तुरन्त ही गुरुपुत्र को बुलवा लिया। उसे पाते ही, विदा माँगकर वे दोनों भाई गुरुदेव के सन्मुख लौट आए और

गुरपद सबिनय नाएहुँ सीसा। देखि हरषि उन्ह दीन्ह असीषा॥
तदुप जाइ गुरमाइहिं पासा। कहन लाग हरि मुख मँदहासा॥

विनयपूर्वक गुरु के चरणों में सिर नवाया, यह देखकर उन्होंने हर्षित हो उन्हें आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अपने मुख पर मन्दहास्य धरे, गुरुमाता के पास जाकर बोले-

लेहुँ मातु तव नयन उजेरा। तवहि सुभासिष हम जेहिं फेरा॥
सुत आपन मृत कहँ पुनि पाई। बूड़ी ब्रह्ममोद गुरमाई॥

लो मैय्या! यह तुम्हारे नेत्रों का प्रकाश, जिसे हम आपके ही शुभाशीर्वाद से लौटाकर ला सके हैं। अपने मरे हुए पुत्र को (उस समय) वापस पाकर गुरुमाता ब्रह्मानन्द में डूब गई।

तदुप आपनेउँ तनय समेतहिं। हिय लाएहुं बल कृपानिकेतहिं॥
ताहि समउँ गुर सुखघर आगे। कहे बचन अस अति रसु पागे॥

तदुपरान्त पुत्र के साथ ही उन्होंने बलराम व श्रीकृष्ण को हृदय से लगा लिया। उस समय उन गुरु सान्दिपनी ने सुख के धाम श्रीकृष्ण के सन्मुख अत्यधिक प्रेम से सने ये वचन कहे।

दोहा- गुर सो लहहिं निरास कस तुम सम चेरे जाहिं।
तुम्हहिं प्रताप रहब अमिट मोर नाउँ जग माहिं॥९५॥

वह गुरु निराशा कैसे पा सकता है, जिसके तुम्हारे समान शिष्य हों? तुम्हारे ही प्रताप से इस संसार में मेरा नाम सदैव अमर रहेगा।

चौ.- राजन गुर जिन्हँ पर अनुकूला। गिरा बसहिं उन्ह हिय सुखमूला॥
तदुप तहाँ तें बिदा कराई। प्रमुदित दुहुँ मथुरा गै आई॥

हे परीक्षित्! गुरु जिनके अनुकूल होते हैं, उन शिष्यों के हृदय में तो सुखमूला सरस्वती का निवास होता है। फिर वे दोनों भाई वहाँ से विदा लेकर अत्यन्त आनन्दपूर्वक मथुरा लौट आए।

तात मात लखि अति सुखमाना। नृपति कीन्ह दोउन्ह सनमाना॥
सकल नगरु आनंद मनावा। बजि लग घर घर सघन बधावा॥

यह देखकर देवकीजी व वसुदेवजी ने अत्यन्त सुख माना और महाराज उग्रसेन ने उन दोनों का सम्मान किया। सम्पूर्ण नगर ने आनन्द मनाया और घर-घर अत्यधिक बधाए बजनें लगे।

नृप सुनेउँ बारक भगवाना। फूअ पाँडु कर भा अवसाना॥
तब अक्रूरहिं तहाँ पठाई। कान्हँ बुआ कहँ धीर बँधाई॥

हे राजन! एक बार भगवान श्रीकृष्ण ने सुना कि उनके फूफाजी महाराज पाण्डु का निधन हो गया है, तब अक्रूरजी को पाण्डवों के पास भेजकर कन्हैया ने बुआ कुंती को धैर्य बँधाया।

गै बहोरि तें कूबरि पाहीं। लखि तें पियहिं न फूरि समाहीं॥
परिछित कूबरि सूपनखा रहि। पावन करि हरि जिहि इहि जनमहि॥

फिर वे कुब्जा के पास गए, प्रियतम को आया देख वह फूली न समाई। हे परीक्षित! यह कुब्जा पूर्वजन्म में रावण की बहिन सूर्पनखा थी, जिसे इस जन्म में भगवान ने पवित्र कर दिया।

छन्द- भइ कामना सब पूरि कुबरिहि हृदयँ अति आनँद झर्‍यो।
मानहुँ कुमुद नव चंद्रिका अन्हवाइ अति आनँद भर्‍यो॥
यह चरित द्रुमलिकतनय मर्दन प्रभुहि कर अति पावना।
जेहिं सेष सारद कह कह्यो कबि निज जथामति भावना॥

कुब्जा की सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो गई और उसके हृदय में अत्यधिक आनन्द उत्पन्न होने लगा। मानों कुमुद नई छिटकी हुई चाँदनी में नहाकर अत्यधिक आनन्द से भर गया। द्रुमलिकनंदन कंस के वध से सम्बंधित भगवान श्रीकृष्ण का यह चरित्र अत्यन्त पवित्र है; जिसे सरस्वतीजी व शेषजी गाया करते हैं, उसी को (मुझ) कवि ने अपनी बुद्धि व भावना के अनुसार वर्णन किया है।

दोहा- हरिहि सुजसु बारिधि गहन अमल सकल सुखखान।
जामहँ बूड़ि प्रबुद्धजन पावहिं पद निरबान॥९६॥

भगवान श्रीकृष्ण की सुन्दर कीर्ति का समुद्र गहरा, निर्मल व समस्त सुख की खान है, जिसमें डूबकर प्रबुद्धजन निर्वाण पद पा लिया करते हैं।

मासपारायण तेइसवाँ बिश्राम

श्री गणेशाय नमः

श्रीकृष्णचरितमानस

पंचम सोपान

वियोगकाण्ड

चौ.- जदुकुल बसुद्यौ कर लघु भ्राता। देवभाग गुननिधि बिख्याता॥
हरिहर भगत निपुन सब नीती। सुर द्विज सुजन चरन जिन्हँ प्रीती॥

यदुवंश ही में उत्पन्न हुए वसुदेवजी के देवभाग नामक एक अनुज थे, जो गुणनिधान और यशस्वी थे। श्रीहरि व शिवजी के वे भक्त समस्त प्रकार की नीतियों में निपुण थे और देवताओं, ब्राह्मणों व सत्पुरुषों के चरणों में उनका प्रेम था।

नारि तासु पतिब्रता सुसीला। दुहुँन्ह परम प्रिय प्रभु के लीला॥
जब जनमे मथुरहुँ जगपाला। ऊधौ उन्ह गृह भै तेहिं काला॥

उनकी स्त्री पतिव्रता व सुशीला थी और उन दोनों को श्रीकृष्ण की बाललीलाएँ अत्यन्त प्रिय थी। जब श्रीकृष्ण मथुरा में उत्पन्न हुए थे, उन्हीं दिनों उन देवभागजी के घर उद्धवजी का जन्म हुआ था।

प्रभु पारषद प्रभुहिं प्रतिरूपा। धर प्रतीति हरि निगुन सरूपा॥
उन्हँ कर लघु बय भा उपबीता। सुरगुर ग्यान दीन्ह सुपुनीता॥

श्रीकृष्ण के पार्षद और उन्हीं के प्रतिरूप वे उद्धवजी श्रीहरि के निर्गुण स्वरूप के उपासक थे। उनका यज्ञोपवीत बाल्यकाल में ही हो चुका था और देवगुरु बृहस्पति ने उन्हें उत्तम व पवित्र ज्ञान दिया।

गुर आयसु पुनि मथुरा आए। तात मात हिय अति हरषाए॥
बुधि बिबेक उन्ह जदुन्हँ प्रतीती। सब आचरहि तासु मत नीती॥

फिर वे गुरु की आज्ञा से मथुरा लौट आए; उन्हें लौटा देखकर माता-पिता मन में अत्यन्त हर्षित हुए। यादव उनके बुद्धि-विवेक पर विश्वास करते थे और सब उनके मत व नीति के अनुसार ही आचरण करते थे।

दोहा- मधुपुर थापेहुँ कंस अरि उग्रसेन कर राज।
ऊधौ तब हरि सखा भए संग एकान्त बिराज॥१॥

जब कंस के शत्रु श्रीकृष्ण ने मथुरा में उग्रसेनजी का राज्य स्थापित किया; उन्हीं दिनों उद्धवजी भगवान श्रीकृष्ण के सखा बने और उनके साथ एकान्त में (भी) विराजमान रहने लगे।

चौ.- चरित करइ जग जे भगवंता। निपट जान तिन्ह हरि अरु संता॥
दरसक निज निज मति अनुहारा। तिन्ह हेतुन्हँ पर करइ बिचारा॥

भगवान श्रीहरि संसार में जो भी लीलाएँ करते हैं, उन्हें केवल वे स्वयं और उनके भक्त ही जानते हैं; जबकि दर्शक अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उन लीलाओं के कारणों पर विचार किया करते हैं।

बारक प्रभु कीन्हिसि सो लीला। साखि जासु महि नभ गर नीला॥
गोपिन्हँ प्रीति अगाध अनंता। जब जब निज मुख कह भगवंता॥

एक बार भगवान ने वह लीला की जिसके साक्षी आकाश, पृथ्वी व स्वयं शिवजी है। गोपियों की आगाध व अनन्त प्रीति की श्रीकृष्ण अपने मुख से जब-जब भी प्रशंसा करते थे,

तब तब ऊधौ ग्यान गुमाना। हेठहि तेहि आनि मत नाना॥
करिबे उन्ह अस बुधि मद नासन। पुनि गोपिन्हँ रस करन प्रकासन॥

तब-तब उद्धवजी अपने ज्ञान के अहङ्कार में अनेक तर्क देकर उन्हें नीचा दिखाते थे। उनके इस बौद्धिक अहङ्कार को नष्ट करने और गोपियों के प्रेम को प्रकाशित करने के निमित्त

उन्ह ब्रज पठवन जुगुति बनाई। हरि लीन्हेंसि निज भवन बोलाई॥
बहुरि सखहि कर गहि निज हाथा। भरे प्रघन करुना ब्रजनाथा॥

भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें व्रज में भेजने की योजना बनाकर अपने भवन में बुलवा लिया। फिर अपने सखा का हाथ अपने हाथों में लेकर वे ब्रजराज गहन करुणा से भर गए।

भइ मलीन उन्ह तन तरुनाई। बदनु तड़ित ताड़ित तरु नाई॥
नयनन्हँ भरि भरि उमगि अधीरा। बाढ़ि हृदयँ गति दारुन पीरा॥

उनके शरीर की लालिमा मलिन हो गई और मुख बिजली के मारे हुए वृक्ष-सा मुरझा गया। उनके नेत्रों में भर-भरकर अधीरता उमड़ आई और (भावनाओं की) भयङ्कर पीड़ा से उनके हृदय की गति बढ़ गई।

परिहरि हास अधर अरुनाई। कम्पित भइ हिय कहँ दुख पाई॥
रुधेउँ कंठ कठिन बिरहागी। चपल जीहँ जनि जड़ता त्यागी॥

हृदय को पीड़ित पाकर उनके अधरों की लालिमा हास्य त्यागकर काँपने लगी। वियोग की कठोर अग्नि से उनका गला रूँध गया और वाचाल होकर भी उनकी जिह्वा ने जड़ता नहीं छोड़ी।

प्रियजन गतिहिं किए अनुमाना। सृजि कलपना हृदय भगवाना॥
पर ते दसा जान जन केरी। सो कलपत लहँ पीर घनेरी॥

प्रियजनों की दशा का अनुमान करने के लिये विधाता ने (मनुष्य के) हृदय में कल्पना का सृजन किया है; किन्तु वह हृदय स्वजनों की दशा जानता है, इसलिये कल्पना करते हुए वह बड़ी पीड़ा का अनुभव करता है।

तातें तरकनि परि तनुहाई। हठि रहि मनु आपन समुझाई॥
देखि तेहिं दुबिधा अस गाढ़ी। दिए धीर रोमावलि ठाढ़ी॥

इसी कारण वह कल्पना एकान्त में पड़ी हुई हठपूर्वक अपने मन को समझा रही है और उसे इस प्रबल दुविधा में फँसी हुई देखकर रोमावली धैर्य बँधाने के निमित्त खड़ी हो गई।

बार बार हिय कछु कहि चाहा। पै रसना जनि करइ निबाहा॥
ग्यान भानु जब धीर प्रकासा। तब बिदरेउ घन पीर कुहासा॥

श्रीकृष्ण का हृदय बार-बार कुछ कहना चाहता है, किन्तु जिह्वा उसका साथ नहीं देती। फिर जब ज्ञानरूपी सूर्य ने धैर्यरूपी प्रकाश उत्पन्न किया, तब पीड़ा का सघन अन्धकार नष्ट हो गया।

सबद पंकजावलि रसनासर। बिगसि लाग कहि तब मुरलीधर॥
निज बिनु ब्रज कइ दसा बिचारी। सखा होत मोहि पीरा भारी॥

और उनके जिह्वारूपी सरोवर में शब्दरूपी कमल की कतारें विकसित हो गई, तब वे मुरलीधर बोले- हे सखा उद्धव! अपने बिना व्रज की दशा का अनुमान करके, मुझे अत्यधिक पीड़ा होती है।

सो ब्रज धरत होब कस प्राना। मम मुख दरस जिवन जेहिं जाना॥
तात नंद अरु जसुमति माता। मम तजि जिन्हँ न आन सुखदाता॥
जात होब उन्हँ दिनु केहिं भाँती। इहइ हेरि भरि आवइ छाती॥

वह व्रज अपने प्राणों को कैसे रखता होगा, जिसने मेरे मुखदर्शन को ही अपना जीवन मान रखा है? बाबा नन्द व मैय्या यशोदा जिनके लिये मेरे अतिरिक्त और कोई सुखदायक नहीं है; उनके दिन किस प्रकार बीतते होंगे; इसी बात का स्मरण करके मेरी छाती भर आती है।

पुनि मम बाल सखा हितकारी। मैं जिन्हँ संग बनहिं गौ चारी॥
धरत होब कस तनु ते भाई। हेरि हेरि पर दृग उमगाई॥

फिर मेरे वे हितकारी बालसखा जिनके साथ मैंने वनों में गायें चराई थी, वे मेरे बिना किस प्रकार अपना शरीर रखते होंगे; यही सोच-सोचकर मेरे नेत्र उमड़ पड़ते हैं।

धेनुन्हँ दसा बहुरि हिय लावत। प्रान मोर अतिसय भय पावत॥

हे सखा! गायों की दशा का हृदय में अनुमान करके, मेरे प्राण अत्यन्त भयभीत हो उठते हैं

दोहा- **गोपिबृंद मम सपुन नित बिलपत होइ दुखारि।**
पुनि राधा तिन्ह मध्य सख रहति मौन दृढ़ धारि॥२॥

हे सखा! गोपियों का समुदाय मेरे स्वप्नों में नित्य आकर दुःखी हो विलाप किया करता है और उनके मध्य राधा कठोर मौन धारण किये रहती है।

चौ.- **बिषम मौन ताकर अस भ्राता। मोरे होत महादुख दाता॥**
सलहि हृदयँ मम पुनि सम सूला। परहि काज मम सब प्रतिकूला॥

हे भाई! उसका ऐसा कठिन मौन मेरे लिये महान दुःख देनेवाला होकर मेरे हृदय में शूल के समान चुभता रहता है; जिससे मेरे सारे कार्य उलटे पड़ जाते हैं।

तेहिं मोहि जब तें दीन्हि बिदाई। तब तें बैठि मुखनि चुप लाई॥
तातें तिहिं अस दसा बिचारी। गरौ जात यह गिरिबरधारी॥

उसने जब से मुझे विदा किया है, तभी से वह अपने मुख पर मौन लिये बैठी है। इसलिये उसकी इस दशा का विचार करके गोवर्धनपर्वत को भी उठा लेनेवाला यह कृष्ण गला जाता है।

कहहुँ करिअ अब काह उपाई। रूठि राधिका मोहि तें भाई॥
अस कहि अचल अकल भगवाना। सखहि समुख घन रोदनु ठाना॥

हे भाई! राधा मुझसे रूठ गई है। तुम्ही बताओ! अब क्या उपाय किया जाय? ऐसा कहकर निरंतर अविचलित रहनेवाले व कलाओं से रहित भगवान श्रीकृष्ण अपने सखा के सम्मुख सघन रुदन करने लगे।

तब मुख धरि अचरज मुसुकाना। ब्रह्ममर्मि कह कहु सुखखाना॥
तुम्हँ तें बिलग रही कबु राधा। हरि जे अज दुख करइ अगाधा॥

तब अपने मुख पर आश्चर्य व मुस्कान धारण किये ब्रह्ममर्मज्ञ उद्धवजी कहने लगे- हे सुख की खान! राधाजी आपसे अलग कब थी, जो आज श्रीहरि उनसे वियोग का महान दुःख मना रहे हैं।

आपु सिंधु राधिका तरंगा। मिलन जासु नित अमल अभंगा॥

आप समुद्र हैं, तो राधाजी आपकी तरङ्ग हैं; जिनका मिलन नित्य, निर्मल और अखण्ड है।

दोहा- **किन्तु सखहिं बच अनसुनत पुनि कह बिरहि गभीर।**
सुमिरि अनूपम ब्रजहि रस मैं केहि बिधि धरुँ धीर॥३॥

किन्तु सखा के इन वचनों को अनसुना करते हुए गहन विरही श्रीकृष्ण पुनः कहने लगे- हे सखा! बृज के अनुपम प्रेम का स्मरण करके, मैं किस प्रकार धैर्य धारण करूँ?गक्र

चौ.- **धेनु सहित ब्रज स्वजनन्हँ हेरी। सखा होत मोहि पीर घनेरी॥**
पुनि मम ताप बढ़हि अति तबही। निज बिनु उन्ह कलपउँ मैं जबही॥

हे सखा! गायों सहित व्रज के स्वजनों का स्मरण करके, मेरे हृदय में भयङ्कर पीड़ा होती है। मेरा यही दुःख उस समय और भी बढ़ जाता है जब मैं अपने बिना उनकी कल्पना करता हूँ।

करुन दसा उन्ह कइ सुमिरतही। फफकि फफकि हिय ररिबे चहही॥
तुम्हहुं त ब्रह्मग्यान हिय लावत। तो किन तैं मोहि धीर बँधावत॥

उनकी करुण दशा का स्मरण करते ही मेरा मन फूट-फूटकर रोने को करता है। आप तो अपने हृदय में ब्रह्मज्ञान धारण करते हैं, फिर आप ही मुझे धैर्य क्यों नहीं बँधाते हैं?

जातें हिय उपजइ कछु धीरा। छूट मोह कर बंध गभीरा॥
हरि मैं तुम कहँ काह सिखावौं। तुम्हहिं ब्रह्म अस सुरति करावौं॥

जिससे कि हृदय में कुछ धैर्य उत्पन्न हो और मोह का कठोर बन्धन छूट सके। (तब उद्धवजी ने कहा-) हे हरि! मैं आपको क्या सिखाऊँ? आप ही परब्रह्म है, क्या यह स्मरण कराऊँ?

अथवा कउँ कि सकल संसारा। सहित बिकार प्रपंच तुम्हारा॥
यह प्रपंच तोहि लागइ मोरा। पै मोहि हित यह दुखद कठोरा॥

अथवा क्या यह कहूँ कि यह सम्पूर्ण संसार अपने समस्त विकारों सहित आप-ही की माया है? (तब श्रीकृष्ण ने कहा-) (वियोग की) यह (अनुभूति) तुम्हें मेरे द्वारा रचित प्रपञ्च लगती है; किन्तु यही मेरे लिये कठोर दुःख देनेवाली है।

दोहा- **सत्य होत मोहि पीर अति चहुँ मैं तोर सहाइ।**
ब्रह्मग्यान निज देत कछु मोहि उबारेहुँ भाइ॥४॥

हे भाई! सचमुच मुझे अत्यधिक पीड़ा होती है, इसलिये मैं तुमसे सहायता चाहता हूँ। तुम मुझे अपना थोड़ा-सा ब्रह्मज्ञान देकर इस दुःख से छुड़ा लो।

चौ.- जिन्हँ नयनन्हँ सुखु होइ अगाधा। निरखत मम सिसु चरित अगाधा॥
जासु जतन रहते अतुराई। बाढ़न मम अधरन्हँ बिहँसाई॥

जिनके नेत्रों को केवल मेरी बाल-लीलाएँ देखते हुए ही अगाध सुख मिलता था और मेरे अधरों की मुस्कान को बढ़ाने के लिये जिनके प्रयत्न आतुर रहते थे।

सोइ ममता अज इत मुख लाई। परि बिलखहि धीरज बिसराई॥
सुष्क अधर पुनि धरि दुखि प्राना। सह अनाथ इव कुभाग बाना॥

आज वही ममता धैर्य त्यागकर मथुरा की ओर मुख किये पड़ी हुई बिलख रही है और सूखे अधरों पर अपने दुःखी प्राणों को लिये हुए किसी अनाथ की भाँति दुर्भाग्य के बाण सह रही है।

उन्ह पथरत दृग चुप धरि पोरा। लखइ आस अउसान कठोरा॥
जेहिं उठि प्रात धेनु रज गंगा। न्हावत सुख मानेहुँ मम संगा॥

उनके पथराएँ हुए नेत्र अपनी पोरों पर मौन धारण किये मेरे लौटने की आशा का दुःखद अवसान देख रहे हैं। जिन्होंने प्रातः उठकर गोरज की गङ्गा में मेरे साथ नहाते हुए सुख माना था।

निज कलेव जे मोहि गहाई। कहि कहि सखा रहे मुद पाई॥
सख्य भाव कर सो उतकरषा। मोहि तें मिलन आज अति तरषा॥

अपना कलेवा मुझे खिलाकर और मुझे मित्र-मित्र कह-कहकर जो आनन्द प्राप्त किया करते थे; सख्यभाव के उत्कर्षरूप मेरे वे सखागण आज मुझसे मिलने के लिये अत्यधिक तरस गये हैं।

बिपिन मध्य मम रंजन लाई। अकथ ढीठपनु मोर बिहाई॥

वन में (गायें चराते समय) मेरे मन के आनंद के लिये मेरी अकथनीय ढीठता को भुलाकर

दोहा- आपु लटत जे मोहि नित रहे जिताते खेल।
मिलइ कि सबन्हौ नेहि अस ऐसे मीत अमैल॥५॥

खेल में स्वयं हारकर भी जो सदैव मुझे जिता दिया करते थे; ऐसे स्नेह करनेवाले और ऐसे निष्कपट सखा क्या सबको मिलते हैं?

चौ.- जासु मूक उर कइ बछलाई। पय भइ अयनन्हि ते उमगाई॥
अकथ अनंदु बोरि निज धारा। मोहि अन्हवात रही प्रति बारा॥

जिनके मूक हृदय की ममता दुग्ध हो स्तनों से उमड़कर अपनी धारा में अकथनीय आनंद घोलकर प्रतिदिन मुझे नहलाया करती थी;

जिन्हँ पदरेनु सखान्हँ सँघाता। न्हाइ भयउँ मैं जगसुखदाता॥
जासु बिसाल बिलोचन माहीं। छबि मम संतत रह उमगाही॥

जिनके चरणों से उड़ी हुई धूल में सखाओं के साथ नहाते हुए, मैं इस संसार को सुख देनेवाला हुआ हूँ, जिनके विशाल नेत्रों में निरन्तर मेरी ही छवि उमड़ती रहती है,

जाकर ललरि झाँह सितलाई। ब्रह्ममोद कइ सुनिधि समाई॥

जे जुग जुगहि सहित परिवारा। बिस्वसँस्कृतिहि प्रगति अधारा॥

जिनकी ललरियों की छाया की शीतलता में ब्रह्मानन्द की उत्तम निधि समाई हुई है और जो युगों-युगों से अपने परिवार सहित विश्वसंस्कृति की उन्नति का आधार रही है,

सो निरीह ममता अति भारी। अज बियोग मम जात प्रतारी॥
पुनि मैं धरि निठुराइ अगाहा। रहा देइ संतत उन्ह दाहा॥

गौरूपिणी वही निर्दोष और अत्यन्त गहरी ममता आज मेरे वियोग से पीड़ित हो रही है और मैं भी अगाध निष्ठुरता धारण किये, निरन्तर उन्हें अपने विरह का दाह दे रहा हूँ।

दोहा- **सखा सो ममतहि हृदय कस जूझहि आँस निरास।**
प्राँगन जथा प्रदोष कर द्वंदहि तिमिर प्रकास॥६॥

हे सखा! ममत्व भरे हुए ये सारे हृदय आशा व निराशा से किस प्रकार जूझ रहे हैं, जैसे संध्या के आँगन में अन्धकार व प्रकाश परस्पर भिड़ते हैं।

चौ.- **अरपन लहरन्ह कलकल संगा। एकाकार किए प्रति अंगा॥**
निज ममता मद दुरगुन खोई। मम पद आश्रय लीन्हेहुँ जोई॥

समर्पण की लहरों की कलकल के साथ अपने प्रत्येक अङ्ग को एकाकार किये अपने मोह, अहङ्कार व विकारों को त्यागकर, जिसने एकमात्र मेरे चरणों का आश्रय लिया था;

सुरसरि मैं जग जेहिं तें पाई। अनुपमता सुचिता सुषमाई॥
भए अमरता जोइ पियूषा। कुसुम रूप जे राजहि रूखा॥

जिसके बल से मैंने इस संसार में अनुपमता, पवित्रता व सुन्दरता की गङ्गा पाई है; अमृत में जो अमृत्व होकर विराजमान है, जो पुष्प होकर वृक्षों पर स्थित है और

हृदय भए सत भाउन्ह रूपा। सान्ति देत जे परम अनूपा॥
ब्रज बनितन्हँ सो पेमु अथाई। बिसरि भाँति सब मम निठुराई॥

हृदय में सद्भावनाओं के रूप में स्थित होकर जो अनुपम व परम शान्ति देता है; ब्रजवनिताओं का वही अगाध प्रेम, मेरी निष्ठुरता को सब प्रकार से भुलाकर,

बिरहु जरत गहरावत कैसे। बिष सहि सुजन बिनयपनु जैसे॥
सून बीथि तें सरि तट लागी। ब्रज महि जरि रहि अज बिरहागी॥

विरह की अग्नि में जलते हुए भी किस प्रकार गहराता ही जा रहा है; जैसे अपमान सहने पर भी सत्पुरुष की विनम्रता बढ़ती ही जाती है। सूनी गलियों से लेकर यमुना के तट तक व्रज की सम्पूर्ण भूमि आज विरह की अग्नि में जल रही है।

दोहा- **स्वजनन्ह दारुन पीर कइ सींव घिरे मम प्रान।**
दुसह ताप तें पिघरत चहहि बपुष बिसरान॥७॥

स्वजनों की कठोर पीड़ा की सीमाओं में घिरे हुए मेरे प्राण असहनीय ताप से पिघलकर अब इस शरीर को छोड़ना चाहते हैं।

चौ.- **दृगन्ह तें तर करुना उमगाई। ब्रह्म ग्यान कहुँ रही बुड़ाई॥**

ब्रजहि करुन कृन्दन अति भारी। श्रवन पंथ तें हिय पइसारी॥

मेरे नेत्रों से उमड़कर बहती हुई आर्द्र करुणा मेरे ब्रह्मज्ञान को डुबो रही है। व्रज का प्रचण्ड करुण कृंदन कानों के मार्ग से मेरे हृदय में उतरते हुए,

गूँजि गूँजि कर घात प्रघोरा। अब न रहेउ मोहि धीरज थोरा॥
तरफत भाउ बिकल जे हिरदय। तेहिं अब रहेउ निपट मुरुछाश्रय॥

गूँज-गूँजकर (मेरे मन पर) कठोर आघात कर रहा है; जिससे हे सखा! अब मुझे थोड़ा भी धैर्य नहीं रह गया है। मेरे हृदय में जो व्याकुल व छटपटाते हुए भाव हैं, उन्हें अब केवल मूर्छा का ही आश्रय है।

तातें तुअ कछु ज्ञान सिखाई। देहुँ मोर भव बंध नसाई॥
ब्रह्महि अबल बचन सुनि काना। सान्त सून्य ऊँघत अभिमाना॥

अतः हे सखा! तुम अपने ज्ञान का थोड़ा-सा उपदेश करके मेरे इस भवरूपी बंधन को नष्ट कर दो। परब्रह्मस्वरूप उन श्रीकृष्ण के ऐसे निर्बल वचन सुनकर हृदयरूपी शून्य (आकाश) में ऊँघता हुआ उनका दम्भ

सजग होत मुख उपजेउ कैसे। दमित क्रोध धीरज तजि जैसे॥
दुख कर निपट स्वाँग यह तोरा। एहि लखि मुरिहिं नाहिं मनु मोरा॥

सजग होकर उनके मुख पर किस प्रकार प्रकट हो गया; जैसे दबाया हुआ क्रोध अधीर होकर प्रकट हुआ हो। (तब उद्धवजी ने कहा कि) यह दुःख तो आपके द्वारा रचाया हुआ स्वाँग मात्र है; इसे देखकर मेरा मन विचलित नहीं होगा।

सो तहँ बिरचउँ आपन स्वाँगा। जहँ गोपिन्हँ गँवार अनुरागा॥
जानि तासु मद कह मतिधीरा। तो कि होति नहिं तव उर पीरा॥

अतः आप अपना यह स्वाँग वहाँ कीजिये, जहाँ गोपियों का गँवार प्रेम है। उद्धवजी के अहङ्कार को समझकर धीरबुद्धि भगवान श्रीकृष्ण बोले- तो क्या आपके हृदय में पीड़ा नहीं होती?

मृषा अहहिं यह दुख अनुभूती। तवहि माय जिन्हँ कीन्हि प्रसूती॥
पर जा कहँ घन ग्यान अधारा। सो न माय कर जाइ प्रतारा॥

दुःख की यह अनुभूति (एक) झूठ है; जिसे आपकी ही माया ने उत्पन्न किया है। किन्तु जिन्हें ज्ञान का सुदृढ़ आधार है, वे इस माया के हाथों नहीं सताये जाते।

सखा मैं ब्रज कर अनपढ़ ग्वाला। तातें दुखि जनि ज्ञान बिसाला॥
सुनि गभीरता दुरि कस हासा। तपहुँ चाँपि जस उएहुँ बिलासा॥

हे सखा! मैं व्रज का एक अनपढ़ ग्वाला हूँ, मुझे बहुत ज्ञान नहीं है; इसीलिये मैं दुःखी हूँ। यह सुन उद्धवजी के मुख की गम्भीरता उनके हास्य में कैसे खो गई; जैसे तप को दबाकर विलासिता उभर आती है।

दोहा- **जदपि चतुरता तोर हरि करि रहि जतन अपार।**

तदपि न दुरि सक मोहिं तें निगुन सरूप तुम्हार॥८॥

हे भगवन्! यद्यपि आपकी चतुरता अनेक प्रकार के प्रयत्न कर रही है, किन्तु फिर भी आपका निर्गुण स्वरूप मुझसे छिप नहीं सकता।

चौ.- **दारुनारि सब ग्वालिन्ह भोरी। ब्रह्म तोर कर जिन्हँ कइ डोरी॥**
लहँत मोद तुम तेन्ह नचाई। तो पुनि तोहिं पीर कस साई॥

(तब उद्धवजी ने कहा-) हे ब्रह्म! वे सीधी-सादी गोपियाँ कठपुतलियाँ मात्र हैं, जिनकी डोर आपके हाथ में है। उन्हें नचाकर ही आप आनन्दित होते हैं, तो फिर हे स्वामी! आपको पीड़ा कैसी?

हा मम उर उन्ह प्रति दय आवहि। तोर मोह परि जे दुख पावहिं॥
देहुँ नाथ उन्ह उत्तम ग्याना। जातें पावहिं सब निरबाना॥

हा! मुझे उनके प्रति अत्यधिक दया आती है, जो आपके मोह में पड़कर दुःख पाती हैं। हे स्वामी! आप उन्हें उत्तम ज्ञान प्रदान कीजिये; जिससे कि वे सब निर्वाण प्राप्त करें।

सान्ति मुकुति दायक बर ग्याना। मैं उन्ह सन बहु बार बखाना॥
पर उन्ह समुझि पर न मम बाता। अब धौं होइ काह तिन्ह भ्राता॥

(तब श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव!) मैंने बहुत बार उनके सम्मुख शान्ति व मुक्ति प्रदान करनेवाले उत्तम ज्ञान का उपदेश किया है, किन्तु उन्हें मेरी बात समझ में ही नहीं आई। हे भाई! अब उन सबका क्या होगा?

तेन्हँ अमल रस सो सरि धारा। चल न ग्यान कइ जहँ पतवारा॥
बूड़े बिनु न मिलिहि तिन्ह पारा। भलेहि लेउँ करि जतन अपारा॥

उनका निर्मल प्रेम नदी की वह प्रबल धारा है, जिसमें ज्ञान की पतवार नहीं चल पाती। (लगता है) उसमें डूबे बिना मुझे उसका पार नहीं मिल सकेगा; फिर भले ही मैं कितने भी प्रयत्न कर लूँ।

सो न जाब मैं ताहि सिखावन। आन उपाय मोर उर आव न॥

इसलिये मैं तो उन्हें ज्ञान देने नहीं जाऊँगा और कोई अन्य उपाय मेरे हृदय में आता नहीं।

दोहा- **सखा ग्यान सो पाहन अचल रह जे गिरि नाइ।**
भाउ लहरि भल ढाप तेहिं किन्तु न सकहि डगाइ॥९॥

(तब उद्धवजी ने कहा कि) हे सखा! ज्ञान तो वह शिला हैं, जो पर्वत के समान अचल रहती है और भावनारूपी लहरें भले-ही (कुछ समय के लिये) उसे ढँक ले, उसे किन्तु डिगा नहीं सकती।

चौ.- **सखहि ग्यान मद उन्नत पाई। धरे भोरपनु कहेहुँ कन्हाई॥**
तो पुनि तुम्हहि करहु यह काजा। जातें सुख लहँ गोपि समाजा॥

सखा उद्धव के अहं को चरम पर पहुँचा देखकर श्रीकृष्ण अज्ञानतापूर्वक कहने लगे- तो फिर तुम ही उन्हें ज्ञान देने का यह कठिन कार्य करो; जिससे कि गोपियों का समुदाय सुख प्राप्त करे।

पाइ सदृढ़ तव ग्यान अधारा। तें लहँ अवसि पीरनिधि पारा॥
अस कहि बिरहि बाँधि निज पीरा। किए ग्यान अवलम्ब सधीरा॥

तुम्हारे ज्ञान का सुदृढ़ आधार पाकर वे अवश्य ही पीड़ा के इस सागर से पार उतर जायेंगी। ऐसा कहकर विरही श्रीकृष्ण ने पीड़ा की अपनी अनुभूति को नियंत्रित करके और धैर्यपूर्वक ज्ञान का आधार लेते हुए,

पत्र लिखेउँ गोपिन्हँ हित लाई। दीन्ह सखा कर प्रेम बढ़ाई॥
ब्रज तजि मथुरा जोइ रथु आए। आतुर हरि तेहिं लाग सजाए॥

गोपियों के हित की कामना से उन्हें एक पत्र लिखा और प्रेम व्यक्त करते हुए उन्होंने उसे उद्धव के हाथ में दे दिया। फिर व्रज को छोड़कर जिस रथ से मथुरा आए थे, उसे ही जाकर वे श्रीकृष्ण उतावली से सजाने लगे।

उपकृत पितु जब अस सुनि पाए। अति आतुर ऊधौ सन आए॥
कन्हपालक प्रति बिनय देखाई। भेंट दीन्हि सादर हरषाई॥

(एक पिता के रूप में नन्दजी के ऋणी) वसुदेवजी ने जब यह सुना (कि उद्धव व्रज को जा रहे हैं,) तो वे बड़ी उतावली से उनके समक्ष पहुँचे। फिर उन्होंने कन्हैया का पालन करनेवाले नन्दरायजी के प्रति विनम्रता व्यक्त करते हुए हर्षित होकर आदरपूर्वक भेंट दी।

दोहा- **चलत प्रदच्छिन करि हरिहि ऊधौ उर धरि ग्यान।**
रथ चढ़ि चले बहोरि ब्रज बिरहिन्हँ कर कल्यान॥१०॥

चलते समय उद्धवजी ने अपने हृदय में ज्ञान का आश्रय लेकर भगवान श्रीकृष्ण की परिक्रमा की। फिर रथ पर आरूढ़ हो वे उन श्रीकृष्ण-वियोगीजनों के कल्याण के निमित्त व्रज को चले।

चौ.- **नृपति जदपि गोपिन्हँ कल्याना। ऊधौ तेहिं सवँ कीन्हँ पयाना॥**
किन्तु बिदित नहिं उन्ह भगवाना। पठवा उन्हहिं हेत कल्याना॥

हे राजन! यद्यपि उस समय उद्धवजी ने गोपियों के कल्याण के निमित्त प्रस्थान किया था; किन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि भगवान ने उन्हें उन्हीं के कल्याण के लिये भेजा है।

ऊधउ जब ते ब्रज हित निकसे। सुसगुन बिपुल गोपि हित बिगसे॥
फरत तरकि तब निज मृत आसा। बीथिहुँ जुरि लगि ते उल्लासा॥
सो समूह एक दृग भरि बारी। कहा भाँति एहिं सकुन बिचारी॥

उद्धवजी जब से ब्रज की यात्रा पर निकले थे, तभी से गोपियों को अनेक शुभ शकुन होनें लगे। तब अपनी मृत आशाओं को पुनः सजीव होते हुए अनुमानकर, वे गोपाङ्गनाएँ उल्लसित हो व्रज की एक वीथिका (गली) में एकत्र होने लगी। उसी समूह में उपस्थित एक गोपी अपने नेत्रों में जल लिये शकुन विचारकर इस प्रकार बोली-

सास्वत सुख दुख के अनुभूति। भई जेइ तन केर बिभूती॥
बाम बिभाग तासु सखि आजा। फरकत नव उतसाह सुराजा॥

हे सखि! सुख और दुःख का शाश्वत अनुभव हमारे जिस शरीर की विभूती हो चुका है, आज उसी शरीर के बाएँ अङ्ग नवीन उत्साह के सुन्दर राज्य को पाकर फड़क रहे हैं।

चत उमगहि आसा मुद छाई। यह रहस्य को कहुँ समुझाई॥
कटु रव मधुमयता धरि कागा। भवन अटारि बोल अनुरागा॥

मेरी चेतना में आनन्द से भरी हुई आशा उमड़ रही है; यह क्या रहस्य है; समझाकर कहो! भवन की अटारी पर बैठा कौआ अपनी कड़वी वाणी में मधुरता लिये प्रेमपूर्वक बोल रहा है।

हिय उपबन उजाड़ता आजू। अनुभव कर पदधुनि रितुराजू॥

मेरे हृदयरूपी उपवन में व्याप्त पतझड़ ऋतुराज बसन्त की पदचाप अनुभव कर रहा है।

दोहा- **ब्यथित प्रान चातक जलद स्वातिहि कुंजबिहारि।**
सुसकुन नभ चढ़ि आत जे बरसन दरसन बारि॥११॥ (क)

मेरे व्यथित प्राण चातक हैं और वे कुञ्जबिहारी स्वाती नक्षत्र के मेघ; जो (लगता है कि) शुभ-शकुनों के आकाश पर चढ़कर अपना दर्शनरूपी जल बरषाने आ रहे हैं।

सखि सुभागबस आज जे सत्य तोर बच होहिं।
तो पियपदरति सुकृत मम देहि बिधाता तोहिं॥११॥ (ख)

(तब अन्य गोपियों ने कहा कि) हे सखि! जो यदि सौभाग्य से तुम्हारी बात सच हो जायँ; तो प्रियतम श्रीकृष्ण के चरणों में मेरे प्रेम का सारा पुण्य विधाता तुम्हें दे दें।

चौ.- **इत ऊधौ ब्रज सीवाँ आए। सुषमा लखि अतिसय मुद छाए॥**
बिटपन्ह केर हरितपनु माँझा। कलरव फिरेउ संग करि साँझा॥

इधर उद्धवजी व्रज की सीमा में आ पहुँचे और व्रज की शोभा देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए। पक्षिगणों का कलरव अपने साथ संध्या को लिये वृक्षों की हरियाली में लौट आया है।

मेटन ताप भानु निज भारी। लगेउँ छितिज करि नयन सुखारी॥
तासु किरन बह सरित तरंगा। मनहुँ समन श्रम बोरहि अंगा॥

सूर्य अपना ताप मिटाने के लिये नेत्रों को सुखी करते हुए क्षितिज से जा लगे हैं। उनकी किरणें यमुना की तरङ्गों में बह रही है; मानों दिनभर की अपनी थकान मिटाने हेतू वे स्वयं को जल में नहला रही हैं।

धेनुधूरि कइ अमल तरंगा। श्रमित उमंग जुडाइ उछंगा॥
आतुर धाइ उधउँ परिधाना। लागि लहन अवचट अउसाना॥

गोधूली की निर्मल तरङ्गें अपने आँचल में थके हुए उत्साह को लिये बड़ी उतावली से दौड़कर उद्धवजी के वस्त्रों पर सहसा अवसान पाने लगी।

धेनु कसाट सुधुनि सुखकारी। धरे मधुरता त्रिपुरहिं भारी॥
प्रबिसि उधउँ चेतन प्रति तारा। सांति सृष्टि लगि बिरचि अपारा॥

गायों के कण्ठ में लटक रही घण्टियों की कर्णप्रिय ध्वनि त्रिलोकभर का महान माधुर्य लिये उद्धवजी की चेतना में उतरकर उसके प्रत्येक तार में शान्ति की विशाल सृष्टि करने लगी।

दोहा- **ऐतनेहुँ रथ लखि धेनु सब सुरभिपाल अनुमानि।**
अनिर्बाच्य मुद हमरति तुरत तहाँ उमगानि॥ १२॥

इतने में ही उद्धवजी के रथ को आता हुआ देखकर उन्हें गोपालकृष्ण समझकर अनिर्वचनीय आनन्द से रँभाती हुई वे गायें तुरन्त ही उस स्थान पर उमड़ आई।

चौ.- **पर हरि अरहनि तिन्हँ दृग माहीं। छाइ होइ द्रव दुख परिझाहीं॥**
इत धेनुन्ह उमगत जब देखी। ग्वालन्हँ उर भइ ब्रीड़ बिसेषी॥

किन्तु श्रीकृष्ण की रथ में अनुपस्थिति उन गायों के नेत्रों में तरल दुःख की परछाई होकर उभर आई। इधर जब गायों को इस प्रकार उमड़ती हुए देखा, तो ग्वालों के हृदय में विशेष जिज्ञासा हुई।

सखा धेनु यह अस अतुराई। मथुरहि पथ दिसि किउँ चलि धाई॥
कहि अस बढ़ि जब उन्ह रथ पावा। हरिहि तरकि सबन्हौं मुद पावा॥

(तब वे आपस में बोले-) हे भाईयों! ये गायें इस प्रकार उतावली से मथुरा के मार्ग की ओर क्यों दौड़ी जा रही है? ऐसा कहते हुए आगे बढ़कर जब उन्होंने रथ देखा, तो कन्हैया का अनुमान करके वे सब आनंदित हो उठे।

ठाढ़ि धेनु इत रथ कहँ घेरी। खोजि लागि निधि नयन घनेरी॥
लखि एक कहइ लाग यह स्यामा। फिरा करन ब्रज कहँ ब्रजधामा॥

इधर गायें रथ को घेरकर खड़ी हो गई और अपने नेत्रों की महासम्पदा श्रीकृष्ण को खोजने लगी। यह देखकर एक ग्वाला कहने लगा- प्रतीत होता है कि यह कन्हैया है, जो इस ब्रजधाम को पुनः ब्रजधाम बनाने लौटा है।

देखु आभरन सोइ बनमाला। बपुषहिं स्याम अवसि नंदलाला॥
सखा परन्तु मोहि रथ माहीं। बलदाऊ कत लखि पर नाहीं॥

देखो तो! वही आभूषण व वनमाला धारण की हुई है और शरीर भी श्यामरङ्ग का है, इसलिये अवश्य ही यह नन्दलाल ही होगा। किन्तु हे सखा! मुझे दाऊ रथ में कहीं दिखाई नहीं पड़ रहे हैं!

दोहा- **बिरहातुर कन्हिआँ अवसि जोहिं न पाए ताहिं।**
फिरे एहि तें अकेल अस जाना उन्ह मन माहिं॥ १३॥

फिर उन्होंने यह समझा कि विरह से व्याकुल हो रहा कन्हैया अवश्य ही उनकी प्रतीक्षा नहीं कर पाया होगा, इसीलिये अकेला ही लौट आया है।

चौ.- **अति आतुर सब रथ निरआए। रहे किन्तु धक जब लखि पाए॥**
बालु सदन सम तिन्ह अनुमाना। ढहा हृदय भा सोक महाना॥

वे सब बड़ी उतावली से रथ के निकट आए; किन्तु जब उन्होंने रथ में देखा, तो सब ठगे-से रह गये। उनका अनुमान बालू के घरोंदे जैसा ढह गया, जिससे उनके मन में महान दुःख हुआ।

पीर लोक ग्वालन्हँ अतुराई। भई तिरोहित प्रान बिहाई॥

अचल अचेत ठाढ़ सब कैसे। तुहिन प्रतारित पंकज जैसे॥

इस प्रकार उन ग्वालों की आतुरता प्राणहीन होकर पीड़ा के लोक में तिरोहित हो गई और वे सब चेष्टारहित हो कैसे अचल खड़े रह गए; जैसे पाले के मारे कमल।

ऊधौ तेन्ह निरासा जानी। रथ तजि कहेउ जोरि जुग पानी॥
उधउँ नाउँ मम मैं हरि भ्राता। तव सुधि हित पठवा सुखदाता॥

उनकी निराशा को समझकर उद्धवजी रथ से कूद पड़े और दोनों हाथ जोड़कर कहने लगे- हे भाई! मेरा नाम उद्धव है और मैं श्रीकृष्ण का अग्रज हूँ। उन सुखदायक ने मुझे आपकी सुधि लेने भेजा है।

कान्हँ तोर नित सुमिरन करही। संगति हेरि हेरि तव झुरही॥
अवसि मिलिहि एक दिनु ब्रज आई। तब लौ धीर धरिअ सब भाई॥

कन्हैया नित्य तुम्हारा स्मरण किया करते हैं और तुम्हारे सान्निध्य का स्मरण कर-करके कुढ़ते रहते हैं। वे एक दिन व्रज आकर आपसे अवश्य मिलेंगे; इसलिये तब तक आप सब सखा धैर्य धारण कीजिये।

सुनि मन्सुखा बाँधि दृग नीरा। कहे ऊधवहि बचन गभीरा॥

तब मन्सुखा ने अपने नेत्रों के अश्रुओं को बाँधकर उद्धवजी से इस प्रकार गम्भीर वचन कहे-

दोहा- **उर सो जेहिं कन कन अमल रहि मृदुता चहुँ ओर।**
हाँ सो नागर होतही भयउँ कपटि कस घोर॥ १४॥

वह हृदय जिसका कण-कण निर्मल था और जिसमें चारों ओर कोमलता-ही कोमलता व्याप्त थी; हा! वह नगर का निवासी होते-ही कैसा घोर कपटी हो गया है!

चौ.- **नगर बास महिमा सुनि भारी। देव कृपा अज लीन्हि निहारी॥**
बिदित रहति जे पहिलेहि भाई। जान न देतउँ तहाँ कन्हाई॥

मैंने नगर में निवास करने की बड़ी महिमा सुनी थी और विधाता की कृपा से आज वह देख भी ली। हे भाई! यदि वह मुझे पहले से ही ज्ञात रही होती, तो मैं कन्हैया को वहाँ नहीं जाने देता।

बन ते फिरि हम सयते राता। परति नींद अस उठते प्राता॥
किन्तु कान्हँ सो सयन अपारा। रहे पुकारत नाउँ हमारा॥

हम वन से लौटकर रात्रि में सो जाया करते थे और ऐसी नींद आती थी कि फिर सवेरे ही उठते थे; किन्तु कन्हैया उस गहरी नींद में भी हमारा नाम पुकारा करता था।

प्रात रहतो आतुर हम लागी। पुनि जननिहि बिलोकि कृत पागी॥
सचुप भोज तजि हम पहि आई। लेतो आपुनु हृदय लगाई॥

वह सवेरे से ही हम लोगों के लिये बड़ा आतुर रहता था और मैया को काम में व्यस्त हुई देखकर चुपचाप भोजन त्यागकर भी हमारे पास आ जाता था और हमें अपने हृदय से लगा लिया करता था।

सखाबछल सो गिरिधर भाई। बिगत नेह भा जड़ गिरि नाई॥
उभय रहे जब हमरे पासा। बीते सहज बरिस बहु मासा॥

किन्तु हे भाई! वही मित्रवत्सल गिरिधर अब प्रेम से रहित और पर्वत के समान जड़ हो गया है। जब वे दोनों भाई हमारे ही पास थे, तब कई माह व वर्ष भी सहज ही बीत गए;

दोहा- **किन्तु सखा अब तेन्हँ बिनु प्रति छिनु कलप समान।**
काटे कटहि न पुनि बपुष पाँमर तजहि न प्रान॥ १५॥

किन्तु अब हे सखा! उनके बिना हमारा प्रत्येक क्षण कल्प के समान हो गया है; जो काटे नहीं कटता और यह पाँमर शरीर है कि प्राणों को छोड़ता नहीं।

चौ.- **भा हमार जीवन अज भारा। बिरहु उदधि कर सूझ न पारा॥**
पुनि तुअ आँस बँधाइसि आई। अब त बनहिं नहिं प्रान बिहाई॥

आज हमारा यह जीवन हम पर भार हो गया है और विरह के इस सागर का कोई छोर भी प्रतीत नहीं होता। ऊपर से तुमने आकर हमें (उनके लौटने की) आशा दे दी; इसलिये अब तो प्राण भी त्यागते नहीं बनेंगे।

बिपिन केर सो तरु सुखरासी। जहँ साँथरि मृदु किसलय डासी॥
चापत चरन सुवानेउँ बेऊँ। सितलाइहि हित आतप मेऊँ॥

वन के वे सुखदायक वृक्ष, जिनके नीचे कोमल पत्तों की शैया बिछाकर, धूप में शीतलता पाने हेतू, चरण दबाते हुए हमने उन दोनों भाईयों को शयन कराया था;

पुनि तिन्हँ सिरु करि आपन गोदा। हम जिन्हँ तरु तर कीन्ह बिनोदा॥
सो पूरब सम सुषमित भाई। बल हरि बिनु न दृष्टि तहँ जाई॥

और उनके सिर को अपनी गोद में लिये जिन वृक्षों की छाया में हमने हास-परिहास किया था, वे सब-के सब पहले-ही की भाँति सुन्दर हैं; किन्तु बलदाऊ व कन्हैया के न होने से हमारी दृष्टि उनकी ओर नहीं जाती।

जोइ जमुना जल हम प्रतिबारा। करत रहे हरि संग बिहारा॥
अहिरिपु बिनु सो बिषमय कैसे। भूतद्रोहि उर माहुर जैसे॥

यमुना के जिस जल में हम कन्हैया के साथ प्रतिदिन विहार किया करते थे, उस कालियनिकंदन के न होने से वही किस प्रकार विषैला हो गया है; जैसे जीवमात्र से द्वेष रखनेवाले के हृदय में (दुर्भावनाओं का) विष रहता है।

बिपिन सबनि जहँ हम गौ चारी। सलहि दृगन्हिं अज बिनु गिरिधारी॥

वे सब वन जिनमें हम सबने गायें चराई थी; आज उस गिरिधर के बिना हमारे नेत्रों में चुभते हैं।

दोहा- **ब्रज कन कन पूरब सरिस छबि सुख सान्तिहि खान।**
किन्तु दाउ माधौ रहित चित्त न लहँ तहँ थान॥ १६॥

व्रज का कण-कण पहले-ही के समान सौन्दर्य, सुख व शान्ति की खान है; किन्तु उन माधव व दाऊ से रहित होनें के कारण हमारा चित्त उसमें ठहर नहीं पाता।

चौ.- गौ बरूथ जब सीस उठाई। चितवहि पुर दिसि बिकल रँभाई॥
तब यह पीर होति गुनि चारी। बूड़ चेत गाइनि दृग बारी॥

गायों के समूह शीश उठाकर व्याकुलता से रम्भाते हुए जब मथुरा की ओर देखते हैं, तब यह पीड़ा चौगनी हो जाती है और हमारी चेतना उन गायों के अश्रुओं में डूब जाती है।

मथुरा तें जब आवत कोई। बत्स जूथ यह प्रमुदित होई॥
तजि पयपान सुआतुर धाई। जाइ निकट तक आस लगाई॥

मथुरा से जब कोई आता है, तो बछडों का यह समुदाय आनन्दित हो दूध पीना छोड़कर उतवाली से दौड़ता हुआ निकट जाकर उसकी ओर आशाभरी दृष्टि से देखने लगता है।

पुनि जब आँस बूड़ दृग नीरा। तब तें खसहि अचेत अधीरा॥
तदपि न जब उर दरहिं हमारा। तन कहँ प्रान लाग तब भारा॥

फिर जब उनकी वह आशा अश्रुओं में डूब जाती है, तब वे अधीरता से अचेत होकर गिर पड़ते हैं। इतना होने पर भी जब हमारा हृदय नहीं फटता, तब ये प्राण शरीर को बोझ लगने लगते हैं।

अनुपम अकथ अमल सख भाऊ। अस चितएहुँ ऊधौ जब राऊ॥
तब अचरज तेहिं मौन बिहाई। बन्दन लग ग्वालन्हँ पद धाई॥

हे परीक्षित्! जब उद्धवजी ने उनका ऐसा अनुपम, अकथनीय और निर्मल सख्यभाव देखा; तो उनका आश्चर्य मौन त्यागकर दौड़ा और उन ग्वालों के चरणों की वन्दना करने लगा।

चले पयादेहि पुनि तिन्ह संगा। हरि चरितावलि सुनत अभंगा॥

फिर वे उद्धवजी उनसे श्रीकृष्ण की अक्षय लीलाएँ सुनते हुए, उनके साथ पैदल ही चल पड़े।

दोहा- नंदभवन देखराइ तेहिं पुनि भेंटन कहि ग्वाल।
हाँकि धेनु निज निज सदन गए सुमिरि सखपाल॥ १७॥

फिर उन्हें नंदरायजी का भवन दिखलाकर और पुनः मिलने की बात कहकर वे ग्वाले सखावत्सल श्रीकृष्ण का स्मरण करके गायें हाँककर अपने-अपने घर चले गए।

चौ.- ब्रजपति समाचार अस पावा। पुर तें कोउँ कान्ह सुधि लावा॥
तब तें अए करन अगवानी। उधउँ चरन बन्दे पितु जानी॥

नन्दजी ने जब यह समाचार पाया कि मथुरा से कोई कन्हैया की सुधि लाया है, तब वे अगवानी करने के लिये उपस्थित हुए। उद्धवजी ने पिता तुल्य जानकर उनकी चरणवन्दना की।

कान्हँ सरिस उन्हँ बेषु निहारी। नंदहि हेर अए गिरिधारी
ऊधौहि तब उन्हँ बाहु पसारी। सुत इव उर लाएहुँ सचु भारी॥
गृह लवाइ जब गै ब्रजराई। तब उन्ह उर अस चिंता छाई॥

उनकी कन्हैया जैसी वेशभूषा देखकर नन्दरायजी को अपने गोवर्धनधारी पुत्र की स्मृति हो आई। तब उन्होंने अपनी भुजाएँ फैलाकर बड़े-ही हर्ष से उद्धवजी को पुत्रवत् हृदय से लगा लिया। फिर जब वे ब्रजेश उन्हें अपने भवन में ले गये, तब उनके हृदय में यह चिन्ता होने लगी कि,

केहि बिधि करुँ अतिथिहि सनमाना। जे गृहि कर कर्तब्य महाना॥
नृप हरि जेहिं दिनु ते ब्रज त्यागा। तब ते भा तहँ सघन बिरागा॥

मैं इन अतिथि का सत्कार किस प्रकार करूँगा; जो कि एक गृहस्थ का परम कर्तव्य है। हे परीक्षित्! भगवान श्रीकृष्ण ने जिस दिन से व्रज को त्याग दिया था; तभी से वहाँ सघन वैराग्य व्याप्त हो गया था।

स्याम बिरहु तिन्ह गति भइ जोई। देत साखि तिन्ह सून रसोई॥

श्रीकृष्ण के विरह में उसकी जो दशा हुई थी, उसकी साक्षी उसके सूने रसोईघर देते थे।

दोहा- अलिपित चौके जारमय चूल्हन्हिं राख पुरान।
मनहुँ गृही गा बिसरि गृह तातें कोउ परसा न॥ १८॥

(ब्रज में स्थित घरों के) वे रसोईकक्ष मकड़ी के जालों से युक्त और बिना लिपे हुए थे और उनमें बनें चूल्हों में (बहुत दिन) पुरानी राख थी; मानों घर का स्वामी घर छोड़कर चला गया हो और इस कारण वहाँ कोई आया ही न हो।

चौ.- जसुमति बूझि पतिहि मनु भाऊ। कीन्ह बिबस्थित चौक सचाऊ॥
राँधे तदुप बिपुल पकवाना। उन्हँ ऊधौ कहँ भोज गहाना॥
भै निबृत्त तब सयन करावा। नंद प्रेरि चर पद पलुटावा॥

तब यशोदाजी ने अपने पति के मन की भावनाओं को भाँपकर बड़े-ही चाव से रसोई को व्यवस्थित किया। तदुपरान्त बहुत प्रकार के पकवान बनाकर उन्होंने उद्धवजी को भोजन ग्रहण करवाया। जब भोजन से निवृत्त हो गये, तब शयन करवाकर नंदरायजी ने अपने सेवक से उनके चरण दबवाये।

बैठि बहुरि ब्रजपति पूछेउँ तब। ऊधौ कहि मथुरा खबरी सब॥
कंस दलन पुनि चलेउँ प्रसंगा। नंद हृदय अति भई उमंगा॥

फिर निकट बैठकर जब ब्रजाधिपति ने उनसे पूछा; तो उद्धवजी ने मथुरा के सब समाचार कह सुनाये। फिर कंश के वध की बात निकल पड़ी, तो उन नंदरायजी के हृदय में अत्यंत उत्साह उत्पन्न हो गया।

सुत सुमिरन करि भए अधीरा। पुनि पुनि पूछत भै दृग नीरा॥
कहउँ बत्स कस नटखट मेरौ। जेहिं तहँ कीन्ह अनंद घनैरौ॥

वे अपने पुत्र का स्मरण करके अधीर हो उठे और नेत्रों में जल भरकर बार-बार पूछने लगे- हे वत्स कहो! मेरा वह नटखट कन्हैया कैसा है, जिसने वहाँ महान आनन्द उत्पन्न कर दिया था।

पुनि कहु जे मम नयन उजारा। जेहिं प्रलंब अति दारुन मारा॥

करि उपबीत सुना हम भाई। पितु जुग गुरकुल दीन्ह पठाई॥

फिर उसकी कुशल कहो! जो मेरे नेत्रों का प्रकाश है और जिसने अत्यंत भयङ्कर प्रलम्बासुर को मारा था। हे भाई! हमने सुना है कि वसुदेवजी ने यज्ञोपवीत करवाकर उन दोनों भाईयों को गुरुकुल भेज दिया है।

दोहा- **गुरकुल अनुसान कठिन होत भीख कर भोज।**
मख हित बन महुँ गवन पर प्रतिदिन समिहा खोज॥ १९॥

गुरुकुल का अनुशासन बड़ा कठिन होता है; भिक्षा माँगकर खाना पड़ता है और प्रतिदिन यज्ञ के निमित्त समिधा की खोज में वन में जाना पड़ता है।

चौ.- **मोर कान्हँ अह पयमुख बालक। भा केहि बिधि गुर आयसु पालक॥**
उदर पूज जे दिनु दस बारा। तेहिं निभान कस भीख अहारा॥

मेरा कन्हैया तो दूधमुहा बालक है, वह गुरु की आज्ञा का पालन करनेवाला किस प्रकार बना? जो दिन में दस बार भोजन किया करता है, उसने भिक्षा में प्राप्त आहार से किस प्रकार निर्वाह किया।

मोहिं अब लौ भरोष नहिं भाई। बसुद्यौ उर असि करि निठुराई॥
ऊधौ कहु अब मोहन काहाँ। होत तासु कस दिवस निबाहा॥

हे भाई! मुझे अब तक विश्वास नहीं हो रहा कि वसुदेवजी के हृदय ने उसके प्रति ऐसी निष्ठुरता की है। हे उद्धव कहो! कन्हैया इस समय कहाँ है और उसके दिन किस प्रकार बीत रहे हैं?

सो नव जलधर सुख आगारा। सुमिरत कबहुँ कि नाउँ हमारा॥
की तेहिं सुरति होत ब्रज केरी। जहँ तेहिं बिनु भइ रजनि घनेरी॥

नवीन मेघ के समान वर्णवाला वह सुखधाम कन्हैया क्या कभी हमारे नाम का स्मरण करता है? क्या उसे (उस) व्रज की याद आती है; जहाँ उसके बिना निबिड़ रात्रि व्याप्त हो गई है।

सखन्हँ प्रीति बर हृदय बिचारी। कबहुँ कि तासु नयन भर बारी॥
गोप जे तेहिं निज गोद उठाई। रहे दुलारत कान्ह बोलाई॥

अपने सखाओं की उत्तम प्रीति का मन-ही मन विचार करके क्या उसके नेत्रों में कभी अश्रु आते हैं? वे ग्वाले जो उसे अपनी गोद में उठाकर कन्हैया कह-कहकर दुलारा करते रहते थे;

ताहिं सुमिरि गौ बृंद सँघाता। उमग कि पुलक कबहुँ तिन्हँ गाता॥

गायों सहित उन्हें याद करके क्या कभी उसके अङ्गों में पुलकन उमड़ती है?

दोहा- **उधउँ तुम त तेहिं निकट बस नित्य सत्य कहु बात।**
का चाख्यो तिन्ह चखन्ह तुम ब्रज प्रति रस उमगात॥ २०॥

हे उद्धव! तुम तो निरंतर उसके निकट ही रहते हो; इसलिये सब बात सत्य-सत्य कहो! क्या तुमने कभी उसके नेत्रों में व्रज के प्रति प्रेम उमड़ता हुआ देखा है?

चौ.- **चलत कहा फिरुँ सद्यहि ताता। तो किन आयउँ तोर सँघाता॥**

तासु बियोग प्रबल सरि धारा। ब्रज आसहि खिन तरनि सवारा॥

मेरे मथुरा से लौटते समय उसने मुझसे कहा था कि हे तात! मैं शीघ्र लौटूँगा; तो फिर वह तुम्हारे ही साथ क्यों नहीं आ गया? उसका वियोग नदी की प्रबल धारा है; जिसमें यह ब्रज आशा की दुर्बल नौका पर सवार है।

पीर अधीर उताल तरंगा। उठि उठि तरनिहुँ करि चह भंगा॥
दरसन सुख दृढ़ पोत बनाई। कन्हहिं हमहिं अब सकहिं बचाई॥

पीड़ा व अधीरता ही उस नदी की उत्ताल तरङ्गें हैं; जो उठ-उठकर हमारी आशारूपी नौका को तोड़ देना चाहती है। इसलिये अब अपने दर्शनों के सुख का सुदृढ़ जहाज बनाकर कन्हैया ही हम सबको बचा सकता है।

होब कि दरसन रहत सरीरा। आइ बँधाइहि तें कबु धीरा॥
लखि पाउँब कब मुख सो सुन्दर। नाक कँटीलि सुचारु चिबुक गर॥

क्या इस शरीर के रहते उसका दर्शन हो पायेगा? वह कब आकर हमें धैर्य बँधायेगा। तीखी नाक, सुन्दर कपोल व कण्ठ से युक्त कन्हैया के उस सुन्दर मुख को मैं कब देख पाऊँगा?

मनहिं सुखद नूपुर सो नादा। प्रबिसि श्रवन कब हरिहि बिषादा॥
बचन मधुरतम जे निधि मोरी। पुनि कि जोरि सकुँ श्रवन तिजोरी॥

मन को सुख देनेवाला उसके नूपुरों का मधुर शब्द मेरे कानों में पड़कर, कब मेरे विषाद का हरण करेगा? उसके मधुरतम वचन जो मेरी सम्पदा है; क्या उन्हें मैं पुनः अपनी कानरूपी तिजोरी में संग्रहित कर सकूँगा?

दोहा- उधउँ सुमिरि तेहिं हिय अजिर धावत सोइ लघु बाल।
जेहिं सुर मुनि अज हर सहित मोहिनि बाँधेउँ काल॥ २१॥

हे उद्धव! उसका स्मरण करते ही, मेरे हृदयरूपी आँगन में वही नन्हा-सा बालक दौड़ने लगता है; जिसने देवताओं, मुनियों, ब्रह्मा और शिवजी के साथ स्वयं काल को भी अपनी मोहिनी से बाँध रक्खा था।

चौ.- कबहुँ जे जसुमति तेहिं धमकाना। मम दिसि धाइ मधुर किलकाना॥
तात तात कहि दुरि मम गोदा। देत रहेउ मोहि सतत प्रमोदा॥

जब कभी यशोदा उसे डाँट देती थी, तो मधुरध्वनि से किलकारी मारकर वह मेरी ओर दौड़ा चला आता था और बाबा-बाबा कहता हुआ मेरी गोद में छिपकर मुझे निरन्तर महान आनन्द दिया करता था।

सुमिरि चरित सिसु ललित अगाधा। अजहुँ जात उर रस रजु बाँधा॥
अरुन अधर सुठिताजुत लोचन। उभय सुतन्ह कर मम दुख मोचन॥

उसकी अत्यन्त मनोहारी बाललीलाओं का स्मरण करके आज भी मेरा मन प्रेमरूपी रस्सी में बँधा जाता है। मेरे उन दोनों बालकों के लाल-लाल होंठ और भोले-भाले नेत्र मेरे दुःखों को हरनेवाले थे।

सून अजिर चरि सखन्हँ सँघाता। पुनि कबु करिहि पुलक मम गाता॥

मथुरा मैं देखेउँ बल तासू। कीन्ह जाहिं तें उन्हँ खल नासू॥

मेरे इस सूने आँगन में सखाओं के साथ खेलते हुए वे फिर कब मेरे शरीर को पुलकित करेंगे? मैंने मथुरा में उनका वह बल देखा था, जिससे उन्होंने दुष्ट कंस का वध किया था।

गरग कहा पुनि कन्हँ जगदीसा। रोहिनिनंदन प्रगट अहीसा॥
भलेहि होय यह सत्य सुजाना। पै मम हिय त सुतहिं उन्ह जाना॥

महर्षि गर्ग ने भी कन्हैया को नारायण व दाऊ को साक्षात् भगवान शेषजी बताया था। भले ही उनकी यह बात सत्य हो; किन्तु हे सुजान! मेरा हृदय तो उन्हें अपने पुत्र ही समझता है।

छन्द- **सुखखान दोउँ मम लागि सुत मैं आन कछु न बिचारऊँ।**
होनिहार चह जे होइ यह छबि अब न उर तें बिसारऊँ॥
जब सिसु रहे जुग गोद भरि मैं रह्यो दुलारत प्रीति ते।
सोइ अब गए मथुरा हृदय दरि चह कुदैव कुनीति ते॥

सुख की खान वे दोनों बालक मेरे लिये तो केवल मेरे पुत्र है; मैं इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सोचता। भावी जो चाहती है, भले ही वह घटे; किन्तु अब (वे मेरे पुत्र हैं) उनकी इस छवि को मैं अपने हृदय से नहीं त्यागूँगा। जब वे दोनों बालक थे, तब मैं अपनी गोद में लेकर उन्हें स्नेह से दुलारा करता था; किन्तु अब वे ही मुझे छोड़कर मथुरा जा चुके हैं; इसलिये दुर्दैव की इस करतूत से मेरा हृदय फट जाना चाहता है।

दोहा- **खेलि बीथि जब फिरहि गृह लिए छार मृदु गात।**
चढ़ि उछंग मम पट मलिन करत रहे जुग भ्रात॥ २२॥

व्रज की गलियों में खेलने के पश्चात् अपने कोमल अङ्गों में धूल लिये हुए जब वे दोनों बालक घर लौटते थे; तो मेरी गोद में चढ़कर वे मेरे वस्त्र मैले कर दिया करते थे।

चौ.- **किन्तु आजु यह उजवल चीरा। सो रजु गत मोहि ताड़ गभीरा॥**
रूँधेउँ कंठ कहत अस ताहीं। ममतानिधि उमगेउँ उर माहीं॥
बहुरि तासु उत्ताल तरंगा। चली बिलोचन पंथ उमंगा॥

किन्तु आज मेरे ये उज्जवल वस्त्र उनके अङ्गों की उस रज से रहित होकर मुझे अत्यधिक पीड़ित करते हैं। ऐसा कहते हुए करुणा से उनका गला भर आया और हृदय में वात्सल्यरूपी समुद्र उमड़ पड़ा। फिर उसकी अत्यन्त ऊँची तरङ्गें उन्मादपूर्वक उनके नेत्र मार्ग से उमड़ चली।

भूले सुत सिसु चरित बिचारी। अकथ अनंद भरेउँ उर भारी॥
एतनेहुँ आइ जसोमति तहवाँ। ममतहि बोरि बचन अस कहवाँ॥

पुत्र के बालचरित्रों का ध्यान करके नन्दरायजी मग्न हो गए और उनके हृदय में अकथनीय व महान आनन्द भर गया। इतने ही में यशोदजी वहाँ आ पहुँची और उन्होंने ममतारूपी रस में डूबोकर यह वचन कहे-

ऊधौ बसत कि तुम कन्हँ पासा। निरखि मिटावत नयन पिपासा॥
तहँ अभाव तिन्हँ अह केउ नाहीं। इहइ चिंत मोरे मनु माहीं॥

हे उद्धव! क्या तुम अपने नेत्रों की प्यास बुझाते हुए निरंतर मेरे कन्हैया के निकट ही निवास करते हो? मेरे मन में इसी बात की चिन्ता बनी रहती है कि "वहाँ (उसे) किसी वस्तु का अभाव तो नहीं है।"

प्रात काल उठतहि दुहुँ भाई। रहते आतुर दधिहि सदाई॥
होति बार एहिंबिच लघु जबहीं। घर सिरु लेत रहे दुहुँ तबहीं॥

सवेरे उठते ही दोनों भाई सदैव दहीं के लिये व्याकुल रहा करते थे और इस बीच दहीं देने में मुझे थोड़ा भी विलम्ब हो जाता था, तो वे दोनों ही घर को सिर पर उठा लिया करते थे।

तहँ जंजाल अनेक प्रकारा। खीन त भए न मोर कुमारा॥

वहाँ अनेक प्रकार के झंझट हैं, इस कारण कहीं मेरे बालक दुर्बल तो नहीं हो गए।

दोहा- हमहि सोचि मृदु बदन तिन्ह कुम्हलानेहुँ त नाहिं।
मोर त सोइहि जिवन धन तहँ तें कुसल त आहि॥ २३॥

हमारी चिन्ता करते हुए कहीं उनका कोमल मुख कुम्हला तो नहीं गया है? मेरे जीवन का धन तो केवल वे ही हैं; वहाँ वे कुशल से तो हैं?

चौ.- मम सन जब हठ कीन्ह कन्हाई। मैं सरान प्रति सुरतरु नाई॥
मथुरा सो किन्ह अंचलु गहही। को सुधि राज काज तजि लहही॥

जब कन्हैया मुझसे हठ करता था, तब कल्पवृक्ष के समान मैं उसकी प्रत्येक हठ पूरी करती थी। अब मथुरा में वह किसका आँचल पकड़ता होगा और राजकाज को छोड़कर कौन उसकी सुधि लेता होगा?

अति नखरेर मोर दुहुँ बाले। अहहिं मोर बड़ नाजन्हिं पाले॥
करत होब को मो सम सारा। तहाँ चिंत इहि मोर अपारा॥
दधि रहि मथति एक दिनु प्राता। सुमिरि हृदय कन्हँ मुख सुखदाता॥

बहुत नखरे करनेवाले मेरे वे दोनों बालक मेरे द्वारा बड़े नाजों से (लाड़ लड़ाकर) पाले गये हैं; इसलिये वहाँ "मेरे समान कौन उनकी देखभाल करता होगा", इसी बात की मुझे अत्यंत चिन्ता होती रहती है। एक दिन सबेरा होने पर मैं अपने हृदय में उसके सुखदायक मुख का स्मरण करती हुई दहीं मथ रही थी;

तबहिं पाछ सो नटखटु आवा। सचुप भेद मैं तनक न पावा॥
तदुप तेहिं अवचट किलकाई। ढाँपे नयन मोर कर लाई॥

तभी वह नटखट चुपचाप पीछे से आ गया; इस बात को मैं तनिक भी जान न पाई। तदुपरान्त किलकारी मारते हुए अपने हाथ बढ़ाकर उसने एकाएक मेरे नेत्रों को ढँक लिया।

तिन्हँ लघु अँगुरिन्हँ मृदु परसाना। कन कन मम आतम हरषाना॥
बहुरी पाछही ते मुख बाढ़ी। टेरि लाग मोहि बिहँसनि गाढ़ी॥
कान्हँ कान्हँ तब मैंपि पुकारी। नटखट नर्ति लाग किलकारी॥

उसकी उन नन्हीं-नन्हीं उँगलियों के कोमल स्पर्श से मेरी आत्मा का कण-कण प्रसन्नता से भर गया। फिर उसने मेरे पीछे खड़े रहते हुए ही अपना मुख मेरी ओर बढ़ाया और गहरी हँसी के साथ मुझे पुकारने लगा। तब मैंने भी उसे कन्हैया, कन्हैया इस प्रकार पुकारा, तो वह नटखट किलकारी मारकर नाचने लगा।

स.- बाँह बढ़ानि तबै उर ल्याइ लगी पय प्यावन प्रेम की मारी।
ते पय पीबत मोहि बिलोकत हासै कबहुँक दै किलकारी॥
चंद बिनिंदक आनन तासु रही लहराती भुअंगिहि कारी।
चिक्कन तासु कपोल मैं चुम्बति बारहि बार हुति बलिहारी॥

तब प्रेम की अधिकता से आतुर हो मैंने अपनी भुजाएँ बढ़ाकर उसे अपने हृदय से लगा लिया और दुग्धपान कराने लगी। वह दूध पीते हुए कभी तो मुझे देखकर हँसता था और कभी किलकारी मारने लगता था। अपनी सुन्दरता से चन्द्रमा का भी निरादर करनेवाले उसके मुख पर सर्पिणियों के समान काली लटें लहरा रही थी और मैं उसके चिकने कपोलों का चुम्बन लेती हुई बार-बार उस पर बलिहारी जा रही थी।

दोहा- उधउँ अकृत सो अजहुँ अति खटकत मम दृग छाइ।
जब मैं अकिंचन माँट हित बाँधा ताहिं रिसाइ॥ २४॥

हे उद्धव! मेरा वह अपराध आज भी मेरे नेत्रों में उतरकर अत्यधिक खटकता है, जब एक साधारण से घड़े (को फोड़ने) के कारण क्रोधित होकर मैंने उसे (ऊखल से) बाँध दिया था।

चौ.- इहइ सुमिरि अब लौ जर गाता। जग नहिं निठुर मोहि सम माता॥
तेहि दिनु कहत रहा सुत मोरा। मैया करुँ उतपात न औरा॥

इसी बात को याद कर-करके मेरे अङ्ग अब भी जले जाते हैं कि संसार में मुझ जैसी निष्ठुर माता नहीं होगी। उस दिन मेरा पुत्र मुझसे कहता रहा कि मैया मैं अब और उत्पात नहीं करुँगा।

तुअ जे कहसि करब मैं ताहीं। जान देहुँ मोहि बाँधहुँ नाहीं॥
किन्तु न सुनि तब तिन्हँ सुठि बानी। अब दिनु राति रहति पछितानी॥

तुम जो कहोगी, मैं वही करूँगा; मुझे जाने दो, मत बाँधो। किन्तु उस समय मैंने उसकी भोली-भाली वाणी नहीं सुनी और अब दिन-रात पछताती रहती हूँ।

दधिघट बिपुल अजहुँ मम पाहीं। पर ऊधौ कन्हँ सौं सुत नाहीं॥

हे उद्धव! दहीं के घड़े तो आज भी मेरे पास बहुत हैं; किन्तु कन्हैया जैसा पुत्र नही है।

तेहिं बिनु मुअँ यह दधि नवनीता। नयन सलहि लागहि रसु रीता॥
ऊधौ लखु ए तेइ घर द्वारा। तेइ बीथि पुनि तेइ सरि धारा॥

उसके बिना यह दहीं व माखन मेरे नेत्रों में खटकता है और रसहीन जान पड़ता है। हे उद्धव! देखो! ये वही घर-द्वार है और वही वीथियाँ और वही यमुना की धारा है;

पर मुकुन्द बिनु सबनि मसाना। लखै काटि पर उरग समाना॥
दृग देखरात सून चहुँ ओरा। तब इन्ह पर रिस होत कठोरा॥

किन्तु मेरे बालमुकुन्द के बिना ये सभी श्मसान-से हैं और देखने पर सर्प के समान काटनें को दौड़ते हैं। जब नेत्र चारों ओर केवल सूना-ही सूना दिखलाते हैं, तब इन पर बहुत अधिक क्रोध आता है।

जे न होति सुत दरसन आसा। अवसि करति निज कर इन्ह नासा॥

जो यदि कन्हैया के दर्शनों की आशा न होती, तो अवश्य ही इन्हें अपने हाथों से फोड़ लेती।

दोहा- **कन्हँ त कन्हहिं का कउँ अधिक सुत त सबन्हँ कर होइ।**
किन्तु कि मम कन्हिया कइ लहि सक समता कोइ॥ २५॥

कन्हैया तो कन्हैया ही है, उसके विषय में अधिक क्या कहूँ? पुत्र तो सभी के होते हैं, किन्तु क्या कोई मेरे कन्हैया की समता पा सकता है?

चौ.- **कालिय सक्र केर मद गंजा। सहित सहाय कंस खल भंजा॥**
ऐहि भाँति सब कर सुख सारा। तदपि न दम्भ तनक उर धारा॥

कालिय व इन्द्र का मान भङ्ग करके उसने सहायकों सहित दुष्ट कंस का वध कर दिया। इस प्रकार सबके सुख का सम्पादन करके भी उसने अपने हृदय में कभी अहङ्कार नहीं किया।

तनय सुपातर अस सुखदाई। देइ कि दरसन मोहि पुनि आई॥
की उर भरि मैं अकथ अनंदा। पाइ सकहुँ पुनि गोद मुकुंदा॥

मेरा ऐसा सत्पात्र और सुखदायक पुत्र क्या पुनः लौटकर मुझे अपना दर्शन देगा? हृदय में अकथनीय आनन्द भरकर क्या मैं अपने उस मुकुन्द को पुनः अपनी गोद में पा सकूँगी?

अजिर कन्हहि मधुमय किलकारी। गूँजि कि मोहि पुनि करिहि सुखारी॥
पुनि कबु टेरिहि कहि मोहि माता। परस लहुँब कि तासु मृदु गाता॥

कन्हैया की मधुर किलकारी मेरे आँगन में गूँजकर क्या (कभी) मुझे पुनः सुखी करेगी? वह मैय्या कहकर मुझे पुनः कब पुकारेगा? क्या मैं उसके कोमल अङ्गों का स्पर्श कर पाऊँगी?

अस कहि मातु खसी दुख घोरा। सुमिरत कन्हँ मोहन दधिचोरा॥
निगुनोपासक लखि अस प्रीती। भा बिभोर डगि हृदय प्रतीती॥

ऐसा कहकर कान्हा, मोहन, माखनचोर आदि नामों का उच्चारण करती हुई मैया यशोदा घोर दुःख से पीड़ित हो मूर्छित होकर गिर पड़ीं। निर्गुण ब्रह्म के उपासक उद्धवजी श्रीकृष्ण के प्रति उनका ऐसा स्नेह देखकर विभोर हो गए और उनके हृदय का विश्वास डोल गया।

सुनत रहे ते तेन्ह निरासा। मिलेउ न उतरु हेत अवकासा॥

वे उनकी निराशाभरी बातें सुनते रहे; किन्तु उत्तर देनें के लिये उन्हें अवकाश न मिला।

दोहा- **दंपति निज सुत सुगुन कर रोदत करहि बखान।**
कस समुझाउँ न सूझ उन्ह रहा गरुअ जिन्हँ ग्यान॥ २६॥

नन्दरायजी व यशोदाजी रो-रोकर अपने पुत्र के सद्गुणों का बखान कर रहे हैं; किन्तु जिन्हें अपने ज्ञान पर बड़ा अभिमान था, उन उद्धवजी को सूझ नहीं रहा था कि उन्हें कैसे समझाऊँ।

चौ.- मौन रहन अह अनुचित भारी। धीर दिए मति रंक बेचारी॥
बिबस भए तब कह सिरु नाई। अह बड़भागि आप दोउँ माई॥

चुप रहने में बड़ा अनौचित्य है और धैर्य बँधानें में उनकी बुद्धि बेचारी कंगाल है। जब वे लाचार हो गए, तब सिर नवाकर उन्होंने कहा- हे माता! आप दोनों बड़े ही भाग्यवान हैं।

तुम्ह सम हरि सनेहि छल त्यागे। अह न जगत जनि होइहैं आगे॥
भै हरि भगत अजहुँ लौ जेते। सुचिपद रज तुम्हार भै तेते॥

श्रीकृष्ण से स्नेह करनेवाले आप जैसे निष्कपट जन, न तो अभी इस संसार में हैं और न आगे ही होंगे। आज तक इस संसार में जितनें भी हरिभक्त हुए हैं, वे आपके पवित्र चरणों की रजमात्र होकर रह गए हैं।

तव हरिपेमु अगाध अनन्या। गोद पाइ तोहि महि भइ धन्या॥
होइ जे रोम रोम मम रसना। कहि पाउब तव म्हातम कस ना॥
जस मिलि गनक सकल संसारा। गनि पाव न नभ नखत अपारा॥

आपका कृष्णप्रेम अगाध व अनन्य है, आप दोनों को अपनी गोद में पाकर पृथ्वी भी धन्य हो गई है। जो यदि मेरा रोम-रोम जिह्वा हो जाय, तब भी मैं आपकी महिमा का वर्णन कैसे नहीं कर सकूँगा; जैसे सम्पूर्ण संसार के गणितज्ञ मिलकर भी आकाश के अपार नक्षत्रों को गिन नहीं सकते।

अस कहि श्रद्धा ते सिरु ढाई। ऊधौ मौन भए पुलकाई॥

ऐसा कहते हुए श्रद्धा से सिर झुकाकर पुलकित हुए उद्धवजी मौन हो गये।

दोहा- सुने दुहुन्हँ उन्हँ बच अमल कलिरिपु कान लगाइ।
किन्तु धीर उन्ह तनक नहिं भा अति गै अकुलाइ॥ २७॥

हे परीक्षित्! नंदरायजी व यशोदाजी दोनों ने चित्त लगाकर उनके निर्मल वचन सुने; किन्तु इससे उन्हें तनिक भी धैर्य नहीं हुआ; उल्टे वे और अधिक व्याकुल हो उठे।

चौ.- नंद कहेउँ सुत परम सुजाना। जीव केर तुअ सिष्य महाना॥
पै सुनि तव बच अचरज होई। तुअ बड़भागि बूझ पितु सोई॥

तब नंदरायजी ने कहा- हे वत्स! तुम परम बुद्धिमान बृहस्पति के महान शिष्य हो; किन्तु तुम्हारे वचन सुनकर मुझे आश्चर्य होता है; क्योंकि तुम उस पिता को बड़भागी समझ रहे हो,

जिअत जे अतिप्रिय तनय गवाँई। भलहि दंड यह मम निठुराई॥
बिधि भा बाम जे अस सुन काना। अरिहि न मिल अस सोक महाना॥

जो अपने अत्यधिक प्रिय पुत्र को खोकर भी जीवित है। कदाचित मेरी इस निष्ठुरता के लिये यही दण्ड उपयुक्त भी है। मुझे विधाता विपरीत हो गया है, जो मेरे कान यह सुन रहे हैं। किसी शत्रु को भी ऐसा कठोर दुःख न मिले।

तहि भल बोध हमार निरासा। तदपि प्रसंसि करहि उपहासा॥
अस सुनतहि भै उधौ अबाका। कातर दृग लागेसि मुख ताका॥

हे उद्धव! तुम्हें हमारी निराशा का ज्ञान भली प्रकार है; फिर भी हमारी प्रशंसा करके तुम हमारी हँसी उड़ा रहे हो? यह सुनते-ही उद्धवजी अवाक् रह गए और कातर हुए नेत्रों से वे उनका मुँह ताकनें लगे।

हृदय ग्यान मति तदपि भ्रमाई। कहिअ काह अब भै निरुपाई॥
नंद कन्हहिं संतत सुत जाना। एहि ते अछत भाउ नहि आना॥

उनका हृदय ज्ञान से पूर्ण है, फिर भी उनकी बुद्धि भ्रम में पड़ गई और वे निरुपाय होकर रह गये कि अब क्या कहा जायँ। नंदरायजी ने कन्हैया को निरंतर अपना पुत्र ही समझा था; इसके अतिरिक्त उनके हृदय में अन्य कोई भाव नहीं था।

दोहा- ब्रह्म नंद हित तनय प्रिय उधउँ हेतु जगदीस।
तातें भूप बिसुद्ध बच पितहिं दीन्ह अति टीस॥ २८॥

हे परीक्षित्! परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण नन्दरायजी के लिये मात्र उनके प्रिय पुत्र हैं और उद्धवजी के लिये वे ही जगदीश्वर। इसी कारण उद्धवजी के विशुद्ध वचनों ने उन पिता को अत्यन्त चोट पहुँचाई।

चौ.- ऊधौ तदुप कहा कर जोरी। छमहुँ तात बालक मति मोरी॥
कान्हँ सौंह उर धरि सतिभाऊ। कहा जेइ सब सहज सुभाऊ॥

तदुपरान्त उद्धवजी ने हाथ जोड़कर कहा- हे तात! आप मेरी बालबुद्धि को मुझे क्षमा करें। मैं कन्हैया की शपथ उठाकर कहता हूँ, मैंने जो भी कहा है, वह सब सच्चे मन से और स्वभाववश कहा है।

भगतबछल हरि जग हितकारी। अवसि आइ सुधि लेहिं तिहारी॥
सुनहुँ तात पुनि मम एक बाता। अखिल ब्रजहि एकौ हितदाता॥

संसार का हित करनेवाले भक्तवत्सल श्रीकृष्ण अवश्य आकर आपकी सुधी लेंगे। हे तात! हे सम्पूर्ण ब्रज के एकमात्र हितकर्ता! आप मेरी एक बात और सुनिये!

सबबिधि तुम ब्रजबासिन्ह माहीं। अहौ प्रबुद्ध उताइल नाहीं॥
तुमहि जे सोक धरब अस भारी। प्रजा धरिहिं कस धीर बेचारी॥

आप अन्य व्रजवासियों के समान अधीर होनेवाले न होकर परम बुद्धिमान हैं। जो यदि आप ही इस प्रकार अत्यधिक शोक करेंगे; तो आपकी प्रजा बेचारी किस प्रकार धैर्य धारण करेगी?

सो जब लौ न हरहि हरि पीरा। तब लौ तात धरिअ हिय धीरा॥
नयन पोंछि तब धीरजु लाई। पूछी नंद दुहुन्हँ लरिकाई॥

अतः हे तात! कन्हैया जब तक आकर आपकी पीड़ा नहीं हर लेते, तब तक आप मन में धैर्य धारण कीजिये। तब धैर्य धारण करके अपने नेत्र पोंछकर नंदरायजी ने उनसे उन दोनों भाईयों के नटखट चरित्रों के विषय में पूछा।

दोहा- एहि प्रकार निसि बीति नृप कीन्ह सयन कोउँ नाहिं।
चले उधउँ असनान हित ब्रह्म महूरत पाहिं॥ २९॥

हे राजन! इस प्रकार बातें करते-करते ही सारी रात बीत गई, किसी ने भी शयन नहीं किया। फिर ब्रह्ममुहूर्त हुआ पाकर उद्धवजी स्नान करने के लिये (यमुना की ओर) चले।

चौ.- हृदय सुमिरि निरगुन भगवाना। चले जात ब्रज बीथि अजाना॥
तेहिं देखा ग्वालिन्ह उठि प्राता। लगी काज सुमिरत सुखदाता॥

निर्गुणब्रह्म का ध्यान करते हुए वे व्रज की अपरिचित गलियों से होते हुए चले जा रहे थे। उन्होंने देखा कि सवेरा हुआ देखकर गोपियाँ उठ-उठकर श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए (अपने-अपने) कार्यों में लग गई।

कन्ह छबि मधुर लिये निज अंबक। अजिर बुहारि धरे घृत दीपक॥
हरि गुनगान तासु सुनि काना। भा ऊधौ हिय मोद महाना॥

कन्हैया की मधुर छवि अपने नेत्रों में लिये उन गोपियों ने अपने आँगन बुहारे और वहाँ घीं के दीपक जलाकर रखे। उनके मुख से श्रीकृष्ण का गुणगान सुनकर उद्धवजी के हृदय में अत्यंत आनन्द हुआ।

कोउँ दधि मथहि बुहारहि आँगन। हरि जप सुनि पर खन खन काँगन॥
ऊधौ पंथ देख जोइ द्वारा। तहहिं सुनत कन्हँ चरितोच्चारा॥

कोई गोपी दहीं मथ रही है, तो कोई आँगन बुहार रही है और उनके कङ्कणों की खन-खन ध्वनि से श्रीकृष्ण का ही जाप सुनाई पड़ता है। मार्ग में जाते हुए उद्धवजी जिस भी द्वार पर देखते; वहीं पर उन्हें कन्हैया की ही लीलाओं का गुणगान सुनाई पड़ता था।

ऐहिभाँति अचरात गभीरा। आए तें गोबरधिनि तीरा॥
सुचि सरिकूल द्रूम अति भारी। बैठे बिहग बिपुल प्रति डारी॥

इस प्रकार अत्यधिक आश्चर्य करते हुए उद्धवजी गौवर्द्धिनी यमुनाजी केक तट पर पहुँचे। नदी के पवित्र तट पर बड़े-बड़े वृत्त थे, जिनकी प्रत्येक शाखा पर अनेक पत्ति बैठे थे।

छन्द- प्रतिसाख खग बहुजाति राजहि कान्हँ रव कलरव धरै।
अरबिन्द सरितहि मृदु दलन्हँ छबि कन्हँहि मुख माधुरि झरै॥
गुंजत मधुप हरिनाउ सुमिरत सरि लहर हरि हँसि लसी।
तृन तृन कनहि कन पात पातन्हि एक नँदसुत छबि बसी॥

वृत्तों की प्रत्येक शाखा पर अनेक जातियों के पत्ती, अपने कलरव में भगवान श्रीकृष्ण का स्वर धारण किये विद्यमान थे। यमुना में खिले हुए कमलों की कोमल पङ्खुड़ियों के सौन्दर्य से कन्हैया ही की मुख-माधुरी झर रही थी। उन पर मँडराते हुए भौंरे श्रीकृष्ण का नामोच्चारण कर रहे थे और यमुना की तरङ्गों में भी श्रीकृष्ण की ही मुस्कान घुली हुई थी। इस प्रकार व्रज के तिनके-तिनके, कण-कण और पत्ते-पत्ते में केवल और केवल नंदनंदन की ही मूर्ति बसी हुई थी।

दोहा- कुसुमावलि मृदु सौरभ बिलसित कान्हँ सुबास।

ऊधौ इहिबिधि अनुभवेउँ हरिहि हरिहि सब आस॥ ३०॥

पुष्पों के समूहों का कोमल पराग भी कृष्ण ही-की सुगन्ध से भीगा हुआ था। इस प्रकार उद्धवजी को (वहाँ) सब ओर केवल कन्हैया-ही कन्हैया अनुभव हुए।

चौ.- हरिपद अति रति जनु तनु धरि ब्रज। भइ साकार उधौ सनमुख अज॥
चित बिचलान बापुरो भारी। जित देखहिं तित प्रगट बिहारी॥
तब ते तटहि नयन निज बाँधी। बैठे उर जब धीरज साधी॥

जैसे श्रीकृष्ण के चरणों के प्रति महान प्रेम ब्रज का शरीर धारण किये आज उन उद्धवजी के सम्मुख साकार हो उठा हो। वे जिधर भी देखते, उधर उन्हें कन्हैया प्रत्यक्ष उपस्थित दिखाई देते थे; जिससे उनका चित्त बेचारा अत्यधिक विचलित हो उठा। तब वे अपने नेत्र बंद करके तट ही पर बैठ गये और फिर जब उनके हृदय ने धैर्य प्राप्त किया;

तब उन्ह प्रातक्रिया करि जाई। इहिबिच छितिज उए रबि आई॥
अस लखि इहाँ निबरि गृहकाजा। चला जमुन दिसि गोपि समाजा॥

तब उन्होंने जाकर नित्यकर्म किये। इसी बीच सूर्यदेव भी क्षितिज पर आ निकले; यह देखकर इधर गोपियों का समुदाय भी गृहकार्यों से निवृत्त हो यमुना की ओर चला।

नंदद्वार रथ लखि पहिचानी। तेहिं सवँ कहा गोपि अचरानी॥
सखी यह त सोइ पूरब आई। हरि लै गा जे कुँमर कन्हाई॥

उस समय नन्दरायजी के द्वार पर खड़े रथ को देख और पहचानकर चकित हुई गोपियों ने परस्पर कहा कि हे सखि! यह तो वही रथ है, जो पहले आया था और कुँअर कन्हैया को हरकर ले गया था।

यह दारुन दिनुरात बिषादा। याकरही अह अखय प्रसादा॥

हमें पीड़ित करनेवाला दिनरात का यह दारुण विषाद, इसी का तो दिया हुआ अखण्ड परिणाम है।

दोहा- पुनि केहि कारन आएहुँ यह उत्पातन्हँ मूल।
सखि अरु केतनौ हमहि हित देव होब प्रतिकूल॥ ३१॥

(समस्त प्रकार के) उपद्रवों की जड़ यह पुनः यहाँ किस कारण से आया है? हे सखि! यह विधाता हमारे लिये अब और कितना प्रतिकूल होगा।

चौ.- सो अक्रूर लाग पुनि आवा। प्रथम महादुख जेहिं प्रगटावा॥
पै अब काहिं लेन इहँ आवा। जिअँ कि खलहि जनि अबहि भरावा॥

प्रतीत होता है वह अक्रूर पुनः आ गया है, जिसनें पहले आकर घोर दुःख उत्पन्न किया था। किन्तु वह अब यहाँ क्या लेनें आया है? क्या अभी तक उस दुष्ट का जी नहीं भरा है?

ऐतनहुँ उधौहि आवत पाई। कहा परसपर उन्हँ अचराई॥

इतनें में ही उद्धवजी को आता हुआ जानकर उन्होंने चकित हो एक-दूसरे से कहा कि

की यह सोइ जे पुर तें आए। हरि प्रतिछबि जिन्हँ बपुष लखाए॥

तन स्यामता कान्हहि समाना। तेजवंत मुख सोइ मुसुकाना॥

क्या ये वे ही हैं, जिनका शरीर कन्हैया का प्रतिरूप दिखाई पड़ रहा है और जो मथुरा से आए हैं? इनके शरीर पर कन्हैया ही के समान श्याम कान्ति है और तेजयुक्त मुख पर मुस्कान भी वही है।

कटि पट पीत कपटि घन स्याना। कवन पुरुष यह कान्हँ समाना॥
अह इन्ह बिचरनि सोइ कुटिलाई। जेहिं उरगानुज राख बनाई॥

कन्हैया के समान कमर में पीताम्बर बाँधे हुए कपटी व अत्यधिक चालाक प्रतीत होनेवाला यह पुरुष कौन है? इसके चलनें की शैली में भी वैसी-ही कुटिलता है, जो (सर्पों के स्वामी बलरामजी के अनुज) कन्हैया अपनी चाल में धारण करते हैं।

बरजत एक कहा नहिं आली। सखा लाग यह उन्ह बनमाली॥
अवसि स्याम करि सुरति हमारी। सुधि हित पठएहुँ इन्ह कहँ प्यारी॥

तब एक अन्य गोपी ने टोकते हुए कहा- हे आली! ऐसा नहीं है, ये तो उन कन्हैया के सखा जान पड़ते हैं। हे प्यारी सखि! अवश्य ही कन्हैया ने हमारा स्मरण करके इन्हें हमारी सुधि लेनें भेजा है।

दोहा- **सखी तुरत चलि ताहिहीं पूछि लेति किन बात।**
बहुरि सबन्हँ तेहिं घेरेउँ धाइ कछुक सकुचात॥३३॥ (क)

(तब किसी अन्य ने कहा-) हे सखि! शीघ्र चलकर स्वयं उन्हीं से सारी बात क्यों नहीं पूछ लेती? फिर उन सबनें दौड़कर कुछ सकुचाते हुए उन उद्धवजी को घेर लिया।

रेख बिषाद अधर सबन्हँ मनहुँ लेख दुरभाग।
खीन गात मुख मलिन अति उर अचेत अनुराग॥३३॥ (ख)

उन सबके अधरों पर विषाद की रेखाएँ थी, जो मानों दुर्भाग्य का लेख ही थी। उनके मुख अत्यधिक म्लान, शरीर क्षीण और हृदय प्रेम की अधिकता के कारण अचेत-से थे।

चौ.- **बेनि उरझि बियोग के सूला। स्वास चलहि जीवन प्रतिकूला॥**
नयनन्ह आस पुहुप अति चारू। लाग प्रतारित कुदिनु तुषारू॥

प्रियवियोगरूपी शूल से आहत उनकी वेणियाँ उलझी हुई थी और उनका श्वास उनके जीवन के विपरीत चल रहा था। उनके नेत्रों में विकसित आशा के अत्यन्त सुन्दर पुष्प दुर्दिनरूपी पाले से आहत प्रतीत हो रहे थे।

मृदुल अंगदुति दुख कर भारा। परी मंद बिषदित सिंगारा॥
बिरहु उपेच्छित तन तरुनाई। दिनु दिनु रहि निज प्रान गँवाई॥

उनके अङ्गों की कोमल आभा दुःख के भार से पीड़ित हो मंद पड़ गई थी और उनका श्रृङ्गार विषादयुक्त हो गया था। प्रियवियोग के कारण उपेक्षित हो चुकी उनके शरीर की तरुणता, दिनोंदिन अपने प्राण गँवाती जा रही थी।

तासु चपलपनु भा बिष कैसे। राहु ग्रसहि पूरन ससि जैसे॥

ऊधौ तरकि तासु जिग्यासा। निकट जाइ निज परिचौ भाषा॥

उनकी चञ्चलता में किस प्रकार विष घुल गया था; जैसे पूर्ण चन्द्रमा को राहु ग्रस लेता है। उनकी जिज्ञासा को भाँपकर उद्धवजी ने निकट जाकर उन्हें अपना परिचय दिया।

उन्ह कटि पाति खौंसि जब देखी। भई उताइल एकु बिसेषी॥
पुनि पिय पाति जानि तेहिं धाई। लीन्हि छराइ चली अतुराई॥

जब एक गोपी ने उनकी कमर में पत्रिका बँधी हुई देखी, तो वह कुछ अधिक अधीर हो उठी और प्रियतम का पत्र समझकर उसनें दौड़कर उसे उद्धवजी से छीन लिया और शीघ्रता से चल पड़ी।

ऊधौ बरजि सुना तिहिं नाहीं। किए सबनि कदलीबन आई॥

उद्धवजी ने उसे रोका, किन्तु उसने नहीं सुना और सबको साथ करके वह कदलीवन में आ गई।

दोहा- **अनपढ़ मति उन्ह कइ चतुर पातिहुँ निज निज नाउ।**
खोजत भइ कौतुक बस उधउँ देख निरुपाउ॥३४॥

उनकी अनपढ़ किन्तु चतुर बुद्धि उस पत्रिका में बड़ी उत्सुकता से अपना-अपना नाम ढूँढनें लगी और उद्धवजी लाचार हुए से (यह सब) देख रहे थे।

चौ.- **कोउ कर पढ़न जतन नरराई। लेत पत्र कोउँ हृदय लगाई॥**
जब न सुतोष भयउँ उर ताही। फिरी सबनि सुरगुर सिष पाही॥

हे परीक्षित्! कोई गोपी पत्रिका को पढ़नें का यत्न करती है, तो कोई उसे हृदय से लगा लेती है और यह करके भी जब उनके मन को पूर्ण संतोष नहीं हुआ, तो वे सब वृहस्पतिशिष्य उद्धवजी के पास लौट आई।

पूछि लागि पुनि धीरज धारा। पाति माँझ कत नाउँ हमारा॥
ब्रह्मलिखित एहि पातिहुँ माहीं। लिखा नाउँ कोउ कर कत नाहीं॥

फिर धैर्य धरकर वे उनसे पूछनें लगी कि इस पत्रिका में हमारा नाम कहाँ है? तब उद्धवजी ने कहा कि परब्रह्म श्रीकृष्ण के द्वारा लिखे गए इस पत्र में कहीं पर किसी का भी नाम नहीं है।

तो पुनि तुम हरि रूप सजाए। काहि लेन पुर तजि ब्रज आए॥
बिंग्य करत एक कह मुसुकाई। कहिअ कुसल हम कहँ जदुराई॥

तो फिर आप कन्हैया का-सा वेष धरे मथुरा छोड़कर व्रज में क्या लेनें आए हैं? उसी समय व्यंग्य करते हुए एक ने मुस्कुराकर कहा कि आप तो हमें यदुराज कृष्ण की कुशल सुनाईये।

की तेहिं सुरति रही हमु केरी। या बिमोहि भयऊँ बस चेरी॥
बिबिध बिभूषन तव तनु भारी। माँगे कत कि सम्पति तुम्हारी॥

क्या उसे हम गोपियाँ का स्मरण भी है या विमुग्ध हुआ वह उस दासी कुबड़ी ही के वश हो गया है? आपके शरीर पर अनेक मूल्यवान आभूषण हैं; क्या आपने इन्हें कहीं से माँगकर पाया हैं या ये आपके अपने हैं?

दोहा- अथवा जदुपति निजहि कर निज दासहुँ पहिराइ।
देखरावन आपन बिभव ब्रज कहँ दीन्ह पठाइ॥३५॥

अथवा यादवों के स्वामी उन कृष्ण ने अपने हाथों से अपने सेवक (आप) को पहनाकर अपना ऐश्वर्य दिखाने के लिये यहाँ व्रज में भेज दिया है?

चौ.- मोहि न लाग आपु तुम आए। दधि तजि कोउँ किउँ छाछि उठाए॥
किन्तु देइ आयसु जब साई। चेर बापुरो कर तब काई॥

मुझे नहीं लगता कि आप स्वेच्छा से यहाँ आए हैं, भला दहीं को छोड़कर कोई छाछ क्यों उठायेगा? किन्तु यदि स्वामी की ही आज्ञा हो जाय, तो फिर सेवक बेचारा क्या कर सकता है।

आएसि जे अब बिबस देहाता। कहिअ हेतु उर मम अकुलाता॥
जे हमार सुधि जाने तोहीं। पठवा तब त आव हँसि मोहीं॥

अब जबकि विवश हो आप देहात में आ ही गए हैं, तो अपने आने का कारण भी कह डालिये, क्योंकि मेरा मन व्याकुल हो रहा है। यदि उसने आपको हमारी सुधि लेने भेजा है; तब तो मुझे हँसी आती है।

ग्वालिन्ह तें अब ताहिं कि मीठा। उर उरझेहुँ जिन्हँ कुबजहिं पीठा॥
हेतु अहै एक मम हिय आवा। जे पितुमात अजिरहुँ झलावा॥

जिसका हृदय कुब्जा के कूबड़ पर आ गया हो; भला! उसे अब हम गोपियों से क्या प्रयोजन? हाँ एक कारण है, जो मेरे मन में आता है कि जिन माता-पिता ने उसे आँगन में झुलाया है,

बिसरिअ तेन्ह नेह नहिं ऐसा। भल अह राजभोग हिय बैसा॥
इहइ हेतु जे पठएसि तोही। तदपि लाग यह अनुचित मोही॥

उनका स्नेह इतना उपेक्षणीय भी नहीं है कि जिसे भुला दिया जाय; चाहे मन राजकीय भोगों में ही क्यों न उलझा हुआ हो? यदि कन्हैया ने तुम्हें केवल इसी कारण से भेजा है, तब भी मुझे यह अनुचित ही जान पड़ता है।

जेइ पितु मात सनेह अपारा। बड़े जतन करि करहि उछारा॥
लीजिअ सुधि उन्हँ दास पठाई। इहि ते बड़ि का होब खोटाई॥

जो माता-पिता अपार स्नेह के साथ बड़ा यत्न करके पालन-पोषण करे; उन्हीं की सुधि एक दास को भेजकर ली जायँ? भला! इससे बड़ा खोटापन और क्या होगा?

आपु अए कि होत कठिनाई। अथवा कुबरि न जाति बिहाई॥

क्या स्वयं आने में उसे कष्ट होता है अथवा वह कुबड़ी उससे त्यागी नहीं जाती?

दोहा- तात मात जे पालही सहज अपृह अनुराग।
गुनि सुत कोकिलपोत सम तजहि उन्हहिं गनि काग॥३६॥

जो माता-पिता स्वभाविक ही निष्काम ममता से (सन्तान का) पालन करते हैं, गुणवान पुत्र कोयल के बच्चे के समान उन्हें ही कौए समझकर त्याग देता है।

चौ.- सत्य मात पितु हेतु पठाए। हमरे पाहि काहि हित आए॥
सुनि ऊधौ कछु उतरु न दीन्हा। उए वदनु घन अचरज चीन्हा॥

यदि कन्हैया ने आपको सचमुच मैय्याबाबा के निमित्त ही भेजा है, तो फिर आप हमारे पास क्या लेने आए हैं? यह सुनकर उद्धवजी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, उनके मुख पर सघन आश्चर्य प्रकट हो गया।

चकित देखि उन्ह मृदु मुसुकानी। एक गोपि कहि लगि अस बानी॥
बिभव लिये यह जदुप अथाई। जाइअ बेगि उन्हहिं समुहाई॥

उन्हें इस प्रकार चकराया हुआ देखकर एक गोपी धीरे से मुस्कुराकर इस प्रकार कहने लगी कि उन यादवों के स्वामी का यह अथाह वैभव लेकर आप शीघ्र उन्हीं (मैयाबाबा) के पास चले जाईये।

तनय बिभव अस निरखि अपारा। होइहि अवसि तेन्ह दृग चारा॥
होइहि सुफल जिवन अज तासू। देखतही निज जरा सुपासू॥

अपने पुत्र का ऐसा अपार वैभव देखकर अवश्य ही उनकी आँखें महान सुख से खिल उठेंगी। अपने बुढ़ापे के लिये यह उत्तम प्रबन्ध देखते-ही आज उनका जीवन सफल हो जायेगा।

कलपिअ दृष्य होब कस आला। मात पितुहि जब तासुहि बाला॥
निज कृतज्ञता आपु न आई। प्रगटावहि निज दास पुराई॥

तनिक कल्पना करो कि उस समय कैसा अद्भुत दृश्य होगा, जब माता-पिता के सम्मुख उनका अपना पुत्र स्वयं न आकर अपनी कृतज्ञता एक दास के द्वारा प्रकट करेगा।

तात मात जब उर अस जानिहिं। हिय अनुपम असीवँ सुख मानिहिं॥
अवसर इहइ धरै अतुराई। लाउब बार न जाइअ भाई॥

जब माता-पिता यह जान पावेंगे, तो वे भी मन में अनुपम व असीम सुख मानेंगे। हे भाई! यही अवसर उत्तम है, इसलिये आप शीघ्र जाईये, विलम्ब न कीजिये।

दोहा- सुनि ऊधौ अस मरमु बच भए मौन नरराइ।
जानि बेषु दुख हेतु उन्हँ लागेसि अति पछिताइ॥३७॥

हे परीक्षित्! उनके ऐसे वचन सुनकर उद्धवजी चुप रह गए और अपने वेष को उनके दुःख का कारण जानकर अत्यधिक पछतानें लगे।

चौ.- चलत ब्रह्म तेहिं बेषु धरावा। तब तें निज सुभाग गरुआवा॥
गोपिन्हँ दुखद किन्तु तेहिं जानी। तापर अब होइ लागि गलानी॥

चलते समय स्वयं परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण ने उन्हें यह वेष धारण कराया था, तब वे अपने सौभाग्य पर गर्वित हुए थे। किन्तु उसे गोपियों को दुःख पहुँचानेवाला जानकर, अब उसी पर उन्हें ग्लानि होने लगी।

स्यामसखा जब फिरि ब्रज आए। जदुप चरित उन्हँ बिपुल सुनाए॥
तवपि ज्ञान तेहिं समय सुनावा। सुनि हम सबनि परम सुख पावा॥

कन्हैया के सखा जब मथुरा से लौटकर ब्रज आये थे, तब उन्होंने हमें उन यदुनाथ की बहुत-सी लीलाओं के विषय में कहा था। उस समय उन्होंने आपके ज्ञान के विषय में भी कहा था, जिसे सुनकर हम सबको अत्यन्त सुख हुआ था।

जिज्ञासा एक मोहि महाना। बेगि ज्ञानबल करिअ निदाना॥
कवन पेमु जग बिनस न जोई। पुनि जे नसहि कहिअ गुन सोई॥

मेरे मन में एक महान जिज्ञासा है, आप अपने ज्ञान के बल पर शीघ्र उसका निदान कीजिये। संसार में ऐसा कौन-सा प्रेम है, जो नष्ट नहीं होता और उसके लक्षण भी कहिये, जो नष्ट हो जाता है।

मैं सुनि राखेउ जे निज काना। करउँ जथामति तासु बखाना॥
जासु मूल कछु कारन होई। पुरवत कारन बिनसहि सोई॥

मैंने जिस प्रेम के विषय में अपने कानों से सुन रक्खा है, उसका अपनी बुद्धि अनुसार बखान करती हूँ। जिसके मूल में कोई कारण होता है, कारण के पूर्ण होते ही वह (प्रेम) नष्ट हो जाता है।

दोहा- **पर जोइ प्रीतिहि मूल महुँ रहइ न कारन कोउँ।**
सोक पीरगत नित्य रह कबहुँ न बिनसहि सोउ॥३९॥

किन्तु जिस प्रीति के मूल में कोई भी कारण नहीं होता; वह शोक व वेदना से मुक्त होकर नित्य बनी रहती है, कभी भी नष्ट नहीं होती।

चौ.- **जे अस अह त भई हम प्रीती। दुखन्हि बिगत जग बंधन्हि जीती॥**
जे यह सत्य त कहिअ बुझाई। हरि पद हम जोइ प्रीति जुड़ाई॥

यदि ऐसा है, तब तो सांसारिक बन्धनों पर विजय प्राप्त करके हमारा प्रेम दुःखों से मुक्त हुआ हो गया है। यदि यह सत्य है, तो हे उद्धवजी! अब आप ही समझाईये- कृष्णचरणों में जो प्रीति हमने लगा रक्खी है;

हरि हर अज जेहिं स्वमुख सिहानी। सिरु नाएहुँ पुनि पुनि मुनि ज्ञानी॥
तेइ आज एहिभाँति दुखारी। सहि रहि किउँ बियोग अस भारी॥

जिसकी प्रशंसा स्वयं श्रीकृष्ण, ब्रह्माजी व शिवजी ने की है और जिसे बारम्बार ज्ञानी मुनियों ने सिर नवाया है, वही (प्रीति) आज इस प्रकार दुःखी होकर इतना महान वियोग क्यों सह रही है?

हमहि त प्रीति करत उर माहीं। कबहुँ पृहा कोउँ राखिसि नाहीं॥
जनि कन्हँ हिय पृह हेतु बसाई। गोपिन्हँ तें निज प्रीति जुड़ाई॥

हमनें (कन्हैया से) प्रेम करते समय अपने मन में कभी कोई इच्छा नहीं रखी और न कन्हैया ने ही अपने मन में कोई कारण व इच्छा लिये गोपियों से अपनी प्रीति लगा रखी थी।

तो अहेतु रस अकथ अपारा। किउँ बह एहिभाँति दुख भारा॥
उधउँ सचत सुन सूझ न ताहीं। कहिअ काह जूझनि उर माहीं॥

तो फिर हमारा निष्काम, अकथनीय व अपार प्रेम इस प्रकार दुःखरूपी भार क्यों ढो रहा है? उद्धवजी उनकी बातों को चित्त लगाकर सुन रहे हैं, किन्तु उन्हें कुछ सूझ नहीं रहा। उनके मन में इसी बात पर द्वंद्व हो रहा है कि अब गोपियों से क्या कहा जाय?

अचल मौन उद्धव कर पाई। कहन लागि तें पुनि अकुलाई॥
हेतुज प्रीति कथा जग नाना। कहउँ कछुक तुम सुनु धरि ध्याना॥

उद्धवजी का अखण्ड मौन देखकर वह गोपी पुनः अकुलाकर बोली- किसी प्रयोजन के कारण उत्पन्न होनेवाले प्रेम की अनेक कथाएँ संसार में (सुनने में आती) हैं; उनमें से कुछ के विषय में मैं कहती हूँ, आप ध्यान से सुनिये।

बिगसित सुमन मधुप जहँ पावहिं। गूँजि गूँजि सन तिन्ह गुन गावहि॥
पुनि मधु खीन जसहि तिन्ह होई। तजहि तसहिं गुन गाहक सोई॥

भौंरा जहाँ (कहीं भी कोई) खिला हुआ पुष्प देखता है, तो उसके सम्मुख होकर बार-बार गुञ्जन करता हुआ वह उसके गुण गाता है और जैसे ही उसका मधु क्षीण हो जाता है, वैसे ही गुणों का पारखी वह उसे त्याग देता है।

रति सो मधु हित भई सुजाना। खिनत मधुहि जिन्हँ भा अवसाना॥
कामी प्रथमहुँ प्रीति देखावहि। साधि पृहा रवनिहिं बिसरावहि॥

हे सुजान उद्धवजी! वह प्रीति केवल मधुप्राप्ति की इच्छा से की गई थी, जिसका मधु के क्षीण होते ही अंत हो गया। कामी मनुष्य पहले प्रेम प्रदर्शित करता है और अपनी इच्छा पूर्ण होते ही वह भी रमणी को त्याग देता है।

लखि पर धन बिमुग्ध कर जब लौ। गनिका तेहिं अर्पित रह तब लौ॥

जब तक विमुग्ध हुए पुरुष के हाथ में धन दिखाई पड़ता है, वैश्या भी तभी तक उसके प्रति समर्पित रहती है।

दोहा- **प्रजा निजहि कल्यान हित करति नृपति तें मोह।**
होत बिमुख जे नृपति तब उतरहि सोउ बिद्रोह॥४०॥

प्रजा भी अपने ही कल्याण के निमित्त राजा से लगाव रखती है और जब राजा उससे विमुख हो जाता है, तब वही प्रजा विद्रोह पर उतर आती है।

चौ.- **उपरोहितहि प्रीति रह तब लौ। जजमान न दछिना दै जब लौ॥**
तब लगि बिटप बिहंग बरूथा। जब लगि दीख परहि फल जूथा॥

पुरोहित का प्रेम भी तभी तक रहता है, जब तक कि यजमान दक्षिणा नहीं दे देता। पक्षिसमूह भी केवल तभी तक वृक्षों पर टिकते हैं, जब तक कि उन्हें वहाँ फलों के गुच्छे दिखाई पड़ते हैं।

मृगन्ह प्रीति बन हेतु अपारा। फिरि देख न जब जर कान्तारा॥
कारन कवन रहा इन्ह मूला। सधै जाहिं रस मिटेहुँ समूला॥

वन के प्रति पशुओं में अपार प्रेम होता है, किन्तु दावाग्नि में जल जाने के उपरान्त वही पशु उसकी ओर पलटकर भी नहीं देखते। इन सबके मूल में कोई न कोई हेतु था, जिसकी पूर्ति होते-ही (अभिव्यक्त) प्रेम समूल नष्ट हो गया।

पर कारनपर अमल अपारा। रहेउ स्याम पद प्रेम हमारा॥
पुनि मोहन सब स्वारथ त्यागी। भै हमार साँचे अनुरागी॥

किन्तु हमने तो कन्हैया के चरणों में बिना किसी कारण के निर्मल व अपार प्रेम किया था और कन्हैया भी तो समस्त स्वार्थों से उपर उठकर हमारे सच्चे प्रेमी हुए थे।

ऊधौ एहिबिधि प्रीति हमारी। भइ पृह कामबिगत अबिकारी॥
तो पुनि अस दारुन संतापा। रसिकन्ह हृदय कहिअ कस ब्यापा॥

हे उद्धवजी! इस प्रकार कृष्ण और हमारी परस्पर प्रीति इच्छा व काम से रहित और विकारों से मुक्त सिद्ध होती है; तो फिर आप ही बताईये! हम प्रेमियों के हृदय में ऐसा दारुण सन्ताप क्यों व्याप्त हो गया?

दोहा- **बृहस्पतिहि कर सिष्य तुम महाग्यान आगार।**
देहुँ उतरु मम प्रस्न कर उर करि गहन बिचार॥४१॥

देवगुरु वृहस्पति के शिष्य होकर आप महान ज्ञान के धाम हैं; इसलिये आप अपने मन में गहन चिन्तन करके मेरे इस प्रश्न का उत्तर दीजिये।

चौ.- **हम हरि बिरहु महादुखकारी। सहहि जतन करि धीरज भारी॥**
पर यह सूल सरिस उर लागा। झूठेहुँ आज अपृह अनुरागा॥

कन्हैया के महादु:खदायक वियोग को हम यत्नपूर्वक बड़े धैर्य से सह रही हैं। किन्तु यह बात किसी शूल की भाँति हमारे हृदय में गड़ी हुई है कि आज हमारा निष्काम प्रेम भी झूठा पड़ गया।

जे निरुपम निरुपाधि अखंडा। सोउ रस किउँ दह बिरहु प्रचंडा॥
जे रस रहेउ अनंत प्रकासा। हा सोइ सह तम सन उपहासा॥

जो उपमारहित, उपाधिरहित और अखण्ड है, वही प्रेम प्रचण्ड विरह में क्यों जल रहा है? जो प्रेम स्वयं में अनन्त प्रकाशस्वरूप था, हा! वही वियोग के अंधकार के सम्मुख उपहास सह रहा है।

हमहि सुना बिसुद्ध रस जाहीं। तनक न बिरहु सहन पर ताहीं॥
किन्तु काह तें का यह भयऊँ। रस अहैतु अज बादिहि गयऊ॥

हमनें तो सुना था कि जिनके विशुद्ध प्रीति होती है, उन्हें तनिक भी विरह नहीं सहना पड़ता। किन्तु यह क्या से क्या हो गया; हमारा अहैतुक प्रेम आज व्यर्थ चला गया।

पूछा तेहिं एहि बारहि बारा। बिबस बगलु लहँ उधौ बेचारा॥
थाँके हृदय बिचारि बिचारी। सपरि न जुगुति तबै चुप धारी॥

उसने बार-बार यही प्रश्न किया; जिससे विवश व निरुपाय हुए उद्धवजी बगलें झाँकने लगे। अपने हृदय में विचार करते-करते वे थक गये; किन्तु फिर भी जब उन्हें कोई युक्ति न सूझी, तो वे चुप हो गये।

सपुन न उन्ह कबहूँ अनुमाना। हइ सक कोउँ अस प्रस्न महाना॥

उन्होंने कभी स्वप्न में भी इस बात का अनुमान नहीं किया था कि ऐसा भी कोई महान प्रश्न हो सकता है।

दोहा- प्रभु प्रति गोपिन्हँ प्रस्न यह ताकर प्रबुधि अतीत।
तातें तें उन्ह वदनु तक नरपति सचुप सभीत॥४२॥

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के द्वारा किया गया यह प्रश्न उद्धवजी की महान बुद्धि से भी परे था। इसलिये हे परीक्षित्! भयभीत हुए से वे चुपचाप उनका मुख ताक रहे थे।

चौ.- भ्रमित उधउँ चित जब उन्ह देखा। कह करि एक उपहास बिसेषा॥
जिहि रस सबद सुनेहुँ न काना। उन्ह एहि पूछन भूल महाना॥

उद्धवजी का चित्त भ्रमित हो गया है, यह देखकर एक गोपी विशेषरूप से उपहास करके कहने लगी कि जिन्होंने 'प्रेम' यह शब्द सुना तक नहीं, उनसे इसके विषय में पूछना ही बड़ी भारी भूल है।

गोपिन्हँ केर बेदना भारी। हरि बिनु आन कि सकहि निबारी॥
मथुरा दिसि मुख करि कर जोरी। बिलपत भइ सब गोपि बहोरी॥

गोपियों की महान वेदना को स्वयं श्रीकृष्ण के अतिरिक्त क्या कोई अन्य दूर कर सकता है? फिर समस्त गोपियाँ मथुरा की ओर मुख करके और हाथ जोड़कर विलाप करने लगी।

भए एक उन्ह तन मन प्राना। उतरे गहन मुरलिधर ध्याना॥
हा सुखधाम अखिल ब्रजनाथा। करिहहि कबु निज चेरिन्हँ साथा॥

उनके शरीर, मन व प्राण एक होकर मुरलीधर के ध्यान में गहराई तक उतर गए। (तब वे कहने लगी-) हा सुखधाम! हा सम्पूर्ण व्रज के स्वामी! आप इन दासियों को कब अपने साथ करेंगे?

हम त सदा तुम्हार गति जानी। तो पुनि किउँ तुम हमहि भुलानी॥
निज प्रेयसिन्ह सुमिरि ब्रज आई। देहुँ धीर एक बार बँधाई॥

हमनें तो सदैव (एकमात्र) तुम्हारा ही आश्रय माना है, तो फिर आपनें हमें भुला क्यों दिया? अपनी प्रेमिकाओं का स्मरण करके व्रज आकर एक बार धैर्य बँधा दो।

दोहा- सब समरथ परमातम कहहिं तोहि संसार।
तो पुनि तोरे रहत कस पीरित प्रेयसि तुम्हार॥४३॥

यह संसार आपको सर्वसमर्थ परमात्मा कहता है; तो फिर आपके होते हुए आपकी प्रेमिकाएँ (हम) पीड़ित क्यों है?

चौ.- कछु सवँ बिगत भइ जब धीरा। पूछि लागि एक बानि गभीरा॥
ब्रजहुँ बसत जे निसिदिनु भाई। रहेउ जेइ गोपिन्हँ गुन गाई॥

कुछ समय बीतनें पर जब गोपियों को धैर्य हुआ, तब एक गोपी गम्भीर वाणी में उद्धवजी से पूछनें लगी- हे भाई! व्रज में रहते हुए जो कन्हैया दिनरात हम गोपियों के गुण गाता फिरता था,

जदपु भए सो मथुरा माहीं। सुमिरत कबहुँ हमहि की नाहीं॥

पुर बसि जे भा गाँउ अराती। सखि तिहि किउँ पूछति एहिंभाँती॥

मथुरा में यादवाधिपति होकर अब वह कृष्ण कभी हमारा स्मरण भी करता है या नहीं। (तभी एक अन्य गोपी ने कहा-) नगर में जाकर जो गाँव का शत्रु हो गया है, हे सखि! तुम इस प्रकार उसके विषय में क्यों पूछती हो?

सुरति होति जे ताहि हमारी। बेगि आउतो सबन्हँ बिसारी॥
सखि अस कहि न करहु उपहासा। तेहिं काहँ होइहि अवकासा॥

यदि उसे हमारी सुध होती, तब तो अवश्य ही वह सबको छोड़कर शीघ्र आ जाता। (तब एक अन्य गोपी ने कहा-) हे सखि! ऐसा कहकर तुम उनका उपहास न करो; भला उन्हें वहाँ अवकाश ही कहाँ होगा?

बिहँसि कहइ एक धरे निरासा। अवसि न उन्ह होइहि अवकासा॥
सुना चेरि तहँ कूबरि कोई। अवसि होब रत तिन्हहिं सेव सोई॥

तब एक गोपी ने मुस्कुराकर निराशभाव से कहा कि अवश्य ही वहाँ उन्हें अवकाश नहीं होगा। सुना है वहाँ कुबड़ी नाम की कोई दासी है, वह अवश्य उसी की सेवा में व्यस्त होगा।

एक त कूबर छबिजुत भारी। दूसर तिहि बिचरनि मतवारी॥

हे आली! एक तो उसकी पीठ पर महान सौन्दर्य से भरा कूबड़, दूसरे उसके चलने की मतवाली शैली।

दोहा- **चेरि होन तापर त उन्ह हेमहिं भयउँ सुहाग।**
कहौ मूढ़ को फिरहि जे तजि अस परम सुभाग॥४४॥

और उस पर भी हे सखि! उसका दासी होना तो जैसे कन्हैया के लिये सोने पर सुहागा हो गया। अब बताओं ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो ऐसे महान सौभाग्य को त्यागकर लौटेगा?

चौ.- **सखी सत्य यह बात तिहारी। चेरि सेव जे आनँदु भारी॥**
ग्वालिन संग प्रमोद सो कहाँ। जो हरि आवहि ताहि तजि इहाँ॥

तब एक अन्य गोपी ने कहा- हे सखि! दासी की सेवा में जो महान आनन्द है, वही महान आनन्द हम गोपियों के साथ कहाँ; जो उस दासी को छोड़कर कन्हैया यहाँ लौटकर आयें?

अबहिं त कुमुखा कइ छबि भारी। सखी न उन्ह तें जाइ बिसारी॥
पुनि सो नगर तहाँ जुबतिन्हँ कर। कवन काल जे फिर मुरलीधर॥

हे सखि! अभी तो उस बुरे मुखवाली कुबड़ी की सुन्दरता ही उनसे छोड़ते नहीं बनेगी; ऊपर से वह नगर है, भला वहाँ युवतियों की क्या कमी होगी, जो मुरलीधर (इस गाँव की) लौटेंगे?

है एक कारन नगरकुमारी। जे तिहि समुझि देइ दुतकारी॥
तब त अवसि तें फिर ब्रज माहीं। तिय लंपट सुभाय तज नाहीं॥

हाँ एक कारण है, यदि नागरियाँ उसे कपटी पहचानकर दुत्कार दें, तब तो वह अवश्य ही व्रज की ओर लौट आयेगा; क्योंकि स्त्रीलोलुप मनुष्य अपना स्वभाव नहीं छोड़ता।

बक्र उकुति अस उधउँ खिसाए। देखि गोपि कहि लगि मुसुकाए॥

पर सखि यह त असम्भव तैसे। उबउँ दिवस उड़ दरसन जैसे॥

गोपी की इस वक्रोक्ति पर उद्धवजी लज्जित हो गए; यह देखकर वह गोपी मुस्कुराकर पुनः बोली- किन्तु हे सखि! यह तो उसी प्रकार असम्भव है, जैसे मध्य दिवस में तारों का दर्शन।

दोहा- रहहिं ताहु चहुँ ओर सखि एक आबरन नील।
सूझि पर न जिन्हँ अकरषन तासु कपटजुत सील॥४५॥

हे सखि! उसके चारों ओर एक नीले रङ्ग का आवरण निरंतर बना रहता है, जिसके आकर्षण में उसका कपटयुक्त चरित्र दिखाई ही नहीं पड़ता।

मासपारायण चौबीसवाँ विश्राम

चौ.- फिरन असम्भव जब एहिभाँती। तो किउँ तेहिं पठाइसि पाती॥
होइ कवन यह प्रपंच सोऊँ। असितहिं बूझि सकहि कस कोऊँ॥

जब इस प्रकार उसका लौटना असम्भव ही है, तो फिर उसनें पत्रिका क्यों भेजी? यह भी उसका कोई प्रपञ्च ही होगा; भला! कपटी व झूठे मनुष्य को कोई कैसे समझ सकता है?

तब कहेहुँ एक बिसरि खिझाई। पूछु पाति का लिख्यो कन्हाई॥
लिख्यों होब ब्रजबनित तुम्हारी। सुरति मोहि पीरत अति भारी॥

तब एक गोपी ने कहा कि रूठना छोड़ो और उद्धवजी से पूछो कि कन्हैया ने पत्र में क्या लिखा है? (तब एक ने कहा कि) लिखा होगा कि हे व्रजाङ्गनाओं! मुझे तुम्हारी स्मृति अत्यधिक सताती है।

पर मैं ब्यस्त इहाँ दिनुराता। तातें फिरब कछुक दिनु जाता॥
हाँ जे इहइ लिखा एहि पाती। कछु दिनु अरु कटिहहि केहि भाँती॥

किन्तु मैं यहाँ दिनरात व्यस्त हूँ; इसलिये कुछ दिनों बाद लौटूँगा। तब किसी गोपी ने कहा कि हा! जो इस पत्रिका में यही लिखा है, तो कुछ दिन और कैसे कटेंगे?

एहि प्रकार बिलखत नरराई। सकल चली मग जूथ बनाई॥
उधउँ तासु अस दसा निहारी। चले पाछ कछु हृदय बिचारी॥

हे परीक्षित्! इस प्रकार विलाप करती हुई वे समस्त गोपियाँ मार्ग में समूह-सा बनाकर आगे चलीं। उनकी ऐसी दशा देखकर कुछ सोचते हुए उद्धवजी भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

कछुकहि चलि सो गोपि दुखारी। आइ एक जघ भइ चुप ठारी॥
सो निरजन एक चारु बिताना। गूँजहिं बिरहु केर जहँ गाना॥

थोड़ी ही दूर चलकर वे दुःखग्रस्त गोपियाँ आकर एक स्थान पर चुपचाप खड़ी हो गईं। उस निर्जन स्थान पर एक सुन्दर लतामण्डप था, जहाँ वियोग का गीत गूँज रहा था।

परम बेदनाजुत थल सूना। धरि उत्क्राँति बाढ़ दुख दूना॥
तरु किसलय बियोग के वाता। सरसरात कर श्रव पर घाता॥

उस स्थान का गहन वेदनायुक्त सूनापन, उत्क्रान्ति (मृत्यु के पूर्व की शान्ति) लिये दुःख को द्विगुणित कर रहा था। वहाँ स्थित वृक्षों के पत्ते वियोगरूपी पवन के स्पर्श से सरसराकर कानों पर आघात-सा कर रहे थे।

रहे कुसुम अस महितल पारे। सहज आभगत जनु गए जारे॥
तहँ तेहिं सवँ छिन के लघु सीवाँ। रही धरे दुखसिंधु असींवा॥

कुछ पुष्प सहज आभा से रहित हो उस भूमि पर ऐसे पड़े थे, जैसे झुलस गए हों। उस समय वहाँ एक क्षण की छोटी-सी सीमा भी अपने भीतर दुःख का असीम सागर लिये हुए थी।

दोहा- **पीरहिं सोउ पयोधि बिच अधर धरे निज प्रान।**
धरे आसतृन मंदत काचित जिअन जुझान॥४६॥

पीड़ा के उसी महासागर के मध्य अधरों पर अपने प्राण लिये, मन्द पड़ती हुई आशा के तिनके के सहारे काचित् (जिसने श्रीकृष्णप्रेम के एक-एक अङ्ग का सम्पूर्ण अनुभव कर लिया हो) श्रीराधाजी जीवन के लिये सङ्घर्ष कर रही थी।

चौ.- **गोपि सकल सुमिरत चितचोरा। जाइ ठाढ़ि ताकें चहुँओरा॥**
उधउँ चकित राधहिं निअराने। जिअत पीर सन बुद्धि न माने॥

चित्तचोर श्रीकृष्ण का ध्यान करती हुई गोपियाँ जाकर उनके चारों ओर खड़ी हो गईं। उद्धवजी चकित होकर राधाजी के निकट गए; अब (राधाजी के रूप में) जीवन्त वेदना ही उनके सम्मुख थी, किन्तु उनकी बुद्धि इस बात को मान नहीं रही थी।

उन्ह बुधिपर राधा कर जतना। हरि सों हेत कोउ करि सक उतना॥
ते जप मोहन माधव स्यामा। कुंजबिहारि महासुखधामा॥

यह बात तो उनकी बुद्धि से ही परे थी कि जितना राधाजी को था, श्रीकृष्ण से उतना प्रेम भी कोई कर सकता है। वे मोहन, माधव, श्याम, कुञ्जबिहारी और महासुखधाम इत्यादि नाम जप रही थीं।

बदनु कांति दुख तें भइ खीना। पीर छार आभरन मलीना॥
तन पर तिमिर अचेतन केरा। मनहुँ इंदु पर बारिद डेरा॥

दुःख की अधिकता से उनके मुख की कान्ति क्षीण हो गइ है और आभूषणों पर पीड़ारूपी धूल पड़ी हुई है। उनके शरीर पर मूर्छा का अन्धकार छाया हुआ है, मानों चन्द्रमा को बादलों ने ढँक लिया हो।

करुना करि उर पर अधिकारा। गातन्हँ बोर पुलक कइ धारा॥
मानस मानस प्रिय सुरतिन्ह कर। भग्न कमलवन अति सुख दुख कर॥

करुणा उनके मन को अपने अधिकार में लेकर उनके अङ्गों को पुलकरूपी धारा में डुबो रही है। उनके मनरूपी सरोवर में प्रियतम की स्मृतियों का भग्न कमलवन एक साथ सघन सुख व दुःख उत्पन्न कर रहा है।

मनहुँ निसाचँल उड़गन संगा। अनख करहि तम केरि तंरगा॥
छिनु सँग मंद परति उन्ह नाड़ी। रही मीचु दिसि जीवनु बाढ़ी॥

मानों संध्या के आँचल में तारों के प्रकाश के साथ अन्धकार की तरङ्गें प्रतिस्पर्धा कर रही हों। क्षणों के साथ मन्द पड़ती हुई उनकी नाड़ी उनके जीवन को मृत्यु की ओर ढँकेल रही है।

पर उर आँस दीपसिख नाई। मीचु आँधि तें करति जुझाई॥
देत नाड़ि उन्हँ पुनि चेताई। एहिबिधि संतत चलहि जुझाई॥

किन्तु उनके हृदय की आशा किसी दीपक की लौ के समान उस मृत्युरूपी प्रचण्ड आँधी से सङ्घर्ष करते हुए पुनः उनकी नाड़ी को सचेत कर देती है और इस प्रकार यह संङ्घर्ष निरन्तर चलता रहता है।

एहिबिच मीच होत जब हाबी। मुरुछा लेति जिवहि उन्ह ढाबी॥

इसी बीच जब कभी मृत्यु हावी होती है, तब मूर्छा बढ़कर उनके प्राणों को ढँक लेती है।

दोहा- **मुरछा बिगत जुझाइ पुनि होत इहइ प्रति बार।**
तद्यपि आस जुजुत्सु घनि मान न आपनि हार॥४७॥

मूर्छा बीतनें के उपरान्त प्रत्येक बार यही सङ्घर्ष पुनः प्रारम्भ हो जाता है; किन्तु महान सङ्घर्षशील आशा फिर भी अपनी पराजय स्वीकार नहीं करती है।

चौ.- **प्रानप्रिया हरि कइ तेहिं काला। रहि मुरछित अति दुख बेहाला॥**
भलीभाँति पुनि गोपिन्हँ भाना। उन्ह उर थिति अरु पीर महाना॥

श्रीकृष्ण की प्राणप्रिया राधाजी उस समय दुःख की अधिकता के कारण बेहाल होकर मूर्छित हो चुकी थीं और उनकी महान पीड़ा व उनके हृदय की दशा का अनुमान गोपियों को भी भली-प्रकार था।

तातें हरत नींद उन्ह केरी। उन्ह कहँ सकुचनि होत घनेरी॥

इसी कारण उनकी मूर्छा भङ्ग करते हुए उन्हें अत्यन्त सङ्कोच हो रहा है।

एहिबिच माय सिविंटि निज भारी। छटि मुरछा करि ताहि दुखारी॥
काह अहहि मम प्रानपिआरे। राधा अस कहि नयन उघारे॥

इसी बीच अपनी विशाल माया समेंटकर मूर्छा उन्हें दुःखी करके हुई दूर हो गई और "प्राणों से भी अधिक प्रिय मेरे वे प्रियतम कहाँ हैं'' इस प्रकार कहते हुए राधाजी ने अपने नेत्र खोले।

मनहुँ माधवी प्रलयाक्राँता। खोजहि सान्तिहि नवल प्रभाता॥
तेहिं चहूँ दिसि दृष्टि पसारी। निपट दीखि परि गोपि दुखारी॥

मानों प्रलय से आक्रान्त हुई पृथ्वी शान्तिरूपी नवीन प्रभात खोज रही हो। फिर उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, किन्तु उन्हें केवल दुःख संतप्त गोपियाँ ही दिखाई पड़ी।

थिर करि चित तब सबद जुड़ाई। कहन लागि अस अति दुख पाई॥
पिय बिनु प्रति छिनु जीवन केरा। गरल सरिस भा कठुक घनेरा॥

तब अपने चित्त को स्थिर करके शब्द बटोरकर वे अत्यधिक दुःख का अनुभव करती हुई कहने लगी कि प्रियतम कृष्ण के बिना मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण विष के समान अत्यधिक कड़वा हो गया है।

चेत मुरछना केर मुहाना। फेरि देत सखि थाके प्राना॥

हे सखि! इस चेतना और मूर्छा के मुहाने पर चक्कर काटते-काटते मेरे प्राण थक चुके हैं।

दोहा- **अब सहात नहि अधिक यह बिखरन चह अब प्रान।**
सखी काज एक करउँ मम होब बड़ौ अहिसान॥४८॥ (क)

यह सब अब और अधिक सहा नहीं जाता, अब मेरे प्राण बिखर जाना चाहते हैं; इसलिये हे सखि! तुम मेरा एक काम कर देना, तुम्हारा बड़ा उपकार होगा।

मैं सुनि राखा जीव उर जे संकलपु बसाइ।
तजत प्रान मरनोपर जात सो मनरथ पाइ॥४८॥ (ख)

मैंनें सुना है कि जीव अपने मन में जिस सङ्कल्प को बसाकर अपने प्राण त्यागता है, मरनें के उपरान्त वह अपने उस मनोरथ को पा जाता है।

चौ.- **सो प्रिय मिलन लिये संकलपा। जब मैं तजउँ प्रान यह अलपा॥**
सान्तभाउ तब तुम मोहि घेरे। जपेसु नाउँ सुन्दर पिय केरे॥

अतः मन में प्रिय से मिलन का सङ्कल्प लेकर जब मैं इन तुच्छ प्राणों का त्याग करूँ, तब शान्तभाव से तुम सब मुझे घेरकर चारों ओर से प्रियतम के सुन्दर नामों का जप करना।

मरत भाँति एहि सुनि पिय नामा। अवसि मिलिहि मोहि उन्ह पद धामा॥
तदुप जोइ पथु पिय पुर गवने। मम मृततनु रज तहाँ बिछवने॥

इस प्रकार मरते समय प्रिय के नामों का श्रवण करने पर अवश्य ही मुझे उनके चरणों में स्थान मिल जाएेगा। तदुपरान्त जिस मार्ग से प्रिय मथुरा गए थे, उसी पर मेरी भस्म बिछा देना।

तहँ पियपदरज तें भइ ऐका। आतम मोर लहिहिं सुख नेका॥
बहुरि बिनय करि बिधि समुहाई। देहेसु पृह एक और सराई॥

वहाँ प्रियतम के चरणों की रज से एकाकार होकर मेरी रजरूपी आत्मा को उत्कृष्ट सुख प्राप्त होगा। फिर विधाता से प्रार्थना करके, मेरी एक इच्छा और पूर्ण करवा देना।

कछु रज सो पथ देहुँ बिछाई। जापर नित पद धरहिं कन्हाई॥
एहिबिधि उर धरि प्रिय पद कंजा। परसि पाइहउँ सो सुख पुंजा॥

मेरी भस्म का कुछ भाग उस मार्ग पर भी बिछा देना, जिस पर नित्य कन्हैया के चरण पड़ते हों। इस प्रकार उनके चरणकमलों को हृदय पर धरकर, मैं उन सुखपुञ्ज का स्पर्श पा लिया करूँगी।

बिधि पुनि मोर बपुष जलभागा। दे बहाइ सो सरित तड़ागा॥
करहि प्रानपति जहाँ बिहारा। जातें मिल नित पियतन छारा॥

फिर विधाता मेरे शरीर के जलतत्व को उन नदियों और तालाबों में बहा दे, जिनमें प्रियतम नित्य विहार किया करते हों, ताकि प्रियतम के शरीर की रज मुझे नित्य प्राप्त हुआ करे।

बिधि मम तेज सो मुकुर बसावहि। पिय बर बदनुबिम्ब जहँ छावहि॥
वात तत्व मम बस पिय नासा। जातें मिल उन्ह हृदय निवासा॥

मेरे तेज को विधाता उस दर्पण में बसा दे, जिसमें प्रिय के सुन्दर मुख का प्रतिबिम्ब उभरता हो। मेरे शरीर का वायुतत्व प्रिय की स्वासों में बस जाय, ताकि मुझे उनके हृदय में निवास मिले।

दोहा- गगन तत्व हतभागि तन सोउ भवन मिल जाइ।
जहँ करतब्य बिबस श्रमित कर बिश्राम कन्हाइ॥४९॥ (क)

मेरे इस अभागे शरीर का आकाश-तत्व जाकर उस भवन में व्याप्त हो जाय, जिसमें कर्तव्य के कारण थके हुए कन्हैया आकर विश्राम करते हों।

सजल नयन पुनि कहेहुँ उन्ह गोपिन्हँ सन कर जोरि।
अंतिवँ घरि सब भाँति सखि तुमहि हितू अब मोरि॥४९॥ (ख)

फिर गोपियों के सम्मुख हाथ जोड़कर सजल नेत्रों से उन्होंने पुनः कहा- हे सखियों! जीवन की इस अंतिम घड़ी में अब सब प्रकार से तुम ही मेरा हित करनेवाली हो।

चौ.- सखि कदम्ब जहँ जमुनहिं तीरा। तहँ चलिबे हिय होत अधीरा॥
तहँ अह पिय पद पदुम परागा। तातें लै चलु सोउ बिभागा॥

हे सखि! यमुनातट पर जहाँ कदम्बवृक्ष है, वहाँ चलनें के लिये मेरा मन अधीर हो रहा है। वहाँ प्रियतम के चरणकमलों की रज पड़ी हुई है, अतः तुम सब मिलकर मुझे वही ले चलो।

जातहि तहँ तुम सोउ रज लाई। सकल बपुष मम लिखेसु कन्हाई॥
पुनि तुलसिका मंजरी चारू। गहि सो नाउँन्ह करेसु सिंगारू॥

वहाँ जाते ही तुम उस स्थान की रज से मेरे सम्पूर्ण शरीर पर 'कन्हैया' इस प्रकार लिख देना। फिर तुलसी की मञ्जरी लेकर उससे उन नामों का शृङ्गार कर देना।

तदुप चलहि सखि जब मम प्राना। घेरि मोहि करु पिय गुनगाना॥
एहिबिधि जतन किए अलि प्यारी। सब प्रकार पैहउँ बनवारी॥

तदुपरान्त हे सखि! जब मेरे प्राण निकलनें लगे, तब मुझे घेरकर मेरे सम्मुख प्रियतम का गुणगान करना। इस प्रकार यत्न करके, हे प्रिय सखियों! मैं सब प्रकार से उन प्रियतम को पा लूँगी।

किए भाँति एहि मुद जे होई। कल्पि करत भइ अनुभव सोई॥
दुई दंड तक ताकर चेतन। सुनत रहेउ इहइ पृह गुंजन॥

फिर ऐसा करने से जिस सुख की प्राप्ति होती कल्पना करके, वे उसी का अनुभव करने लगी। दो घड़ी तक उनकी चेतना इसी आकाङ्क्षा का गुञ्जन सुनती रही।

तदुप चिंत कइ कटु खड़काई। सहसा प्रबिसि तासु चत आई॥
जिहि तोरत गुंजन मृदु तारा। हृदय बहानि कंप कइ धारा॥

तदुपरान्त चिन्ता की कड़वी खड़कन अचानक ही उनकी चेतना में प्रविष्ट हो गई, जिसनें उस गुञ्जन के मृदुल तारों को तोड़कर उनके हृदय में सिहरन की धारा बहा दी।

तब हरिप्रिया खेद प्रगटाई। कहन लागि एहिबिधि अकुलाई॥
सखी देहुँ तजि छिनु महुँ प्राना। पर उर एकहि सोच महाना॥

तब कृष्णप्रियतमा व्याकुल हो उठी और खेद प्रकट करके, इस प्रकार कहने लगी- हे सखि! मैं क्षणभर में ही इन प्राणों को त्याग दूँ, किन्तु मेरे हृदय में एक ही महान चिन्ता है कि,

मैं पिय कहँ प्रिय प्रान समाना। उन्ह मोहिहि निज जीवन माना॥
अस प्रानेस ब्रजहि जब आवहि। पुनि जब मोहि जिअत नहिं पावहिं॥

मैं प्रियतम को प्राणों के समान प्रिय हूँ और उन्होंने एकमात्र मुझे ही अपना जीवन मान रखा है। मेरे ऐसे प्रियतम लौटकर जब व्रज में आऐंगे और जब मुझे जीवित नहीं पायेंगे,

दोहा- **तब धौं होइहि काह उन्ह कस सहिहहि यह पीर।**
इहहि कल्पि पुनि पुनि हृदय अतिसय होत अधीर॥५०॥

तब उनकी क्या दशा होगी, वे मेरे मरण की इस पीड़ा को किस प्रकार सहेंगे? इसी बात की कल्पना करके, मेरा हृदय बार-बार अत्यधिक अधीर हो उठता है।

चौ.- **बिरहुँ दुसह प्रिय कर कस होई। भलीभाँति मैं जानउँ सोई॥**
मोरे जिअत परमसुख ताहीं। बिरह जरत बिसरौं बपु नाहीं॥

प्रिय का असहनीय विरह कैसा होता है, उसे मैं भली-भाँति जानती हूँ। मेरे जीने से उन्हें महान सुख मिलता है, इसलिये विरह में जलते हुए भी मैं इस शरीर को नहीं छोड़ सकती हूँ।

सखी प्रेम कइ इहइ सुरीती। हृदय करहि जिन्हँ तें अति प्रीती॥
तिन्ह रुचि सुख हित पीर अगाहा। सहत करिअ पेमहिं निरबाहा॥

हे सखि! प्रेम की यही उत्तम रीति है कि हृदय जिससे अत्यधिक प्रेम करे उसकी रुचि और सुख के लिये महान दुःख सहते हुए भी उसके प्रति प्रेम का निर्वाह करना चाहिये।

पिय कहँ मानि साध्य निज प्राना। सुमनहि तजु निज इच्छा माना॥
अलि इहई अहैतु अनुरागा। जहँ निज हित कछु जाइ न माँगा॥

प्रियतम को अपने प्राणों का लक्ष्य मानकर प्रसन्न मन से अपनी इच्छाएँ व अपनी प्रभुता त्याग दो। हे सखि! यही अहैतुक प्रेम है, जिसमें स्वयं के लिये कुछ माँगा नहीं जाता।

पियहिं लागि सत्ता निज खोई। केवल देन पृहा उर होई॥
तातें मैं पिय रुचि सुख लागी। चहत प्रान सखि सकउँ न त्यागी॥

प्रिय के सम्मुख अपनी सम्पूर्ण सत्ता खोकर भी मन में केवल कुछ देने ही की इच्छा होती है। इसलिये मैं अपने प्रिय की रुचि और सुख के लिये चाहकर भी प्राण नहीं त्याग सकती।

यह कस अनरथ मैं करि चाहा। सोचि लाज मोहि लाग अगाहा॥
परिहरि पिय दुख आपन पीरा। मैं भइ कस एहिभाँति अधीरा॥

हे सखि! यह मैंने क्या कर लेना चाहा? सोचकर ही मुझे अत्यधिक लज्जा का अनुभव हो रहा है। प्रियतम के दुःख को भूलकर अपनी ही पीड़ा से मैं इस प्रकार अधीर कैसे हो उठी?

दोहा- **तजि मुमूरषा पियहिं सुख जरति बियोग दुरंत।**
रोम रोम करुना जनु दुख मूरति जीवंत॥५१॥

इस प्रकार जीने की इच्छा त्यागकर केवल प्रिय के सुख के लिये वे राधाजी निरन्तर वियोग में जल रही हैं। उनके रोम-रोम में करुणा का वास हो गया, मानों वे दुःख की जीवन्त मूर्ति हों।

चौ.- ऊधौ उन्ह कृंदनु सुनि काना। रहे चितइ उन्ह चित्र समाना॥
दुख अनुभवत राधहि कठोरा। बुधि हिय उन्ह पिरए एक डोरा॥

उनका करुण-कृंदन सुनकर उद्धवजी उन्हें चित्रवत (टकटकी लगाकर) देख रहे हैं। राधाजी के कठोर दुःख का अनुभव करते हुए उनकी बुद्धि और उनका हृदय एकाकार हो गए।

तदुप जानि काचित सिरु नाई। लाग मनहिं मन एहिबिधि गाई॥
हरि पद पंकज तन मन गोई। अकथ अनँत सुख जे हिय होई॥

तदुपरान्त उन्हें काचित् जानकर वे मन ही मन इस प्रकार कहने लगे- भगवान के चरणकमलों में तन, मन विलीन करके, हृदय में जिस अकथनीय व अनन्त सुख की उत्पत्ति होती है,

सो सुख परिपूरन जेहिं जाना। ए सोइ राध अमल रसखाना॥
जब अस निस्चय भा मनु माहीं। लाग सरीर तेन्ह पुलकाहीं॥

उसी सुख को परिपूर्णरूप से जिसनें अनुभव कर लिया, निर्मल प्रेम की खान ये वही श्रीराधाजी हैं। जब उद्धवजी को यह निश्चय हो गया, तब उनका शरीर पुलकित होने लगा।

नयन देखाइ जोइ समुहाना। बुद्धि हठि न चह उन्ह पहिचाना॥
आतम पै अनुभवएहु जोई। छिन भर माँझ लहेहु मति सोई॥

उनके नेत्र उनके सामने उन्हें जो दिखा रहे हैं, उनकी बुद्धि हठपूर्वक उसे पहचानना नहीं चाहती, किन्तु आत्मा ने जो कुछ भी अनुभव किया, क्षणभर में ही बुद्धि ने भी उसे मान लिया।

दोहा- जाहिं सुमिरि अरु श्रवन सुनि नींदहि हरि रसु छाव।
ए सोइ हरि प्रिय प्रेयसि प्रीति जासु तेइ गाव॥५२॥

जिनका स्मरण करके, व जिन्हें कानों से सुनते-ही नींद में भी श्रीकृष्ण प्रेममग्न हो जाते हैं, ये उन कन्हैया की वही अत्यन्त प्रिय प्रेमिका हैं, जिनके प्रेम की प्रशंसा वे स्वयं किया करते हैं।

चौ.- प्रोषितपतिकहि दुख होइ काहीं। भलिबिधि ऊधौ देखेउँ ताहीं॥
एहिबिधि राधहि लखि दुख दीना। भयउँ ग्यान उन्ह अश्रु बिलीना॥

जिसका पति परदेश जा चुका हो, उस स्त्री का दुःख क्या होता है; यह उद्धवजी ने भली-भाँति देख लिया। इस प्रकार राधाजी को दुःख से दीन हुई देख उनका ज्ञान अश्रुओं में डूब गया।

ग्लानि भार जब भयउँ महाना। भै अति बिकल राधिकहि प्राना॥
तब तेहिं चित कहँ देत भुलावा। प्रिय सुरतिन्ह दिसि तुरत बढ़ावा॥

ग्लानि का भार जब बहुत अधिक बढ़ गया, तब राधाजी के प्राण अत्यधिक व्याकुल हो गए। तब उन्होंने चित्त को उस ओर से हटाकर तुरन्त ही प्रियतम की स्मृतियों की ओर बढ़ा दिया।

सुप्त सुरति चित आहटि पाई। मंद मंद उठि कछु अलसाई॥

समउ छार तिन्ह बदनु मलीना। प्रान मात्र तनु पुनि अति खीना॥

उनके हृदय की सुप्त स्मृतियाँ चित्त की आहट से कुछ अलसाकर धीरे-धीरे उठी। समय की धूल से उनके मुख मलीन हो रहे थे और प्राणमात्र रह चुका उनका शरीर अत्यन्त क्षीण था।

बिबरन भयउँ बिरहु घव मारू। मिलन प्रतीक चित्र जनु चारू॥
जोगमाय तब मनहि बिचारहि। अस थिति काचित बपुष बिसारहि॥

जैसे मिलन को व्यक्त करनेवाला सुन्दर चित्र विरहरूपी धूप की मार से अपने रङ्ग खो चुका हो। तब योगमाया मन-ही मन विचार करने लगी कि इस परिस्थिति में तो, राधाजी अपना शरीर ही त्याग देंगी।

दोहा- **तब ते कहि लगि सुरतिन्हँ उर प्रेयसि एकान्त।**
जरत राध हिय देहुँ तिन्ह निज सितलाइ प्रसान्त॥५३॥

तब वे (राधाजी के हृदय में स्थित) स्मृतियों से कहने लगी- हे हृदय की एकान्त प्रेयसियों! राधाजी का हृदय जला जा रहा है, अतः तुम सब मिलकर उसे अपनी परम शान्तियुक्त शीतलता प्रदान करो।

चौ.- **हे सुख दुखजुत सृष्टि गभीरा। भेउ राध हिय ताप अधीरा॥**
हे मरालि मन मानस केरी। बढ़ि असारता हृदय घनेरी॥

हे सुख-दुःख से युक्त महान सृष्टि! इन राधाजी का हृदय विरहरूपी ताप से अधीर हो उठा है और हे मनरूपी सरोवर की हंसिनी! (इनके) हृदय में नीरसता अत्यधिक बढ़ गई है।

इन्हँ उर बहाइ सीतल धारा। इन्ह जीवन हित करहु अधारा॥
सुरति लखेउँ बियोग अति भारी। तजिहिं बपुष बृषभानुकुमारी॥

अतः इनके हृदय में अपनी शीतल धारा बहाकर तुम इनके जीवन के लिये थोड़ा आधार कर दो। स्मृतियों ने देखा कि अत्यंत दारुण वियोग के कारण वृषभानुनंदिनी राधाजी प्राण त्याग देंगी।

तब सधीर नव बिभव जुड़ाई। सुरति राधिकहि उर उमगाई॥

तब धैर्य धारण करके नवीन उत्साह के साथ वे स्मृतियाँ राधाजी के हृदय में उमड़ पड़ी।

सघनालस तजि मानहुँ ग्याना। जागेउँ साधक कर कल्याना॥
इत पिय सुरति अमियमय धारा। मोचत भा हिय कर प्रति तारा॥

मानों ज्ञान सघन आलस्य को त्यागकर साधक के कल्याण के लिये जाग उठा हो। इधर राधाजी के हृदय का प्रत्येक तार उन प्रियतम की स्मृतिरूपी अमृतमय धारा बहानें लगा।

अधर बिषाद बिलेउँ मृदु हासा। रसना गावत भइ उल्लासा॥
लखि तमाल कुँज यह सुखदाता। सखि मोहि हेर आव घनगाता॥

जिससे उनके अधरों पर छाया हुआ विषाद मधुर मुस्कान में डूब गया और उनकी जिह्वा उल्लसित होकर गानें लगी- हे सखी! इस सुखदायक तमालकुञ्ज को देखकर मुझे उन घनश्याम की स्मृति हो आती है।

दोहा- **सखी एक दिनु जल भरन गइ मैं जमुना कूल।**

कुंज दुरत तहँ प्रथमही रहा उपद्रव मूल॥५४॥

हे सखि! एक दिन मैं जल भरनें के लिये यमुना के तट पर गई, तो उपद्रव के मूल वे कन्हैया एक लताकुञ्ज में छिपे हुए पहले से ही उपस्थित थे।

चौ.- **तरु तमाल स्यामलता माहीं। स्याम निपट सूझे मोहि नाहीं॥**
बढ़ी सहज तब मम समुहाना। भै अवचट हरि प्रेत समाना॥

तमाल-वृक्ष के पत्तों की श्यामलता में वे घनश्याम मुझे तनिक भी दिखाई नहीं पड़े और जब मैं सहज ही (उस ओर) बढ़ी, तो वे हरि किसी प्रेत के समान अचानक ही मेरे सम्मुख प्रकट हो गए।

मैं कछु समुझि पावती आली। तेहिं तें पहिलेहि मोहि कुचाली॥
हठि भुज भरि निज हृदय लगाई। मैं बरजेउ जब अति सकुचाई॥

हे आली! मैं कुछ समझ पाती, इससे पहले ही उन कपटी ने मुझे हठपूर्वक अपनी भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लिया और जब अत्यधिक लजाकर मैंने उन्हें रोका;

तब उपहासत घट मम फोरी। भजि छूटेउ मम कलइ मरोरी॥
सो छिन रिस के मृदु परिझाई। कम्प रूप मम गातन्हँ छाई॥

तब मेरा उपहास करके और मेरे घड़े को फोड़कर वे कन्हैया मेरी कलाई मरोड़ते हुए वहाँ से भाग छूटे। उस क्षण क्रोध की कोमल परछाई कम्पन के रूप में मेरे अङ्गों पर छा गई।

सखि जब भयउँ रास अति चारू। स्वकर स्याम मम कीन्ह सिंगारू॥
पूरब जब मैं जाति खिजाई। लेते बिहँसत कान्हँ मनाई॥

हे सखि! जब अत्यन्त सुन्दर रास हुआ था, तब उन श्यामसुन्दर ने अपने हाथों से मेरा शृङ्गार किया था। पहले जब मैं रूठ जाया करती थी, तब वे कन्हैया मधुर हास्य से मुझे मना लेते थे।

ते हमार रंजन हित नाना। जतन करत रहे रास बिताना॥

वे हमारे आनन्द के लिये रासमण्डप में अनेक प्रकार के यत्न किया करते थे।

हठि सरि तीर फोरि घट मोरे। जाँचत रहे छमा कर जोरे॥
संखचूड़ मम हित पिय मारा। ब्रज हित पुनि गोवरधन धारा॥

यमुनातट पर मेरे घड़े हठपूर्वक फोड़कर पश्चात् वे हाथ जोड़कर क्षमा माँगा करते थे। उन प्रियतम ने मेरी रक्षा करने के लिये शङ्खचूड़ को मारा था और व्रज की रक्षा के लिये गोवर्धन पर्वत को उठाया था।

सखि मनमोहन प्रियतम जैसे। मिलत नाहिं सब कहुँ पिय ऐसे॥
सुठि सुभाय सोउ प्रियतम मोरे। पाछ फिरत रहे दुहुँ कर जोरे॥

हे सखि! मनमोहन जैसे प्रियतम हैं, वैसे प्रियतम सब किसी को नहीं प्राप्त होते और मेरे वही साधु स्वभाववाले प्रियतम अपने दोनों हाथ जोड़े हुए मेरे पीछे-पीछे फिरते रहते थे।

आदरु कबहुँ मैं न उन्ह कीन्हा। तातें बिधि दुख दारुन दीन्हा॥

निज कर हति निज चरन कुठारी। मैं हतभागिनि झुरुँ अब भारी॥

किन्तु मैंने कभी भी उनका आदर नहीं किया; इसीलिये विधाता ने मुझे यह दारुण दुःख दिया है। अपने ही हाथ से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारकर, अब मैं अभागिनी अत्यधिक दुःख मना रही हूँ।

अब चित चढ़ी रहत तिन्ह लीला। सब दिसि सूझ कंज सो नीला॥
रहि जे पिय संगति सुखदाती। लग कज्जलि जनु अज आराती॥

अब उन्हीं की लीलाएँ चित्त में चढ़ी रहती है और सब ओर वे नीलकमलस्वरूप ही दिखाई देते हैं। प्रिय के रहते हुए जो हमारे लिये सुखदायक थी, वह यमुना आज शत्रु-सी प्रतीत होती है;

बह नित बिच बैतरनी जैसे। मिलन होइ अब उन्ह तें कैसे॥

जो निरन्तर हमारे बीच बहा करती है, अब उन प्रियतम से मिलना किस प्रकार सम्भव हो।

दोहा- पाख होइ जे भुजन्हि मम बेगि उड़उँ पिय ओर।
किंतु यह त मम अंधि पृह तुमहि आउ चितचोर॥५५॥

यदि मेरी भुजाएँ पङ्ख हो जायँ, तो मैं शीघ्र-ही उन प्रियतम की ओर उड़ जाऊँ; किन्तु यह तो मेरी अन्धी इच्छा है। इसलिये हे चित्तचोर! आप ही आ जाईये।

चौ.- नृप एहिबिधि भइ तें अति दीना। जनु जल घटे होत दुखि मीना॥
पियहि सुमिरि जब भा अनुरागा। नयन जुगल दुख बरसन लागा॥

हे परीक्षित्! इस प्रकार राधाजी अत्यन्त दीन हो चली, जैसे जल के घटनें पर मछली व्याकुल हो जाती है। प्रिय का स्मरणकर, वे प्रेममग्न हो गई और उनके नेत्रों से दुःख बरसनें लगा।

पिय बिनु तेन्ह अखिल जग माहीं। जीवन कतहुँ दीखि पर नाहीं॥
जब उर बढ़ि भइ अरुचि गभीरा। तब राधा कह होइ अधीरा॥

प्रियतम के बिना उन्हें सम्पूर्ण संसार में कहीं पर भी जीवन दिखाई नहीं पड़ता। इस प्रकार जब उनके मन में उत्पन्न अरुचि अत्यधिक गहरा गई, तब वे राधाजी अधीर होकर कहने लगी कि

सखि सिंगार मम देहुँ उतारी। पिय बिनु यह पीरइ मोहि भारी॥
जेइ रुचि लागि धरा मैं ऐही। गए तें त धरु कारन केही॥

हे सखि! मेरा यह श‍ृङ्गार (मेरे शरीर से) उतार दो; प्रियतम के बिना यह मुझे अत्यधिक पीड़ित कर रहा है। जिनकी रुचि के कारण मैंने इसे धारण किया था, जब वे ही चले गए, तो (अब) मैं इसे क्यों धारण किये रहूँ?

अब त जानि पर पुरट बिभूषन। मोहि बपुष पर मानहुँ दूषन॥
सखि किन बेगि उतारसि ऐहीं। जरी जात मम आतम देही॥

अब तो ये सोने के ये आभूषण भी मुझे अपने शरीर पर मानों कलङ्क-से प्रतीत होते हैं। हे सखि! तुम इन्हें मेरे शरीर से शीघ्र उतार क्यों नहीं देती? इनसे मेरी आत्मा व शरीर दोनों ही जले जा रहे हैं।

अस सुनि गोपि सकल अकुलानी। धीर देन चह निकसन बानी॥
उधउ रहे तेहिं छिनु समुहाई। राधा किन्तु उन्ह न लखि पाई॥

यह सुनकर सब गोपियाँ अकुला उठी, वे उन्हें धैर्य बँधाना चाहती हैं; किन्तु उनके मुख से वाणी नहीं निकलती। उस क्षण उद्धवजी सम्मुख ही खड़े थे, किन्तु राधाजी उन्हें देख नहीं पाई।

बिपिन बिभव अति रम्य निहारी। प्रोषितपतिकहुँ दुख भा भारी॥
तदपि निबारि अश्रु धरि धीरा। ललितहि कहे बचन गंभीरा॥

वन में चारों ओर अत्यन्त रमणीक वसन्तऋतु व्याप्त देखकर उन राधाजी को महान दुःख हुआ। इसके पश्चात् भी अपने अश्रु पोंछकर और धैर्य धारण करके उन्होंने ललिता से यह गम्भीर वचन कहे-

दोहा- धीर देन चह मोहि तुम पै निरखहुँ बन चारु।
इहँहि करत बहु चरित पिय कीन्ह मोर सिंगारु॥५६॥ (क)

हे सखि! तुम मुझे धैर्य बँधाना चाहती हो, किन्तु इस सुन्दर वन की ओर देखो! यहीं पर अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हुए उन प्रियतम ने मेरा श्रृङ्गार किया था।

बिलसित चंदन कंज मद चलि रहि त्रिबिध बयार।
पिय बिनु लाग परन्तु मोहि यह प्रानन्ह पर भार॥५६॥ (ख)

चन्दन की सुगन्ध और कमल-समूहों के पराग से भीगी हुई, शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु बह रही है, किन्तु फिर भी प्रियतम के बिना ये मुझे अपने प्राणों पर भार-सी प्रतीत हो रही है।

चौ.- सखि लखु यह सोउ रास बिताना। रहा जे पूरब सब सुखखाना॥
इहँहि रसाँकुर हम सब केरा। बिगसत होइ भा तरु घनेरा॥

हे सखि देखो! ये वही रासमण्डप है, जो पूर्वकाल में हमारे लिये सुख की खान हुआ करता था। यहीं पर हम सबके प्रेम का अङ्कुर विकसित होकर छतनार वृक्ष बना था।

किन्तु आज सोउ बिरहु कन्हाई। सून भयउँ सुषमा बिसराई॥
पंथ सुभग यह सोइ तरु जाला। जिन्हँ बिच सदल चरे गोपाला॥

किन्तु आज वही मण्डप कन्हैया के वियोग में अपनी सुन्दरता खोकर सूना हो गया है। यह वही सुन्दर मार्ग और वृक्षों के समूह हैं; जिनके मध्य सखासमूह के साथ गोपाल विचरण किया करते थे।

किंतु आज खग मृगादि प्रानी। तजि गै स्याम बिरत एहि जानी॥
ये सोइ चारु घाट जमुना के। रहे सतात हमहिं जहँ बाँके॥

किन्तु आज उन घनश्याम से रहित होने पर पशु-पक्षि आदि प्राणी भी इन्हें त्यागकर चले गये हैं। यमुना के ये वही सुन्दर घाट हैं, जहाँ वे बाँकेबिहारी हमें सताया करते थे और

सखि बिलोकु यह सुंदर बागा। साखि कान्हँ गोपिन्हँ अनुरागा॥
इहिं के कुसुमन्हि प्रान अधारा। बहुबिधि कीन्ह सिंगार हमारा॥

हे सखि! इस सुन्दर उपवन को देखो! जो उन श्रीकृष्ण और हम गोपियों की परस्पर प्रीति का साक्षी है। इसी उपवन के पुष्पों से उन प्राणाधार ने अनेक प्रकार से हमारा शृङ्गार किया था।

दोहा- मैंपि इहँ तें बनमाल गहि रहि पहिरावति ताहिं।
पै अब पिय बिनु बन बिभव हृदय तनक रुच नाहिं॥५७॥

और मैं भी यहीं से वनमाला बना-बनाकर उन्हें पहनाया करती थी। किन्तु अब उन प्रियतम के बिना इस उपवन का वैभव मेरे मन को तनिक भी नहीं सुहाता।

चौ.- सखि पिक रव बह कानन वाता। किन्तु होत सुनि श्रव पर घाता॥
अस कुसमउ मम होत सहाई। धाइ तुरत तेहिं देहुँ उड़ाई॥

हे सखि! वन की वायु में कोयल का शब्द बह रहा है, किन्तु उसे सुनकर मेरे कानों पर आघात-सा होता है। इस कुसमय में मेरी सहायिका होते हुए तुम दौड़कर तुरन्त उसे उड़ा दो।

सीतल कौमुदि तनु मम तावहि। बारिद मनहुँ अम्ल बरषावहि॥
मंगल गान गीत संगीता। उत्सवादि मम हित रसुरीता॥

चन्द्रमा का शीतल प्रकाश मेरे शरीर को जलाता है और मेघ मानों अम्ल (दाहक रसायन) की वर्षा करते हैं। मङ्गलगान, गीत-संगीत, उत्सव आदि सब मेरे लिये रसहीन हो गए हैं।

सयन जगनि भोजन सब कारज। हरि बिनु मोरेहु दुखद भए अज॥
जदपि गाँव गृह सब सुखखाना। तदपि ए मम हित भए मसाना॥

सोना-जागना, भोजन और समस्त कार्य आज उन कन्हैया के बिना मेरे लिये दुःख देनेवाले हो गए हैं। यद्यपि गाँव और मेरा भवन समस्त सुखों से सम्पन्न हैं, फिर भी ये मेरे लिये श्मसान तुल्य हो गए हैं।

हरि मैं कीन्ह कवन अपराधा। जे मोहि जारत बिरहु अगाधा॥
एक बार पिय देखहुँ आई। तव बिनु मैं कस दुरगति पाई॥

हे हरि! मैंने क्या अपराध कर दिया है; जो आप मुझे अगाध वियोग की इस अग्नि में जला रहे हैं? हे प्रियतम! आकर एक बार देख लो कि तुम्हारे बिना मैं किस दुर्दशा को प्राप्त हुई हूँ।

नींद परत नहिं निसि मैं हारी। जरनि होत दृग संतत भारी॥

मैं हार गई, किन्तु मुझे रात्रि में नींद नहीं आती और नेत्रों में निरन्तर अत्यधिक दाह होता है।

दोहा- एहिबिच अकसर द्रवित अज नींद गहन मोहि दीन्ह।
सखि तब सपनेहुँ स्याम कर दरस सुखद मैं कीन्ह॥५८॥

इसी बीच एक बार विधाता ने द्रवित होकर मुझे गहरी नींद में सुला दिया, तब हे सखि! स्वप्न में मैंने उन श्यामसुन्दर के सुखदायक दर्शन किये।

चौ.- मम दुरभाग तहँ न सँग छारा। तेहिं छिनु पव गवाख परतारा॥
तातें टूटि नींद बिनु बाता। जरि उठेउ आतम अरु गाता॥

किन्तु मेरे दुर्भाग्य ने वहाँ भी मेरा साथ नहीं छोड़ा और उसी क्षण वायु के एक झोंके ने आकर गवाक्ष (के पट) को खड़खड़ा दिया। इस कारण उनसे बात हुए बिना ही मेरी नींद टूट गई और मेरी आत्मा व शरीर जल उठे।

जीवन प्रति अब मोर प्रतीती। प्रति छिनु संग जात सखि बीती॥
अस कहि परिहरि पीर अगाधा। नभ अनिमेष निरखि लगि राधा॥

हे सखि! जीवन के प्रति मेरा विश्वास (बीतते हुए) प्रत्येक क्षण के साथ घटता जा रहा है। ऐसा कहती हुई अपनी अगाध पीड़ा भुलाकर राधाजी टकटकी लगाए आकाश की ओर देखने लगी।

सजल नयन भए कम्पहि गाता। बिरहु तीछ अस जे न कहाता॥
तीब्र पेमु प्रभु प्रति उन्ह देखी। उधउँ ढारि सिरु सोच बिसेषी॥

उनके नेत्र अश्रुओं से भर गए, (भावाधिक्य से) अङ्ग काँपनें लगे और उनका वियोग इतना तीक्ष्ण था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। भगवान के प्रति उनका ऐसा तीव्र प्रेम देखकर उद्धवजी सिर नीचा किये गहन चिन्तन करने लगे।

कछु छिनु बिगत उठी पुनि अवचट। राधा धरि लगि हरिहि बेषु नट॥
गवनि बहुरि ते रासबिताना। नर्ति करत भइ पिय गुनगाना॥

फिर कुछ क्षण पश्चात् राधाजी सहसा उठी और अपने शरीर पर श्रीकृष्ण का-सा नटवेष धारण करने लगी। फिर वे रासमण्डप में चली गई और वहाँ नृत्य करते हुए प्रियतम का गुणगान करने लगी।

कान्हँ कृष्न इहिभाँति पुकारी। थाकि सुसान्त बैठि हरिनारी॥
तदुप हेरि पिय कहँ दृग बाँधी। सुरति भूलि जनु लागि समाधी॥

जब थक गई, तब 'कन्हैया', 'कृष्ण' इस प्रकार पुकारती हुई वे 'कृष्णप्रियतमा' पूर्णतः शान्त होकर बैठ गई। तदुपरान्त अपने नेत्र बंद किये प्रियतम का स्मरण करती हुई वे उनकी स्मृतियों में डूब गई; मानों उन्हें समाधि लग गई हो।

जब ऊधौ चितई उन्ह जाई। लगे भगतिमय सीस नवाई॥
हृदय लाग करि ग्यान बिरोधा। अति पुलकनि गत बपुष प्रबोधा॥

जब उद्धवजी ने जाकर उन्हें देखा, तो भक्तिभावित होकर वे उन्हें सिर नवाँने लगे। उनका हृदय उनके ज्ञान का विरोध करने लगा और पुलकन की अधिकता से वे अपने शरीर की सुधि भूल गये।

तब श्रद्धा उर धरे अगाहा। काचित पदन्ह परस उन्ह चाहा॥
एतनहुँ उड़त भृंग एक आयौ। उधौ जाहिं लखि कछुक ठिठायौ॥

तब अपने हृदय में अगाध श्रद्धा लिये उन्होंने उन राधाजी के चरणकमलों का स्पर्श करना चाहा; इतनें में ही एक भौरा उड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा, जिसे देखकर उद्धवजी कुछ ठिठक गए।

कन्हँ बसींठि इत मधुपहि जानी। राधा मनहि मंद मुसुकानी॥

जब उन्हँ उर बिनोद रिस उयऊ। बिरहुँ अथाइ तिरोहित भयऊ॥

इधर भौंरे को कन्हैया का (भेजा गया) दूत समझकर राधाजी मन-ही मन धीरे से मुस्कुराई। फिर जब उनके हृदय में विनोद व क्रोध एक साथ उत्पन्न हो गए और उनका अथाह वियोग जाता रहा;

पिय बिरुद्ध तब धरि अति माना। राध अलिन्ह एहिंभाँति बखाना॥

तब प्रियतम के विरुद्ध अत्यधिक मानवती होकर उन राधाजी ने सखियों से इस प्रकार कहा-

दोहा- **आलि अवसि फटकारिबो कुबरि कितव कहँ बूझि।**
तातें पठवा भ्रमर तेहिं हमहि मनावन सूझि॥५९॥

हे आली! कपटी-कुटिल पहचानकर अवश्य ही कुबड़ी ने कन्हैया को फटकारा होगा; इसीलिये उसे हम गोपियों को मना लेनें की बात सूझी होगी और उसनें इस भ्रमर को यहाँ भेज दिया।

चौ.- **ऐतनेहुँ भृंग पद निकट लागा। मानिनि तिन्ह मुख लखेउ परागा॥**
तेहि समउ ऊधौ अगुआने। पद परसन पै राध न जाने॥

इतनें में ही भौरा उनके चरण के अत्यन्त निकट चला आया और उन मानिनी ने उसके मुख पर पराग लगा हुआ देखा। तभी उद्धवजी भी (चरणस्पर्श की इच्छा से) आगे बढ़े, किन्तु राधाजी उन्हें देख नहीं पाई और

डपटि भृंग कहँ कहा रिसानी। महाकपटि तेहिं पिय सम जानी॥
कितवबंधु रे जैहु पराही। नसु न परसि मम पद सुचिताई॥

उन्होंने उस भौरे को प्रियतम जैसा-ही महाकपटी समझकर क्रोध से डँपटकर कहा- रे कपटी के बन्धु! चल भाग जा! मेरे चरणों का स्पर्श करके तू उनकी पवित्रता को नष्ट न कर।

महाकपटि कर अह तुअ चेरा। बहुरि तुअपि अह कपटि घनेरा॥
मलय रहा जे बिरहिनि चरना। भयउँ परागरसिक उर हरना॥

तू उस महाकपटी का चेला है और स्वयं भी बहुत बड़ा कपटी है। उन विरहिणी राधाजी के चरणों में चन्दन लगा हुआ था, वह उस भौंरे के मन को आकर्षित करनेवाला हो रहा था;

तातें ढीठ पदहि घुमराना। चकित राध एहिंभाँति बखाना॥
बरजेहुँ तद्यपि लाज बिहाई। मूढ़ तुअ त करि रहा ढिठाई॥

इसीलिये वह ढीठ उनके चरणों के आस-पास ही मँडराने लगा। तब चकित होकर राधाजी ने उससे इस प्रकार कहा- रे मूढ! मैंने तुझे रोका, फिर भी लज्जा त्यागकर तू तो ढिठाई ही किये जा रहा है।

पै ढिठाइ अनुचित कस ताकें। जदुपति सम उतकरषक जाकें॥
मैं देखउ हरिमाला जेई। सौतिन्ह हाथ बिमर्दित भेई॥

किन्तु उन लोगों के लिये भला ढिठाई करना भी कहाँ अनुचित है; जिनको बढ़ावा देनेवाले स्वयं यादवों के स्वामी कृष्ण हैं। मैं देख रही हूँ कि कृष्ण की जो माला मेरी सौतों के हाथों मसली गई है

छन्द- **जेउ माल मर्दित सवति हाथ पराग तिन्ह निज तनु लिये।**
अनुसंसि चह बहुबल्लभहि मतिमंद लाज न तउ हिये॥
जस स्वामि सेवक तसहि अज संजोग यह राच्यो भलौ।
पति तोर बिसरहि प्रीति लइ तुअ लहँन मधु कुसुमन्हँ छलौ॥

जो माला मेरी सौतों के हाथों मसली गई है, उसी का पराग अपने अङ्गों में लिये, तू (मेरे सम्मुख) उस अनेक पत्नियोंवाले कृष्ण की अनुशंसा करना चाहता है; रे मन्दबुद्धि! तेरे हृदय में लज्जा नहीं है? जैसा स्वामी है, सेवक भी ठीक वैसा ही है; ब्रह्मा ने यह भला संयोग रच दिया। तेरा स्वामी दूसरों से प्रेम प्राप्त करके पीछे उन्हें त्याग देता है और तू मधु के लिये पुष्पों को छलता है।

सो.- **बिनय चाँपि उर माहिं किन्तु कपट जुत आपन।**
इहँ तें जाहु पराहिं बेगि नाथ पहि आपन॥६०॥

किन्तु अपनी इस कपटयुक्त विनम्रता को तू अपने मन ही में दबाकर यहाँ से शीघ्र अपने स्वामी के पास भाग जा।

चौ.- **नाथ तोर कपटिन्ह चूड़ामनि। इहि धन पै तुअ तिन्हँ तें अधिक धनि॥**
न त जे कवनि बिधि न कर अउतो। सोउ सखा कस तहिं बनाउतो॥

तेरा स्वामी तो कपटियों का चूड़ामणि है ही, किन्तु तू तो इस धन में उससे भी बढ़कर है; अन्यथा जो किसी-भी उपाय से हाथ में नहीं आता, वही कपटी कन्हैया तुझे अपना सखा कैसे बनाता?

त्रिपुर ठगत फिर उन्हँ ठग जोई। कहिबे जोग कितवमित सोई॥
ऊधौ सुनत रहे उन्ह बानी। पद परसन पुनि बाढ़ेहु पानी॥

इसलिये जो तीनोंलोकों को ठगता फिरता हो, ऐसे मनुष्य को भी जो ठग ले, (वास्तव में) वही कपटी का बन्धु कहलाने योग्य होता है। उद्धवजी उनकी बातें सुन रहे थे, उन्होंने पुनः उनका चरणस्पर्श करने के लिये हाथ बढ़ाया।

मानिनि पै लखि मधुप उड़ाई। कह रिसानि अस ताहिं सुनाई॥
रे सठ तुअ त हठहि करि लागा। पुनि पुनि झिरकेउँ तदपि न भागा॥

किन्तु वे मानिनी उस भौंरे को गूँजता हुआ देखकर क्रुद्ध हो उसे सुनाकर पुनः इस प्रकार बोली- रे शठ! तू तो हठ ही करने लगा है; मैंने तुझे बार-बार झिड़का, फिर भी तू नहीं भागा ।

तुअ सम मद्यप परस अपावन। लहि पद असुध होइ मम पावन॥
एक त तुअ करि राखेहुँ पाना। बेषु बहुरि एहिंभाँति धराना॥

तुझ जैसे मदिरा पीनेंवाले का अपवित्र स्पर्श पाकर मेरे पवित्र चरण अशुद्ध हो जाऐंगे। एक तो तूनें मदिरा पी रखी है, ऊपर से इस प्रकार (कृष्ण) का वेष धारण कर रखा है।

छन्द- **एहिंभाँति बेषु बनाइ मधु गहि मान मम मोरन चहै।**
की बिदित नहिं तोहि काज एहि का उचित अरु अनुचित अहै॥
केहि भाँति मानिनि कहँ मनाइअ दूत पुनि कीजिअ केहीं।
पुनि तेहिं धराइअ बेषु कस बहुबल्लभ कि जानत नहीं॥

मदिरा पीकर इस प्रकार का वेष बनाये तू मुझे मना लेना चाहता है? क्या तुझे यह ज्ञात नहीं है कि इस कार्य में क्या उचित होता है और क्या अनुचित? मानिनी को कैसे मनाना चाहिये; किसे दूत बनाना चाहिये और उस दूत को कैसा वेष धारण करवाना चाहिये; क्या वह बहुपत्नीक कृष्ण यह नहीं जानता?

दोहा- **सुनि अस ऊधौ सोचहि मद्य पिएहुँ मैं नाहि।**
हरिकृत पुनि जे बेषु अह दोष कौन तिन्ह माहिं॥६१॥

यह सुनकर उद्धवजी सोचनें लगे कि मैंने तो मदिरा पी ही नहीं और जो वेष मुझे स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के हाथों धारण कराया गया है, भला उसमें क्या दोष हो सकता है?

चौ.- **भाव श्रवन सुनि अचरज ताहीं। गरुइनि पुनि अस कहा खिझाहीं॥**
सो कपटी यह बेषु धराना। इहइ त एहि कर दोषु महाना॥

उनके मन में हो रहे इस अचरज को अपने भावकर्णों से सुनकर मानिनि राधाजी ने पुनः रुष्ट होकर कहा कि उस कपटी ने ही यह वेष धारण कराया है, यही तो इसका महान दोष है।

पुनि यह दोष अहहि केहि भाँती। सो अपि सुनहुँ जुड़ावहु छाती॥
सवँसु तुम्हार धरे अरुनाई। लखि जेहिं तुअपि रहा गरुआई॥

और यह दोष किस प्रकार से है, उसे भी सुन और अपनी छाती ठण्डी कर। तुम्हारे ये श्रमश्रु जो ललाई लिये हुए हैं और जिन्हें देखकर तू स्वयं भी गर्वित हुआ जा रहा है;

उन्हँ पुरवन हित कुंकुअ ऐता। पावा कत पुनि को तोहि देता॥
कुन दै बिदित भलीबिधि मोही। सुनु उघारि श्रव कउँ मैं तोहीं॥
कुबरि आदि पुर बनिता जेई। कुंकुअँ निज उर पुरवहि तेई॥

उन्हें पोतनें के लिये इतना सारा कुमकुम तुम्हें कहाँ से मिल गया और किसने तुम्हें दिया है? मुझे तो भलीप्रकार ज्ञात है कि तुम्हें कौन देता है और मैं तुम्हें भी बतलाती हूँ, कान खोलकर सुन! कुबड़ी आदि जो नगर की वनितायें है, वे सब अपने हृदय-स्थल पर कुमकुम लगाया करती हैं और

तहि इहँ पठवन पूरब स्यामा। गए रहे सोउ कूबरि धामा॥
तहाँ सौति कहँ जब उर लाई। तेन्हँ कंकु कन्हँ माल भराई॥

तुझे यहाँ भेजनें से पूर्व श्यामसुन्दर उसी कुबड़ी के घर गए हुए थे। वहाँ पर जब उन्होंने मेरी उस सौंत को अपने हृदय से लगाया था, तभी उसके हृदय पर लगे कुमकुम से कन्हैया की माला भर गई।

छन्द- भरि माल कन्हँ कइ कुबुज उरथल कुंकु मैं भल भाँपिही।
सोउ माल कुसुमन्हि लोटि मधु गहि तुअपि लालिउ चाँपिही॥
मतिमंद सोउ बनाउ धरि तुअ मोहि मनावन आयऊँ।
धिक्कार बारहिं बार तोहिं जे मम दुख न उर लायऊँ॥

"कन्हैया की माला कुब्जा के हृदय पर लगे हुए कुमकुम से भर गई थी" इस बात को मैं भलीप्रकार भाँप चुकी हूँ। उसी माला के पुष्पों का पराग पीकर व उसमें लोटकर तूने भी कुमकुम दबा लिया था और हे मन्दबुद्धि! वही वेशभूषा धारण किये तू यहाँ मुझे मनानें आया है? तुझे बारम्बार धिक्कार है, जो अपने मन में तूनें मेरे दुःख का विचार नहीं किया।

दोहा- मद्य लहरि न त काह यह भए सौंति सुख साखि।
रहा खिझाइ मनौन मिस मोरिहि जारत आँखि॥६२॥

यह मदिरा का नशा नहीं तो और क्या है; जो मेरी सौंत के सुख का साक्षी होकर; मेरे नेत्रों को जलाते हुए मनानें के बहानें से तू मुझे चिढ़ा रहा है।

चौ.- पुर फिरु दूरहि ते सिरु टेका। मानवती तहँ बसहि अनेका॥
जाइ उन्हहि करु मान बिभंजन। ब्रज आवा तुअ कारने कवन॥

अतः तू मुझे दूर ही से सिर नवाकर नगर को लौट जा, क्योंकि वहाँ अनेक मानवती स्त्रियाँ बसती है। अतः वहाँ जाकर तू उन्हीं का मान दूर किया कर यहाँ व्रज में क्या लेनें आया है?

नृप राधहि हरिपेमु अगाहू। ऊधौहि मति हित जासु न थाहू॥
ते बिचार कर को अपराधा। कीन्ह कृष्न जे डपटति राधा॥

हे परीक्षित्! राधाजी का कृष्णप्रेम अगाध था, उद्धवजी की बुद्धि के लिये जिसका कोई पार न था। वे सोचने लगे- श्रीकृष्ण ने ऐसा क्या अपराध कर दिया, जो राधाजी भला-बुरा कह रही हैं?

इहइ प्रस्न सुनि अलि गुंजारा। राध अलिहि एहिंभाँति उचारा॥
किउँ रे कपटि सखा तव स्यामा। अपराधी न त कि सुगुन धामा॥

भौंरे की गुञ्जन में इसी प्रश्न को सुनकर राधाजी ने उससे पुनः इस प्रकार कहा- क्यों रे कपटी! तेरा सखा कृष्ण अपराधी नहीं है, तो क्या सद्गुणों का धाम है?

कितवहि गुन अस एक जनावहुँ। सुनि जेहिं मैं निज श्रवन जुड़ावहुँ॥
आकर निपट अगुन बनवारी। पुनि सो कस सुनु श्रवन उघारी॥

तू मुझे उस कपटी-झूठे में ऐसा एक गुण तो बता, जिसे सुनकर मैं अपने कान शीतल करूँ? वह बनवारी तो केवल अवगुणों का धाम हैं और वह किस प्रकार है; यह भी कान खोलकर सुन-

पेमु सुधा अरु पदरज ताहीं। दुर्लभ भुवन चारिदस माहीं॥

उसके प्रेम का अमृत और उसके चरणों की रज, चौदहों भुवनों में दुर्लभ वस्तु है।

छन्द- चौदह भुवन दुलरभ सुधा जे हमहि प्याइ प्रथम तेहीं।
निर्मोहि चंचल तदुप तजि दृष्टांत उत्तम तुअ एही॥
गुंजन मधुर करि मोहि पुष्पहि मधु पिअत तुअ उड़ जिमी।
हरि मधुर बैन बिमोहि हम कहँ तदुप चित हरि गै तिमी॥

उसका प्रेमरूपी अमृत जो चौदहों भुवन में दुर्लभ है, उसनें पहले हमें पिला दिया। तदुपरान्त उस निर्मोही और चञ्चल ने हमें त्याग दिया, तू स्वयं भी इसी कर्म का उत्तम उदाहरण है। मधुरध्वनि से गूँजते हुए पुष्प को मोहकर जैसे तू उसका मधुपान करके उड़ जाता है; ठीक वैसे ही मीठी-मीठी बातों से हमें विमुग्ध करके तदुपरान्त हमारा चित्त हरकर वे कन्हैया भी चले गए।

दोहा- जदपि बिदित तिन्हँ तेन्हँ बिनु हमरेउ जग तम पूर।
तदपि हमहि तजि ताहि सम को हुब कुटिल निठूर॥६३॥

यद्यपि वह जानता है कि उसके बिना यह संसार हमारे लिये अन्धकारमय है; फिर भी उसने हमें त्याग दिया। भला! उसके समान कुटिल और निष्ठुर अन्य कौन होगा?

चौ.- हृदय तासु इहइँ अभिसंधी। उन्ह रसु जिन्हँ कर आतम बंधी॥
ते भूलहि दुख बीहड़ घोरा। भटकत फिर आरत चहुँ ओरा॥

उसके मन में तो यही दुराग्रह रहता है कि उसके प्रेम में जिसकी आत्मा बँधी हुई हो; वे लोग दुःखरूपी भयानक जंगल में भ्रमित हो जाय और आर्त्त होकर उसी में चारों-ओर भटकते रहें।

तव खल प्रभु एहिंभाँति बिचारा। बिरहुँ गोपि जे प्रान बिसारा॥
तब सुखि होउँ देत दुख काहीं। हमहिं आस पुनि मिलनि बँधाहीं॥

तुम्हारे उस दुष्ट स्वामी ने सोचा होगा कि यदि मेरे वियोग में गोपियों ने प्राण त्याग दिये, तब मैं किसे दुःख देकर सुखी होऊँगा? इसीलिये उसने हमें पुनः मिलने की आशा बँधा दी।

अब दुख देत रहब नित भारी। किन्तु देइ नहिं देहि बिसारी॥
अस कहि निरव भई कस राधा। घटा घुप्प जस बरिषि अगाधा॥

अब वह हमें नित्य ही दारुण दुःख तो देता रहेगा, किन्तु हमें अपना शरीर नहीं छोड़ने देगा। ऐसा कहकर राधाजी कैसे चुप हो गई; जैसे अत्यधिक बरषकर घटा लुप्त हो जाती है।

भूपति भावश्रवन पुनि सुनेऊँ। गुंजत मधुप तेन्ह जनु कहेऊँ॥
महालच्छि पलुटहि पद जाकें। गोपि होइ कस निंदत ताकें॥

हे परीक्षित्! उन्होंने पुनः अपने भावकर्णों से सुना, मानों गुञ्जन करता भौरा कह रहा है कि लक्ष्मी स्वयं जिनके चरण दबाया करती है, एक गोपी होकर आप उन्हीं की निन्दा कैसे कर रही हैं?

कितव सचिव सुनु कारन एहि कर। हरिहि संग बस रमा निरंतर॥
किअँकि बेसमझ मति उन्ह भोरी। तनक न लखि पर कपटिहिं खोरी॥

(तब उन राधाजी ने कहा-) रे कपटी के मन्त्री! तू इसका भी कारण सुन। लक्ष्मी सदैव हरि के साथ रहती है, क्योंकि वे नासमझ हैं और उनकी बुद्धि भोली है। उन्हें उस कपटी का दोष तनिक भी दिखाई नहीं पड़ता।

बागकुसल पुनि कितव बहूता। निज बस राख रमहि एहि बूता॥
बहुरि लच्छि कर इहहि सुभाऊ। बिभव होइ बस जिन्हँ के ठाऊँ॥

और वह कपटी तो बातें बनानें में बड़ा चतुर है ही; अपने इसी गुण के बल पर वह उन रमा को वश में रखता है। फिर लक्ष्मी का भी तो यही स्वभाव है कि वैभव होकर वे जिस घर में बस जाती हैं,

छन्द- **जिन्हँ ठाउ बस बारक बिभव होइ अगुन उन्ह देखहि नहीं।**
दृष्टांत बंचक चोर जिन्हँ पर नेहु उन्ह नित बरसही॥
हम गोपि पै बारीकमति अति बूझि भल हरि कुटिलता।
तातें कहति तोहि तजहुँ तिन्ह न त तुअपि पाउब दीनता॥

वैभव होकर वे एक बार जिनके घर में बस जाती है, फिर उनके अवगुणों को नहीं देखती। इस बात का उदाहरण वे चोर और ठग हैं, जिन पर उनका स्नेह नित्य बरसता रहता है। हम गोपियाँ ही सहीं, किन्तु हैं बड़ी चतुर, इसीलिये हम उस कृष्ण की कुटिलता को अच्छे-से समझ चुकी हैं और तुझे भी कह देती हैं कि उसका साथ छोड़ दे, अन्यथा तू भी दीनता को ही प्राप्त होगा।

दोहा- **ऊधौ सचुप चकित सुनत बिषम बचन उन्ह केर।**
बीहरु भ्रमित पथिक सरिस सब दिसि लखहि अंधेर॥६४॥ (क)

उद्धवजी चकित हुए से चुपचाप उनके कठोर वचन सुन रहे हैं और किसी भयानक जंगल में भटके हुए पथिक के समान वे सब ओर अन्धकार-ही अन्धकार देख रहे हैं।

परिछित गूँजि रहा मधुप सतत राध समुहान।
बूझि परा उन्ह जनु करइ भ्रमर कपटि गुनगान॥६४॥ (ख)

हे परीक्षित्! वह भौंरा निरन्तर राधाजी के सम्मुख ही गूँज रहा था; जिससे उन्हें लगने लगा कि भ्रमर कपटी कृष्ण का गुणगान कर रहा है।

चौ.- **रे खल धन्य तोर निठुराई। पतिहि सरिस तव हिय कुटिलाई॥**
प्रथम नाथ तव हमहि बिसारी। दै गा घाउ नित हरित भारी॥

(तब उन्होंने कहा-) रे दुष्ट! तेरी निष्ठुरता धन्य है, तेरे स्वामी के ही समान तेरे हृदय में भी कुटिलता ही है। पहले तो तेरा स्वामी हमें त्यागकर सदैव हरा रहनेंवाला गहरा घाव दे गया और

अब तुअ आइ तेन्ह गुन गाई। रहा सो घाउन्ह लोन लगाई॥
अस खल नरहि करन गुनगाना। सठ कि मिला न तोहि थल आना॥

अब तू आकर (हमारे सम्मुख) उसका गुणगान करके हमारे उन्हीं घावों पर नमक लगा रहा है। रे शठ! ऐसे दुष्ट पुरुष का गुणगान करने के लिये तुझे क्या कोई अन्य स्थान नहीं मिला?

पै न दोष इहि माँझ तिहारा। तुअ त निज प्रभुहि दास उदारा॥
लहँहि सुरव संगति भल बायस। कायँ कायँ निज तजहि कि करकस॥

किन्तु इसमें तेरा भी दोष नहीं है, क्योंकि तू तो अपने स्वामी का उदार सेवक मात्र है। कौआ भले-ही कोयल की संगति पा जाय, किन्तु क्या वह अपनी कर्कश कावँ-कावँ त्याग सकता है?

मधुअहार जे एहि गुन तोरा। तब इहँ गाउँ बिषय केउ ओरा॥
पुनि तुअ जान गान नहिं आना। तो इहँ तें करु नगर पयाना॥

रे परागभोक्ता! यदि यही तेरा स्वभाव है, तो फिर यहाँ किसी अन्य विषय पर गा और यदि तू किसी अन्य विषय पर गाना नहीं जानता है, तो यहाँ से नगर के लिये प्रस्थान कर।

तोर सखा तहँ खलहि सँघारी। दीन्ह जादवन्ह सुख अति भारी॥
तातें उन्ह सन गान तिहारा। सब प्रकार लहँ सुजसु अपारा॥

तुम्हारे सखा ने वहाँ दुष्ट कंस को मारकर यादवों को अत्यन्त सुख दिया है। इसलिये उनके सम्मुख तुम्हारा यह गान सब प्रकार से अपार सुयश प्राप्त करेगा।

समगुनि तव निज पेमु सुधाई। अति निलज्जपनु जेन्ह लुटाई॥
सोउ कुबरि पहि गवनहुँ पाछे। गीत तोर तिहिं लागिहिं आछे॥

गुणों में तुम्हारे ही समान उस कन्हैया ने अपने प्रेम का अमृत बड़ी-ही निर्लज्जता से जिसे लुटा दिया है, पीछे उस कुबड़ी के पास भी जाना, तुम्हारे गीत उसे बड़े-ही अच्छे लगेंगे।

छन्द- **भावहि हरिहि गुनगाथ कुबरिहि तिन्हहि जाइ सुनावऊँ।**
प्रति बीथि पुर बहु राध पालिबि गाथ उन्हपि बुझावऊँ॥
एहि काज पुरबनितन्हँ तें जसु मिल परमपद प्रभु वारही।
पै गाइ इहँ हरि गाथ मिल तोहिं कछु न पचि पचि हारहीं॥

कुबड़ी को कृष्ण की यह गुणगाथा अवश्य भायेगी, अतः तू जाकर उसे ही सुना और नगर की प्रत्येक गली में भी उसने बहुत-सी राधाएँ पाल रखी होंगी, अतः उसकी यह गाथा तू उन सबको भी सुना। इस कार्य को करने पर तुझे नगर की युवतियों से यश मिलेगा और तेरे प्रभु तुझ पर (प्रसन्न होकर) परम-पद वार देंगे; परन्तु यहाँ कृष्ण की गाथा गाते हुए तू पच-पचकर थक भी जायेगा, तो भी तेरे हाथ कुछ नहीं लगेगा।

दोहा- **गाइहि चह जे मोर सन तब गावहुँ कछु आन।**
किन्तु सोउ खलतम कर इहँ न करहु गुनगान॥६५॥

और जो यदि तू मेरे सम्मुख गाना ही चाहता है, तो कुछ और गा! किन्तु संसार के उस सबसे बड़े दुष्ट पुरुष का गुणगान यहाँ मत कर।

चौ.- **सुनि ऊधौ करि लाग बिचारा। जाहिं तरकि पुनि राध उचारा॥**
सखि सुनु भ्रमर कहहिं केहि कारन। मोहि सुनावति हृदय बिदारन॥

यह सुनकर उद्धवजी विचार करने लगे, जिसे भाँपकर राधाजी ने (भौंरे को सुनाते हुए) पुनः कहा- सखियों सुनों! यह भ्रमर कहता है कि आप मुझे हृदय को विदीर्ण कर देनेवाली ऐसी बातें क्यों सुना रही हैं?

परम सती मथुरा कइ नारी। तें न होइ सक परन्हि बिचारी॥
ऐहि बात कर ज्ञान मधुप मोहि। हरि प्रभाउ पै बिदित न तोही॥

मथुरा की स्त्रियाँ तो परम सती हैं, वे पराये-पुरुष का चिन्तन करनेवाली कभी नहीं हो सकती। रे मधुप! इस बात का ज्ञान तो मुझे भी है, किन्तु उस कृष्ण के प्रभाव को तू नहीं जानता।

कहहु त्रिपुर महुँ अस को नारी। जेहिं बिमोहि सक न बनवारी॥
ते पसारि छबि इंदरजाला। बाँधि सकहि त्रिपुरहि सब बाला॥

कहो तो! तीनों-लोकों में ऐसी कौन-सी स्त्री है, जिसे वह बनवारी विमुग्ध नहीं कर सकता। वह अपनी सुन्दरता का इन्द्रजाल फैलाकर तीनों-लोकों की समस्त युवतियों को बाँध सकता है।

तासु अलक अरु चितवनि तीरा। तीछ कुटिल दुहुँ होत गभीरा॥
उर बिदारि जे कर मधु पीरा। होति आतमहुँ अकथ अधीरा॥

उसकी अलकें और चितवन के तीर, दोनों ही अत्यधिक तीखे व कुटिल होते हैं; जो हृदय को विदीर्ण करके उसमें मधुर पीड़ा उत्पन्न कर देते हैं, जिससे आत्मा में अकथनीय अधीरता उत्पन्न हो जाती है।

गौर बरन प्रेयसिहि उर निरमल। कान्हँ पेमु रुचिराम्बर साँवल॥

हम प्रेमिकाओं का निर्मल मन गौरवर्ण का है और कृष्ण के प्रति हमारा प्रेम श्यामवर्ण का सुन्दर वस्त्र है।

छन्द- **स्यामल बसन हरिपेमु जेहि लहि गौर उर अति सोभही।**
पै बिरहु घामहुँ जार एहि पट देत उर कहुँ छोभ ही॥
हम बूझि भलिबिधि हास ताकर कुटिलता भरपूर है।
केहि भाँति पर अनभल सधहि एहि काज सो अतिसूर है॥

कृष्ण के प्रति प्रेम ही श्यामवर्ण का वस्त्र है, जिसे धारण करके प्रेमिका का हृदयरूपी गौरवर्ण अत्यधिक शोभा पाता है। किन्तु विरहरूपी धूप में श्यामवर्ण का यही वस्त्र जलन उत्पन्न करके हृदय को केवल क्षोभ देता है। हम इस बात को अच्छी तरह समझ चुकी हैं कि उसके हास्य में भरपूर कुटिलता है और "दूसरों का अहित किस प्रकार सिद्ध होगा" इस कार्य में वह बहुत शूरवीर है।

दोहा- **मंद हास चितवनि कुटिल परम अकरषक तासु।**
ताहि माय जे उरझही हम सम लहँ उपहासु॥६६॥

उसकी मन्द मुस्कान व तिरछी चितवन (दृष्टि) अत्यन्त आकर्षक है और जो भी प्राणी उनकी माया में उलझ जाता है, वह हमारे ही समान उपहास को प्राप्त होता है।

चौ.- **सुनि अस अलि जनु पूछहिं ताहीं। जे एतनेहिं अवगुन उन्ह माहीं॥**

तब तिन्ह लागि बिकल एहिंभाँती। भटकति जहँ तहँ किउ दिनुराती॥

यह सुनकर भौंरा जैसे उनसे कहने लगा कि यदि उनमें इतनें ही अवगुण हैं, तो फिर तुम सब उनके लिये इस प्रकार व्याकुल होकर दिन-रात इधर-उधर क्यों भटकती फिरती हो?

हम गवाँरि पै पतिब्रति नारी। सपनेहुँ पिय पद सक न बिसारी॥
जदपि कान्हँ हम कहँ सब भाँती। बिसरि दीन्ह दुख जनु आराती॥

तब राधाजी ने कहा- हे भ्रमर! हम गँवार हैं, किन्तु पतिव्रता हैं; स्वप्न में भी अपने स्वामी के चरणों को नहीं त्याग सकती। यद्यपि कन्हैया ने हमें सब प्रकार से त्यागकर शत्रु के समान दुःख ही दिया है।

बपुष लहहि जे रोग अभंगा। तब कि अंग तज तन कर संगा॥
जिअनि मरनु गातन्ह तनु साथा। बिलगि तनुहि ते होइ अनाथा॥

किन्तु यदि शरीर को कोई असाध्य रोग लग जाता है, तो क्या अन्य अङ्ग उसका साथ छोड़ देते हैं? अङ्गों का जीना-मरना तो शरीर के साथ ही होता है और उससे अलग होकर वे अनाथ हो जाते हैं।

एहि तें बूझि कान्हँ कुटिलाई। कबहूँ तेहिं न सकहिं बिहाई॥
अलि गनि राध पदहि बनजाता। बैठा गुंजत पुलकित गाता॥

इसी कारण कन्हैया की कुटिलता को जानते हुए भी हम कभी उसे त्याग नहीं सकती। तभी राधाजी के चरण को कमल समझकर गूँजता हुआ वह भौरा पुलकित हो उन पर जा बैठा।

राधा बूझि मधुप कर जोरी। छमा जाच जनु स्वामिहिं खोरी॥
अलि जनु कहि लग जेहिं हित आवा। अबु न बात सो मैं कहि पावा॥

तब राधाजी को लगा जैसे भ्रमर अपने स्वामी के अपराध के लिये उनसे क्षमा माँग रहा है। फिर मानों भ्रमर राधाजी से कहने लगा कि मैं जिसके लिये आया था, वह बात तो अब तक कह ही नहीं पाया।

सुनहुँ भ्रमर मोहि देहुँ न क्लेसा। कहै सुनै अब कछु नहिं सेषा॥

(तब राधाजी ने कहा-) हे भ्रमर! तू मुझे कष्ट न दे, अब कहने-सुननें के लिये कुछ भी शेष नहीं रह गया है।

छन्द- **सेष न अहहिं कछु कहब सुनिबे बेगि इत तें भाजहूँ।**
तोरे हृदय जे बात बसि मैं ताहिं भलिबिधि जानहूँ॥
तुअ सीखि पति तें चाटुकारित दूत होइ आवा इहाँ।
तव नाथ चतुरन्हँ सीसमनि पै दालि उन्ह अब गल कहाँ॥

कहने-सुननें को अब कुछ भी शेष नहीं है; अतः तू शीघ्र-ही यहाँ से भाग जा। तेरे मन में जो बात है, उसे मैं भली-भाँति जानती हूँ। अपने स्वामी से चाटुकारिता सीखकर तू उसका दूत बनकर यहाँ आया है। तेरा स्वामी चतुरों का सिरमौर है, किन्तु अब उसकी दाल कहाँ गलेगी?

दोहा- **चाटुकार तव प्रभुहिं सुनि हम रहि नितहि ठगाइ।**

भलीभाँति अब पाइ फलु बुधि हमार ठँव आइ॥६७॥

तेरे चाटुकार स्वामी की बातें सुनकर हम सदैव ठगाया करती थी, किन्तु उस ठगे जाने का दुष्परिणाम भली-भाँति भुगतने के उपरान्त अब हमारी बुद्धि ठिकानें आ गई है।

चौ.- कपटि नाथ तव कोटि जतन करि। हमहिं सक न पुनि अपने बस करि॥
सुनि अस मधुप कहा जनु ताहीं। सार बिबाद माँझ कछु नाही॥

तुम्हारा वह कपटी स्वामी करोड़ों यत्न करके-भी हम गोपियों को पुनः अपने वश में नहीं कर सकता। ऐसा सुनकर मानों भौरे ने उनसे कहा कि कलह करने में कुछ भी सार (लाभ) नहीं है।

इहि त उचित सब प्रियतम संगा। बिसरि खीझ करु संधि अंभगा॥
सुनि राधा भ्रुव नाक सकोरी। कह सठ मोहि कि बूझि ठगौरी॥

इससे तो अच्छा यह है कि तुम सब क्रोध त्यागकर अपने प्रियतम से अखण्ड संधि कर लो। यह सुनकर राधाजी ने नाक-भौंह सिकोड़कर कहा- रे शठ! क्या तूने मुझे भ्रमितबुद्धि समझ रखा है?

अबहि कही अब कहु जनि आगे। अस बच मोहि बिसिख सम लागे॥
छल रह जब लौ जाइ न जाना। बंधु तोर रत हाथ धराना॥

अभी कहा सो कहा, अब आगे न कहना; क्योंकि ऐसे वचन मुझे बाण के समान चुभते हैं। कपट तभी तक रहता है, जब तक कि वह पकड़ में नहीं आता और तेरा सखा तो रङ्गे-हाथों पकड़ा गया है।

निलज गहेहु चेरि कर पानी। सगरे जग हमु नाक कटानी॥
पुनि तुअ चह हम ताहिं उर धरें। उषट चोरि अरु निहुरे निहुरे॥

निर्लज्ज ने एक दासी का हाथ ग्रहण करके सारे संसार में हमारी नाक कटवा दी। और तू चाहता है कि हम फिर भी उसे अपने हृदय में धारण कर लें; ऊँट की चोरी, वो भी झुके-झुके?

हम लहिबे उन्ह पद अनुरागा। तात मात घर बंधुहि त्यागा॥

उसके चरणों में प्रीति प्राप्त करने के लिये हमने अपना घर, माता-पिता और भाईयों तक को त्याग दिया,

छन्द- त्यागेहुँ हम सरबस्व हरि पद प्रीति पावन पावनी।
तजि काज घर संतत भजत रहि तिन्हहि छबि मनभावनी॥
अकृतग्यता पै देखु खल कर हमहि तजि परपुर बसे।
बारक बिचार न कीन्ह भा जदुराज सुख हमरे नसे॥

उस कृष्ण के चरणों में पवित्र प्रेम प्राप्त करने के लिये हमनें अपना सर्वस्व त्याग दिया था। अपने सारे काम-धाम व घर छोड़कर हम निरन्तर उसी की मनभावन छवि का भजन किया करती थी। किन्तु उस दुष्ट की अकृतज्ञता तो देखो! हमें त्यागकर वह पराये देश में जा बसा। एक बार भी उसने विचार नहीं किया और (ब्रजराज से) यदुराज होकर हमारे सारे सुख नष्ट कर दिये।

दोहा- **जगप्रसिद्ध खलता तिन्ह पर अनभल तेहिं सोह।**
हम त जपति दिनुरात तेहिं तिन्हहिं न हमरेउ मोह॥६८॥ (क)

उसकी यह दुष्टता संसारभर में प्रसिद्ध है कि उसे दूसरे का अहित ही प्रिय लगता है। हम तो दिन-रात उसी का ध्यान किया करती हैं, किन्तु उसे ही हमारा मोह नहीं है।

तासु प्रीति हित बिसरि हम पितु समाज कइ लाज।
पै लखु तेइहि दूत लघु पठवा सुधि हित आज॥६८॥ (ख)

उसके प्रेम के लिये हमनें अपने पिता व समाज का भी सङ्कोच त्याग दिया था। किन्तु देखो! आज उसी ने हमारी सुधि लेनें के लिये अपना एक तुच्छ दूत भेजा है।

चौ.- **तेहिं भल बिदित पराग अहारी। तासु बिरहुँ सब गोपि दुखारी॥**
तद्यपि कुबरि मोह तिन्ह केरा। छूट न दिनु दिनु होत घनेरा॥

हे मधुप! उसे यह तो भली-प्रकार ज्ञात है कि उसके वियोग में गोपियाँ दुःखी है। फिर भी कुबड़ी के प्रति उसका मोह छूटा तो नहीं है, अपितु दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

अस तियलोलुप प्रति कहु कैसे। पुनि सो बिगत प्रेम उर बैसे॥
तातें कहु निज नाथहि जाई। इहाँ चल न अब तिन्ह चतुराई॥

तनिक कहो तो! ऐसे स्त्रीलोलुप पुरुष के प्रति हृदय में वह पहले वाला प्रेम पुनः कैसे उत्पन्न हो? अतः जाकर अपने स्वामी से कह दे कि अब यहाँ उसकी चतुराई नहीं चलेगी।

पुनि तुअ सुनु उघारि निज काना। अब न करेसु निज पति गुनगाना॥
तासु कुटिलपनु निरममताई। सतहि कलप लौ कही न जाई॥

और स्वयं तू भी कान खोलकर सुन ले, अब यहाँ अपने स्वामी का गुणगान मत करना। उसकी कुटिलता और निर्ममता का बखान सौ कल्पों (जितनें समय) में भी नहीं हो सकता।

ते अधर्मि पर अनहित जोधा। करत फिरत जिन्हँ तिन्हहि बिरोधा॥
चरित कहउँ ताकर अधमाई। लेहुँ तुअपि सुनि हृदय जुड़ाई॥

वह अधर्मी दूसरों का अहित करने में बड़ा वीर है और जिस-तिस का विरोध करता फिरता है। मैं तुम्हारे सम्मुख उसकी अधमता की कुछ कथाएँ कहती हूँ, सुनकर तू भी छाती ठण्डी कर।

पूरब भयउँ बालि कपिराई। रहा सुकंठ जासु लघु भाई॥

पूर्वकाल में बालि नामक वानरों का एक राजा था, जिसका सुग्रीव नाम का एक अनुज था।

छन्द- **भड़काइ तेइहि नाथ तव सो बालि बिमुख पठाएहू।**
दुरि तदुप खल जूझत दुहुन्हँ सर बालि हृदय चलाएहू॥
एहिंभाँति धोखेहि कपि अदोषहि बधेहु स्वारथ आपना।
पाछे कपिहि तिय समुख तव प्रभु धरम उपदेसेहुँ घना॥

उसी सुग्रीव को भड़काकर तेरे प्रभु ने बालि के विरुद्ध युद्ध के लिये भेज दिया। तदुपरान्त जब वे दोनों भाई युद्ध कर रहे थे, तभी तुम्हारे दुष्ट स्वामी ने छिपकर बालि के हृदय में बाण

मार दिया। इस प्रकार उन्होंने अपना काम बनानें के लिये एक निरपराध वानर को धोखे से मार दिया और बाद में जाकर उस वानर की पत्नि को अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश दिया।

दोहा- बधिक नीचतम होइ पै कबहुँ न हर कपि प्रान।
उपजि नाथ तव भानुकुल यह अघ कीन्ह महान॥६९॥

(यदि कोई) नीच से नीच वधिक-भी हो, तो वह भी वानर के प्राण नहीं लेता। किन्तु तुम्हारे स्वामी ने सूर्यकुल (जैसे सूर्यकुल) में उत्पन्न होकर भी यह महान पाप किया।

चौ.- अब सुमिरहुँ गति सूपनखा कई। नाथ तोर जिहि नाक श्रवन हई॥
रावनानुजा सो एक बारा। बिचरत बन तव प्रभुहिं निहारा॥

अब तनिक सूर्पनखा की दशा का स्मरण करो, तुम्हारे स्वामी ने जिसके नाक-कान कटवा लिये थे। वन में विचरते हुए रावण की उस बहन ने एक-बार तुम्हारे प्रभु को देखा था।

अकथ रूप तेहिं सवँ उन्ह देखी। सूपनखहिं भइ प्रीति बिसेषी॥
प्रनय निवेदन तेहिं का कीन्हा। बपुरिहि कान नाक हति लीन्हा॥

उस समय उनका अकथनीय रूप देखकर सूर्पनखा को उनसे विशेष-प्रेम हो गया। किन्तु उसनें प्रणय निवेदन क्या किया, उन्होंने उस बेचारी के नाक-कान ही कटवा लिये।

निसिचरि कीन्हि ऐतनिहि खोरी। चहेहुँ बरन आई कर जोरी॥
किन्तु आपु तिन्ह गहेहुँ न पानी। फिरि ताकर श्रव नाक कटानी॥

उस राक्षसी ने तो केवल इतना-ही अपराध किया था कि वह हाथ जोड़े आई और उन्हें वरना चाहा। किन्तु उन्होंने स्वयं तो उससे विवाह किया नहीं, उल्टे उसके नाक-कान कटवा लिये,

जातें तिन्ह बरि सक न अपरही। सोचि सोचि यह मम उर जरही॥
होते बटुक तप बिरत धारे। तब न अकृत यह जोग बिचारे॥

ताकि कोई दूसरा भी उससे विवाह न कर सके। इसके विषय में सोच-सोचकर मेरा हृदय जलता रहता है। यदि वे ब्रह्मचारी, तपस्वी या वैरागी होते, तो यह करतूत विचारने योग्य न होती।

किन्तु तें त निज तिय सँग कानन। बसत रहे निरखत तिन्ह आनन॥
जे रहाहिं एकतिय ब्रत तासू। त्रिपुर कीन्ह किउ छबिहि प्रकासू॥

किन्तु वे तो अपनी स्त्री के साथ उसका मुख देखते हुए वन में बस रहे थे, यदि उन्होंने एकपत्निव्रत ले ही रखा था, तो फिर उन्होंने अपने सौन्दर्य का प्रकाश त्रिलोकी में किया ही क्यों।

प्रथम बिमोहित करु निज रूपा। पाछ बिमुग्धहिं करहु बिरूपा॥
असहिं अमानुष कृत तिन्हँ भावहिं। बार बार तुअ गुन जिन्हँ गावहिं॥

"पहले तो रूप के आकर्षण से मुग्ध कर लो और बाद में विमुग्ध हुए व्यक्ति को कुरूप कर दो" बार-बार तू जिसके गुण गा रहा है तेरे उस स्वामी को तो, ऐसे ही अमानवीय कार्य भाते हैं।

बलिहिं एहिबिधि बात भुलाई। दीन्ह तोर प्रभु रंक बनाई॥

मानिअ राघव छत्रिय जाती। मार काटही तेन्ह सोहाती॥

इसी प्रकार राजा बलि को भी अपनी बातों से भ्रमित करके, तेरे स्वामी ने रङ्क बना दिया था। माना कि राम जाति के क्षत्रिय थे, इसलिये उन्हें मार-काट करना ही सुहाता था।

द्विजसुत पै बामन ब्रह्मचारी। रहे सूध देखिअत सुबिचारी॥
कहु बलि कीन्हि ऐतनिहिं खोरी। दान देन हित भै कर जोरी॥

किन्तु ब्रह्मचारी वामन तो ब्राह्मणपुत्र थे, जो सरल-स्वभाववाले और देखने में भी उत्तम विचारोंवाले जान पड़ते थे। हे भ्रमर! बताओं तो, उन राजा का इतना ही अपराध था न कि दान देने के लिये वे हाथ-जोड़कर खड़े हो गए थे।

प्रथम तेहिं लघु चरन देखाई। त्रिपद धरनि पनु लीन्ह कराई॥
पाछ आन कित तें तनु भारी। हारे सबुहि बिचारि बिचारी॥

किन्तु (तुम्हारे स्वामी ने) पहले तो उन्हें अपने छोटे-छोटे पैर दिखाकर तीन पग पृथ्वी के दान का सङ्कल्प करा लिया और बाद में न जाने कहाँ से बड़ा भारी शरीर ले आया? (जिसके विषय में) विचार-विचार कर सब थक गए (किन्तु किसी की समझ में नहीं आया)।

तदुप दोइ पद तिहुँपुर नापा। ऐते पर न कपटि सो धापा॥
तीसर पद कत धरुँ अस गाई। बरुनपास उन्ह लीन्ह बँधाई॥

तदुपरान्त् उसनें दो-ही पग में तीनों-लोक नाप लिये और वह कपटी इतनें पर भी अघाया नहीं; तीसरा पैर कहाँ रखूँ; ऐसा कहकर उसनें उन राजा बलि को वरुण-पाश में बँधवा लिया।

तनक सोचु अह कस खलताई। खाँड़ देत मारेहुँ बलिराई॥
तेइ पुनि करत रहे पनु जबही। सुक्र खलहिं छल बूझे तबहीं॥

तनिक सोचो तो, कैसी दुष्टता है, राजा बलि को मीठी-मीठी बातें बनाकर ठग लिया। फिर जब वे राजा सङ्कल्प कर रहे थे, तभी शुक्राचार्य उस ब्राह्मण का कपट ताड़ गए थे।

किन्तु जसहिं उन्ह भाँडव टोचा। धाइ तोर सख चख उन्ह घोंचा॥
परहित करि चह जे जग माहीं। खल सो इहहि दसा कर ताहीं॥

किन्तु जैसे ही उन्होंने भाँडा फोड़ा, तुम्हारे स्वामी ने दौड़कर उनकी (एक) आँख फोड़ दी। संसार में जो कोई भला काम करना चाहते हैं, वह दुष्ट उनकी ऐसी ही दशा कर देता है।

जोइ महि रच्छन भए बराहा। पृथु भए ताहिहिं मारन चाहा॥
सिंधु मथन जब पूरब भयऊ। तहँपि उपद्रवि सो चलि गयऊ॥

जिस पृथ्वी की रक्षा के लिये वह वाराह हुआ था, बाद में पृथुराज होकर उसनें उसी पृथ्वी को नष्ट करना चाहा था। पूर्व में जब समुद्रमन्थन हुआ था, तब वह उत्पाती वहाँ भी जा पहुँचा था।

पुनि मंथन जब अरंभ भयऊ। रही अहि छँवटि असुरन्हँ दयऊ॥
भलीभाँति रहेहूँ तेहिं ग्याना। असुर गनहिं एहि निज अपमाना॥

फिर जब मन्थन आरम्भ हुआ, तब जान-बूझकर तुम्हारे स्वामी ने सर्प की पूँछ असुरों को दे दी। क्योंकि वह अच्छी तरह-से जानता था कि असुर इसे अपना अपमान समझेंगे और

भए मदान्ध जब अड़ मुख लागी। सठन्ह जारुँ तब अहिमुख आगी॥
इहइ कीन्ह पुनि मथन पयंता। अह अस कुटिल तोर भगवंता॥

अहङ्कार में अन्धे होकर जब वे मुखवाला भाग लेनें के लिये अड़ जाऐंगे, तब मैं उन मूर्खों को सर्प के मुख से निकलनेंवाली अग्नि में जलाऊँगा। (यही सोचकर) फिर जब तक मन्थन होता रहा, उसनें ऐसा ही किया भी। ऐसा है, तुम्हारा वह कुटिलबुद्धि भगवान!

छन्द- **भगवंत तुम्हार कुटिल जेहिंभाँति न आन कुटिलमति त्रिपुर अहै।**
मंथन सम्भव भै रतन बहुत उन्ह महुँ उत्तम तव नाथ लहे॥
सिव सूधहिं माय बिमोहि हलाहल दीन्ह मथन मख भाग कहै।
पाछे तिय तनु धरि सुधा सुरन्हँ दइ असुर बापुरे देखि रहे॥

तेरा भगवान जैसा कुटिलबुद्धि है, ऐसा कुटिलबुद्धि तीनों-लोकों में कोई अन्य नहीं है। मन्थन में अनेक रत्न प्रकट हुए थे, जिनमें से उत्तम तुम्हारे उस स्वामी ने ले लिये। फिर सीधे-साधे शिवजी को अपनी माया से विमुग्ध करके, मन्थनयज्ञ का भाग बताकर विष दे दिया और बाद में स्त्री का शरीर धरकर उसनें देवों को अमृत पिला दिया और दैत्य बेचारे देखते रह गए।

दोहा- **कपटि सुतंत्र निरंकुस बंधु तोर जहँ जात।**
तहहिं करन लग बिबिध बिधि एहिंभाँति उतपात॥७०॥

तेरा कपटी, स्वतंत्र और निरङ्कुश सखा जहाँ भी जाता है, वहीं पर इसी तरह अनेक प्रकार के उत्पात करने लगता है।

चौ.- **सूपनखा आदिक बलि बाली। हरिहिं कृपा पाइसि अति आली॥**
राधेहिं भूप जासु भल ज्ञाना। कह बिपरीत बियोग महाना॥

सूर्पनखा, बलि और बाली आदि इन सबनें भगवान की बड़ी-ही अद्भुत कृपा प्राप्त की थी। हे परीक्षित्! जिसका राधाजी को भी भलि-भाँति ज्ञान था, किन्तु श्रीकृष्ण के कठोर बियोग से आतुर होकर वे इसके विपरीत बोल रही थी।

गुंजत देखि अलिहि निज आगे। राधा कहा सूखपनु पागे॥
मधुअहार हरि करनि बिचारी। उन्हँ प्रति अरुचि हमहि भइ भारी॥

भौंरे को अपने सम्मुख गूँजते हुए देखकर राधाजी ने बड़े-ही रूखेपन से कहा- हे मधुअहार! कन्हैया की करनी का विचार करके, मेरे मन में उसके प्रति बड़ा भारी वैराग्य हो गया है।

कठिन अदयपनु तिन्ह जब चीन्हा। मैं तिन्ह त्याग तबहिं करि दीन्हा॥
किन्तु चरित मनमोहन केरे। बिसरत नहिं दुख देत घनेरे॥

जब मैंने उसकी कठोर निर्दयता को देखा, तभी मैंने उसका त्याग भी कर दिया था। किन्तु मन को मोह लेनेंवाले उस कृष्ण के चरित्र (किसी-से) भुलाए नहीं जाते, वे बहुत दुःख देते हैं।

अवसि कथा तिन्ह मधुर पुनीता। किन्तु करइ श्रोतन्ह बिपरीता॥

सुनत जेइ छति ताकर करई। धर्मिहि धरम तपिहिं तप हरई॥

उसकी कथा मधुर और पवित्र तो अवश्य है, किन्तु वह श्रोताओं को विपरीत फल देती है। जो सुनता है, वह उसी की क्षति करती है। धर्मज्ञों का धर्म और तपस्वियों का तप हर लेती है।

धन इच्छुक तजि धन आसकती। संतत करन लगहिं हरि भगती॥
पाइ श्रवनतल चरित सबेरा। द्वंद्व मिटइ नर मानस केरा॥

धन प्राप्ति की इच्छा रखनेंवाला मनुष्य धन की आसक्ति त्यागकर निरन्तर उस हरि की भक्ति करने लगता है। कर्णपटल पर उसके चरित्रों का प्रभात पाते ही मन का समस्त द्वन्द्व मिट जाता है।

तिय सुनि बिसरहिं पति अनुरागा। सुत पितुमात बिसार अभागा॥
कान्हँ कथा जिन्हँ के श्रव परई। नर सो जिवन मोह परिहरई॥

उसकी कथा सुनते-ही स्त्रियों का अपने पति के प्रति अनुराग छूट जाया करता है और पुत्र अभागा अपने माता-पिता को त्याग देता है। कन्हैया की कथा जिसके भी कानों में पड़ती है, वह मनुष्य जीवन के प्रति अपने मोह को त्याग देता है।

दोहा- हरिहि कथा सुजनन्ह दुखद सबबिधि बिसरन जोग।
तदपि छूट नहिं जतन किए जनु भइ मानस रोग॥७१॥

हरि की कथा सज्जनों को दुःख देनेवाली और सब प्रकार से त्याग दिये जाने योग्य है। किन्तु यत्न करने पर भी वह छूट नहीं पाती, जैसे मन का रोग ही हो गई हो।

चौ.- महाबियोगिनि भाउन्ह काना। पुनि सुनेउ अस मधुकर गाना॥
देबि सुनु त पहिले पिय पाती। पाछ कहुब जे करुँ तेहिंभाँती॥

फिर उन महावियोगिनि राधाजी ने भावकर्णों से पुनः गूँजते हुए भौंरे का गान सुना, (मानों भौंरा कह रहा था-) हे देवी! पहले प्रियतम कृष्ण का पत्र तो सुन लो, पीछे आप जो भी कहेंगी, मैं उसी प्रकार का कार्य करूँगा।

नहिं रे तनक सुनु न खलदूता। सुनि बीती छलि बात बहूता॥
तातें अधिक न अब भरमैहूँ। आवा तुअ जस तस फिरि जैहूँ॥

नहीं रे दुष्ट के दूत! अब नहीं सुनूँगी। बहुत सुन चुकी हूँ, उस कपटी की बातें। इसलिये तू मुझे अब और अधिक भ्रमित न कर और जैसे आया था, उसी प्रकार लौट जा।

एहिबिच मधुकर अनत उड़ाना। मानहुँ भयउँ निरास महाना॥
ऊधौ ठाढ़ ठगे एक ओरा। सब दिसि उमगिसि सान्ति कठोरा॥

इसी बीच वह भौंरा किसी अन्य स्थान की ओर उड़ गया, मानों बड़ा-ही निराश हो गया हो। उद्धवजी एक ओर ठगे-से खड़े हैं और सब ओर कठोर शान्ति उमड़ पड़ी।

राधा तब ब्याकुल भइ भारी। अलिहिं खोजि लगि दृष्टि पसारी॥
जब हिय भा नृप मान प्रघोरा। कहे बियोगिनि बचन कठोरा॥

तब राधाजी अत्यधिक व्याकुल हो गई और दृष्टि दौड़ाकर उस भौंरे को खोजनें लगी। हे परीक्षित्! श्रीराधाजी के हृदय में विरहजन्य मान बढ़कर जब प्रचण्ड हो गया था, तब उन वियोगिनि ने (भौरे से) कठोर वचन कह दिये थे।

किन्तु तहँ तें अलि जब बिलगाना। गरि तुरंत गयऊ उन्ह माना॥
रुदन बहोरि करत अति भारी। उन्ह कहेउ अस सखिन्हँ निहारी॥

किन्तु जब वह भौंरा वहाँ से अन्यत्र चला गया, तब उनका वह मान तुरन्त ही नष्ट हो गया। फिर बड़ा भारी रुदन करते हुए सखियों की ओर देखकर उन्होंने इस प्रकार कहा-

हाँ भयऊ केतो अनिआऊ। पिय पठवा चर मृदुल सुभाऊ॥
छमा माँगि मोहि लेहिं मनाई। मैं परन्तु कटु उकुति सुनाई॥

हाँ! मेरे द्वारा कितना अन्याय हो गया, प्रियतम ने कोमल स्वभाववाला अपना एक दूत भेजा था, ताकि वह क्षमा माँगकर मुझे मना ले, किन्तु मैंने उसे कठोर उक्तियाँ ही सुनाई।

हिय बिदारि करि अति अपमाना। तेहिं सुनै बिनु पाछ फिराना॥
हाँ अलि भा यह अकृत अगाधा। तुम्ह उदार छमु मम अपराधा॥

उसका हृदय दुःखाकर अत्यधिक तिरस्कार करते हुए, कुछ सुने बिना ही मैंने उसे लौटा दिया। हा भ्रमर! यह बड़ा ही अनुचित कर्म हो गया। तुम उदारमना हो, अतः मेरा अपराध क्षमा कर दो।

दोहा- अस कहि कान्हँ बियोगिनि करि बिषाद हिय भारि।
बिरहसखहि आगवँन पथ अपलक लागि निहारि॥७२॥

ऐसा कहकर हृदय में बड़ा भारी विषाद करके, श्रीकृष्ण के वियोग से संतप्त श्रीराधाजी अपने विरह के सखा उस भ्रमर के आने के मार्ग को निर्निमेष (पलक झपकाए बिना) देखने लगी।

चौ.- एहिबिच भृंग उड़त पुनि आवा। देखि हृदय राधहिं हरषावा॥
अहो नेहि सख तुम पुनि आए। मोर कठिनपनु खोरि बिहाए॥

इसी बीच भौंरा उड़ता हुआ पुनः वहाँ आ गया। यह देख राधाजी का मन प्रसन्न हो उठा और उन्होंने कहा- अहो स्नेही सखा! मेरी निष्ठुरता और मेरी भूल को भुलाकर तुम पुनः आ गये।

की तुम गए रहे पिय पाहीं। दसा मोर सब ताहिं सुनाहीं॥
देन हेतु मोहि धीर घनेरा। की तोहिं भगतबछल पुनि फेरा॥

क्या तुम उन प्रियतम के पास चले गए थे? क्या तुमनें मेरी सारी दशा उन्हें कह सुनाई? क्या उन भक्तवत्सल हरि ने तुम्हें पुनः हमें धैर्य बँधानें के लिये भेजा है?

कहत भाँति एहि बिरह अगाधा। पियहि जपत भइ मुरुछित राधा॥
हरि हित पीर राधिकहिं केरी। बिचलित भै ऊधौ जब हेरी॥

इस प्रकार कहकर अगाध विरह से व्याकुल हुई राधाजी मूर्छित हो प्रियतम का जप करने लगी। श्रीकृष्ण को पाने के लिये राधाजी की ऐसी पीड़ा जब देखी, तो उद्धवजी विचलित हो गए।

हृदय धीरगत कम्प सरीरा। बूड़न लाग पुलक दृग नीरा॥

बिरहुँ सुनेहुँ उन्ह श्रव बहुबारी। मूरति पै अज जिअत निहारी॥

उनका हृदय धैर्य खो बैठा, काँपता हुआ उनका शरीर पुलकन में डूबनें लगा और उनके नेत्रों में जल भर आया। 'विरह' यह शब्द तो उन्होंने अपने कानों से तो बहुत-बार सुना था, किन्तु आज उन्होंने उसी विरह की जीवन्त मूर्ति का दर्शन पा लिया।

तातें तासु सबदगत दापा। सचत लाग सुनि राध प्रलापा॥
मोर कठिन ब्यवहार बिहाए। छुब्द भए बिनु तुअ पुनि आए॥

अतः निःशब्द हो चुका ज्ञानसम्बन्धी उनका अहं सचेत हो राधाजी का विरहजनित प्रलाप सुननें लगा। राधाजी ने कहा- मेरे कठोर व्यवहार को भुलाकर क्षुब्ध हुए बिना, तुम पुनः लौट आए।

केतो मृदुल तोर बरताऊ। एहि रिनु मैं केहिं भाँति चुकाऊँ॥

हे मधुप! तुम्हारा व्यवहार कितना कोमल है, इसका ऋण मैं किस प्रकार चुकाऊँ।

दोहा- **छमहुँ सकल अपराध मम पुनि माँगहु बरु केउँ।**
जे समरथ रहि सखा मम तब त अवसि सोइ देउँ॥७३॥

तुम मेरे समस्त अपराधों को क्षमा कर दो और मुझसे कोई वर माँग लो। यदि मेरी सामर्थ्य रही, तब तो हे सखा! मैं अवश्य ही वह (वस्तु) तुम्हें दूँगी।

चौ.- **सुनि अलि कह जे गुंजत हूता। तव पिय प्रेरित मैं लघु दूता॥**
पति आयसु रथु सबन्हि चढ़ाई। चहुँ मथुरा उन्ह पहिं लै जाई॥

यह सुन गूँजता हुआ भौंरा बोला- मैं तुम्हारे प्रिय के द्वारा भेजा उनका छोटा-सा दूत हूँ। मैं स्वामी की आज्ञा के अनुसार आप सबको रथ पर चढ़ाकर उनके पास मथुरा ले जाना चाहता हूँ।

बिनय करौं पुनि पुनि सख तोसे। बात भाँति एहि करेहुँ न मोसे॥
तुअ अरसग्य मूढ़ अह नाहीं। सौंति होहिं एहि सवँ उन्ह पाहीं॥

हे सखा! मैं बार-बार तुमसे विनय करती हूँ, तुम मुझसे ऐसी बात न करो। न तो तुम प्रेमतत्व से अपरिचित हो और न ही मूर्ख हो। इस समय उनके पास मेरी सौतें उपस्थित होगी।

हम जे जाब तहाँ एहि काला। उभयहिं दिसि दुख होब बिसाला॥
पियबियोग दुख कठिन अगाहा। तन आतम हमार जिन्हँ दाहा॥

जो यदि इस समय हम वहाँ गई, तो दोनों ही पक्षों को अत्यधिक दुःख होगा। अपने प्रिय के वियोग का दुःख बड़ा ही कठोर होता है, जिसका दाह हमारे शरीरों व आत्माओं में व्याप्त है और

अब तुअ हमहिं तहाँ लै जाई। सौतिडाह किउँ चहहिं जराई॥
देबि सौति तहँ एकौ नाहीं। दुख तोहिं होहिं तहाँ लखि जाहीं॥

अब तुम हमें वहाँ ले जाकर सौत के कारण उत्पन्न होनेंवाली इर्ष्या की अग्नि में क्यों जलाना चाहते हो? (भौरा बोला-) हे देवि! वहाँ एक भी सौत नहीं है, जिसे वहाँ देखकर तुम्हें दुःख हो।

सखा सबनि गोपिन्हँ हितकारी। कहत असत केहिं कारन भारी॥

हे समस्त गोपियों का हित करनेवाले सखा! तुम इस प्रकार बड़ा भारी झूठ क्यों बोलते हो।

दोहा- राजलच्छि भए सिंधुसुता एहि सवँ उन्ह चहुँ ओर।
तहिं बताहुं सहि सकहिं कस सौतिहि सुख हिय मोर॥७४॥ (क)

समुद्र की कन्या इस समय राजलक्ष्मी होकर उन कृष्ण के चारों ओर व्याप्त है। अब तू ही बता। मेरा हृदय सौंत का यह सुख किस प्रकार सह पायेगा।

एहिं सवँ घेरे होसि उन्ह परितुष्टा पिय पेमु।
तातें परिहरि दुराग्रह कहहुँ सखा पिय छेमु॥७४॥ (ख)

फिर इस समय उन्हें प्रियतम के प्रेम से परिपुष्ट हुई नागरियाँ उन्हें घेरे होंगी। इसलिये अपने इस दुराग्रह का त्याग करके, तुम हमें हमारे प्रियतम की कुशलक्षेम सुनाओ।

चौ.- गोपिन्हँ हृदयछितिज मृदु साँझा। अह एहिकाल कि मथुरहिं माँझा॥
पुनि जे अह तें मथुरहिं माहीं। नंद जसुमतिहिं हेर कि नाहीं॥

गोपियों के हृदयरूपी क्षितिज के लिये मधुर संध्यारूप वे श्रीकृष्ण क्या इस समय मथुरा में ही है? यदि हैं, तो क्या वे नन्दजी व यशोदाजी का स्मरण करते हैं या नहीं?

अति सप्रेम जेइ धेनु चराई। हेरि तेन्ह की झुरहिं कन्हाई॥
ग्वाल सखन्हँ कर नेह गभीरा। कबहुँक करहिं कि तेहिं अधीरा॥

जिन गायों को बड़े ही प्रेम से चराते थे, उन्हें याद करते हुए क्या वे कन्हैया दुःखी होते हैं? ग्वालसखाओं का उनके प्रति रहनेवाला उनका गम्भीर प्रेम क्या कभी उन्हें अधीर करता है?

कबहुँक देखि हार कर गाठा। कहत कि रुचिर पै न सो ठाठा॥
होत रहेहुँ जे सो बनमाला। पोइनि जे सप्रेम ब्रजबाला॥

हाथों से बनें हुए हार देखकर क्या कभी वे कहते हैं कि ये सुन्दर तो हैं, किन्तु इनमें वह सौन्दर्य नहीं जो वन से लिये हुए पुष्पों व पत्तों से बनी हुई उस वनमाला में हुआ करता था, जो व्रजवनिताओं के द्वारा प्रेमपूर्वक पिरोई जाती थी।

धरि मनिकृत भूषन द्युति भारी। मुकुर माँझ मृदु बपुष निहारी॥
कहत कि मकु धरुँ केतनेहिं भूषन। बर प्रभाउ सो प्रगटहिं तदपि न॥

महाआभायुक्त, मणिनिर्मित आभूषण पहनकर, दर्पण में अपने कोमल शरीर को देखते हुए क्या वे कहते हैं कि कितनें ही आभूषण क्यों न पहन लूँ; किन्तु वह उत्कृष्ट प्रभाव नहीं प्रकट हो सकता;

गोपिन्हँ कर धराइ सिंगारा। लहत रहेहुँ जस अकथ अपारा॥
गोपिन्हँ कर सप्रेम निज गाता। धरन माल बन आनहिं बाता॥

जैसा अपार और अकथनीय प्रभाव मैं गोपियों के हाथों श्रृङ्गार धारण कराए जाने पर पाया करता था। गोपियों के हाथों प्रेमपूर्वक अपने कण्ठ में वनमाला धारण करने की तो बात ही और थी।

ऊधौ चढ़त दिवस संघाता। हरि हेर कि इन्ह चेरिन्हँ बाता॥

हे उद्धवजी! चढ़ते हुए दिन के साथ क्या वे हरि इन दासियों की बातों का स्मरण करते हैं?

दोहा- राजभवन परिचारिकन्हि टेरत रासबिहारि।
कबहुँ नाउँ केउ गोपि कर भूलि कि लाग पुकारि॥७५॥ (क)

राजभवन की सेविकाओं को पुकारते समय, वे रासेश्वर भूलवश, क्या कभी किसी गोपी का नाम पुकार उठते हैं?

बिषमय भै इन्ह दिवस महुँ हरि पुनि फिरि ब्रज माँझ।
इन्ह चेरिन्हँ सिरु फेर कबु दरसन सीतल साँझ॥७५॥ (ख)

विषैले (शोकयुक्त) हो चुके इन दिनों में पुनः व्रज लौटकर वे हरि अपनी इन दासियों के सिर पर कभी अपने दर्शनों की शीतल संध्या करेंगे।

चौ.- कहत भाँति एहि मानस माहीं। अमिताम्बुज बिगसन लग ताहीं॥
पथरन्हि पेमुसिंधु उमगाना। सुधिगत तनु जनु भा बिनु प्राना॥

इस प्रकार कहते हुए उनके मनरूपी सरोवर में स्मृतिरूपी अनेक कमल खिलनें लगे। रुदन करते-करते सूख चुके उनके नेत्रों में प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा और उनका चेतना रहित शरीर मानों प्राणरहित हो गया।

राध सहित सब गोपिन्हँ केरी। अस बेदनि अनुभवत घनेरी॥
ऊधौहिं हृदय परम अकुलाना। भयउँ तिरोहित ज्ञान गुमाना॥

राधाजी सहित समस्त गोपियों की ऐसी कठोर वेदना का अनुभव करके, उद्धवजी का हृदय अत्यधिक व्याकुल हो उठा और उनका ज्ञान-सम्बन्धी समस्त अहङ्कार जाता रहा।

अचरज सरि उमगत अति धाई। बुधिगिरि सिखरन्हि लागि डगाई॥
सजल नयन तब पलकन्हि ढाए। ऊधौ हिय बिचार अस छाए॥

आश्चर्य की सरिता उमड़ती हुई बड़े वेग से दौड़कर उनके बुद्धिरूपी शिखरों को डगानें लगी। तब अश्रुयुक्त नेत्रों की पलकें बन्द करके, उद्धवजी इस प्रकार विचार करने लगे कि,

ररतेन्हँ धीर बँधाइअ नीती। जातें सकहिं तेन्ह दुख बीती॥
प्रिय बियोग जे प्रकृतन्हि होई। कहे जाइ सक तेहिं बच दोई॥

रोते हुए को धैर्य बँधाया जाय, यह नीती है, ताकि उसका दुःख दूर हो सके। यदि किसी साधारण मनुष्य को प्रिय का वियोग हो तो, उन्हें ज्ञान की दो बातें कही जा सकती है कि,

धरिअ धीर परिहरि यह पीरा। होत मृषा सब नात सरीरा॥
तातें लौकिक मोह बिहाइअ। लगन अलौकिक चरन लगाइअ॥

यह पीड़ा त्यागकर आप धैर्य धरिये, क्योंकि शरीर सम्बन्धी समस्त नाते झूठे होते हैं। इसलिये इस लौकिक मोह को त्याग दीजिये और उन अलौकिक के चरणों में अपनी लगन लगाईये।

एहिंभाँति कहि उन्ह अकुलाई। करिअहिं कमु या जाइ मेटाई॥

ऐसा कहकर उनकी व्याकुलता को कम किया जा सकता है या मिटाया जा सकता है।

दोहा- किन्तु बिकलता तीबृ अस हरि हित जे धर कोइ।
देइअ कस किउ धीर उन्हँ यह त महाअघ होइ॥७६॥

किन्तु यदि कोई व्यक्ति स्वयं परमेश्वर के लिये ऐसी व्याकुलता धारण कर ले, तो उसे कैसे और क्यों धैर्य बँधाया जाय? ऐसा करना तो महापाप होगा।

चौ.- जग जब जीव लहहिं नर देहा। होत परम पुरषारथु ऐहा॥
उठि जगबन्ध अगुन तें जीती। लहँ परमातम पद बर प्रीती॥

जब कोई, संसार में मनुष्य शरीर पाता है, तो उसका परमपुरषार्थ ही यह होता है कि वह सांसारिक बन्धनों से ऊपर उठते हुए अवगुणों को जीतकर परमात्मा के चरणों में उत्तम प्रीति पाये और

गोपिन्हँ सोउ पुरुषारथु पावा। नरब्रह्म प्रति धरि अकुलावा॥
मैं बिमूढ़ अस त न करि पावा। चलि आवा उन्ह देन सिखावा॥

गोपियों ने नराकृति ब्रह्म के प्रति व्याकुलता धारण करके, उसी परम-पुरषार्थ को प्राप्त कर लिया है। किन्तु मैं महामूर्ख ऐसा तो नहीं कर पाया, उल्टा उन्हें शिक्षा देने चला आया।

प्रभु पद लहिबे अस अकुलाई। भगति चरम जेहिं मैं नहिं पाई॥
धिक धिक मोरे पुनि मम ज्ञाना। पेमु बिसरि जेहिं धरेहुँ गुमाना॥

परमेश्वर के चरणों को पानें के लिये (गोपियों की) ऐसी व्याकुलता भक्ति का चरम-बिन्दु है, जिसे मैं न पा सका। मुझे और मेरे महान ज्ञान को धिक्कार है, धिक्कार है, जिसनें (ईश्वर के प्रति) प्रेम को भुलाकर अहङ्कार को धारण कर लिया।

पेमुहिं तप मख पेमहिं त्यागा। ज्ञान दान हरि पद अनुरागा॥
भल भा ज्ञान जे न बौरउतो। हरिजन अस कत कब लखि पउतो॥

प्रेम ही तप है, प्रेम ही यज्ञ है, प्रेम ही त्याग है और हरि-चरणों में प्रेम ही ज्ञान व दान है। (मुझे अपने ज्ञान पर अहङ्कार हो गया) यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि यदि मुझे अपने ज्ञान पर अहङ्कार नहीं होता तो, भगवान श्रीहरि के ऐसे भक्त मैं कब और कहाँ देख पाता?

अकथ बिकलता बेदन बिग्रह। सजिव देखतो इन्ह समान कहँ॥
तदुप हृदय धरि धीरज गारा। दृग कपाट उन्ह मंद उघारा॥

अकथनीय व्याकुलता और वेदना की इन जैसी जीवन्त मूर्तियाँ मैं कहाँ देख पाता। तदुपरान्त हृदय में प्रगाढ़ धैर्य धरकर उन्होंने अपने नेत्रों के कपाट धीरे-धीरे खोले।

जिअत पेमु हेरत पुनि आगे। ऊधौ बोलेउँ धीरज त्यागे॥
अहो बिरहुँ कस अकथ अगाधा। पेमु अमल कस हरिपद साधा॥

फिर अपने नेत्रों के आगे (राधाजी व गोपियों के रूप में) स्थित सजीव प्रेम को देखकर उद्धवजी का धैर्य छूट गया और वे बोले- अहो! कैसा अगाध (तीव्) और अकथनीय प्रेम है। इन गोपियों ने भगवान के श्रीचरणों में कैसा निर्मल प्रेम साध रखा है।

दोहा- अनुपम अकथ असीवँ अह तव हरि पेमु निरीछ।
प्रभु हित अरपन कत न अस बिरहुँ न अस घन तीछ॥७७॥

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति आपका निष्काम प्रेम अनुपम, अकथनीय और असीम है। उन भगवान के प्रति ऐसा समर्पण, ऐसा तीक्ष्ण व गहरा वियोग अन्यत्र कहीं पर भी नहीं है।

चौ.- संजम नियम जोग जप ध्याना। भगति बिराग ज्ञान तप दाना॥
सत्य समरपनु अवगुन त्यागा। आदिक सहित अमल अनुरागा॥

संयम, नियम, योग, जप, ध्यान, भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, तप, दान, सत्य, समर्पण, अवगुणों का त्याग आदि सहित विकार रहित प्रेम,

साधन ए श्रुति कथित अनेका। अहहि लच्छ सबबिधि जिन्हँ एका॥
मनुज प्रकृत सब बंधन त्यागा। लहहिं अमल हरिपद अनुरागा॥

ये सब वेदों द्वारा कहे गए अनेक प्रकार के साधन हैं, जिनका सब-प्रकार से एक ही लक्ष्य है कि मनुष्य अपने समस्त लौकिक बन्धन त्यागकर परमात्मा के चरणों में निर्मल प्रेम प्राप्त करे।

किन्तु परम पुरषारथु इहई। तव आतम अबिलग गुन अहई॥
साध्य मनुज हित सम्पति जेई। आपु सिद्ध तोरे हित तेई॥

किन्तु (मनुष्य के जीवन का) यही परम-पुरषार्थ, आपकी आत्मा का अभिन्न गुण है। (श्रीकृष्ण-प्रेमरूपी) जो सम्पदा मनुष्य के लिये साध्य है, वही आपको स्वयंसिद्ध (प्राप्त) है।

हरिपद अहइ न पेमु तुम्हारा। तुम त स्वयं हरिरस साकारा॥
पेमभगति अरु जे अकुलाहीं। सिद्ध तोहिं तिहुँपुर कत नाहीं॥

भगवान श्रीहरि के चरणों में आपका प्रेम नहीं, अपितु आप तो स्वयं ही श्रीकृष्णप्रीति का साकार रूप हैं। जो प्रेमाभक्ति और व्याकुलता आप सबको सिद्ध है, वह त्रिलोक में अन्यत्र कहीं नहीं।

हरिपद प्रीति अपेच्छित जेई। मूरति तुम बिसुद्ध रस तेई॥

भगवान के चरणों में जैसा प्रेम होना चाहिये, आप सब वैसे ही विशुद्ध प्रेम की मूर्तियाँ हैं।

दोहा- महाभाव तव अतुल अह समता नाहिं तुम्हार।
प्रगट ब्रह्म जनि बरनि सक महिमा तोर अपार॥७८॥

आपका महाभाव अतुलनीय है और आपकी कोई समता नहीं। स्वयं परब्रह्म भी आपकी अपार महिमा का बखान नहीं कर सकते।

चौ.- महालच्छि हित दुरलभ जोई। आतम तोर महानिधि सोई॥
रस तव हरि बहुभाँति बखाना। मानेउँ मैं न ज्ञान अभिमाना॥

जो स्वयं महालक्ष्मी के लिये भी दुर्लभ है, वही महासम्पदा आपकी आत्मा है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अनेक प्रकार से आपके प्रेम का बखान किया था और (उस समय) मैंने अपने ज्ञान के अभिमान में उनकी बात नहीं मानी थी।

किन्तु आइ इहँ नयन जुड़ाई। तिन्ह अनुभव पुनि आतम पाई॥
तव रस सन हरि कथ निपुनाई। लग मोहि गिरि सम्मुख जिमि राई॥

किन्तु यहाँ आकर नेत्रों से देखकर और आत्मा में उसका अनुभव पाकर आपके प्रेम के सम्मुख मुझे उन श्रीकृष्ण की कथ्यनिपुणता भी वैसे ही छोटी लग रही है, जैसे पर्वत के सम्मुख राई।

तुम पूछा अहैतु अनुरागा। तव अह तब बियोग किउँ लागा॥
कारन एक इहइ अह तासू। जे न होत लहतो कस पासू॥

आपनें पूछा था कि आपका प्रेम अहैतुक है, फिर उसे वियोग क्यों प्राप्त हुआ? तो इसका कारण एक-ही है कि यदि ऐसा न हुआ होता तो मैं उसे निकट से कैसे जान पाता?

न त प्रभु नित बस संग तुम्हारे। साहस कौन बिरहुँ तोहिं जारे॥
उन्ह हित ब्याकुलता तव जैसी। सजतन तेपि लहिं न सक तैसी॥

अन्यथा तो प्रभु नित्य आपके साथ हैं, तो विरह का क्या साहस कि वह आपको पीड़ित करे? उनके लिये जैसी व्याकुलता आपके पास है, वैसी तो यत्न करके, वे स्वयं भी नहीं पा सकते।

कारन केवल अह पुनि ऐहा। एक प्रभुहिं तव आतम देहा॥
पै उन्ह निज आतम गहनाई। राध सहित तुम सबनि बसाई॥

और इसका कारण एकमात्र यही है कि आप सबकी आत्मा और शरीर में केवल वे परमेश्वर ही विद्यमान हैं, किन्तु उन्होंने अपनी आत्मा की गहराई में राधाजी सहित आप सबको बसा रखा है।

तातें अमल अकथ परिपुष्टा। प्रीति तवहि सबबिधि उतकृष्टा॥
मैं मदान्ध अधमाधम जीवा। पाइ गयउ सुभाग परिसीवाँ॥

अतः निर्मल, अकथ व प्रेम के सब अङ्गों से पुष्ट, केवल आप-ही का प्रेम सब प्रकार से उत्कृष्ट है। अहङ्कार में अन्धा हो रहा, मैं अधमता से भी अधम जीव, सौभाग्य की परिसीमा पा गया।

दोहा- भूप भाँति एहि ज्ञानधनि गोपिन्हँ पेमु सिहाहिं।
परे दंडवत अकथ मुद श्रद्धा दृग उमगाहिं॥७९॥

हे राजन! इस प्रकार ज्ञान के धन से सम्पन्न उद्धवजी गोपियों के प्रेम की प्रशंसा करके, अकथनीय आनन्द का अनुभव करते हुए दण्ड के समान भूमि पर गिर पड़े और उन गोपियों के प्रति उनकी श्रद्धा उनके नेत्रों के मार्ग से उमड़ पड़ी।

चौ.- भूप तदुप परिचय उन्ह जाना। राध कीन्ह बहुबिधि सनमाना॥
उन्ह समेत पै गोपिन्हँ केरी। ऊधौ कहि जे महिम घनेरी॥

हे राजन! तदुपरान्त उनका परिचय जानकर राधाजी ने अनेक प्रकार से उनका सम्मान किया। किन्तु उनके साथ गोपियों (के प्रेम) की जो महान महिमा उद्धवजी ने कही थी,

हेरि ताहिं हिय अति अकुलाती। दुख करि उन्ह कहेहुँ एहिंभाँती॥
बेदन कठिन धरे हिय माहीं। होइ रहेहुँ जे बिकल अथाहीं॥

उसका स्मरण करके, मन में अत्यधिक व्याकुल होकर दुःख प्रकट करते हुए उन्होंने इस प्रकार कहा- अपने हृदय में कठोर वेदना धरे, जो अथाह व्याकुलता प्राप्त किये जा रहा हो,

सनमुख परम प्रसंसिअ ताहीं। यह उपचार कहिअ कस आहीं॥
हम समान हतभागि महाना। खोजे मिलइ न तिहुँ पुर आना॥

उसी के सम्मुख उसकी महान प्रशंसा की जाय, भला बताईये! यह कैसा उपचार हुआ। हमारे समान महान हतभागिनियाँ तीनों-लोकों में दूसरी खोजनें पर भी नहीं मिलेंगी।

पियहिं बिरहुँ हम पाइ अपारा। एहि सवँ लागि मीचु के द्वारा॥
पुनि तुअ धीर त नैंकु बँधाना। फिरि हमार कर महिम बखाना॥

अपने प्रियतम का महान विरह पाकर इस समय हम मृत्यु के द्वार पर आ लगी हैं और आप धैर्य तो बँधा नहीं रहे, उल्टे हमारी महिमा का बखान किये जा रहे हैं

चाटुकारिता इहइ देखाई। तुम कि हमहिं चह धीर बँधाई॥
ऊधौ पियहिं दरस मिल हमहीं। एहि तें अछत हम न कछु चहहीं॥

क्या इसी चाटुकारिता का प्रदर्शन करके, आप हमें धैर्य बँधाना चाहते हैं? हे उद्धवजी! हमें हमारे प्रियतम कृष्ण का दर्शन प्राप्त हो इसके अतिरिक्त हमें अन्य कुछ भी नहीं चाहिये।

दोहा- तातें पिय संदेस केउ अहहिं तुम्हारे पास।
बेगि सुनाइअ लहहिं हिय कछुक धीर एहि त्रास॥८०॥

इसलिये यदि आपके पास हमारे प्रियतम का कोई सन्देश हो, तो आप शीघ्र-ही हमें सुनाईये। ताकि कष्ट से भरे इस समय में हमारा मन कुछ धैर्य पा सके।

चौ.- लखि अधीरता सबन्हि घनेरी। ऊधौहिं सूझि भूल निज केरी॥
तब उन्ह कहा सुनिअ धरि ध्याना। पातिहिं काह लिख्यो भगवाना॥

उन सबकी इस गहरी अधीरता को देखकर उद्धवजी को अपनी भूल का अनुभव हो गया, तब उन्होंने कहा कि पत्र में भगवान ने क्या कहा है, आप सब ध्यानपूर्वक सुनें!

गुन अरु अगुन समेत अपारा। यह ब्रह्मांड मोर बिस्तारा॥
तातें ऐहिं केर कन कन महँ। संतत केवल ममहिं बास अह॥

अपने गुणों और अवगुणों सहित यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरा ही विस्तार है। इसलिये इसके कण-कण में निरन्तर केवल मेरा ही निवास है।

लौकिक बस्तु सबनि जग माहीं। जैसे पंचभूतकृत आही॥
तस गौ पंचभूत मन प्राना। सहित बिषय भए इंद्रि महाना॥

इस संसार में समस्त वस्तुएँ जिस प्रकार पञ्चभूतों से निर्मित है, ठीक उसी प्रकार इन्द्री, पञ्चभूत, मन और प्राण सहित इन्द्रियों का महान विषय (आसक्ति) होकर

मैंहि चराचर जीवन्हि माहीं। मोहि तें बिलग कोउँ कत नाहीं॥
जनम मरनुगत मैं परमातम। ममहिं अंस पुनि सब जीवातम॥

केवल मैं-ही चराचर जीवों में विद्यमान हूँ, किसी भी स्थान पर, कोई भी मुझसे अलग नहीं है। मैं जन्म-मरण से मुक्त परमात्मा हूँ और समस्त जीवात्माएँ मेरा ही अंश है।

तातें रसनिधानि ब्रजबाला। मम तव बिच न बिरहुँ केउ काला॥

अतः हे प्रेमनिधानि व्रजवनिताओं! किसी भी समय मेरे और तुम्हारे मध्य वियोग नहीं है।

दोहा- **अनुभव सतत अखंड मम बस तव आतम गात।**
तब तुम्हार अरु मोर बिच रहि बियोग कत जात॥८१॥

तुम्हारे शरीर और तुम्हारी आत्मा में निरन्तर मेरी ही अखण्ड अनुभूति बसी हुई है। फिर तुम्हारे और मेरे मध्य वियोग रह ही कहाँ जाता है?

चौ.- **मिलब अवसि एकदिनु तोहिं आई। तब लौ जोहुँ मोहि चित लाई॥**
पिय संदेसु सुनत एहिभाँती। राधा हृदय जुड़ानिसि पाती॥

मैं एक दिन आकर तुम सबसे अवश्य ही मिलूँगा, तब तक तुम चित्त लगाकर मेरी प्रतीक्षा करो। प्रियतम का यह सन्देश सुनकर राधाजी ने उस पत्रिका को अपने हृदय से लगा लिया।

पीरसिंधु रस अमित तरंगा। उमगि भींजि लगि उन्ह प्रति अंगा॥
सजल नयन कर ढारि किवारा। तें करि लगि पिय सुरति बिहारा॥

विरहप्रसूत पीड़ा के समुद्र में प्रेम की अनगिनत तरङ्गें उठकर उनके प्रत्येक अङ्ग को भिगोनें लगी। तब अश्रुयुक्त नेत्रों के किवाड़ बन्द करके, वे प्रियतम की स्मृतियों में विहार करने लगी।

इहइ दसा भइ गोपिन्हँ केरी। तेपि लागि आतम पिय हेरी॥
प्रेमाबेग तदुप जब मंदा। जिरेहुँ मनहिं पट मुख गोबिन्दा॥

गोपियों की भी यही दशा हो गई और वे सब भी अपनी आत्मा में प्रियतम कृष्ण का दर्शन करने लगी। तदुपरान्त उनके प्रेम का आवेग जब कम हो गया, तब उनके मानस-पटल पर गोविन्द श्रीकृष्ण की छवि अंतर्ध्यान हो गई।

बिकल राध तब नयन उघारी। उधौहिं लखि एहिभाँति उचारी॥
पुनि पुनि कह तुम कन्हँ भगवंता। जगन्नाथ सर्बग्य अनंता॥

तब व्याकुल होकर राधाजी ने नेत्र खोले और उद्धवजी की ओर देखते हुए इस प्रकार बोली- हे उद्धवजी! आप बार-बार कन्हैया को भगवान विष्णु, जगन्नाथ, सर्वज्ञ और अनन्त कहते हैं,

किन्तु हम त तेहिं जानहिं ग्वाला। जे दधि चोर कपटि नंदलाला॥
हठी कुटिल नटखट एहि रूपा। लाग हमहिं प्रिय परम अनूपा॥

किन्तु हम तो उसे ग्वाला समझती हैं, जो दहीं चुराया करता है, कपटी है और नन्द का पुत्र है। हठी, कुटिल और नटखट, उन कृष्ण का यही रूप हमें परम प्रिय और अनुपम लगता है।

तुम कह ईस अवसि सो होई। नर प्राकृत हमार हित सोई॥
जासु पेम हम जीवन लच्छा। ऐहि अछत हमहिं न कछु इच्छा॥

यदि आप कहते हैं कि वे ईश्वर हैं, तो अवश्य ही होंगे। किन्तु आपके वे ईश्वर ही हमारे लिये एक साधारण मनुष्य हैं, जिनका प्रेम (प्राप्त करना और जिनसे प्रेम करना) ही हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य है और इसके अतिरिक्त हमें अन्य कोई इच्छा नहीं है।

लोकलाज कुल अहमिति जीती। हम त नंदसुत तें कर प्रीती॥

लोकलाज और कुलाभिमान की उपेक्षा करके, हम तो केवल उन नन्दनन्दन से प्रेम करती हैं।

दोहा- **परमातम तव कौन अह हमहिं बिदित यह नाहिं।**
ग्वालसखा जसुदातनय कन्हँ हमार पिय आहिं॥८२॥

(आप जिसके विषय में कह रहे हैं) आपका वह परमात्मा कौन है, यह हमें विदित नहीं। हमारे प्रियतम तो वे कन्हैया हैं, जो ग्वालबालों के सखा और यशोदाजी के पुत्र हैं।

चौ.- **नंदहिं गाइ चरावनिहारा। मुरलि लकुटधर ईस हमारा॥**
जग सो दधिचोरहिं बिलगाहीं। आन ईस हम जानइ नाहीं॥

नन्दरायजी की गायों को चरानेंवाले, मुरली व छड़ी धारण करनेवाले कृष्ण ही हमारे ईश्वर हैं। दहीं चुरानेंवाले उन कृष्ण के अतिरिक्त इस संसार में हम किसी अन्य ईश्वर को नहीं जानती।

अस कहि राधा सबनि सँघाता। बिरहाबिष्ट भइ मनु गाता॥
मुख करि पुर दिसि हाथ पसारी। कहन लागि एहिभाँति पुकारी॥

ऐसा कहकर राधाजी समस्त गोपियों के साथ, मन व शरीर से श्रीकृष्ण-वियोग से व्याकुल हो उठी और मथुरा की ओर मुख करके, हाथ फैलाकर वे पुकारते हुए इस प्रकार कहने लगी-

हा चितचोर कान्हँ सुखधामा। मुरलिमनोहर सुवदन स्यामा॥
ब्रजपति आरतिहर गिरिधारी। तोर बिरहुँ ब्रज भए दुखारी॥

हा चितचोर! हा कन्हैया! हा सुख के धाम! हा मुरलिमनोहर! हा सुन्दर मुखवाले श्याम! हा व्रजाधिपति! हा आर्तिहर! हा गिरिधर! आपके विरह में यह व्रजमण्डल दुःखी होकर,

बूड़ि रहा तमबारिधि माहीं। जग आनहिं हम जानहिं नाहीं॥
तातें बेगि उबारहुँ आई। पीर अधिक जनि यह सहि जाई॥

निराशा के समुद्र में डूबा जा रहा है और आपके अतिरिक्त इस संसार में हम किसी अन्य को नहीं जानती। अतः शीघ्र-ही आकर हमारी रक्षा करें, यह पीड़ा अब और अधिक सही नहीं जाती।

परस पाइ उन्ह दारुन पीरा। चरन्ह सहित बन भयउँ अधीरा॥

उनकी दारुण पीड़ा का स्पर्श पाकर पशुओं सहित सम्पूर्ण वन अधीर हो उठा।

दोहा- रबितनुजा लहि ताप सोउ हृदय परम अकुलाइ।
महाबिरहु अस देखि नभ कम्पेउँ सुर समुदाइ॥८३॥

विरह के उसी ताप को पाकर सूर्यपुत्री यमुनाजी अपने हृदय में अत्यधिक व्याकुल हो उठी और (गोपियों का) ऐसा महाविरह देखकर आकाश में स्थित देवताओं का समूह काँप उठा।

चौ.- पीर तीबृता उन्ह के देखी। ऊधौ भै निरुपाय बिसेषी॥
महाबिरहुँ अस असि तनिमयता। पियहि लहै हित असि ब्याकुलता॥

उनकी वेदना की इस तीवृता को देखकर उद्धवजी विशेषरूप से निरुपाय हो गए। ऐसा महान वियोग, ऐसी तन्मयता और प्रियतम को पानें के निमित्त ऐसी व्याकुलता,

त्रिपुर माँझ केउ बातहिं काहीं। भगवंतहि देखी होइ नाहीं॥
तनु उन्ह कम्प परम अनुरागे। संतत नयन जुगल झरि लागे॥

त्रिलोक में तो किसी की बात ही क्या, स्वयं उन श्रीकृष्ण ने भी नहीं देखी होगी। उद्धवजी का शरीर काँपनें लगा, प्रेम में अत्यन्त मग्न होने से, उनके दोनों नेत्रों से निरन्तर अश्रुपात होने लगा।

मानहुँ उन्ह हिय थित अहँकारा। बिरहुँ भनिति बल पाइ अपारा॥
सचुप अश्रु बाकन्हि उतराना। अनुभव कर निज अरथ महाना॥

मानों उनके हृदय में स्थित अहङ्कार, गोपियों के विरह की भाषा का अपार बल पाकर चुपचाप अश्रुरूपी वाक्यों में उतरकर अपने महान अर्थ का अनुभव करने लगा।

तदुप भयउँ उन्ह हिय कछु धीरा। कहि लग एहिंबिधि भए गभीरा॥
धन्य धरनि एक गोपि सरीरा। पेमु धन्य उन्ह धन्य अधीरा॥

तदुपरान्त उन्हें कुछ धैर्य हुआ, तब वे गम्भीर हो इस प्रकार बोली- इस पृथ्वी पर एकमात्र 'गोपीशरीर' ही धन्य है, धन्य है उनका कृष्णप्रेम, धन्य है (कृष्ण के निमित्त) उनकी अधीरता।

धन्य पीर उन्ह सबबिधि धन्या। हरिहिं चरन बिकलता अनन्या॥
महाभाव जिन्हँ दिब्य अनंता। पावा हृदय धरे भगवंता॥

(कृष्ण के लिये) उनकी पीड़ा धन्य है और भगवान श्रीकृष्ण के चरणों (को पानें) के लिये उनमें जो अनन्य व्याकुलता है वह भी सब प्रकार से धन्य है।

दोहा- सम्भु अजहिं एहि छिन उचित पेमु महाथिति जेइ।
अहहिं सुलभ केवलु त्रिपुर गोपि बपुष कहँ तेइ॥८४॥

प्रेम की जो महास्थिति स्वयं ब्रह्माजी व शिवजी के लिये भी इसी क्षण वान्छित (आवश्यक) है, त्रिलोकी में वही एकमात्र गोपी-शरीर को सुलभ है।

चौ.- मैं तेहिं लहिं न सकेउँ अभागा। सत्य सोउ लहँ अस अनुरागा॥
पेमिहिं तजि न चाह जिन्हँ आना। तजि सक जे आपन अभिमाना॥

मैं अभागा उसे नहीं पा सका, सत्य है ऐसा प्रेम तो केवल वही पा सकता है, जिसे प्रेमी को छोड़कर अन्य किसी वस्तु की कोई चाह ही न हो और जो अपने अभिमान को त्याग सके।

कान्हँ चरित जिन्हँ के चित चाऊ। परहिं न उन्ह पर आन प्रभाऊ॥
धन्य जीव सो गोपिन्हँ जैसा। होइ प्रमत जे हरि हित ऐसा॥

भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं के प्रति जिनके चित्त में रुचि है, उन लोगों पर अन्य (व्यक्ति, वस्तु या स्थान) का प्रभाव नहीं पड़ता। गोपियों के समान ही वह जीव भी धन्य है, जो भगवान श्रीकृष्ण के लिये प्रेमरूपी मद से इस प्रकार उन्मत्त हो जाता है।

पुनि जे चाउ न हरि पद माहीं। अज भए लाहु कलप सत काहीं॥
न त कहँ श्रुति सदग्यान बिहीना। गोप जाति कइ ग्वालिनि दीना॥

और जो यदि भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में रुचि न हो, तो सौ कल्पों तक ब्रह्मा होने से भी क्या लाभ? नहीं तो कहाँ श्रुतियों के सद्ज्ञान से नितान्त रहित, गोप-जाति की ये दीन ग्वालिनें;

पुनि कहँ रति इन्ह अमल कथनगत। परब्रह्महि पदपंकज सतत॥
अहो धन्य इन्ह पेमु अथाहीं। हरिजन ऐसे जग कत नाहीं॥

और कहाँ परब्रह्म के चरणकमलों में, इनका निर्मल और कथन की सीमाओं से परे निरन्तर प्रेम? अहो! इनका अथाह प्रेम धन्य है, भगवान श्रीहरि के ऐसे भक्त कहीं पर भी नहीं।

दोहा- एहि तें सिध बूझे बिनुहिं हरिहिं स्वरूप रहस्य।
निपट पेमु बल जीव उन्ह करि सक आपन बस्य॥८५॥

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि भगवान श्रीहरि के स्वरूप और रहस्य को जाने बिना भी, केवल प्रेम के बल पर जीव उन्हें अपने वश में कर सकता है और

चौ.- अनुग्रह बरिसि जगतपति आपन। करहिं आपु अस आतम पावन॥
जस सरूप इन्ह हरि हिय बैसा। पेमु दान पाएहुँ इन्ह जैसा॥

वे जगत्पति अनुग्रह बरसाकर स्वयं ही उस आत्मा को पवित्र कर देते हैं। श्रीकृष्ण के हृदय में जैसा स्वरूप इन गोपियों का बसा हुआ है, उनसे प्रेमरूपी जैसा दान इन्होंने पाया है,

आन केउ के बातहिं काहीं। लहेहुँ रमा सपनेहुँ तस नाहीं॥
मम हित बात बहूत ऐति अह। झारि केउ होइ जाउँ ब्रजहिं महँ॥

किसी दूसरे की तो बात ही क्या, स्वयं रमा ने भी वैसा स्वप्न में भी नहीं पाया होगा। मेरे लिये तो इतनी-सी बात ही बहुत है कि मैं इस व्रजभूमि पर कोई झाड़ी ही हो जाऊँ,

जातें मिलत रहहिं मोहि संतत। इन्ह पद तारित रज रहुँ पुलकत॥
श्रुति पुरान अज लौ जे लहेहुँ न। पाएहुँ गोपि पेमु सोउ पावन॥

जिससे कि मुझे इनके चरणों से उड़ती हुई धूल निरन्तर मिलती रहे और उसे पाकर मैं पुलकित होता रहूँ। वेद और पुराण भी आज तक जिसे नहीं पा सके हैं, भगवान के प्रति उसी पवित्र प्रेम को गोपियों ने पा लिया।

पुनि पुनि प्रनवउँ मैं इन्ह चरना। महाभाव जिन्हँ जाइ न बरना॥

एहिंभाँति गोपिन्हँ रस गाई। ऊधौ नाचि लाग पुलकाई॥

मैं बार-बार इनके चरणों को नमस्कार करता हूँ, जिनके महाभाव का वर्णन नहीं किया जा सकता। इस प्रकार गोपियों के प्रेम की प्रशंसा करते हुए, उद्धवजी पुलकित होकर नाचनें लगे।

रसमद्यहिं प्रभाउँ एहि होई। प्रमतावहि उतारि चह जोई॥
नृप एहिबिधि संतत दस मासा। ऊधौ ब्रज महुँ कीन्ह निवासा॥

प्रेमरूपी मदिरा का तो प्रभाव ही ऐसा होता है कि जो भी उसे उतारना चाहता है, वह उसी को मतवाला कर देती है। हे राजन! इस प्रकार उद्धवजी ने निरन्तर दस मास तक व्रज में रहे।

तदुप सबन्हँ तें बिदा कराए। मनहिं मारि तें मथुरा आए॥
चलत भेंट जे ब्रजपति दीन्हीं। जाइ नृपहिं उन्ह अरपित कीन्हीं॥

तदुपरान्त सबसे विदा लेकर मन मारकर वे उद्धजी मथुरा लौट आए। चलते समय नन्दरायजी ने भेंट की जो वस्तुएँ दी थी, उन्होंने जाकर महाराज उग्रसेन को समर्पित कर दी।

बहुरि जाइ जगपति समुहाई। कहन लाग एहिंबिधि सिरु नाई॥
पेमु गोपि कर तोहिं तें जेता। प्रभुहिं न उन्ह प्रति करि सक ऐता॥

फिर श्रीकृष्ण के सम्मुख जाकर उन्हें सिर नवाकर वे इस प्रकार कहने लगे कि जितना प्रेम गोपियाँ आपसे करती हैं, उतना तो स्वयं प्रभु (आप) भी उनसे नहीं कर सकते।

छन्द- **करि सक न पेमनिधान गोपिन्हँ हृदय प्रीती जेतनी।**
गोपिन्हँ बिकलता जोरि जसि प्रभु जोरि सक नहिं तसि घनी॥
कारन बहुरि अह एक एहि कर गोपि तनु यह सम्पदा।
पुनि नाथ पहिं नहिं गोपितनु जेहिं माँझ यह सम्भव सदा॥

प्रेम के निधान होकर भी आप उतना प्रेम नहीं कर सकते, जितना प्रेम गोपियों के हृदय में है। प्रेमी के लिये जैसी व्याकुलता गोपियों ने पाई है, उतनी तीवृ व्याकुलता तो स्वयं प्रभु भी नहीं पा सकते और इसका कारण केवल एक है और वह यह कि यह प्रेम एकमात्र 'गोपीशरीर' की ही सम्पदा है और स्वामी के पास वह 'गोपीशरीर' नहीं है, जिसमें यह सम्पदा सदैव सम्भव होती है।

दोहा- **गोपिपेमु महिमा अकथ अथक जथामति गाइ।**
जपत सजल दृग गोपिन्हँ ऊधौ गै सिरु नाइ॥८६॥ (क)

गोपियों के प्रेम की अकथनीय महिमा को इस प्रकार बुद्धि के अनुसार, अथकरूप से गाते हुए, नेत्रों में अश्रु लिये 'गोपी' इस प्रकार जपते हुए वे उद्धवजी भगवान को सिर नवाकर चले गए।

भूप धन्य गोपिन्हँ सरिस श्रुति पुरानहीं नाहिं।
कहै सुनै उन्ह बिरहुँ सुचि मनु बिकार बिनसाहिं॥८६॥ (ख)

हे परीक्षित्! गोपियों के समान तो स्वयं वेद व पुराण भी धन्य नहीं है, उनके पवित्र विरह को कहने व सुननें से मन के विकार दूर हो जाते हैं।

मासपारायण पच्चीसवाँ बिश्राम

श्रीगणेशायनमः

श्रीकृष्णचरितमानस

षष्ठम सोपान

द्वारिकाकाण्ड

चौ.- **नृपति चरित सुनु सो बर नाना। जिन्हँ द्वारिका कीन्ह भगवाना॥**
राजराज कर सासनकाला। मधुपुर कतहुँ न दुख कइ ज्वाला॥

हे परीक्षित्! अब आप उन सुन्दर लीलाओं को सुनिये, जिन्हें भगवान ने द्वारिका में किया था। राजाधिराज उग्रसेन के शासनकाल में मथुरा में कहीं भी दुःखरूपी अग्नि का प्रभाव नहीं था।

अस्ति प्राप्ति पै कंसहि नारी। रहति बिधवपनु नित्य दुखारी॥
रथु चढ़ि उभय भगिनि एक बारा। पितु पहि गइ हिय सोक अपारा॥

किन्तु अस्ति व प्राप्ति नाम की कंस की दोनों रानियाँ अपने वैधव्य के कारण निरंतर दुःखी रहा करती थीं। एक बार वे दोनों बहनें मन में गहरा शोक लिये रथ पर आरूढ़ हो अपने पिता जरासंध के पास गई।

पति दुरगति जसि कीन्हि कन्हाई। पुनि रोवत तिन्हँ सकल सुनाई॥
अवचट बध सुनतहि जामाता। तिन्हँ साचरज जरे सब गाता॥

और श्रीकृष्ण ने उनके पति की जो दुर्दशा की थी, वह सब उन्होंने रो-रोकर अपने पिता से कह सुनाई। इस प्रकार अचानक अपने जामाता कंस के वध के विषय में सुनते-ही महान आश्चर्य के साथ उसके सारे अङ्ग जल उठे।

सभा माँझ तेहिं कहा रिसाई। जदुकुल अस को उपजेहुँ आई॥
कंस सरिस उदभट जेहिं मारा। मम तनुजन्हि कर जगत उजारा॥

वह सभा में ही क्रुद्ध होकर कहने लगा कि यदुकुल में ऐसा कौन आकर उत्पन्न हुआ है, जिसनें कंस जैसे महायोद्धा को मारकर मेरी पुत्रियों का संसार उजाड़ दिया।

सभहि साखि पनु बहु मैं आजू। उग्रसेन कर उलटउँ राजू॥

आज इस सभा को साक्षी मान प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उग्रसेन का सम्पूर्ण राज्य उलट दूँगा।

दोहा- **सहित समाज सो ग्वाल जुग जे न जिअत मैं बाँधुँ।**
जरासंध जनि नाउँ मम होइहउँ पद तजि साधु॥१॥

समाज सहित उन दोनों ग्वालों को यदि मैं जीवित बाँध न पाऊँ तो, मेरा भी नाम जरासंध नहीं और (इस असफलता के कारण) मैं राज्य त्यागकर सन्यासी हो जाऊँगा।

चौ.- **जादवगत करुँ सब महि आजा। तदपि जे रच्छहि बिबुध समाजा॥**
अस कहि खल निज गदा उठाई। सिरु चहु दिसि सत बार भवाई॥

आज सम्पूर्ण पृथ्वी को ही मैं यादवरहित कर दूँगा, यदि स्वयं देवता भी उनकी सहायता करें, तब भी। ऐसा कहकर उस दुष्ट ने अपनी गदा उठा ली और सिर के चारों ओर सौ बार घुमाकर

अति रिस मथुरहि दिसि पुनि छारी। आवत ताहिं निरखि कंसारी॥
हनि कौमोदकि दूर पबारी। देखि खलहि भा अचरज भारी॥

उसने बड़े क्रोध से उसे मथुरा की ओर चला दिया। उस गदा को आते हुए देखकर कंसशत्रु श्रीकृष्ण ने अपनी कौमोदकी गदा के प्रहार से दूर फेंक दिया। यह देखकर जरासंध को अत्यधिक आश्चर्य हुआ।

रिपु अह प्रबल न रनु बिनु मरिही। अस बिचारि सचिवन्ह उच्चरही॥
नृप सबनि जे हितू हमारे। तेन्हँ हँकारहुँ मगध सकारे॥

शत्रु अत्यन्त प्रबल है और युद्ध किये बिना नहीं मरेगा; ऐसा सोचकर उसने अपने मंत्रियों से कहा कि वे सब राजागण जो हमारे मित्र हैं, उन्हें शीघ्र ही मगध में बुलवाओ।

जरासंध कइ पाइ रजाई। चले बसींठि चहूँ दिसि धाई॥
नृप जुजुत्सु तब कटकु सजाए। कछुकहि दिनु महुँ तिन्ह पहि आए॥

जरासंध की आज्ञा पाते ही उसके दूत चारों दिशाओं में दौड़ चले। फिर कुछ ही दिनों में युद्धाकाङ्क्षी उसके मित्र राजा अपनी-अपनी सेनाएँ सजाकर उसके पास आ पहुँचे।

दोहा- **खल बहोरि हिय हरषत जूथप दीन्हें सारि।**
तेइस अखहिनि सेन सो लागहि अति भयकारि॥२॥

फिर उस दुष्ट ने हर्षित होकर (सेना के संचालन के लिये) सेनापति नियुक्त कर दिये। तेईस आक्षौहिणी योद्धाओं से सज्जित वह (सम्मिलित) सेना अत्यन्त भयानक जान पड़ती थी।

चौ.- **छाछठ सहस तुरंग सवारा। धरे जेहिं आयुध बिकरारा॥**
फौज पयाद चलहिं अतुराती। आयुध हाथ धरे बहुजाती॥

उस सेना में छियासठ हजार घुड़सवार थे, जिन्होंने विकराल शस्त्र धारण कर रखे थे। पैदल सेना भी अपने हाथों में अनेक प्रकार के शस्त्र लिये बड़ी-ही उतावली के साथ चल रही थी।

निरखि कठिन अनि सुर दिसिपाला। काल सहित डरपे तेहिं काला॥
नाना बरन निसाचर भारे। कठिनानन नानायुध धारे॥

उस समय उस भयानक सेना को देखकर काल सहित देवता व दिक्पाल भी भयभीत हो उठे। उस सेना में अनेक रङ्गों के भारी-भारी राक्षस योद्धा थे, जिनके मुख बड़े ही विकट थे और जिन्होंने अनेक प्रकार के शस्त्र धारण कर रखे थे।

उड़त रेनु नभ भरि पद त्रासा। जातें मंदेउँ भानु प्रकासा॥
अस कठोर अनि नृपन्ह जुड़ाई। खल मथुरा कहँ घेरिसि जाई॥

उनके पैरों से पीड़ित होकर उठी हुई धूल से सम्पूर्ण आकाश भर गया, जिससे सूर्य का प्रकाश भी मन्द पड़ गया। मित्र राजाओं की ऐसी कठोर सेना जोड़कर उस दुष्ट ने जाकर मथुरा को घेर लिया।

होन लाग अनि असकुन नाना। झटकि लाग श्रव सनमुख स्वाना॥
सबद उलूकन्हँ अति निठुराई। नृपतिन्हँ अंतर लाग डगाई॥

उस समय सेना में अनेक अपशकुन होने लगे, कुत्ते सम्मुख होकर कान झाड़नें लगे और उल्लुओं का सुनाई देता हुआ शब्द अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक राजाओं के अंतःकरण को विचलित करने लगा।

बढ़त पदाति अचानक परही। जंबुक स्वान रुदन सन करही॥
हय गय बिहकि भजहि तजि सेना। जरासन्ध बल मद गन तें ना॥

आगे की ओर बढ़ते हुए पदाती (पैदल सैनिक) अचानक ही गिर पड़ते हैं और सियार व कुत्ते सम्मुख होकर रूदन करते हैं। सेना के हाथी-घोड़े बिदक कर सेना को छोड़कर भाग जाते हैं; किन्तु (यह देखकर भी) जरासंध अपने बलाभिमान में इस बात पर ध्यान नहीं देता।

दोहा- **इत अपार पृतनहिं निरखि पुरबासिन्हँ भइ त्रास।**
गै कंसारिहि समुख सब जानि अटल निज नास॥३॥

इधर उस अपार सेना को देखकर मथुरावासी भयभीत हो उठे और अपना विनाश हुआ निश्चित समझकर कंस के शत्रु श्रीकृष्ण के सम्मुख गए।

चौ.- **जरासंध पुर कहँ प्रभु घेरा। किए सहायक कटकु घनेरा॥**
अब धौं काह होइ सुखधामा। हरिहि मौन लखि कह बलरामा॥

(उन्होंने कहा-) हे प्रभु! अपने मित्र राजाओं की विशाल सेना के साथ जरासंध ने हमारे नगर को घेर लिया है। हे सुखधाम! अब क्या होगा? उस समय कन्हैया को चुप देख बलरामजी ने कहा-

अवसर बर हरिबे महिभारा। पै बकारि तुम किउँ चुप धारा॥
खलारन्य दहुँ भए कृसानू। तब बोले अस बुद्धिनिधानू॥

पृथ्वी का भार हरण करने की दृष्टि से यह अवसर उत्तम है, किन्तु हे बकनिकन्दन! तुमने मौन क्यों धारण कर रखा है? अग्निस्वरूप होकर तुम दुष्टोंरूपी इस वन को भष्म कर दो। तब बुद्धिनिधान भगवान श्रीकृष्ण ने इस प्रकार कहा-

बंधु अवसि मारिहिं अनि ताहीं। पै मगधेसहुँ मर्दिहि नाहीं॥
जिअत जाइ करि खलन्हँ सँघाता। पुनि अइहहि करिबे प्रतिघाता॥

हे दाऊ! हम उसकी सेना का तो संहार अवश्य करेंगे, किन्तु मगधराज का वध नहीं करेंगे। क्योंकि वह जब जीवित लौटेगा, तब प्रतिघात करने के लिये दुष्टों को साथ लेकर पुनः आयेगा।

एहिबिधि हम बैठे घर माहीं। सहज हरिहि महिभार अथाही॥
बहुरि उभय लहि नृपति रजाई। चले ससेन अरिहि समुहाई॥

इस प्रकार हम अपने घर में बैठे-बैठे ही बड़ी सरलता से भूमि का महान भार हर लेंगे। फिर वे दोनों भाई महाराज उग्रसेन से आज्ञा लेकर सेना सहित शत्रु के सम्मुख चले।

दोहा- **तेहिं सवँ प्रगटे रथ उभय सुर प्रेरित उन्ह सेव।**
सादर जापर उभय चढ़े भै अचिंत लखि देव॥४॥

उस समय देवताओं की प्रेरणा से उन दोनों की सेवा में दो दिव्य रथ प्रकट हुए; जिस पर दोनों भाई आदर सहित आरूढ़ हुए। यह देखकर समस्त देवता निश्चिंत हो गए।

चौ.- पुनि सँभारि आयुध दुहुँ बीरा। सिंघनाद करि लाग गभीरा॥
जेहिं सुनि खल अपि मारु बजाई। रक्त छुधा निज दीन्ह जनाई॥

फिर अपने शस्त्र उठाकर वे दोनों भाई सिंह के समान भयङ्कर गर्जना करने लगे; जिसे सुनकर दुष्ट जरापुत्र ने भी मारू ध्वनि बजाकर उन्हें रक्त के लिये अपनी भूख विदित करा दी।

पांचजन्य गहि तब भगवाना। कीन्ह समरमहि नाद महाना॥
जेहिं सुनि खल भूपति भय माने। भए छुब्ध उतसाह बिहाने॥

तब भगवान श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य नामक शङ्ख लेकर युद्धभूमि में उससे महान ध्वनि की; जिसे सुनकर वहाँ उपस्थित दुष्ट राजा भय के मारे उत्साहहीन व क्षुब्ध हो उठे।

खलहि सेन सुनतहि भय पाई। अतिभय इत उत चली पराई॥
देखि अनिप निज अनिहिं सँभारी। हरिहि कटकु सन भिरे पचारी॥

उस दुष्ट की सेना भी उस भीषण शङ्खध्वनि को सुनकर अत्यधिक भयग्रस्त हो इधर-उधर भाग चली। यह देखकर (जरासंध के) सेनापतियों ने अपनी सेना सम्भाली और ललकारकर श्रीकृष्ण की सेना से जा भिड़े।

रथ हँकाइ इत जराज धावा। धनु चढ़ाइ लग सर बरिषावा॥
जदु भट जहँ तहँ कटि कटि परहीं। किंतु न लटहि बिषम रनु करहीं॥

इधर जरासंध रथ हाँककर दौड़ा और धनुष चढ़ाकर बाणवर्षा करने लगा; जिससे जहाँ-तहाँ यादवयोद्धा कट-कटकर गिरनें लगे; किन्तु फिर भी वे पीछे नहीं हटते और भयङ्कर युद्ध करते हैं।

आपन अनिहिं घात लखि भारी। परम कुपित धाए कंसारी॥
पुनि सारंग धरे कर आपन। पनच प्रतारि घोर उर दाप न॥

अपनी सेना का भीषण संहार होता हुआ देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त क्रुद्ध होकर दौड़े। फिर अहङ्कारमुक्त मन से उन्होंने अपने हाथ में सार्ङ्ग धनुष लेकर उसकी प्रत्यञ्चा की भयङ्कर टङ्कार की।

बिषमनाद सो अरि उर छावा। टूटि लाग उड़ त्रिपुर भयावा॥
भई बधिर अरि अनि तेहिं काला। बिहँसे कछु बिलोकि खलकाला॥

प्रत्यञ्चा की वह भयानक टङ्कार शत्रु के हृदय पर छा गई, तारे टूटनें लगे और तीनों लोक भयभीत हो उठे। उस समय शत्रुसेना बहरी हो गई, यह देखकर दुष्टनिकन्दन प्रभु कुछ मुस्कुराए।

हय गय बिकल बिमुख भए भाजे। धरनि खसे तिन्ह केर बिराजे॥
पीत तड़ित दुति हरिधनु केरी। निरखि रिपुन्ह भइ त्रास घनेरी॥

जरासंध की सेना के हाथी-घोड़े व्याकुल होकर भाग चले और उन पर सवार योद्धा भूमि पर गिर पड़े। भगवान के धनुष की आभा पीले रङ्ग की बिजली के समान थी, जिसे देखकर शत्रुओं को अत्यधिक भय प्राप्त हुआ।

उन्ह करि तदुप अमित सर घाई। अरिहिं बिसाल सेन बिचलाई॥

तदुपरान्त अनेक बाणों से आक्रमण करके उन्होंने शत्रु की विशाल सेना को विचलित कर दिया।

दोहा– भीषन छति भइ खलन्हँ अनि नृप अजानुभुज तीर।
महिं उछंग उदभट अमित सोए नींद गभीर॥५॥

हे परीक्षित्! अजानुभुज भगवान श्रीकृष्ण के बाणों से शत्रुसेना की महान क्षति हुई। बहुत-से महाभट्ट योद्धा भूमि की गोद में मृत्युरूपी गहरी निद्रा में सो गए।

चौ.– गज सर लागत चले पराई। सुंड दसन अरु श्रवन गँवाई॥
बहुतक हय असवारन्हँ केरे। मुंड खसे महि बिसिखन्हँ प्रेरे॥

बाण लगते-ही हाथी अपनी सूँड़, दाँत और कान गवाँकर भाग चले। बाणों के ही कारण बहुत-से घुड़सवारों के सिर कटकर भूमि पर गिर पड़े।

पदचारन्हँ उर सीस बिभंजे। बाहुदंड खंडे पद गंजे॥
कवच कटे आयुधन्हँ सँघाता। एहिबिधि भा अरि कर अति घाता॥

कई पदातियों की छातियाँ, सिर, भुजाएँ व पैर कट गए और शस्त्रों सहित कितनों ही के कवच कट गए। इस प्रकार शत्रु जरासंध की सेना की बड़ी भारी क्षति हुई।

अगनित सुभट समर तनु त्यागे। पाइ बीरगति सुरपुर लागे॥
सोनित सरि छिनु महुँ उमगाई। गहन बिसाल परम भयदाई॥

अनगिनत उत्तम योद्धा युद्ध में वीरगति पाकर स्वर्गलोक को चले गए। युद्धभूमि में क्षणभर में ही रक्त की नदी उमड़ पड़ी, जो गहरी, विशाल और अत्यधिक भय उत्पन्न करनेवाली थी।

ग्राहन्हँ सम हय लग तेहिं कूला। गज लगि पर कच्छप समतूला॥
पन्नग भ्रम कर खंडित बाहू। कर ग्राहन्हँ हित दायक लाहू॥

उस नदी के किनारों पर खड़े घोड़े ग्राह के समान और हाथी विशाल कछुओं के समान जान पड़ते थे। कटी हुई भुजाएँ सर्पों के समान और हथेलियाँ घड़ियालों को आनन्ददेनेवाली (मछलियों की-सी) प्रतीत हो रही थी।

छन्द– आभास कर कर झष सरिस सिसुमार भ्रम पुनि रथ करै।
सेवार सिरु कच मुकुट मनि अरु हार जनु प्रस्तर परै॥
आयुध मनहुँ सीपिन्हँ निकर अरु छत्र चामर तट तरू।
धुज संख बालुअ चाँक भँवर सरित सबद जे खरभरू॥

कटी हुई हथेलियाँ मछलियों का आभाष दे रही थी और टूटे हुए रथ सिसुमारों का भ्रम करते थे। कटे हुए मस्तक उस नदी के घोंघे थे और केश, मुकुट, मणियाँ व हार ऐसे जान पड़ते थे, जैसे पत्थर पड़े हों। बिखरे हुए शस्त्र मानों उस नदी की सींपियाँ थे और टूटे हुए छत्र व चँवर ही उसके तट के वृक्ष थे। खण्डित ध्वज व शङ्ख उस नदी की बालू थी, रथों के चाँक भँवर और वहाँ जो कोलाहल हो रहा था, वही मानों नदी के जल से उत्पन्न ध्वनि थी।

दोहा– उभय कटकु सोइ सरित कर लखि पर तट समतूल।

नृपति कहहु तेहिं राख को हरि जिन्हँ प्रति प्रतिकूल॥६॥

दोनों सेनाएँ उस रक्तरूपी नदी के तटों के समान दिखाई पड़ती थी। हे परीक्षित्! कहिये! भला उसकी रक्षा कौन कर सकता है, स्वयं नारायण जिसके प्रतिकूल हों?

चौ.- सरि सो हृदयँ चिंत अति भरेहूँ। अरिदलु एक न धीरज धरेहूँ॥
प्रमथ भूत भैरव बेताला। सरि तट नर्तहि दै दै ताला॥

उस नदी ने शत्रु के हृदय में अत्यधिक चिन्ता उत्पन्न कर दी थी; जिससे जरासंध की सेना में ऐसा कोई नहीं रह गया था, जिसनें धैर्य धरा हो। उस नदी के तट पर एकत्र हुए प्रमथ, भूत, भैरव और बेताल ताली बजा-बजाकर नृत्य कर रहे थे।

जोगिनि अट्टहास करि धावहिं। जै जै कहि भीषन भय बावहिं॥
भूत प्रेत करि सोनित पाना। बहुबिध करहि रुद्र गुनगाना॥

योगिनियाँ अट्टहास करती हुई (यहाँ-वहाँ) दौड़ रही है और जय हो-जय हो का उद्घोष करके दारुण भय उत्पन्न कर रही है। भूतप्रेतादि रक्तपान करके बहुत प्रकार से भगवान रुद्र का गुणगान कर रहे हैं।

अरपन हेतू महाकालहीं। कछु गह खंडित मुंडन्हि मालहि॥
अगनित डाकिनि जूथ बनाई। रनुचंडिका हरषि तहँ आई॥

उन्हीं में से कुछ भगवान महाकाल को अर्पित करने के लिये कटे हुए सिरों की मालाए बना रहे हैं। रणचण्डी भी अनेक डाकिनियों का समूह साथ लिये हर्षित हो वहाँ पहुँची।

अट्टहासि उन्हँ खप्पर भरेहूँ। रुधिरपान करि नर्तन करेहूँ॥
बिद्याधरिनि गंधरब तनुजा। भई भावमय तेहिं सवँ मनुजा॥

फिर अट्टहास करके उन्होंने (योद्धाओं के) रक्त से अपना खप्पर भर लिया और उसे पीकर नृत्य किया। उस समय विद्याधरों व गन्धर्वों की कन्याओं का मन मानवीय भावनाओं से भर गया और

जेन्ह बीरगति लहिं रनु माहीं। प्रनय निवेदि लागि उन्ह पाहीं॥
पति पाए हित रुचि अनुहारी। गगन परस्पर जूझ सो भारी॥

वे उनके सम्मुख प्रणय निवेदन करने लगी, जिन्होंने युद्ध में वीरगति पाई थी। वे स्त्रियाँ अपनी रुचि का पति पाने हेतू आकाश में स्थित हो आपस में अत्यधिक कलह करने लगी।

कछु भट रहे धरम आचारी। गै हरिपुर तिन्ह मोह बिसारी॥
सेष रही जे अरि के धारी। मूसलधर तेहिं सहज निबारी॥

वे कुछ योद्धा जो सदाचारी थे, उनके मोह को त्यागकर वैकुण्ठलोक को चले गए। इसके अतिरिक्त जो शत्रुसेना बच गई थी, बलरामजी ने मूशल के प्रहार से उसे सहज ही में नष्ट कर दिया।

अस लखि खलहि सहायक जेते। भजि छूटे भय प्रेरित तेते॥

यह देखकर दुष्ट जरासंध के वे मित्र राजा जो उसके साथ थे, भयभीत हो वहाँ से भाग छूटे।

दोहा- **तब सरोष दस सहस गज तुल बलि जराकुमार।**
उभय बीर सन जाइ कह करत पिनाक टँकार॥७॥

तब दस हजार हाथियों के तुल्य बलवान योद्धा जरासंध कुपित होकर अपने धनुष की टङ्कार करते हुए, उन दोनों भाइयों के सम्मुख आकर कहने लगा-

चौ.- **रे रे ग्वाल असंक अजाना। निज बलु मोहि देखराहुँ महाना॥**
का मारसि नर कीट पतिंगा। बेगि करब मैं तव मद भंगा॥

रे रे निडर व अबोध ग्वालों! तुम अपना महान बल मुझे दिखलाओं। कीट पतिंगों के समान इन मनुष्यों को क्या मारते हो? मैं शीघ्र ही तुम्हारे अभिमान को नष्ट कर दूँगा।

बन बन फिरि जेहिं गाइ चराई। अहो तेहिं रनु बिद्या पाई॥
समर सोह तिन्हँ जे नृप होई। ग्वाल होइ केइ मुख लर दोई॥

अहो! जिन्होंने वन-वन भटकर गायें चराई है, वे ही युद्धविद्या सीख गए हैं। युद्ध करना केवल उसे शोभा देता है, जो स्वयं राजा हो। तुम दोनों ग्वाले होकर किस मुँह से युद्ध कर रहे हो।

जे न प्रान गहि गए पराई। निस्चय मम कर जाइ बधाई॥
सुनि हरि आपन धनुष सुधारा। लखि मदान्ध अस बचन उचारा॥

यदि तुम अपने प्राण बचाकर भाग न गए, तो निश्चय ही मेरे हाथों मारे जाओगे। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने अपने हाथ में धनुष सुधारा, यह देख अहङ्कार में अन्धे हो चुके जरासंध ने फिर कहा-

रे बालक तुअ लरै न जोगा। तोहि बधत मोहि हँसिहहिं लोगा॥
केहरि मृगसावक कहँ मारी। कहु कि पाइ सक कीरति भारी॥

रे बालक! तुम इस योग्य नहीं की तुमसे युद्ध किया जाय; तुम्हारा वध करने पर तो लोग मेरी हँसी करेंगे। कहो! भला हिरण के बच्चे को मारकर भी कहीं सिंह कोई बड़ा यश पा सकता है।

उबरि न सक तुअ मम सर लागे। तातें करु दाउहि मम आगे॥
कंसबधिक तब कह मुसुकाई। नीतिवान तुम लग अति भाई॥

मेरे बाणों के आघात से तुम बच नहीं पाओगे, इसलिये दाऊ को आगे कर दो। तब कंस का वध करनेवाले भगवान श्रीकृष्ण ने मुस्कुराकर कहा कि हे भाई! तुम बड़े नीतिवान जान पड़ते हो।

परसि चहउँ पद पंकज तोरा। जे मोहि सिसु गनि जीअत छोरा॥
मैं समुझेउँ तुअँ सहजहि आपन। दसन तुराइ चहत केउँ ताप न॥

मैं तुम्हारे चरण छूना चाहता हूँ, जो मुझे बालक समझकर तुमने जीवित छोड़ दिया। मैंने तो समझा था कि तुम बिना किसी कष्ट के सहजता से अपने दाँत तुड़वाना चाहते हो।

दोहा- **किंतु तुम त मूसल कठिन वरेहुँ महामद माहिं।**

दाउँ निपुन अस काज महुँ देहु दोष मोहि नाहिं॥८॥

किन्तु तुमने तो महान अभिमान के वशीभूत हो स्वयं ही मूशल को चुन लिया है। दाऊ इस कार्य में निपुण है, इसलिये अब तुम मुझे दोष न देना।

चौ.- सठ सुनि कीन्ह बहुत दुरबादा। परिहरि सकल जुद्ध मरजादा॥
तब करि कोप जदुत्तम रामा। दाहिन हल गहि मूसल बामा॥

यह सुनकर दुष्ट जरासंध ने युद्ध की समस्त मर्यादाओं को भूलाकर उन्हें बहुत से दुर्वचन कहे। तबयादवों में श्रेष्ठ बलरामजी क्रोधित होकर दाएँ हाथ में हल और बाएँ हाथ में मूशल लेकर

तेहिं दिसि धाए गरजि प्रचंडा। जनु महि छूटेउ उड़ बरिबंडा॥
बहुरि उझकि खल रथउँ चढ़ि गए। मर्दि सारथिहि तासु हय हए॥

भयङ्कर गर्जना करके उसकी ओर दौड़े, मानों कोई दुराधर्ष धूमकेतू पृथ्वी की ओर छूटा हो। फिर उछलकर वे उस दुष्ट के रथ पर जा चढ़े और उन्होंने उसके सारथी व घोड़ों को मार डाला।

पुनि कच धरि तेहिं हेठ उतारा। उन्ह फुरुतिहि खल लहेउ न पारा॥
सँभरि तदुप तेहिं गदा उठाई। भिरेउँ दाउँ तें परम रिसाई॥

फिर बालों से पकड़कर उन्होंने उसे रथ से नीचे उतार लिया; किन्तु वह दुष्ट उनकी इस फूर्ती का उत्तर न दे सका। तदुपरान्त उसने सम्भलकर गदा उठाई और अत्यन्त क्रुद्ध हो दाऊ से भिड़ गया।

खल लखि पर जनु उनमत नागा। दाउँ जाहिं हित हरि रिस पागा॥
खंडित भई गदा जब ताहीं। भयउँ अरंभ मल्ल दुहुँ माहीं॥

वह दुष्ट किसी उन्मत्त हाथी के समान जान पड़ता था; दाऊ जिसके लिये क्रुद्ध सिंह के समान थे। युद्ध करते-करते जब उनकी गदाएँ टूट गई, तब उन दोनों में मल्लयुद्ध आरम्भ हो गया।

उर तें उर सिरु तें सिरु लाई। बल करि लाग परस्पर धाई॥
पद गहि चहहि परसपर पटकन। किंतु उभय नागर कोउँ भटक न॥

छाती से छाती व सिर से सिर टकराकर वे दौड़ते हुए एक-दूसरे पर बल लगानें लगे। पैरों से पकड़कर वे एक-दूसरे को पटकना चाहते हैं, किन्तु वे दोनों ही मल्लयुद्ध में निपुण थे, इसलिये उनमें से कोई भी तनिक नहीं भटकता।

उन्हहि द्वंद्व तहँ खनि एक खाई। दुई दंड महि रही डोलाई॥
लखिबे हित रनु उभयन्हँ केरा। सुर समाज नभ कीन्हेंउँ डेरा॥

उनके इस संघर्ष के कारण उस स्थान पर एक गहरा गड्ढा हो गया और दो घड़ी तक पृथ्वी हिलती रही। उनका युद्ध देखने के लिये आकाश में देवता भी एकत्र हो गए।

गहेउ खलहि आपन भुजदंडा। कीन्ह उरगपति नाद प्रचंडा॥
पुनि सबेग तेहिं मेदिनि पारा। भई पीर तेहिं बपुष अपारा॥

तब दुष्ट जरासंध को अपनी भुजाओं पर उठाकर सर्पों के स्वामी शेषस्वरूप बलरामजी ने भयङ्कर गर्जना की और बड़े वेग से उसे पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे उसके शरीर में अपार पीड़ा हुई।

दोहा- परम क्रुद्ध पुनि दाउँ जब मूसल हाथ भँवाइ।
मर्दन लागे तिन्हँ तबुहि उन्ह भुज धरि हरि धाइ॥९॥

फिर अत्यधिक क्रुद्ध हो दाऊ ने अपने हाथ से मूशल घुमाया और उससे जरासंध को मारनें लगे; किन्तु तभी श्रीकृष्ण ने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया।

चौ.- तब बलधाम खलहि तजि दीन्हा। जयधुनि करत गवन पुर कीन्हा॥
पुरबासिन्हँ प्रसून बरसाए। हरषेउँ राउँ दुहुन्हँ उर लाए॥

तब बलधाम दाऊ ने उसे (जीवित) छोड़ दिया और जयध्वनि करते हुए अपने नगर को चले गये। नगरवासियों ने उन पर पुष्पवृष्टि की और महाराज ने हर्षित हो उन दोनों को अपने हृदय से लगा लिया।

इत जराज अति लज्जित भयऊँ। साधु होन निस्चय हिय ठयऊँ॥
तब तेहिं मित्र राउँ अस बोले। राउ पराभव एकउ डोले॥

इधर अपनी पराजय से जरासंध अत्यधिक लज्जित हुआ और उसने सन्यासी होने का निश्चय कर लिया। तब उसके मित्र राजाओं ने उससे कहा कि हे राजन! आप एक ही पराजय से विचलित हो गए!

जग को जेहिं न पराभव चाखी। इंद्रहि नित न पाव पद राखी॥
प्रबुध जोहि जब अवसर पावहिं। पूरब सम करि अरि पर धावहिं॥

संसार में ऐसा कौन है, जिसनें पराजय का स्वाद न चखा हो? स्वयं इन्द्र भी सदैव ही अपने पद की रक्षा नहीं कर पाता। (इसलिये) बुद्धिमान पुरुष प्रतीक्षा करके जब भी (उचित) अवसर मिलता है, पहले ही के समान तैयारी करके शत्रु पर आक्रमण कर देते हैं।

तेहिं प्रकार तुम बिसरि गलानी। जोहु सुअवसर धीरज ठानी॥
तासु बचन सुनि तेहिं भइ धीरा। करै लाग पुनि कटकु गभीरा॥

उसी प्रकार तुम भी ग्लानी त्यागकर धैर्यपूर्वक उचित अवसर की प्रतीक्षा करो। उनके वचन सुनकर जरासंध को कुछ धैर्य हुआ, तब वह पुनः विशाल सेना सजाने लगा।

परिछित एहिबिधि सतरह बारा। तेहिं मथुरा पर कीन्ह प्रहारा॥
पर प्रतिबार पराभउँ पाई। तप हित बन चलेहुँ अकुलाई॥

हे परीक्षित्! इस प्रकार जरासंध ने सत्रह-बार मथुरा पर आक्रमण किया, किन्तु हर-बार उसकी पराजय ही हुई। इससे व्याकुल होकर वह तप करने का निश्चय करके वन को चल दिया।

चलत पंथ नारद कहँ पाई। उन्ह निरास निज दीन्ह जनाई॥
पुनि कह हरि जे एकउँ बारी। पीठि देइ मोहि होउँ सुखारी॥

चलते समय मार्ग में देवर्षि नारद को पाकर उसने उन्हें अपनी निराशा के विषय में बताया। फिर उसनें कहा कि यदि कृष्ण युद्ध में एक बार भी मुझे पीठ दिखा दे तो मैं सुखी हो जाऊँ।

नृप एक अह मलेछपुर माहीं। कालजवन संज्ञा जिन्हँ आही॥

(तब देवर्षि नारद ने कहा कि) म्लेच्छपुर में एक राजा राज्य करता है, जिसका नाम कालयवन है।

दोहा- **तेइ रनु उभयहुँ जीति सक सो गहु तासु सहाइ।**
खल कह मम दिसि तुमहि मुनि जाहु तासु समुहाइ॥१०॥

केवल वही उन दोनों भाईयों को युद्ध में जीत सकता है, इसलिये तुम उसकी सहायता प्राप्त करो। तब दुष्ट जरासंध ने कहा- हे मुनिराज! मेरी ओर से आप ही उसके सम्मुख जाईये।

चौ.- **नारद तब तेहिं धीर बँधाई। कालजवन पहि गै हरषाई॥**
जवन कहइ करि उन्ह सनमाना। मुनि केहि काज जोग मोहि जाना॥

तब महर्षि नारद उसे धैर्य बँधाकर हर्षित हो कालयवन के पास गए। तब कालयवन ने उनका सम्मान करके कहा कि हे मुनि! कहिये! आपने मुझे अपने किस कार्य के योग्य समझा है।

नारद तब तेहिं लाग सुनाई। जरासंध जस कहा पठाई॥
मथुरा भट भै हरि बलरामा। दुहुँ बालक पर अति बलधामा॥

तब नारदजी उसे वह संदेश सुनाने लगे, जो जरासंध ने उनके हाथ भेजा था। (मुनि बोले-) हे यवनराज! मथुरा में कृष्ण व बलराम नामक दो योद्धा हुए हैं, जो हैं तो बालक, किन्तु बड़े बलवान हैं।

अनि बिसाल करि सतरह बारा। मधुपुर कीन्ह जराज प्रहारा॥
किंतु बार प्रति मुख कइ खाई। फिरन परेउँ उन्हँ प्रान बचाई॥

जरासंध ने सत्रह बार विशाल सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण किया, किन्तु हर बार मुँह की खाकर उन्हें अपने प्राण बचाकर युद्धभूमि से लौटना (भागना) पड़ा।

अब रनु तोहि किए चह संगा। जातें होइ अरिहि बल भंगा॥
कालजवन तब अति हरषाई। मुनिहिं बिदा करि कटकु सजाई॥

अब वे युद्ध में तुम्हें अपने साथ करना चाहता हैं; जिससे कि शत्रु के बल का मर्दन हो सके। तब कालयवन ने अत्यन्त हर्षित हो देवर्षि नारद को विदा करके अपनी सेना सजाई।

पुनि करि दरप मथुर दिसि चलेऊँ। डोलि लागि छिति सागर मचलेऊँ॥
तीन कोटि भट कटकु बटोरा। लग जनु प्रलय झकोर प्रघोरा॥

फिर दर्प करता हुआ वह मथुरा की ओर चला; जिससे पृथ्वी डोलनें लगी और समुद्र मचलनें लगे। उसने अपने साथ तीन करोड़ योद्धाओं की सेना ले रक्खी थी; जो मानों प्रलयकाल की प्रचण्ड लहरों के समान प्रतीत होती थी।

धूमकेतु पुनि दोउँ भै संगा। मथुरहुँ घेरेसि ब्यूह अभंगा॥
समाचार जब पुर अस ब्यापा। प्रभु सन कहा सबनि निज तापा॥

फिर धूमकेतु स्वरूप कालयवन व जरासंध दोनों ही साथ हो गए और उन्होंने मथुरा के किले को अभेद व्यूह में घेर लिया। जब यह समाचार नगरभर में व्याप्त हो गया; तब सबने जाकर भगवान श्रीकृष्ण से अपना दुःख कह सुनाया।

तब गिरिधर कह लखु बलभ्राता। कालजवन आवा दुखदाता॥
अब धौं करिअ काह कहु भाई। तासु त दरसहि पाप अथाई॥

तब गिरिधर ने कहा- हे बलदाऊ भैय्या! देखो तो! दुःखदायक कालयवन हमसे युद्ध करने आया है। हे भैय्या! कहो! अब क्या किया जायँ? क्योंकि उसका तो दर्शन ही महापाप है।

छुएहि जोग सो गोरिपु नाहीं। भए रनु परसि परिहि अज ताहीं॥
चलत जरासुत उत अघधामा। बिप्रन्हँ तें पूछा परिनामा॥

गायों का वह शत्रु तो स्पर्श किये जाने का भी पात्र नहीं है, किन्तु आज यदि युद्ध हुआ तो हमें उसे छूना ही पड़ेगा। उधर महापापी जरासंध ने यहाँ के लिये चलनें से पूर्व ब्राह्मणों से युद्ध का परिणाम पूछा था।

सभय कहा तब बिप्र समाजा। अवसि बिजय तव होइहि आजा॥
आज पराभव जे पुनि पाई। खल कर द्विज सो जाइ बधाई॥

तब उन ब्राम्हणों ने भयभीत होकर उससे कह दिया कि आज अवश्य ही तुम्हारी विजय होगी। अब यदि आज वह पुनः पराजित हो गया, तो वे ब्राह्मण निश्चय-ही उस दुष्ट के हाथों मारे जायेंगे।

बल अस थिति महुँ मम मत एहू। रनु जब जार अदोषन्हँ गेहू॥
तब तजि पनु मिलु अरि तें जाई। अथवा समर तें जाहुँ पराई॥

हे दाऊ! इस परिस्थिति में मेरा मत यह है कि जब युद्ध निर्दोषों के घर भी जलाने लगे; तब या तो अपनी प्रतिज्ञा भूलकर शत्रु से संधि कर लेनी चाहिये अथवा युद्ध छोड़कर भाग जाना चाहिये।

परिथिति लखि उपाय अस सारू। अहि बधाय अरु टूट न दारू॥
इहँ अरि देखे जोग न भाई। तातें प्रस्न न रहेउ मिताई॥

परिस्थिति देखकर कोई ऐसा उपाय किया जाना चाहिये कि जिससे सर्प भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। यहाँ (उपस्थित परिस्थिति में) तो शत्रु देखे जाने के भी योग्य नहीं है; इसलिये संधी का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

सो बिप्रन्हँ हित अज हम भाई। भजिहहिं अरि कहँ पीठि देखाई॥
अस कहि हरि बारिधि सन माँगा। बारह जोजन माधवि भागा॥

अतः हे भैय्या! आज हम उन ब्राह्मणों के हित के लिये शत्रु को पीठ दिखाकर भागेंगे। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने समुद्र से उसके मध्य पृथ्वी का बारह योजन विस्तृत स्थान माँगा।

बिबुधसिल्पि कहँ तदुप बोलाई। तहँ गढ़ सिरजन दीन्हि रजाई॥

तत्पश्चात् विश्वकर्मा को बुलाकर उन्होंने वहाँ एक किले का निर्माण करने की आज्ञा दी।

दोहा- **देअँ थपति प्रमुदित गयउ हरि इच्छा सिरु कीन्हि।**

पुनि उन्ह दुरगम बर नगरि जलधि मध्य सृजि दीन्हि॥११॥

तब भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा सिर चढ़ाकर देवशिल्पी विश्वकर्मा अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक गए और सागर के मध्य उन्होंने एक दुर्गम और सुन्दर नगरी का निर्माण कर दिया।

चौ.- भयउँ द्वारिका नृप तेहिं नामा। सब साधनजुत सो प्रभुधामा॥
त्रय रितु तें अप्रभावित सोई। जलधि माँझ अस पहुँच न कोई॥

हे परीक्षित्! उसका नाम द्वारिका प्रसिद्ध हुआ। भगवान का वह धाम समस्त सुख-सुविधाओं से सम्पन्न था। तीनों ऋतुओं के प्रभाव से मुक्त वह नगर समुद्र के इतना भीतर बसा हुआ था कि जहाँ कोई भी पहुँच नहीं सकता था।

थपति कला सो गढ़हु बिचित्रा। बज्र द्वार चउ कढ़े सुचित्रा॥
सजल गहन तेहिं चहु दिसि खाई। बस जहँ उरग ग्राह अतिकाई॥

उस किले का स्थापत्य-शिल्प अद्भुत था, जिसके वज्र से निर्मित चारों द्वार सुन्दर चित्रों से अङ्कित थे। किले के चारों ओर जल से भरी हुई एक गहरी खाई थी, जिसमें विशाल शरीरवाले सर्प व घड़ियाल निवास करते थे।

अस अति दुर्गम गढ़ चहुओरा। कोट बज्र कर परम कठोरा॥
कनक गृहन्हँ कइ भीतिन्हँ ऊपर। करि मनि बज्र समनबय सुन्दर॥
पच्चिकारिमय बिबिध बिचित्रा। उत्कृत सुर मूरति अरु चित्रा॥

इस प्रकार के अत्यन्त दुर्गम किले के चारों ओर वज्र से निर्मित अत्यन्त कठोर परकोटा था। (नगर के भीतर बनें) स्वर्णनिर्मित भवनों की दीवारों पर मणियों व हीरों का सुन्दर समन्वय करके अनेक प्रकार की पच्चीकारी से युक्त देवताओं की अद्भुत मूर्तियाँ और चित्र उत्कीर्ण किये गए थे

लखे लाग जीवंत सभाऊँ। दृगन्हँ देइ अबिसार प्रभाऊ॥
अस पुर बहु सर बापि तड़ागा। जेहिं भोगहि सम सकल बिभागा॥

जो देखने में जीवंत व भावयुक्त जान पड़ते थे और दृष्टा के नेत्रों को अपना अविस्मरणीय प्रभाव देते थे। ऐसे सौन्दर्य से समृद्ध उस नगर में बहुत से सरोवर, तालाब और बावलियाँ थी; जिनका उपभोग समस्त वर्ग समान रूप से करते थे।

उन्ह जलु प्रतिछिन राख बसाई। थकनिहार मधुमय सितलाई॥
परम रम्य बाटिका मनोहर। बिच बिच करइ नगर कहँ सुन्दर॥

उनका जल प्रतिक्षण थकान हरनेवाली मिठासयुक्त शीतलता लिये रहता था। बीच-बीच में स्थित अत्यन्त रमणीय और मनोहर वाटिकाएँ उस नगर को अधिकाधिक सुन्दर बना रही थीं।

तहँ कलरव गुंजन उल्लासा। झुकि झुकि पर अति मदिर सुबासा॥
हाट बजारु बनिक बहु बैठे। धनिक जिन्हँ बिभव इरिसहुँ ऐठे॥

उन उपवनों में चहचहाते हुए पक्षियों और गुञ्जार करते हुए भौरों के समुदाय वहाँ खिले हुए पुष्पों से उठती हुई धीमी सुगन्ध पर झुक-झुक (आकर्षित) पड़ते थे। नगर के हाट-बाजारों में अनेक व्यापारी बैठे हुए थे, जिनके वैभव पर स्वयं धनाध्यक्ष कुबेर भी ईर्ष्या से ऐंठ जाते थे।

पुर सुस्फीत राजपथु एका। जेहिं तें उमगहि पंथ अनेका॥
उपबन कूप सहित तेहिं कूला। गृह बिश्राम अतिथि अनुकूला॥

नगर में एक पर्याप्त चौड़ा राजमार्ग था जिससे अनेक उपमार्ग निकलते थे। उस मार्ग के दोनों किनारों पर वाटिकाएँ, बावलियाँ और अतिथियों के लिये अनुकूल विश्रामगृह बने थे।

सेन छाउनी कत कत नाना। जासु निकट बहु आयुधखाना॥
राजभवन पुर मध्य सुहावा। जेहिं बिधि केर हृदयँ भरमावा॥

कहीं-कहीं पर अनेक सैन्यछावनियाँ थी, जिनके निकट ही बहुत-से शस्त्रागार बने थे। नगर के बीचों-बीच राजभवन शोभित था, (अपनी सुन्दरता से) जिसनें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के हृदय को भी भ्रमित कर रखा था।

तेहिं सन बहु हय गय गोसाला। जासु बिभव नित नव अरु आला॥
एहिबिधि अरि दुरगम गढ़ भारी। बिबुध थपति सृजि भए सुखारी॥

उसके सम्मुख अनेक गजशालाएँ, घुड़शालें और गौशालाएँ थी, जिनका वैभव नित्य नवीन व अद्भुत बना रहता था। इस प्रकार शत्रु के लिये दुर्गम और महान किला बनाकर देवशिल्पी विश्वकर्मा सुखी हुए।

पुनि फिरि प्रभु कहुँ खबरि सुनाई। सुनतहि अति हरषे दोउँ भाई॥
चंदन केर सवारन काजा। प्रगटेहु तहँ उपकृतन्हँ समाजा॥

फिर लौटकर उन्होंने इसकी सूचना श्रीकृष्ण को दी, जिसे सुनकर वे दोनों भाई अत्यन्त हर्षित हुए। फिर शान्तिस्थापना के लिये प्रवृत्त हुए उन श्रीकृष्ण के कार्यों को सँवारनें के निमित्त वहाँ देवता प्रकट हुए।

दीन्ह अंबुपति स्यामकरन हय। सक्र सुधरमा सभा दइ सनय॥
सभा सो अस गुनमय महिपाला। तामहँ थित नर कहँ सबकाला॥

वरुणदेव ने भगवान को श्यामकर्ण अश्व भेंट किये और देवराज इन्द्र ने विनयपूर्वक सुधर्मा नामक राजसभा दी। हे परीक्षित्! उस सभा का प्रभाव यह था कि उसमें रहते हुए मनुष्य को कभी भी

मृत्यु जरा रुज छुधा पिआसा। इन्हँ ब्याधिन्हँ कर होइ न त्रासा॥
एहि बिधि भेंट भाँति बहु देते। गै निज लोक अए सुर जेते॥

मृत्यु, बुढ़ापा, रोग, भूख और प्यासादि व्याधियों से कष्ट नहीं प्राप्त होता था। इस प्रकार बहुत-सी भेंट सामग्री देते हुए वे सब देवता जो प्रभु के पास आए थे, अपनें-अपने लोक को चले गए।

तदुप माय आपन प्रभु प्रेरी। पुरबासिन्हँ दइ नींद घनेरी॥
पुनि सोवतहि द्वारिकउँ माहीं। सबन्हँ दीन्ह उन्ह सहज पठाहीं॥

तदुपरान्त भगवान ने अपनी माया से समस्त मथुरावासियों को गहरी नींद में सुला दिया। फिर उन्होंने बड़ी-ही सहजता से उन सबको सोते ही में मथुरा से द्वारिका पहुँचा दिया।

तेन्हँ पाछ मथुरहि निधि भारी। दीन्हि द्वारिका माँझ संचारी॥
उदधिनाद सुनि जब सब जागे। परमाचरज निरखि पुर लागे॥

फिर उनके पीछे-पीछे उन्होंने मथुरा की महान सम्पत्ति भी द्वारिका पहुँचा दी। इधर समुद्र की गम्भीर ध्वनि सुनकर जब पुरवासी जागे, तो बड़े ही अचरज से नगर को देखने लगे।

पुनि जब तेहिं अरि दुरगम जानी। हरि महिमा सब लाग बखानी॥

फिर जब उन्होंने उस नगर को शत्रु के लिये दुर्गम पाया, तो वे सब श्रीकृष्ण की महिमा का गान करने लगे।

दोहा- **इहाँ भयउँ भिनुसार जब प्रभु आए पुर द्वार।**
रहे गढ़हि बल तेहिं समय अनुजहि सैन अधार॥१२॥

इधर (मथुरा में) जब सवेरा हुआ, तब भगवान श्रीकृष्ण नगर के द्वार पर आए, उस समय उनका सङ्केत पाकर बलदाऊ किले में ही रुके रहे।

चौ.- **नारद जवनाधिपहिं जस कहा। जरासुतहि अरि बेषु तस रहा॥**
लखि बिचार खल कीन्ह हृदयँ महँ। मगधाधिप अरि अवसि इहइ अह॥

नारदजी ने उस यवनाधिपति को जैसा बताया था, जरासंध के शत्रु उन श्रीकृष्ण का वेष ठीक वैसा ही था। अतः उन्हें देखकर दुष्ट कालयवन ने मन-ही मन विचार किया कि अवश्य यही जरासंध का शत्रु है।

पर यह बिनु रथु आयुध आवा। सोचि तेपि अस रथु तजि धावा॥
बहुरि भयउँ सठ हरि समुहाना। करत बहुत बिधि निज भुजगाना॥

किन्तु यह तो रथ व शस्त्रों के बिना ही आया है, यह सोचकर वह भी रथ से उतरकर दौड़ा। वह मूर्ख अनेक प्रकार से अपने बाहुबल का बखान करता हुआ श्रीकृष्ण के सम्मुख आ गया।

लखि हरि सुमिरि बिबुध बरदाना। तेहिं सन निजहि सभीत जताना॥
पुनि निअरात तेहिं हरि भागे। जवनहि चलेउ पाछ रिस पागे॥

उसे आया देखकर श्रीकृष्ण ने देवताओं के वरदान का स्मरण किया और स्वयं को उसके सम्मुख भयभीत हुआ दिखाया। फिर उसके अधिक निकट आते-ही श्रीकृष्ण वहाँ से भाग चले; तब कालयवन भी क्रोधित हो उनके पीछे दौड़ा।

रे सठ कत भागहि मोहि देखी। मोरेहि कर तव बध कइ रेखी॥
एक बार लरु मोतें आई। समर नीति तोहि देब सिखाई॥

(उसनें कहा-) रे मूर्ख! मुझे देखकर कहाँ भागा जा रहा है? तेरे वध की रेखा मेरे ही हाथों में पड़ी है। एक बार आकर मुझसे युद्ध तो कर! मैं तुझे युद्धनीति सिखा दूँगा।

मोहिं न जरासंध सम जानू। मैं जदुवन हित कठिन कृसानू॥
नृप दुरबाद तेहिं अति कीन्हा। किंतु कान हरि तनक न दीन्हा॥

तुम मुझे जरासंध के समान न समझना, मैं यादवरूपी वन के लिये भयङ्कर दावाग्नि हूँ। हे परीक्षित्! इस प्रकार उसने बहुत से दुर्वचन कहे, किन्तु श्रीहरि ने उन पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

धावत पुनि उन्ह पाछ अराती। गयउ गंदमादन एहिंभाँती॥
तहँ हरि दुरे एकउँ खोहा। जवनाधिप हरषेउँ जब जोहा॥

इस प्रकार उनके पीछे दौड़ता हुआ वह शत्रुरूप कालयवन गन्दमादन पर्वत पर गया। उस पर्वत पर श्रीकृष्ण एक कन्दरा में जाकर छिप गए। जब यवनराज ने यह देखा तो वह हर्षित हो उठा।

खोह नृपति मुचुकंद सुबीरा। सोवत रहेउ समउँ गम्भीरा॥
उन्ह बपु निज अंबर ओढ़ाई। कंदर तिमिर दुरे प्रभु धाई॥

उस कन्दरा में मुचुकन्द नामक एक शूरवीर राजा बड़े ही दीर्घकाल से निद्रमग्न थे। उन्हीं के शरीर पर अपना पीताम्बर ओढ़ाकर श्रीकृष्ण दौड़े और कन्दरा के सघन अन्धकार में छिप गये।

जब मलेछ तहँ खोजत आवा। किन्हहिं बसन करि सोवत पावा॥
पट पहिचानि परेउँ पुनि बोला। भागि समर तें जब मनु डोला॥

फिर जब वह म्लेच्छ खोजता हुआ वहाँ आया, तो उसनें वहाँ किसी को वस्त्र ओढ़े सोता हुआ पाया। फिर उस वस्त्र को पहचानकर वह बोला- जब मन विचलित हो गया तो युद्ध से भागकर

आइ सएहुँ इहँ चरन पसारी। कपटि कुटिल सठ इच्छाचारी॥

तू कपटी, कुटिल और इच्छाचारी कृष्ण यहाँ आकर पैर पसारे सो रहा है!

दोहा- **को उबारि सक अजहुँ तोहि समुख होइ रिस मोर।**
अस कहि कीन्हेंसि नृपति सठ चरन प्रहार प्रघोर॥१३॥

मेरे क्रोध का सामना करके आज तुझे कौन बचा सकता है। हे परीक्षित्! ऐसा कहकर उस मूर्ख ने (उन सोते हुए पुरुष को) बड़े ही जोर से लात मारी।

चौ.- **रहा बज्र सम तासु आघाता। टूटि नींद जरे मुचुकुंद गाता॥**
उन्ह प्रकुपित निज नयन उघारे। देखेहुँ प्रमत सुभट्टहुँ ठारे॥

उसका प्रहार वज्र के समान भयङ्कर था; जिससे राजा मुचुकन्द की निद्रा भङ्ग हो गई और क्रोध के मारे उनके अङ्ग जल उठे। तब उन्होंने भयङ्कर क्रोध करके अपने नेत्र खोले और अपने सम्मुख एक अति उन्मत्त योद्धा को खड़ा पाया।

तेहिं छिन दृग चलि आगि अगाहा। कालजवन कहँ देखत दाहा॥
नृपति सो इच्छबाकु कुल भयऊँ। सुर सहाय अकसर जे गयऊ॥

उसी क्षण उनके नेत्रों से भयङ्कर अग्नि निकली; जिसने कालयवन को देखते-ही देखते भस्म कर दिया। वे राजा मुचुकन्द इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए थे, जो एक बार देवताओं की सहायता के लिये गए थे।

तब उन्ह जुद्ध कीन्ह बहुभाँती। बधे अमित बिबुधन्ह आराती॥
जब षडमुख भै सुरन्हँ सहाई। कहा इंद्र तब देत बिदाई॥

उस समय उन्होंने बहुत प्रकार से युद्ध करके अनेक दैत्यों का वध कर दिया था। फिर जब शिवपुत्र कार्तिकेयजी देवताओं की सहायता के लिये आ गए, तब इन्द्र ने उन्हें विदा करते हुए कहा था कि

नृप तैं अपुनु पराक्रम भारी। राखि पराजय बिबुधन्हँ हमारी॥
अब हरसुत भै अनिप हमारे। तुमहि सरिस बलनिधि अति भारे॥

हे राजन! आपने अपने प्रचण्ड पराक्रम से (अब तक) हम देवताओं की पराजय को टाल रक्खा था; अब कार्तिकेयजी हमारे सेनापति हो गए हैं, जो आप-ही के समान बल के विशाल सागर हैं।

सो तुम बिश्रामहुँ अब राजा। नित्य तोर रिनि बिबुध समाजा॥
चलत कहा नृप उन्ह सिरु नाई। देइअ मोहि एकान्त बताई॥

अतः हे राजन! अब आप जाकर विश्राम कीजिये, यह देव-समाज सदैव ही आपका ऋणी रहेगा। तब चलते समय राजा मुचुकुंद ने इन्द्र को सिर नवाकर कहा कि आप मुझे ऐसा एकान्त स्थान बतलाईये,

जहँ बिश्राम करौं मैं जाई। सक्र दीन्ह गिरि नाउँ सुझाई॥

पुनि कह जे तोहि आइ जगाइहि। तोर दृष्टि परतहि जरि जाइहि॥

जहाँ जाकर मैं विश्राम कर सकूँ। तब इन्द्र ने गन्दमादन पर्वत का नाम सुझा दिया और कहा कि जो भी आपको आकर जगायेगा, वह तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही भस्म हो जाएगा।

तब उन्ह गिरि निदरासनु लीन्हा। जिन्हँ कर हरि जवनहि बध कीन्हा॥

तब वे राजा उस पर्वत पर जाकर सो गए, जिनके हाथों भगवान ने कालयवन का वध करवाया।

दोहा- **तदुप नृपति मुचुकुन्द तें जाइ भेंट हरि कीन्ह।**
पुनि तप हित पठवा उन्हँ मुकुति केर बर दीन्ह॥१४॥

हे परीक्षित्! तदुपरान्त भगवान श्रीकृष्ण ने जाकर राजा मुचुकुन्द से भेंट की और मुक्ति का वरदान देकर उन्हें तप करने के निमित्त भेज दिया।

चौ.- **पुनि तहँ ते हरि मथुरा आए। रहा जरासुत जहँ गरुआए॥**
मनरथ तासु हेरि दुहुँ भाई। भै तिन्हँ सन पुनि चले पराई॥

फिर वहाँ से चलकर श्रीकृष्ण मथुरा लौट आए, जहाँ अभिमान में भरा हुआ जरासंध उपस्थित था। फिर उसके मनोरथ का स्मरण करके वे दोनों भाई उसके सम्मुख होकर भाग चले।

सठहि सहायक लखि तेहिं काला। परिहासत कह लखु महिपाला॥
कादर लाजहीन भय पागे। जात ग्वाल दुहुँ केहि बिधि भागे॥

उस समय उस मूर्ख के मित्र राजा यह देखकर कहने लगे कि हे राजन! देखिये तो! ये दोनों कायर व निर्लज्ज ग्वाले आपके भय से पीड़ित होकर किस प्रकार भागे जा रहे हैं

सुनि लखि सगरुअ सठ हरषावा। कहत भाँति एहिं पाछे धावा॥
रे सठ ग्वाल जाइ कत भाजा। अरिहिं पीठि करि आव न लाजा॥

यह सुनकर और शत्रु को भागते हुए देखकर वह मूर्ख गर्व से हर्षित हो उठा और यह कहता हुआ उनके पीछे दौड़ा कि रे मूर्ख ग्वालों! कहाँ भागे जा रहे हो? शत्रु को पीठ दिखाते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती?

किन्तु न लखेहुँ स्याम तिन्हँ ओरा। तातें ख्यात भए रनछोरा॥
एहिभाँति भागत दुहुँ भाई। अए प्रबरषन गिरि समुहाई॥

किन्तु फिर भी भगवान श्रीकृष्ण ने उसकी ओर देखा तक नहीं; इसी कारण वे रणछोड़ के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार भागते हुए वे दोनों भाई प्रवर्षण पर्वत के सम्मुख आ पहुँचे।

चढ़े बहोरि कुधर जब धाई। तब सठ जय दुंदुभी बजाई॥
तदुप सैनि आपन सेनानी। गिरिहिं चहू दिसि लाहिं लगानी॥

फिर जब वे दौड़कर उस पर्वत पर जा चढ़े; तब उस मूर्ख ने विजय दुन्दुभी बजाई। तदुपरान्त अपने सैनिकों से कहकर उसने पर्वत के चारों ओर आग लगवा दी।

जरे उभय रिपु जब अस ठाना। मथुरहि फिरेउँ करत जयगाना॥
पुरिहुँ सून लखि अचरज पावा। पर जयांध सो घटनि बिहावा॥

भलीभाँति करि तहँ अधिकारा। मगध फिरेहुं हिय हरषि अपारा॥

जब उसे इस बात का निश्चय हो गया कि अब मेरे दोनों शत्रु जल मरे हैं, तब विजयध्वनि करता हुआ वह मथुरा में लौट आया। नगर को सूना देखकर उसे आश्चर्य हुआ, किन्तु विजय के मद में अन्धा होने के कारण उसने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। फिर वहाँ भली-प्रकार अपना वर्चस्व स्थापित करके वह मन-ही मन अत्यधिक प्रसन्न हो मगध आ गया।

इहाँ गुपुत मग एक बनाई। कूदे भूधर तें दोउँ भाई॥
आए नगरु द्वारिकउँ माहीं। हरषे सब उन्ह सकुसल पाई॥

इधर एक गुप्त मार्ग बनाकर वे दोनों भाई उस पर्वत से कूद पड़े और द्वारिका नगरी में आ पहुँचे। उन्हें सुरक्षित लौटे देखकर समस्त यादव हर्षित हुए।

पुरबासिन्हँ समेत नरनाहा। तब पुर कीन्हेंहुँ परम उछाहा॥
सुनु बल प्रनय कथा अब राऊ। संजीबनि सम जासु प्रभाऊ॥

उस समय पुरवासियों समेत उग्रसेनजी ने नगर में महान उत्सव मनाया। हे परीक्षित्! अब आप बलरामजी के विवाह की कथा सुनिये; जिसका प्रभाव सञ्जीवनी के समान है।

अति पबित्र रबिकुल एक बारा। भै रैवत नृप परम उदारा॥
सुता तासु रेवति गुनखाना। भई बिआह जोग उन्ह जाना॥

एक बार परम पवित्र सूर्यवंश में रैवत नामक एक परम उदार राजा हुए। रेवती नाम की उनकी पुत्री जो गुणों की खान थी, उसे जब उन्होंने विवाह के योग्य हुई देखा,

तब रैवत गवने अज पाहीं। नाइ सीस कह पृहा जनाहीं॥
मम सुति जोग कहहुँ बर ऐसा। आन अह न महि जाकर जैसा॥

तब वे राजा रैवत ब्रह्माजी के पास गए और उन्हें सिर नवाकर अपनी इच्छा प्रकट करके कहने लगे- हे परमपिता! मेरी पुत्री के योग्य कोई ऐसा वर बताईये; जिसके समान सम्पूर्ण पृथ्वी पर अन्य कोई न हो।

तब स्वयंभु बोले मुसुकाई। अस नर एक दाउ अहिराई॥
सो निज सुता ताहि परनाई। मंजुल सुजसु लेहुँ नरराई॥

तब स्वयम्भू ब्रह्माजी ने मुस्कुराकर कहा कि ऐसे पुरुष तो एकमात्र शेषावतार बलरामजी ही हैं। अतः राजन! तुम अपनी पुत्री का विवाह उनसे करके पवित्र और सुन्दर कीर्ति अर्जित करो।

दोहा- परिछित तब रैवत मुदित श्रुति अरु कुल अनुहारि।
ब्याहिं बलहि तनुजा निज जुग कुल कीन्ह सुखारि॥१५॥

हे परीक्षित्! तब रैवत ने आनन्दपूर्वक वेदों और अपने कुल की रीति के अनुसार बलरामजी को अपनी पुत्री रेवती ब्याह दी और दोनों कुलों (सूर्यकुल और यदुकुल) को सुखी कर दिया।

चौ.- रुकमिनि कहँ जस हरि भगवाना। अब सुनु नृप सो चरित महाना॥
कुंडिनपुर बस भीष्मक राऊ। जिन्हँ हिय हरि पदरति सतिभाऊ॥

हे परीक्षित्! भगवान श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार रुक्मिणीजी का हरण किया था, अब आप उस महान चरित्र को सुनिये। कुण्डिनपुर नामक नगर में भीष्मक नाम के राजा राज्य करते थे, जिनके हृदय में श्रीकृष्ण-चरणों के प्रति सच्चा प्रेम था।

रुकमाग्रज आदिक बलवाना। रहे पाँच सुत राउ सुजाना॥
पुनि रुकमिनि लच्छिहिं अवतारा। रहि उन्ह सुति छबि जासु अपारा॥

उन सुजान राजा के रुक्माग्रज आदि पाँच बलवान पुत्र थे और महालक्ष्मी की अवतारस्वरूपा रुक्मिणी नाम की उनकी एक पुत्री थी, जो अत्यधिक सुन्दर थी।

नारद मुख सुनि हरि गुनगाना। कुँअरि मनहिं मन उन्ह पति माना॥
इहाँ मुनिहिं मुख सुनि गुन ताके। उन्ह प्रति प्रीति कीन्हि हिय बाँके॥

देवऋषि के मुख से श्रीकृष्ण के गुणों की चर्चा सुनकर राजकुमारी रुक्मिणीजी ने उन्हीं को मन ही मन अपना पति मान लिया था। इधर श्रीकृष्ण ने भी देवऋषि के मुख से रुक्मिणी के गुणों के विषय में सुनकर अपने हृदय में उनके प्रति प्रीति धारण कर ली थी।

बहुरि हृदयँ आपन भगवाना। उन्ह ब्याहन संकलपु बसाना॥
हरि प्रभाउँ नृप भलिबिधि भाना। पुनि सुति जोग उन्हहिं बर माना॥

फिर उन भगवान ने अपने हृदय में उनसे विवाह करने का सङ्कल्प कर लिया। श्रीकृष्ण के प्रभाव को भीष्मक भली-भाँति जानते थे और उन्हें ही वे अपनी पुत्री के लिये उत्तम वर मानते थे।

राय सभा इहि बात बखानी। तब रुकमी बरजेहुँ हठ ठानी॥
पुनि कह तें दोउँ छत्रिय नाहीं। ग्वाल अहहि भटके बन माहीं॥

इसी कारण उन राजा ने राजसभा में भी यही बात कही, तब युवराज रुक्मी ने हठपूर्वक उन्हें रोक दिया और कहा कि वे दोनों भाई क्षत्रिय नहीं, अपितु निरे ग्वाले हैं, जो वन-वन भटकते फिरते थे।

भगिनि जोग तेहिं कहि सिसुपालहि। उपरोहितहि बोलि ततकालहि॥
तेहिं कर उभयन्हँ लगन सोधाई। चेदिदेस कहि खबरि पठाई॥

फिर उसने शिशुपाल को रुक्मिणी के लिये योग्य वर बताकर उसी क्षण पुरोहित को बुलवाया और उसके हाथों उनका लग्न निश्चित कराकर उसने चेदिदेश को इस बात की सूचना भेज दी।

ता कहँ ब्रह्मबान बल राऊ। सो न बिरोधहि कोउँ तेहिं काऊ॥
खबरि पाइ भइ कुँअरि दुखारी। उर भा अनपेच्छित भय भारी॥

हे परीक्षित्! उसे उसके (तूणीर में स्थित) ब्रह्मास्त्र का बल था, इसी कारण कोई भी कभी भी उसका विरोध नहीं करता था। इस समाचार से राजकुमारी रुक्मिणीजी दुःखी हो गई और उनके मन में अनपेक्षित के घट जाने का सघन भय उत्पन्न हो गया।

तब उन्हँ एकौ बिप्र बोलाई। प्रनय पाति हरि हेत पठाई॥

तब उन्होंने एक ब्राह्मण को बुलवाकर भगवान श्रीहरि के पास अपना प्रणय-प्रस्ताव भेज दिया।

दोहा- **द्विज आवा पुरि हरि समुख उन्ह पूजेहुँ सनमानि।**
कारन पुनि आगवन निज भूसुर कहा बखानि॥१६॥

जब वह ब्राह्मण द्वारिका आकर भगवान के सम्मुख पहुँचा; तो उन्होंने उसका सम्मानपूर्वक पूजन किया। फिर उस ब्राह्मणदेवता ने उन्हें अपने आने का कारण समझाकर कहा।

चौ.- **कुँअरि पाति दीन्हिसि पुनि ताहीं। पुलकित स्याम बाँचि लग जाहीं॥**
पातिहुँ लिखा नमन भगवाना। मैं हिय माँझ तुम्हहि पति माना॥

फिर उन्होंने राजकुमारी की पत्रिका उन्हें दे दी; जिसे श्यामसुन्दर पुलकित होकर पढ़ने लगे। पत्रिका में लिखा था कि हे भगवन्! आपको नमन है। मैंने अपने हृदय में केवल आपही को अपना पति माना है।

तव हित मैं अजोग जदुनाहा। तदपि तुमहि तजि आन न चाहा॥
जानउँ मैं न प्रीति कइ रीती। जनि मम हिय गोपिन्हँ सम प्रीती॥

हे यादवेन्द्र! यद्यपि मैं आपके योग्य नहीं हूँ, तथापि आपके अतिरिक्त मुझे कुछ भी अभीष्ट नहीं है। न तो मैं प्रेम के नियम जानती हूँ और न ही मेरे मन में आपके प्रति गोपियों जैसा प्रेम है।

गिरि गुर होइ जथा सिरु ऊपर। छुद्र तृनन्हि धरि राख निरंतर॥
तसहि गरुअ तव ताहिं बिचारी। समुझि लेब मम लघु रस भारी॥

उन्नत होकर भी जिस प्रकार पर्वत अपने शिखरों पर निरन्तर क्षुद्र तिनकों को धारण किये रहता है; वैसा ही आपका भी बड़प्पन है। अतः उसी का विचार करके आप मेरे तुच्छ प्रेम को महान समझ लीजियेगा।

अस करि तव पद मोर सहाई। पथ चलि परिहि आपु अतुराई॥
मम बिआह सिसुपाल सँघाता। हठि कराइ चह मम गुर भ्राता॥

ऐसा करने पर आपके चरण अपने आप उतावली से मेरी सहायता के लिये चल पड़ेंगे। मेरा बड़ा भाई रुक्मी मेरा विवाह हठपूर्वक शिशुपाल से करवाना चाहता है।

सरबग्यहीं बिदित मम ईछा। सो बिनु लीन्हें कवनि परीछा॥
तुरत करिअ प्रभु मम उद्धारा। अब मम प्रान तुम्हार अधारा॥

किन्तु आप सर्वज्ञ को तो मेरी इच्छा विदित ही है, इसलिये बिना किसी प्रकार की परीक्षा लिये, हे प्रभु! तुरन्त ही मेरा उद्धार कीजिये। अब मेरे प्राणों को आपका ही आश्रय है।

लगन तें एक दिनु आगिल आई। करेसु कृतारथ मोहि जदुराई॥

हे यदुराज! लग्न के एक दिन पूर्व ही आकर आप मुझे कृतार्थ कर दीजियेगा।

दोहा- **गढ़ बाहेर मंदिर उमहि तहँ पूजन हित आउँ।**
तबहि हरत मोहि प्रानपिय देहुँ निज हृदयँ ठाउँ॥१७॥

नगर के बाहर गौरी माता का मंदिर है, वहाँ मैं पूजन के निमित्त आऊँगी। तभी मेरा हरण करके हे प्राणप्रियतम! आप मुझे अपने हृदय में स्थान दीजियेगा।

चौ.- मम अंतर बिसवास गभीरा। कीन्हि अकेल किंतु मोहि धीरा॥
सुरति करिअ पिय आपन अंतर। दारुन दुख मम बिगत जनम कर॥

मेरे हृदय में आपके प्रति दृढ़ विश्वास है, किन्तु धैर्य ने मुझे एकाकी कर दिया है। हे प्रियतम! आप अपने अंतर्मन में मेरे विगत जन्म के दारुण दुःख का स्मरण कीजिये।

तिन्हँ एहि जनम पुनि न चहुँ सोधा। जदपि समय सब भाँति बिरोधा॥
भय चिंतउँ तें प्रतिपल मोरी। कटहि बिकल प्रानन्हँ कइ डोरी॥
सूलपूर प्रतिछा पथ तोरा। घाइल धीर जात मिटि मोरा॥

उसे इस जन्म में मैं पुनः नहीं देखना चाहती; यद्यपि समय तो सब प्रकार से मेरे प्रतिकूल ही है। भय और चिन्ता के कारण मेरे व्याकुल प्राणों की डोर प्रतिक्षण कटती जा रही है। मेरे लिये आपकी प्रतीक्षा का पथ कण्टकों से भरा हुआ है, जिससे घायल हुआ मेरा धैर्य मिटा जाता है।

सो मम तममय जीवनु माहीं। अमर पेमु कइ जोति बराहीं॥
चिर परिचित अग्यात प्रानपति। साजु बेगि अइ हिय नव सुरती॥

अतः मेरे इस अन्धकारमय जीवन में अमर-प्रेम की ज्योति जलाकर; हे चिर-परिचित अज्ञात प्राणपति! आप शीघ्र ही आकर मेरे हृदय में नवीन स्मृतियाँ सजा दीजिये।

तव प्रस्थान तें पूरब नाथा। जे मम प्रान तजहि तनु साथा॥
तदपि करन पिय मम परित्राना। आवहुँ अवसि धरे मम ध्याना॥

आपके प्रस्थान करने से पूर्व ही यदि मेरे ये प्राण मेरे शरीर का साथ छोड़ दे, तब भी हे प्रियतम! मेरा ध्यान करके मेरा उद्धार करने के लिये आप यहाँ अवश्य आईयेगा।

जोहत स्वास बिहर लहि पीरा। सँवटि लाइ हिय देहेसु धीरा॥
तोर बिरहु तनु तजौं बिषादू। तदपि गनौं एहिं पेमु प्रसादू॥

प्रतीक्षा करते हुए यदि वेदना से आहत हो मेरी स्वासें बिखर जायँ, तो आप उन्हें समेंटकर अपने हृदय से लगाते हुए धैर्य बँधा देना। आपके विरह में विषादग्रस्त हो यदि मैं अपने प्राण त्याग दूँ, तो इसे भी मैं (आपके प्रति) अपने प्रेम का प्रसाद ही मानूँगी।

दृग जब लौ तव पद न पखारहि। उघरे तब लौ पंथ निहारहि॥

मेरे नेत्र जब तक आपके चरण नहीं पखार लेंगे, तब तक वे खुले रहकर प्रतीक्षा करते रहेंगे।

दोहा- देबि न मैं प्राकृत तिय अधिर चिंत भय मोहिं।
बिनय पत्रिका रुकमनिहिं ज्यों पढु चलि परु त्योहिं॥१८॥

हे प्रभु! मैं कोई देवी नहीं हूँ, मात्र एक साधारण स्त्री हूँ; इसलिये मेरे मन में अधीरता, चिन्ता व भय बना हुआ है। ज्यों ही आप इस रुक्मिणी की विनयपत्रिका पढ़ें, त्यों ही चल पड़ियेगा।

चौ.- इहइ बिनय भगतन्ह दुखहारी। जनम जनम के चेरि तिहारी॥
पढ़ि हरि अंतर उमगि अपारा। झिर झिर करत प्रीति कइ धारा॥

हे भक्तों के दुःखहर्ता! यही विनय। जन्म-जन्मान्तर से आपकी सेविका रुक्मिणी। इस पत्रिका को पढ़ते ही श्रीकृष्ण के अंतःकरण में झिर-झिराती हुई प्रेम की धारा फूट पड़ी।

उन्ह प्रति भाउँ परस तिन्ह पाई। सादर पातिहुँ लग उर लाई॥
बिप्र रुकमिनिहिं तें मम नाता। काल सींवगत जग प्रख्याता॥

उनका प्रत्येक भाव प्रेमरूपी उस धारा का स्पर्श पाकर पत्रिका को आदरपूर्वक हृदय से लगानें लगा। तब श्रीकृष्ण ने कहा- हे विप्रदेव! रुक्मिणी से मेरा नाता समय की सीमाओं से परे और संसारभर में सुप्रसिद्ध है।

पुनि नारद मोहि जब तें आई। सो नातउ कइ सुरति कराई॥
तब तें मम अंतर हुलसानी। बर लालसा गहन तिन्ह पानी॥

और जब से देवर्षि नारदजी ने आकर मुझे उस सम्बन्ध का स्मरण कराया है, तभी से मेरे अंतःकरण में भी उनका पाणिग्रहण करने की उत्तम कामना उमड़नें लगी है।

तातें बस जे उन्ह हिय माहीं। बेगि आइ मैं पुरवहुँ ताहीं॥
द्विजबरु अब उन्ह चिंत बिहाई। अतिथि भवन बिश्रामहुँ जाई॥

इसलिये जो अभिलाषा उनके मन में बसी हुई है, उसे मैं शीघ्र ही आकर पूर्ण करूँगा। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! अब आप उनकी चिन्ता त्यागकर अतिथिगृह में जाकर विश्राम कीजिये।

प्रातकाल मैं तोहि करि साथा। अवसि चलउँ गहिबे तिन्ह हाथा॥
दारुक बोलि भए भिनुसारा। सँजवा रथ निज तेज अपारा॥

सवेरा होने पर आपको साथ लेकर, मैं अवश्य ही रुक्मिणी का पाणिग्रहण करने चलूँगा। तत्पश्चात् सवेरा होने पर भगवान ने अपने सारथी दारुक को बुलाकर अपना अपार तेजयुक्त रथ सजवाया।

दोहा- सुमनि खचित रथ हेम कर झहरहिं मुकुता हार।
चपल चारि हय जोतेहुँ बेग जासु जनि पार॥१९॥

सुन्दर मणियों से सुसज्जित उस स्वर्णरथ में मोतियों की मालाएँ लहरा रही थी। उसमें चार चञ्चल अश्व जोते गए थे, जिनकी गति का कोई पार नहीं था।

चौ.- रथ पर प्रथम कृष्न करि पानी। द्विज कहँ बैठानेहुँ सनमानी॥
हरषि चढ़े पछि सुजन अधारा। रुकमिनि केर करन उद्धारा॥

फिर भगवान ने अपना हाथ बढ़ाकर सर्वप्रथम ससम्मान ब्राह्मणदेव को रथ पर बैठाया। तत्पश्चात् रुक्मिणी का उद्धार करने के निमित्त सज्जनों के आधाररूप वे भगवान स्वयं रथ पर चढ़े।

समाचार जब अहिपति पाए। समर संक अनि चले जुड़ाए॥
दूसर दिनु बिहान भए स्यामा। पहुँचे पुहुपनिबासिनि धामा॥

जब दाऊ ने यह समाचार पाया, तो युद्ध की सम्भावना से आशङ्कित हो वे भी सेना लेकर (उनके पीछे) चल पड़े। दूसरे दिन सवेरा होने पर श्रीकृष्ण कमलवासिनी रमास्वरूपा रुक्मिणीजी के नगर कुण्डिनपुर आ पहुँचे।

राजबिपिन उन्ह कीन्हेंहुँ डेरा। जिन्हँ लतिकन्हँ रुच जुबा सवेरा॥
अगवन निज जनाइबे हेतू। पठवा द्विजहि हरषि खगकेतू॥

वे उस समय जाकर राजवाटिका में ठहरे, जिसकी लताओं पर तरुण प्रभात शोभित था। फिर रुक्मिणीजी को अपने आगमन की सूचना देने हेतू उन गरुड़ध्वज ने हर्षित हो विप्र को उनके पास भेजा।

इहाँ आलि कुँअरिहि अन्हवाई। लागिसि भूषन बसन धराई॥
सजि बरात आवा तेहिं काला। नृप दमघोषतनय सिसुपाला॥

इधर सखियाँ राजकुमारी रुक्मिणीजी को स्नान कराकर वस्त्र और आभूषण धारण करवानें लगी। हे परीक्षित्! उसी समय बारात सजाकर दमघोषनन्दन शिशुपाल भी वहाँ आ पहुँचा।

तेहिं तन पीत पटम्बर जामा। पुरट मुकुट सिरु सोह ललामा॥
होत बरातहुँ मंगलगाना। बाजहि मधुर बाजने नाना॥

उसके शरीर पर पीला रेशमी जामा और सिर पर सोने का सुन्दर मुकुट सुशोभित था। उसकी बारात में मङ्गलगीत गाए जा रहे थे और अनेक प्रकार के बाजे मधुर ध्वनि से बज रहे थे।

ते सठ कुंजर चढ़ि तहँ आवा। चहुँ दिसि राजसमाज सुहावा॥
जरासंध सालव चर संगा। सहित बिदूरथ पुंडर बंगा॥

वह मूर्ख हाथी पर आरूढ़ होकर वहाँ आया, उसके चारों ओर उसका राजसमाज शोभित था। विदूरथ व अर्द्धपागल पौण्ड्रक सहित जरासंध और शाल्व उसके साथ चल रहे थे।

लखि भीष्मक गुर सँग अनमानी। चले करन बरात अगवानी॥

यह देखकर राजा भीष्मक अनमने होकर गुरुजनों के साथ बारात की अगवानी करने चले।

दोहा– **जातहि दूलह कहँ हरषि पूजेहुँ सहित बरात।**
पुनि लै गै जनवास उन्हँ सघन निसान बजात॥२०॥

उन्होंने जाते ही दूल्हा बने शिशुपाल का बारात सहित पूजन किया। फिर वे सघन ध्वनि से डङ्का बजवाकर बारातियों को जनवासे में ले गये।

चौ.– **पृथक पृथक तिन्ह राखि महीसा। पुनि गै भवन सुमिरि जगदीसा॥**
इत जब पियहि सुधि न कछु पाई। रुकमिनि चिंत परम अकुलाई॥

उन सबको अलग-अलग ठहराकर जगदीश्वर भगवान श्रीहरि का स्मरण करके राजा अपने भवन को चले गए। इधर जब प्रियतम श्रीकृष्ण के आगमन की कोई सूचना नहीं मिली, तो राजकुमारी रुक्मिणीजी चिन्ता से अत्यन्त व्याकुल हो उठी।

अब लौ सुधि न लीन्ह पिय मोरी। मम महुँ अवसि पाइ कछु खोरी॥
तबहि त अब लौ द्विज जनि आए। इहइ बिचारि नयन जलु छाए॥

प्रियतम ने अब तक मेरी कोई सुध नहीं ली; अवश्य ही उन्होंने मुझमें कोई दोष देखा होगा। तभी तो वे ब्राह्मणदेवता भी अभी तक नहीं लौटे। यही विचारकर उनके नेत्रों में जल भर आया।

हा पृह नाहिं सपुन मोहि जासू। होइ रहेउ पूजन गृह तासू॥

पुनि जेहिं राखेउ हृदयँ बसाए। प्रनतपाल सो अबहि न आए॥

हा! जिसकी मुझे स्वप्न में भी कामना नहीं है, उसका तो मेरे घर पूजन हो रहा है और जिन्हें मैंने अपने हृदय में बसा रखा है, वे शरणागत का पालन करनेवाले श्रीकृष्ण अब तक नहीं आए।

हा मम हित अज अज भा बामा। सचुप उमासंकर सुखधामा॥
पुनि करिबदनु बदनु निज फेरा। अब सबदिसि भा जिवन अंधेरा॥

हा! आज विधाता मुझसे विपरीत हो गये, भगवान उमाशङ्कर भी चुप हैं और भगवान गजानन ने भी मुझसे मुँह मोड़ लिया। अब मेरे जीवन में सब ओर से अन्धकार छा गया है।

एहिबिधि चिंतति राजकुमारी। पियहि जोहि रहि भवन अटारी॥
एतनेहुँ बाम अंग फरकाने। मनहुँ लगे पिय अगवन गाने॥

इस प्रकार चिन्ता करती हुई रुक्मिणीजी अपने भवन की अटारी पर चढ़कर प्रियतम की बाट जोह रही थीं। इतनें में ही उनके बाएँ अङ्ग फड़क उठे, मानों वे प्रियतम के आगमन की सूचना दे रहे हों।

जामिक कइ आयसु तब पाई। बिप्र कुँअरि तें भेंटेहुँ आई॥
तेहिं रमेस आगवन बखाना। सहित जे पनु उन्ह हृदयँ जुड़ाना॥

तभी द्वारपाल की आज्ञा पाकर दूतरूपी वे ब्राह्मण राजकुमारी से आकर मिले और उन्होंने उन्हें रमानिवास भगवान के आगमन सहित उनके द्वारा लिये गए सङ्कल्प की बात कह सुनाई।

सुनि आपन सुराज अनुमानी। रुकमिनि पुलकि परम सुखमानी॥
कृपादृष्टि तें द्विजहिं निहारी। कमला दीन्हिसि संपति भारी॥

उनकी बात सुनकर और अपना मनोरथ पूरा होता हुआ जानकर रुक्मिणीजी सघन सुख के अनुभव से पुलकित हो उठीं। फिर उन्होंने कृपादृष्टि से देखकर उन ब्राह्मणदेवता को महान सम्पदा प्रदान की।

पुनि तहँ तें द्विज नृप पहि गयऊ। कहा त्रिपुरपति अगवन भयऊँ॥

फिर वहाँ से चलकर वे ब्राह्मण राजा भीष्मक के पास गए और उन्हें कहा कि (आपके यहाँ) त्रिलोकीनाथ भगवान श्रीकृष्ण का आगमन हुआ है।

दोहा- **तब भीष्मक गहि भेंट बहु अरपे हित सुखधाम।**
चारिउँ लघु सुत संग करि उमगि चले रसु दाम॥२१॥

तब राजा भीष्मक ने उन सुखधाम को अर्पित करने के लिये बहुत प्रकार की भेंट सजा ली और अपने चारों छोटे पुत्रों को साथ करके प्रेम की डोर में बँधे हुए वे उमड़ चले।

चौ.- **हरषि भेंटे भाउँ निज राजा। कुसल पूछि पुनि सहित समाजा॥**
भयउँ कृतारथ दरसन तोरे। तुमहि बिदित प्रभु जे हिय मोरे॥

उन राजा ने प्रसन्नमन से भगवान को अपनी भावनाएँ भेंट की और समाज सहित उनकी कुशल पूछी। (फिर उन्होंने कहा-) हे भगवन्! आपके दर्शन से मैं धन्य हो गया। मेरे हृदय में जो है, उसे तो आप जानते ही हैं।

अधिक काह कउँ तुम सन नाथा। पुनि पद परसे तनयन्हँ साथा॥
एतनेहुँ कामपाल तहँ आए। अगनित हय गय कटकु सजाए॥

इसलिये हे नाथ! आपसे अधिक क्या कहूँ? फिर उन्होंने पुत्रों सहित उनका चरणस्पर्श किया। इतनें में ही हाथी, घोड़ों से युक्त अनेक प्रकार की सेना साथ लिये कामपाल बलराम वहाँ आ गए।

गै नृप करि उत्तम अगुआई। पुर निरखन निकसे दोउँ भाई॥
समाचार पुरबासिन्हँ जाने। दरसन हित जहँ तहँ उमगाने॥

राजा उत्तम रीति से उनका स्वागत करके जब लौट गए, तब वे दोनों भाई नगर दर्शन हेतू निकले। जब नगरवासियों को यह समाचार मिला तो उनके दर्शन पानें के लिये वे जहाँ-तहाँ उमड़ पड़े।

हरि सुकंध पटपीत सुचारू। कर बाँसुरि उर मनिमय हारू॥
रेवतिरमन कटिहुँ पट नीला। भुज प्रलंब अतुलित बलसीला॥

भगवान श्रीकृष्ण के भव्य कन्धों पर बड़ा ही सुन्दर पीताम्बर, हाथों में मुरली और छाती पर मणियों की मालाएँ शोभित थी। रेवतीरमण बलरामजी की कमर में नीले रङ्ग का दुपट्टा बँधा था और उनकी लम्बी भुजाएँ अतुलनीय बल से पूर्ण थी।

पुर निरखत बिचरहि दुहुँ भाई। हरषे लखि उन्हँ लोग लोगाई॥
ते कह नव घन सुषमा जिन्हँ अँग। रुकमिनि जोग बिआहे उन्हँ सँग॥

वे दोनों भाई नगर की शोभा देखते हुए चल रहे थे, उनका दर्शन पाकर नगर के स्त्रीपुरुष हर्षित हो उठे। उन नगरनिवासियों ने कहा कि जिनके अङ्गों पर नवीन मेघ का सौन्दर्य शोभित है, राजकुमारी रुक्मिणी उन्हीं के साथ ब्याहे जाने योग्य है।

जे अज अज कछु करइ सहाई। रुकमिनि धन्य होहिं इहिं पाई॥
निरखि प्रदोष फिरे दुहुँ भ्राता। सहज कृपालु सुजन सुखदाता॥

जो यदि आज ब्रह्माजी कुछ सहायता कर दें, तो रुक्मिणी इन्हें पाकर धन्य हो जायँ। फिर संध्या हुई जानकर सहज ही कृपा करनेवाले व सज्जनों को सुख देनेवाले वे दोनों भाई लौट गए।

हरि आगवन रुक्मि इत जाना। जातहि पितु पहि कहेहुं रिसाना॥
कहिअ सत्य पितु तें दोउँ ग्वाला। रहे काह करि इहँ एहि काला॥

इधर जब रुक्मी को ज्ञात हुआ कि कृष्ण भी यहाँ आए हैं, तो उसनें जाते ही अपने पिता से क्रुद्ध होकर कहा- हे तात! सत्य-सत्य कहिये! वे दोनों ग्वाले इस समय यहाँ क्या कर रहे हैं?

राउँ कहा सुत मैं न बोलावा। तब सिसुपाल पाहिं सठ आवा॥

तब भीष्मक ने कहा कि हे वत्स! उन्हें मैंने नहीं बुलवाया; तब मूर्ख रुक्मी शिशुपाल के पास पहुँचा।

सो.- सुनि तिन्हँ मुख यह बात जरासंध आदिक नृपति।
भय पाएहुँ अग्यात मनहिं माँझ भै चिंतित॥२२॥

उसके मुख से कृष्ण-विषयक यह समाचार सुनकर जरासंधादि एक अज्ञात भय से मन-ही मन चिंतित हो उठे।

चौ.- जरासंध पुनि कह अकुलाना। जेहिं मैं भीषन अगिनि जराना॥
ते कस जिअत रहे हर जाने। कहिं न उपद्रव कछु इहँ ठाने॥

फिर जरासंध अकुलाकर कहने लगा कि जिन्हें मैंने भीषण अग्नि में जला दिया था, "वे कृष्ण और बलराम जीवित कैसे बच गए यह तो शिव ही जाने! कहीं वे यहाँ कोई उपद्रव न खड़ा कर दे!

सुनत बिदूरथ कह गरुआई। बृथहि चिंत तोरे हिय छाई॥
ते भिरिहहिं जे हम तें आजा। अवसि बाँधिहहिं सहित समाजा॥

यह सुनते ही विदूरथ ने गर्वित होकर कहा- हे राजन! तुम्हारे हृदय में व्यर्थ चिन्ता छाई है। यदि आज वे हमसे युद्ध करेंगे, तो हम उन्हें समाज सहित बन्दी बना लेंगे।

तदुप नृपति जब भा भिनुसारा। कुँअरि संग करि सखिन्हँ अपारा॥
गौरिहि पूजन चलि हरषाई। रच्छक सँग चर ब्यूह बनाई॥

हे परीक्षित्! तदुपरान्त जब सवेरा हुआ, तब राजकुमारी रुक्मिणीजी बहुत-सी सखियों को साथ लिये हर्षित हो गौरीपूजन के लिये चली। उस समय सैनिक व्यूह बनाकर उनके साथ-साथ चल रहे थे।

रमा सोह कस अलिगन संगा। पुरइनि सँग जनु अलि बहुरंगा॥
पुनि जब अइ ते गिरिजहि मंदर। कह जोरे कर सरसिज सुन्दर॥

सखियों के साथ वे रुक्मिणीजी किस प्रकार शोभा प्राप्त कर रही हैं; जैसे अनेक रङ्ग की भ्रामरियों के साथ कोई कमलिनी शोभित हो। फिर जब वे गौरी माता के मंदिर में आईं, तो अपने सुन्दर करकमलों को जोड़कर बोलीं-

भगत कमलबन बाढ़निहारी। आपु हर दयहि फलवति क्यारी॥
चिंत महिष पुनि घेरेहुँ मोही। तव बिनु तासु दलन कस होहीं॥

(हे भगवती!) सत्पुरुषरूपी कमलवन को बढ़ाने के लिये आप शिवजी की दयारूपिणी उपजाऊ क्यारी हैं। चिन्तारूपी महिषासुर ने पुनः मुझे घेर लिया है और आपके बिना उसका नाश कैसे हो सकता है?

निज दुखि आस धरउँ पद तोरे। पुरवहुँ मातु मनोरथ मोरे॥

अपनी दुःखी आशा को मैं आपके चरणों पर रखती हूँ, हे माता! मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।

छन्द- मोरे मनोरथ निज अपूरनतउँ तें अति चिंतित भए।
परब्रह्म मिल पति रूप तब तें लहहिं आनँदु नित नए॥
सो देहुँ मोहि उन्ह पद कमल आश्रय सुखद संकर प्रिये।
सिरु नाइ करि पुनि दंडवत अति बिनय कर आरति लिये॥

हे माता! मेरे मनोरथ अपनी अपूर्णता के अनुभव से अत्यन्त चिन्तित हो उठे हैं। जब परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण मुझे पतिरूप में प्राप्त होंगे, तभी वे नित्य नये आनन्द प्राप्त कर सकेंगे। अतः हे शिवप्रिया! आप मुझे उनके चरणकमलों का सुखदायक आश्रय प्रदान कीजिये। फिर उन्होंने सिर नवाकर दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ में आरती लिये अत्यन्त विनय करने लगी।

सो.- अरपे भूषन हार दीप धूप अच्छत सहित।
हिय तम मेटनिहार तब भवानि सुभ सकुन दए॥२३॥

फिर रुक्मिणीजी ने उन गौरी माता को धूप, दीप व अक्षत सहित आभूषण और मालाएँ अर्पित की। तब उन माता भवानी ने उन्हें हृदय की निराशा को मिटानेवाले शुभ शकुन दिये।

चौ.- मंदिर जुरि तब बहु द्विजनारी। देत असीष ताहि मुद भारी॥
राधापति मिल तोहि पतिरूपा। कीति बढ़हि तव अमल अनूपा॥

तभी मंदिर में अनेक ब्राह्मणपत्नियाँ आई और बड़े-ही आनन्द से उन्हें आशीर्वाद देने लगीं। (वे बोलीं-) हे राजकुमारी! राधावल्लभ श्रीकृष्ण तुम्हें पतिरूप में प्राप्त हों और तुम्हारी निर्मल व अनुपम कीर्ति बढ़ती रहे।

अरुँधति सम लहु सत्य पुनीता। छमा सुभाय रहे सम सीता॥
बिभव होइ नित सचि के जैसा। राधा सम लहु पेमु बिसेषा॥

(अत्रिपत्नि) अरुन्धति के समान तुम पवित्र सतीत्व प्राप्त करो, तुम्हारे स्वभाव में पृथ्वीपुत्री सीता की-सी क्षमाशीलता रहे, इन्द्रपत्नि शचि के समान तुम नित्य वैभवशालिनी बनी रहो और वृषभानुनन्दिनी राधा के समान तुम्हें (पति का) विशेष प्रेम प्राप्त हो।

ध्रुअ सम अचल रहे अहिवाता। पाहु श्रवन सम सुत सुखदाता॥
हरषि रमा अस आसीष पाई। मंदिर तें पुनि बाहेर आई॥

तुम्हारा सुहाग ध्रुव के समान अचल रहे और तुम श्रवणकुमार जैसा पुत्र प्राप्त करो। इस आशीर्वाद को पाते ही रुक्मिणीजी हर्षित हो उठी और मंदिर से बाहर आई।

तममय छितिजहुँ देन बिकासा। बढ़हि भाँति जस भानु प्रकासा॥
मरिचिन्हँ जुत हिय बिनसन तापा। पूरनता बढ़ जस करि दापा॥

अन्धकारमय क्षितिज को उत्कर्ष प्रदान करने के लिये उसकी ओर जैसे सूर्य का प्रकाश बढ़ता है; कामनाओं से भरे हुए हृदय का ताप मिटाने के लिये उसकी ओर जैसे पूर्णता गर्वित हुई-सी बढ़ती है

सघन जुझाइनि धीरज देखी। तेहिं दिसि बढ़ जस जय कइ रेखी॥
रथ गति सोउ बिसेषता लाई। आवत केउ उन्ह परेहुँ लखाई॥

और कठिन सङ्घर्ष के धैर्य को देखकर जैसे उसकी ओर विजय की रेखा बढ़ती है, अपने रथ की गति में ठीक वैसी ही विशेषता लिये हुए उस समय उन राजकुमारी को कोई आता दिखाई दिया।

सखि हरषी हरि धुज पहिचानी। कुँअरिहि कर गहि कह मृदुबानी॥
नव बसंत निज बिभउ लुटाई। जस उपबन छबि देत बढ़ाई॥

भगवान श्रीहरि के ध्वज को पहचानकर एक सखि हर्षित हो रुक्मिणीजी का हाथ पकड़कर कोमल वाणी में कहने लगी कि उपवन पर अपना वैभव लुटाकर जिस प्रकार नवीन वसंत उसकी सुन्दरता को बढ़ा देता है,

तस तुम्हार मुद बाढ़निहारा। आवत रथु चढ़ि नंदकुमारा॥
एतनेहुँ कान्हँ प्रबिसि कटकाई। पहुँचे चिर प्रेयसि समुहाई॥

ठीक वैसे ही आपके आनन्द को बढ़ानेंवाले वे नन्दलाल रथ पर चढ़कर आ रहे हैं। इतनें में ही श्रीकृष्ण अङ्गरक्षकों के समूह में प्रवेश करके अपनी चिरप्रेयसि के सम्मुख आ पहुँचे।

दोहा- **रुकमिनि बाढ़ेहुं हाथ निज पिय दिसि अति सकुचाहिं।**
बाढ़ि बाम कर स्याम तेहिं स्यंदनु लीन्ह चढ़ाहिं॥२४॥

रुक्मिणीजी ने अत्यन्त सकुचाकर प्रियतम श्रीकृष्ण की ओर अपना हाथ बढ़ाया, तब श्यामसुन्दर ने अपना बायाँ हाथ बढ़ाकर उन्हें रथ पर चढ़ा लिया।

चौ.- **केहरि सम चितवत चहुओरा। बिजय संखधुनि कीन्हि प्रघोरा॥**
बहुरि बिलोकत भटन्हँ अपारा। चले कान्हँ करि चाप टँकारा॥

फिर सिंह के समान चारों ओर देखते हुए उन्होंने विजय सूचक सघन शङ्खध्वनि की। फिर उस अपार रक्षक समूह के देखते हुए ही श्रीकृष्ण अपने धनुष को टङ्कारकर चले।

लखि जादव अरु बिबुधन्हँ केरे। बजे बाजने संग घनेरे॥
बरषहिं सिद्ध सुमन हरषाई। नारद हरि जसु लागेसि गाई॥

यह देखकर यादवों व देवताओं के नगाड़े सघन ध्वनि से एक साथ बज उठे। सिद्धगण हर्षित होकर पुष्पवर्षा करने लगे और देवर्षि नारद भगवान का सुन्दर यश गाने लगे।

तदुप भ्रात दुहुँ सेन फिराए। चले द्वारिका हिय हरषाए॥
खरभर भा रच्छक कटकाई। अब धौं रुक्मि करिहिं का भाई॥

तदुपरान्त दोनों भाई अपनी सेना को लौटाकर हर्षित हो द्वारिका के लिये चले। इधर रक्षकों की टुकड़ी में खलबली मच गई कि हे भाई! युवराज रुक्मी अब न जाने क्या करेंगे?

खल जब कुँअरि हरन सुनि पाए। जानि पराभउ परम लजाए॥
पुनि गहि गहि आयुध करि क्रोधा। धाए करन खलारि बिरोधा॥

जब जरासंधादि दुष्टों ने रुक्मिनी हरण का समाचार सुना, तो वे इसे अपनी पराजय समझकर अत्यंत लज्जित हुए। फिर वे सब अपने शस्त्र ले-लेकर क्रुद्ध हो उन दुष्टहन्ता को रोकनें के लिये दौड़े।

मनहुँ भानु प्रति अनखन लागी। छुटे खदोत परम रिस पागी॥
राजन जब न चलहिं केउँ जुगुती। खिसी मारजरि खंबउँ लोचति॥

मानों सूर्य से प्रतिस्पर्धा करने के लिये जुगनू अत्यन्त क्रुद्ध होकर दौड़े हों। हे परीक्षित्! जब कोई भी युक्ति काम नहीं आती; तब खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचनें लगती है।

सठन्हँ कीन्हि सँग अनि अति भारी। पाछ जाइ लग दुहुन्हँ पचारी॥

रमहि सभय लखि कह गिरिधारी। बृथा प्रिये तुअ चिंतति भारी॥

उन मूर्खों ने अपने साथ बड़ी भारी सेना ले ली और पीछे से जाकर उन दोनों भाईयों को ललकारनें लगे। रुक्मिणीजी को भयभीत देखकर श्रीकृष्ण ने कहा- हे प्रिये! तुम व्यर्थ में ही इतना अधिक चिन्तित हो रही हो।

दोहा- सहज जीति सब खलन्हँ अज तोहि निज गृह लै जाउँ।
पुनि श्रुति सम्मत कुल समुख तुम्ह तें करब बिआउँ॥२५॥

आज इन सब दुष्टों को सहज ही में जीतकर मैं तुम्हें अपने घर ले जाऊँगा और वहाँ अपने कुल के लोगों के सम्मुख शास्त्रसम्मत विधि से तुमसे विवाह करूँगा।

चौ.- ऐतनेहुँ रिपु अनि परम रिसाई। प्रलय बारिदन्हँ सम चढ़ि आई॥
लखि हरि कर सारंग सँभारा। पनच ताड़ि करि कठिन टँकारा॥

इतनें में ही शत्रु-सेना अत्यन्त क्रोध करके प्रलय कालीन मेघों के समान चढ़ आई। यह देखकर भगवान ने अपने हाथ में सार्ङ्ग धनुष सम्भाला और प्रत्यञ्चा को खीचकर कठोर टङ्कार की।

सुनतहि अरिदल भयउँ सभीता। खसे सस्त्र भा साहसु रीता॥
हरि छारे नाराच कठोरा। तानि श्रवन लगि धनुष प्रघोरा॥

जिसे सुनते-ही शत्रुसेना भयभीत हो उठी, उनके हाथों से शस्त्र गिर पड़े और उनका साहस जाता रहा। फिर भगवान ने अपने प्रचण्ड धनुष को कानों तक खींचकर कठिन बाण छोड़े।

भाउ बेग जस दारुन पावत। सिरन्हि माँझ अति सोनित धावत॥
अनिल तें करत अनख अरि धारी। तसहि चले सर प्रलयंकारी॥

जिस प्रकार भावानाओं के प्रबल आवेग से शिराओं में बहता हुआ रक्त अत्यन्त वेग से दौड़नें लगता है, ठीक उसी प्रकार उनके प्रलय उत्पन्न करनेवाले बाण पवन से प्रतिस्पर्धा करते हुए शत्रु सेना की ओर चले।

आवत लखि उन्ह डरपत बीरा। चले भाजि अति होइ अधीरा॥
इत हल गहि बल कस करि क्रोधा। अरिहि भटन्हँ कर कीन्ह बिरोधा॥

उन बाणसमूहों को अपनी ओर आता देखकर भयभीत हुए शत्रुसैनिक अकुलाकर भाग छूटे। इधर हल उठाकर बलरामजी ने क्रुद्ध हो उन भागते हुए वीरों को किस प्रकार रोक लिया,

सोनभद्र उत्ताल तरंगहि। परि रुध जस प्रबाह घन गंगहि॥
तब रोहिनिसुत बल लघु भाई। नाउँ जासु गद अरि दुखदाई॥

जिस प्रकार सोणभद्र नद्य की उत्ताल तरङ्गें गिरकर गङ्गा के भयङ्कर प्रवाह को रोक लेती है। तभी रोहिणीजी के पुत्र व बलरामजी के अनुज जिनका नाम गद था और जो शत्रुओं को दुःख देनेवाले थे,

प्रबिसि अरिहि दल दल तेहिं कैसे। कठिन दाव दह बन कहँ जैसे॥
कटे रिपु कबच उन्हँ सर लागे। तजि आयुध तब तें सब भागे॥

शत्रुसेना में जा घुसे और उसे कैसे नष्ट करने लगे; जैसे कठिन अग्नि वन को जला देती है। उनके बाणों के आघात से शत्रुओं के कवच कट गए, तब शस्त्र छोड़कर वे सब भाग छूटे।

भुज अरु पद पदचारन्हँ केरे। कटि कटि धूरि मिलहिं सर प्रेरे॥
सालवँ निज अनि ब्याकुल पाई। धावा प्रकुपित गदा उठाई॥

उन बाणों से पदातियों की भुजाएँ व चरण कट-कटकर धूल में मिलनें लगे। जब साल्व ने अपनी सेना को व्याकुल हुई देखा तो वह अत्यधिक क्रुद्ध हुआ और गदा लेकर दौड़ा।

रथु चढ़ि गद उर कीन्ह अघाता। फिरि गद तुरत कीन्ह प्रतिघाता॥

फिर गद के रथ पर चढ़कर उसने उनकी छाती पर गदा से आघात किया। तब गद ने भी पलटकर तुरन्त ही उस पर प्रत्याक्रमण किया।

छन्द- **प्रतिघात हित गहि गदा दारुन मारि सालव हिय तेहीं।**
लगतहि प्रचंडाघात खल खसि परेउँ महि सुधि बिसरेही॥
मनु सत्य कर ताड़ित महामद भ्रमगगन तें महि पर्‍यो।
तब ब्रहद्रथसुत धरि सरासन गद समुख गर्जन कर्‍यो॥

प्रत्याक्रमण करने के लिये उन्होंने भी अपनी भयङ्कर गदा उठाकर शाल्व की छाती पर दे मारी। गदा के उस भीषण आघात के लगते ही दुष्ट शाल्व भूमि पर गिर पड़ा और मूर्छित हो गया। मानों सत्य के आघात से प्रचण्ड अभिमान भ्रमरूपी आकाश से वास्तविकता की भूमि पर आ गिरा हो। तब वृहद्रथनन्दन जरासंध ने धनुष लेकर गद के सम्मुख हो भीषण गर्जन किया।

दोहा- **पुँडर बिदूरथ बक्ररद कोपि भए तेहिं संग।**
जय हित त्रय सठतहि मनहुँ भई अलपबुधि संग॥२६॥

उस समय पौण्ड्रक, विदूरथ और दन्तवक्रादि योद्धा भी क्रोधित हो उसके साथ हो गए; मानों विजय की कामना लिये तीन सजीव मूर्खताएँ ही अल्पबुद्धि के साथ हो गई।

चौ.- **पुँडर सिलीमुख तकि दस मारे। धुज हति गद नाराच निबारे॥**
कीन्ह जरासुत तुरग सँघारा। बहुरि बिदूरथ सारथि मारा॥

पौण्ड्रक ने तककर दस बाण मारे और ध्वज सहित गद के बाणों को काट गिराया। फिर जरासंध ने उनके घोड़ों को मार गिराया और विदूरथ ने उनके सारथी को मार डाला।

निरखि कोपि गहि मूसल भारी। धाए अहिपति प्रलयंकारी॥
बक्रदंत मुख मूसल ढाका। तोरेउँ रहा जे रद एक बाँका॥

यह देखकर प्रलयङ्कारी बलरामजी क्रुद्ध हो उठे और मूसल उठाकर दौड़े। फिर उन्होंने दन्तवक्र के मुख पर अपने मूशल से प्रहार किया और उसका एक दाँत जो टेढ़ा था, वह भी तोड़ दिया।

रद टूटत तिन्ह भई हँसाई। भजि छूटा तब तें खिसिआई॥
तदुप बलधि तीनिहुँ सन आए। हति हति मूसल सबन्हँ भगाए॥

दाँत टूटने से उसकी हँसी होने लगी, तब वह लज्जित होकर भाग छूटा। तदुपरान्त बलरामजी जरासंधादि तीनों योद्धाओं के सम्मुख आए और मूशल से मार-मारकर उन सबको भगा दिया।

एहिबिधि अरि कर दम्भ बिडारी। अट्टहास कीन्हेंउँ उन्ह भारी॥
इत सठ आए जहँ सिसुपाला। कहइ बिचारि बाम निज काला॥

इस प्रकार शत्रु के अहङ्कार को विदीर्ण करके उन्होंने बड़ा भारी अट्टहास किया। इधर पराजित हुए वे योद्धा वहाँ आए जहाँ शिशुपाल था। फिर समय को प्रतिकूल जानकर वे बोले-

सखा धीर धरु ग्लानि बिसारी। आन ब्याहु बहु राजकुमारी॥
प्रान रहहि तब लाखउँ पाए। हम पुनि करिहहि आन उपाए॥

हे सखा! तुम ग्लानी का त्याग करके धैर्य धारण करो, कई राजकुमारियाँ है, तुम किसी और से विवाह कर लेना। प्राण बचे तो लाखों पाए। हम (इन्हें जीतने के लिये) फिर कोई उपाय करेंगे और

घेरि द्वारिकहि सेन सजाई। बेगिहि बाँधि लेहिं दुहुँ भाई॥
भुजबल बहुरि अखिल महि जीती। करिहहिं तेहिं जदुबंसिन्हँ रीती॥

सेना सजाकर द्वारिका को घेरकर शीघ्र ही उन भाईयों को बन्दी बना लेंगे और अपने बाहुबल से सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर उसे यादवरहित कर देंगे।

एहिबिधि अरि बध निस्चय भयऊँ। कहिअत जरि रजु बलु जनि गयऊँ॥
रुकमिनि हरन इहाँ सुनि काना। कहन लाग एहिंभाँति रिसाना॥

इस प्रकार उनके मध्य शत्रुवध का निश्चय हुआ। इसीलिये कहा जाता है कि रस्सी जल गई, किन्तु बल नहीं गया। इधर रुक्मिणीहरण का वृत्तान्त सुनकर क्रोधित हो रुक्मी कहने लगा कि,

नाकउँ जे अज सकुँ न फिराई। फिरौं न पुर कहुँ सपथ उठाई॥

जो यदि आज मैं हरण हो चुके अपने आत्मसम्मान को लौटा न सकूँ; तो शपथपूर्वक कहता हूँ, पुनः अपने इस नगर में नहीं लौटूँगा।

दोहा- हृदयत्रान पुनि पहिरेहुँ बारिद सम जे स्याम।
असि कटि बाँधि निषंग सर दाहिन धनु कर बाम॥२७॥

तत्पश्चात् उसने अपनी छाती पर कवच बाँधा, जिसका वर्ण मेघ के समान श्याम था। कमर में तलवार बाँधकर दाएँ हाथ में बाणों से भरा तरकस और बाएँ हाथ में धनुष उठाया।

चौ.- बिबिधायुध गहि गहि पद त्राना। चढ़ि रथु चलेउँ सुभट बलवाना॥
बेगि हरिहि तेहिं जाइ पचारा। तनक ठाढ़ सठ ग्वाल गवारा॥

अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर, पैरों में जूतियाँ पहने वह उत्तम व बलवान योद्धा रथ पर आरूढ़ हो चला। फिर उसनें शीघ्र जाकर श्रीकृष्ण को ललकारा -रे मूर्ख, गँवार ग्वाले! तनिक ठहर।

तुरत रुकमिनिहिं मोहिं फिरावौ। कुसल गहे आपन गृह जावौ॥

खोर अहीरन्हँ जूठ अहारा। निज कहँ कह बसुदेवकुमारा॥

रुक्मिणी को शीघ्र ही मुझे लौटा दे और कुशल लेकर अपने घर लौट जा। अहीरों की जूठन खानेवाला तू! अपने-आप को वसुदेव का पुत्र कहता है?

जरासुतहि रह तव हिय त्रासा। रनु उन्ह बिमुख लहेहुँ उपहासा॥
तद्यपि हरि उदंड मम भगिनी। अब जरु मोर बिषम सर अगिनी॥

जरासंध का भय तुम्हारे मन में बना रहता है और युद्ध में उन्हें पीठ दिखाकर तू अपनी हँसी भी करवा चुका है। फिर भी रे उद्दण्ड! तूने मेरी बहन को हर लिया। अब तू मेरे बाणों की कठोर अग्नि में जल।

अस कहि तेहिं सर अगनित छारे। सारँगधर जिन्हँ सहज निवारे॥
एहिबिधि तकि तकि लच्छ सुधारत। हरिहि दलन हित सठ सर मारत॥

ऐसा कहकर उसनें अनगिनत बाण छोड़े, किन्तु साङ्गपाणि ने उन्हें सहज ही नष्ट कर दिया। इस प्रकार वह मूर्ख तक-तककर लक्ष्य साधता है और श्रीकृष्ण को मारनें के लिये बाण छोड़ता है,

किंतु समर हरि लटइ न कैसे। फलजुत भए न ताड़ लट जैसे॥
अंतहुँ कीन्ह अजहि अहवाना। उन्ह प्रभाउँ थापेहुँ एक बाना॥

किन्तु श्रीकृष्ण युद्ध में किस प्रकार विचलित नहीं होते हैं; जैसे फलों के भार से लदकर भी ताड़ का वृक्ष झुकता नहीं। अंत में हारकर उसनें ब्रह्माजी का आह्वान किया और उनके प्रभाव को एक बाण पर स्थापित कर दिया।

पुनि सरोष तिहि हरि दिसि छारा। सहज लखा जेहिं धरम अधारा॥
निकट जाइ प्रभु कहँ पहिचाना। करि प्रनाम सर गगन जिराना॥

फिर कुपित होकर उसने वह बाण श्रीकृष्ण की ओर छोड़ा, जिसे धर्म के आधाररूप श्रीकृष्ण सहजभाव से देखते रहे। निकट जाते ही उस बाण ने प्रभु को पहचान लिया और उन्हें प्रणाम करके आकाश में लुप्त हो गया।

तदुप बिसिख हरि मारेसि चारा। तुरग सहित तिन्ह सारथि मारा॥
दुइ नाराच मारि बिकरारा। धुज अरु चाप तासु महि पारा॥

तदुपरान्त श्रीकृष्ण ने चार बाण मारकर घोड़ों सहित उसके सारथी को मार डाला। फिर दो विकराल बाण मारकर उन्होंने उसकी ध्वजा व धनुष को काटकर भूमि पर गिरा दिया।

पुनि खलारि गहि असि दुइधारी। कच गहि रथु तें खलहि उतारी॥
सिरु छेदन कर जसहि उठावा। रुकमिनि पद गहि पतिहि बुझावा॥

फिर दुष्टहन्ता भगवान ने दुधारी तलवार उठाई और बालों से पकड़कर उस दुष्ट को रथ से उतार लिया। फिर जैसे ही उसका सिर काटनें के लिये उन्होंने हाथ उठाया, उसी समय रुक्मिणीजी ने चरण पकड़कर अपने पति को समझाया कि,

नाथ देहि जे इन्ह संघारी। तात मात मम दुख लहँ भारी॥

पिय यह अग्रज मम अति प्यारे। सो अनुचित यह काज तिहारे॥

यदि स्वामी (आप) इनका वध कर देंगे तो मेरे माता पिता को अत्यधिक दुःख होगा। हे प्रियतम! ये मेरे अत्यंत प्रिय अग्रज हैं; इसलिये इनका वध करना आपके लिये अनुचित होगा।

तब प्रभु छमेहुँ तासु अपराधा। किंतु ताहि रथु पाछे बाँधा॥
अरि दल दलि जब हलधर आए। रुकमिहि दुरगति दय उमगाए॥

तब भगवान ने उसका अपराध क्षमा कर दिया, किन्तु उसे अपने रथ के पीछे बाँध लिया। इधर जब शत्रुओं की सेना का संहार करके हलधर लौटे, तो रुक्मी की दुर्दशा पर उन्हें बड़ी दया लगी।

दोहा- **अनुजहि डपटत कहत भए यह अति अनुचित कीन्ह।**
जे तव नारिहि बंधु गुर तिन्हहिं बाँधि रथ दीन्ह॥२८॥

और वे अपने अनुज को डाँटते हुए कहने लगे कि कन्हैया! तुमने यह बड़ा अनुचित किया है। जो व्यक्ति तुम्हारी पत्नि का बड़ा भाई है, तुमने उसे ही अपने रथ से बाँध दिया?

चौ.- **बेगि काटु तिन्ह बंधन भाई। पुनि बोले रुकमिनि समुहाई॥**
भ्रात राजसुति तव जे कीन्हा। तैसेउँ फलु हरि ताकहँ दीन्हा॥

हे भाई! तुम शीघ्र ही उसके बन्धन काट दो। फिर उन्होंने रुक्मिणीजी से कहा कि हे राजपुत्री! तुम्हारे भाई ने जैसा कर्म किया है, कन्हैया ने उसे वैसा ही फल दिया।

तुम एहि घटनि न लाउब ग्लानी। तदुप फिरे पुर सब सुखमानी॥
इहाँ रुक्मि हिय अति दुख मानी। पुनि पुर फिरेउँ न निज पनु जानी॥

इसलिये तुम इस घटना पर दुःखी न होना। तदुपरान्त वे सभी सुख मानकर द्वारिका लौट आए। इधर (रुक्मी अपनी पराजय से) मन में अत्यन्त दुःखी हुआ और अपने प्रण का स्मरण करके कुण्डिनपुर वापस नहीं लौटा।

कुँअरि सहित इत दुहुँ पुर आए। नृप अरु बसुद्यौ अति हरषाए॥
हरि हरि आनिहिं राजकुँअरि इक। सुनि पुरतिय लखिबे जुरि उतसिक॥
बसुद्यौ उपरोहितहि बोलाई। सुत बिआह घरि लीन्हि सोधाई॥

इधर रुक्मिणी के साथ वे दोनों भाई द्वारिका लौट आए; उन्हें देखकर महाराज उग्रसेन व वसुदेवजी अत्यन्त हर्षित हुए। कन्हैया एक राजकुमारी को हर लाये हैं, यह सुनकर द्वारिका की स्त्रियाँ उसे देखने की उत्सुकता से वहाँ आ जुटीं। वसुदेवजी ने राजपुरोहित गर्गाचार्यजी को बुलवाकर अपने पुत्र के विवाह का मुहूर्त निकलवाया।

नृप आयोजेहुँ मंजु उछाहा। कीन्ह हरिहि सँग रमउँ बिआहा॥
पुरतिय बहुबिधि मंगल गाए। बिबुधन्हँ हरषि सुमन बरिषाए॥

फिर राजा उग्रसेन ने सुन्दर उत्सव आयोजित करके श्रीकृष्ण व रुक्मिणी का विवाह करा दिया। उस समय नगर की स्त्रियों ने बहुत प्रकार से मङ्गलगीत गाए और देवताओं ने हर्षित होकर पुष्पवर्षा की।

जब तें रमा पैठि पुर भागा। भयउँ हेम पर मनहुँ सोहागा॥

रुक्मिणीजी जब से द्वारिका के भाग्य में प्रविष्ट हुईं, तभी से वहाँ मानों सोने पर सुहागा हो गया।

दोहा- **राजन रुकमिनि मंगल कथा सुमंगल मूल।**
जे सुन गावहि तासु प्रति रमा रहहि अनुकूल॥२९॥

हे परीक्षित्! रुक्मिणी-मङ्गल (हरण) की यह कथा सुन्दर मङ्गलों की जननी है, इसे जो भी सुनते और गाते हैं, भगवती लक्ष्मी सदैव उनके अनुकूल बनी रहती हैं।

चौ.- **उहाँ रुकमि पुर नवल बसाना। नाउ भोजकट बस सुख माना॥**
अब सुनु राउ काम अवतारा। समर असुर संबर जेहिं मारा॥
एक दिनु हर बैठेउँ कैलासा। हृदयँ होत हरि भगति प्रकासा॥

उधर रुक्मी ने 'भोजकट्' नामक एक नवीन नगर बसा लिया और सुखपूर्वक वहीं रहने लगा। हे राजन! अब आप कामदेव के अवतार प्रद्युम्न के जन्म की कथा सुनिये, जिन्होंने युद्ध में शम्बर नामक दैत्य को मारा था। एक बार भगवान शिव कैलास पर्वत पर बैठे थे, उनके हृदय में भगवान श्रीहरि की भक्ति का प्रकाश हो रहा था।

काम तबहिं उन्हँ तारन दीन्हा। मारि पुष्पसर प्रकुपित कीन्हा॥
तीसर दृग तब रुद्र उघारा। सुरन्हँ बिलोकत जारेहुँ मारा॥

तभी जाकर कामदेव ने उन्हें सताया और पुष्पबाण मारकर अत्यंत रुष्ट कर दिया। तब उन रुद्र ने अपना तीसरा नेत्र खोलकर देवताओं के देखते हुए ही कामदेव को भस्म कर दिया।

सुनि रति सोक कीन्ह अति भारी। धीर देत तब कहा पुरारी॥
होइहि जब द्वापर अवतारा। हरि कर हरन धरनि कर भारा॥

इस घटना को सुनकर कामपत्नि रति ने अत्यधिक शोक किया; तब उसे धैर्य बँधाते हुए त्रिपुरारि शिवजी ने कहा कि जब द्वापर युग में पृथ्वी का भार हरण करने के लिये भगवान श्रीहरि का अवतार होगा,

तब हरितनय होइ पति तोरा। समर मारिहहिं सम्बर घोरा॥
तब पति तें पुनि मिलनु तिहारा। होब जोहुँ अब धीरजु धारा॥

तब तुम्हारे पति उनके पुत्र होकर उत्पन्न होंगे और युद्ध में महापराक्रमी शम्बर का संहार करेंगे। तभी अपने पति से तुम्हारा पुनर्मिलन होगा; अब तुम धैयपूर्वक प्रतीक्षा करो।

फिरि सुनि हर बच पै हिय पीरा। कहहिं मौन पुनि बिरहु गभीरा॥
इत पुरि बसि लग कुंजबिहारी। रमउँ संग हिय आनँदु भारी॥

शिवजी के ये वचन सुनकर रति लौट गई। किन्तु उसका मौन उसके हृदय की वेदना और कठोर विरह को व्यक्त कर रहा था। इधर कुञ्जबिहारी भगवान श्रीकृष्ण अपने हृदय में महान आनंद लिये रुक्मिणीजी के साथ द्वारिका में निवास करने लगे।

इहिबिधि काल बिगत कछु भूपति। रुकमिनि कहँ भा सुत सुन्दर अति॥

जिन्हँ पटतर हित कोटि मयंका। कबि समाज कहँ लागहि रंका॥

हे परीक्षित्! इस प्रकार कुछ समय बीतनें के उपरान्त रुक्मिणीजी को एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी उपमा के लिये कवियों को करोड़ों चन्द्रमा भी रङ्क जान पड़ते थे।

पुहुपन्हँ सुषमा कइ बर धारा। निपट दृगन्हँ सुख देति अपारा॥
किन्तु कान्हसुत कइ छबि भारी। कन कन आतम करइ सुखारी॥

पुष्पों के सौन्दर्य की उत्तम धारा तो केवल नेत्रों को अपार सुख देती है, किन्तु श्रीकृष्ण के पुत्र की महान सुन्दरता दृष्टा की आत्मा के कण-कण को सुखी कर देती थी।

तब नृप अरु बसुद्यौ हरषाई। उपरोहित कहँ लीन्ह बोलाई॥
उन्हँ प्रद्युम्न नाउँ तिन्ह सारा। पितु सम गुनि छबिसिंधु निहारा॥

तब राजा उग्रसेनजी और वसुदेवजी ने हर्षित होकर कुलगुरु गर्गजी को बुलवा लिया। उन महर्षि ने उस बालक को अपने पिता श्रीकृष्ण के समान ही सुन्दर व गुणनिधान देखकर उसका नाम प्रद्युम्न रख दिया।

रहा असुर नृप सम्बर नामा। नारद गै सोउँ दिनु तेहिं धामा॥
पुनि कह तेहिं भय देत बिसाला। हरिसुत होइ उएहु तव काला॥

हे परीक्षित! शम्बरासुर नाम का एक राक्षस था, देवर्षि नारदजी उसी दिन उसके पास गए और बड़ा भारी भय दिखलाते हुए उससे कहने लगे कि तुम्हारा काल श्रीकृष्ण का पुत्र होकर जन्मा है।

दोहा- **सम्बर तब धरि बातबपु हरि मंदिर पैठेउ।**
पुनि तहँ तें हरि बालकहि तेहिं उदधि पबरेउ॥३०॥

तब वायव्य शरीर धरकर शम्बरासुर भगवान श्रीकृष्ण के भवन में जा घुसा और वहाँ से उस शिशु का हरण करके उसने उसे समुद्र में डाल दिया।

चौ.- **जल नवजातहिं झष एक ग्रसेउ। झषहिं बहुरि केवट एक धरेउ॥**
हरि प्रेरित पुनि झष सो भारी। केवट सम्बर कहँ उपहारी॥

समुद्र के जल में उस बालक को एक मत्स्य ने निगल लिया और बाद में उस मत्स्य को एक केवट ने पकड़ लिया। फिर श्रीहरि माया से प्रेरित होकर उस केवट ने वह मत्स्य शम्बरासुर को भेंट कर दिया।

भानसगन पुनि खलहिं रसोही। मत्सयहिं उदर बिदारेहु ज्योंही॥
त्योंहि उदर तिन्ह बालक एका। निकसेहुँ चकित जिअत जब लेखा॥

फिर उस दुष्ट की रसोई में रसोईयों ने जैसे-ही उस मत्स्य का पेट काटा, वैसे-ही उसके पेट से एक बालक निकला और जब उन्होंने उसे जीवित पाया, तो वे चकित रह गये।

मायावति अस नाउँ नारि भइ। नारद प्रेरित रति तब तहँ गइ॥
बहुरि सिसुहि अपुने कर माँगी। तिन्हँ पतिभाव सार करि लागी॥

तभी नारदजी की प्रेरणा से मायावती नाम की स्त्री का वेष धरकर कामदेव की स्त्री रति वहाँ गई। फिर बालक को अपने संरक्षण में माँगकर वह पतिभाव से उसकी देखभाल की।

दस सम्बत बय भइ जब ताहीं। रति माया सबभाँति सिखाहीं॥
पुनि रहस्य धनुबिद्या केरे। सब सिखान दइ अस्त्र घनेरे॥

जब उस बालक की आयु दस वर्ष हो गई, तब रति ने उसे सब प्रकार की माया सिखा दी और अनेक भयङ्कर अस्त्र देते हुए, उसने उसे धनुर्विद्या के भी समस्त रहस्य सिखा दिए।

बिगत जनम ते एहिं जनम करि। कही कथा उन्हँ रति लोचन भरि॥
सुनत मार तेहिं धीर बँधाई। महाखलहिं परचारेहु जाई॥

फिर रति ने भरे नेत्रों से उन्हें उनके पिछले जन्म से लेकर इस जन्म तक की कथा भी कह सुनाई। उसकी बात सुनते ही प्रद्युम्न ने उसे धैर्य बँधाया और जाकर महादुष्ट शम्बरासुर को ललकारा।

दोहा- **समर कठिन महँ मार पुनि खलहिं कीन्ह संघार।**
तदुप रतिहिं सँग द्वारिका फिरे अनंदु अपार॥३१॥

फिर उस भयङ्कर युद्ध में प्रद्युम्न ने दुष्ट शम्बरासुर का संहार कर दिया। तदुपरान्त वे अत्यंत आनंदित होकर रति के साथ द्वारिका लौट आए।

चौ.- **पाइ बहोर सुतहिं महतारी। लाएहुँ हृदय नेह भरि भारी॥**
नृप बसुद्यौ करि पाछ उछाहा। सारेहु रति अरु मार बिआहा॥

अपने पुत्र को पुनः पाकर माता रुक्मिणी ने उसे अत्यधिक स्नेह से उसे अपनी छाती से लगा लिया। तत्पश्चात् महाराज उग्रसेन व वसुदेवजी ने एक उत्सव का आयोजन करके प्रद्युम्न व रति का विवाह करा दिया।

सत्राजित जादव नृप ऐका। कीन्ह रबिहिं तप भाँति अनेका॥
रबिनारायन तब हरषाए। देत स्यमंतक मनि कह आए॥

हे परीक्षित्! सत्राजित् नाम के एक यादव ने अनेक प्रकार से भगवान सूर्य का तप किया। तब सूर्यनारायण प्रसन्न होकर उसके सम्मुख उपस्थित हुए और उसे स्यमंतक नामक एक मणि देते हुए कहने लगे-

पूजहिं जे इहि नित भिनुसारा। ए तिन्हँ दारिद हरति अपारा॥
यह नित प्रति रह मंदिर जासू। रहहिं बिभउ घन ताकर दासू॥

जो मनुष्य नित्य सवेरे इसका पूजन करता है; यह मणि उसकी अपार दरिद्रता हर लेती है। यह निरंतर जिसके भी भवन में उपस्थित रहती है, महान वैभव उसका दास बना रहता है।

सुनि सतराजित अति हरषाना। तदुप भानु भै अंतरधाना॥
सो मनि अस प्रभाउँ अवनीसा। प्रतिदिनु देति कनक मन बीसा॥

यह सुनकर सत्राजित् अत्यन्त हर्षित हुआ, तदुपरान्त सूर्यदेव अंतर्धान हो गए। हे परीक्षित्! उस मणि का प्रभाव यह था कि वह प्रतिदिन बीस मन स्वर्ण उत्पन्न करती थी।

मनि प्रताप कछु दिवस मँझारी। धनी भयउँ सतराजित भारी॥
देन लाग पुनि बिप्रन्हँ दाना। जातें भा तिन्हँ मनु अभिमाना॥

मणि के प्रभाव से कुछ ही दिनों में सत्राजित् अत्यन्त धनवान हो गया। फिर वह ब्राह्मणों को दान देंने लगा; जिस कारण उसके मन में अभिमान उत्पन्न हो गया।

कंठ पहिरि तें मनि एक बारा। कमलापति कर सभउँ पधारा॥
रबि सम करत तेज तेहिं आए। चितवत सब जादव अचराए॥

एक बार वह उस मणि को अपने कण्ठ में धारण करके कमलापति भगवान श्रीकृष्ण की सभा में गया। उसे सूर्य के समान प्रकाश करते हुए आता देखकर समस्त यदु-सभासद् चकित हो उठे।

गहन तेज तिन्हँ कोउँ जनि जाना। सभ्रम कहा सब लखु भगवाना॥
लहिबे हित तव दरसन आजा। आवत ग्रह अरु उड़गन राजा॥

तेज की अधिकता के कारण कोई भी उसे पहचान नहीं पाया और उन सबने भ्रमित होकर कहा- हे भगवन्! देखिये! आज आपका दर्शन पाने के लिये ग्रहों व तारागणों के अधिपति सूर्य आ रहें हैं।

दोहा- **कह सरबग्य न भानु यह गर धरि मनि उन्ह केर।**
आवत सतराजित हृदय धरे गुमान घनेर॥३२॥

तब सर्वज्ञ श्रीकृष्ण ने कहा कि ये सूर्यदेव नहीं, अपितु उनकी दी हुई मणि को कण्ठ में धारण करके अपने हृदय में अपार अहङ्कार लिये सत्राजित् में आ रहे हैं।

चौ.- **नाइ सीस जब बैठेउँ आई। चितवहि मनि सब अति अचराई॥**
अस लखि तासु तिमिर हरषाना। पुनि मनि निरखि लाग भगवाना॥

जब वह भगवान को सिर नवाकर सभा में आकर बैठा, तब वहाँ उपस्थित सभी यादव उसकी मणि को बड़े आश्चर्य से देखने लगे। यह देखकर उसके अहङ्कार को प्रसन्नता हुई; फिर भगवान श्रीकृष्ण उस मणि को देखने लगे।

तब तेहिं हिय अति संसय उयऊँ। तुरत सभय उठि निज गृह गयऊ॥
पर तेहिं सभउँ आइ बहुबारा। देखरानेहुँ निज दंभ अपारा॥

तब सत्राजित् के मन में बड़ी भारी आशङ्का हुई और भयभीत हुआ वह तुरन्त ही उठकर अपने घर चल दिया। किन्तु फिर भी उसने बहुत बार सभा में आकर अपने अपार अभिमान का प्रदर्शन किया।

तब कछु जादव गै हरि पाहीं। कह सिरु नाइ पदाम्बुज माहीं॥
स्वारथि गर न सोह मनि कैसे। काग कंठ बर कंठि न जैसे॥

तब कुछ यादव श्रीकृष्ण के पास गए और उनके चरणारविन्दों में सिर नवाकर कहने लगे- हे भगवन्! उस स्वार्थी के कण्ठ में वह मणि किस प्रकार शोभा नहीं देती; जैसे कौए के कण्ठ में सोने की उत्तम कण्ठी।

आगिल परहित लच्छ हमारा। होइ सकहि मनि बर आधारा॥

सो तेहिं तें मनि माँगि अनूपहि। अति सनमानि समरपिअ भूपहि॥

आगे चलकर परोपकार ही हमारा लक्ष्य होगा, जिसके लिये वह मणि उत्तम आधार सिद्ध हो सकती है। अतः उससे वह अनुपम मणि माँगकर अत्यन्त आदरपूर्वक महाराज को अर्पित कर देनी चाहिये।

तब हरि गै सतराजित पासा। भाबि तरकि पै मंदिसि आसा॥
कहा दीनहितु तेहिं सिरु नावा। तात मनुजतउँ हित मैं आवा॥

तब श्रीकृष्ण सत्राजित् के पास गए, किन्तु भावि के अनुमान से उनकी आशा मंद पड़ गई। फिर उन दीनबंधू ने जाकर सत्राजित् को सिर नवाया और बोले- हे तात! मैं मानवता के कल्याण के निमित्त आया हूँ।

श्रुति कह सब ते उत्तम राजा। ईसहि चर हितु सकल समाजा॥
नृप तप करि मम पाइ सहाई। उदधि माँझ द्वारिका बसाई॥

वेद कहते हैं कि राजा सबमें श्रेष्ठ होता है और ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में सम्पूर्ण समाज का हितू होता है। महाराज उग्रसेन ने तप करके मेरे सहयोग से समुद्र में इस द्वारिका को बसाया है।

आजु प्रजा उन्हँ सुखि सबभाँती। भयउँ राज पुनि गत आराती॥
सो अब तें मम प्रेरन पाई। उन्ह भूपन्हँ कइ करिहिं सहाई॥

आज उनकी प्रजा हर दृष्टि से सुखी है और उनका राज्य भी शत्रु रहित हो चुका है। अतः अब वे मुझसे प्रेरणा पाकर उन राजाओं की सहायता करेंगे,

जिन्हँ के धन अभाव अति भारी। प्रजा रहति जिन्हँ सदा दुखारी॥
प्रति मनुजहि अस चाहिअ ताता। तें निज अरु परिवार सँघाता॥

जिनके पास धन का अत्यधिक अभाव है और (इस कारण) जिनकी प्रजा सदैव दुःखी रहा करती है। हे तात्! प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने व अपने परिवार के साथ ही

मनुज जाति कर हित हिय लाई। संतत प्रस्तुत रह हरषाई॥
जे न करइ अस जीवनु ताहीं। बादि जात सुख कत तेहिं नाहीं॥

सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की भावना अपने हृदय में लिये सदैव प्रसन्नतापूर्वक प्रस्तुत रहे। जो मनुष्य ऐसा नहीं करता उसका जीवन व्यर्थ चला जाता है और उसे कहीं पर भी सुख नहीं मिल पाता।

तन सुख करि मिट भोग बिलासा। परहित कर पै हृदयँ प्रकासा॥

भोग-विलाश के साधन शरीर को सुख पहुँचाकर नष्ट हो जाते हैं, किन्तु मनुष्य के द्वारा किया गया परोपकार उसके हृदय को प्रकाशित कर देता है।

दोहा- **तात लोक हित साधन राजकोष नहिं पूर।**
सो तुम निज मनि परहित अर्पि लेहुँ जसु भूर॥३३॥

हे तात! लोककल्याण के प्रबन्धन के लिये राजकोष पर्याप्त नहीं है; अतः परोपकार के निमित्त आप अपनी मणि (महाराज को) समर्पित करके महान कीर्ति प्राप्त कीजिये।

चौ.- स्वारथि सुनि कछु उतरु न दीन्हा। भए निरास गवन हरि कीन्हा॥
सतराजित इत कंपित गाता। जाइ अग्रजहि कही यह बाता॥

यह सुनकर उस स्वार्थी ने कोई उत्तर नहीं दिया, तब श्रीकृष्ण निराश होकर चल दिये। इधर सत्राजित् ने काँपते हुए शरीर से जाकर यह बात अपने ज्येष्ठ भ्राता से कही।

तिन्हँ भ्रातहि प्रसेन अस नाऊँ। अनुज समान तेपि मद ठाऊँ॥
हरि प्रति द्वेष तासु हिय बाढ़ा। पुनि अनुजहि कह धीरजु गाढ़ा॥

उसके अग्रज का नाम प्रसेन था और वह भी अपने अनुज ही के अनुरूप अहङ्कार का धाम था। इस बात से श्रीकृष्ण के प्रति उसके मन में द्वेष बढ़ आया और उसने अपने अनुज को सघन धैर्य बँधाकर कहा-

हरि हिय लोभ बसेउँ मनि देखी। तातें उन्ह कहि बात बिसेषी॥
अब न धरत मनि कहँ निज पासा। देहु मोहि परिहरत निरासा॥

हे भाई! मणि को देखकर श्रीकृष्ण के मन में लालच उत्पन्न हो गया है, इसी कारण उन्होंने परोपकार की यह विशिष्ट बात कही। अब तुम मणि को अपने पास न रखते हुए निराशा त्यागकर मुझे दे दो।

एहि प्रकार अनुजहि समुझाई। स्वारथि स्वारथि तें मनि पाई॥
राजन एहिबिधि कछु दिनु जाई। पहिरि प्रसेन मनिहिं गरुआई॥

इस प्रकार अपने अनुज को समझाकर एक स्वार्थी (प्रसेन) ने दूसरे स्वार्थी (सत्राजित्) से वह मणि प्राप्त कर ली। हे राजन! इस प्रकार कुछ दिन बीतनें के उपरान्त प्रसेन ने गर्वित होकर वह मणि अपने कण्ठ में धारण कर ली।

पुनि मृगया हित सखन्हँ बोलाए। चढ़ि हय बिपिन गयउ हरषाए॥
करत अखेट तहाँ सो भूला। आवा कंदर सन गिरिमूला॥

फिर शिकार खेलने के लिये उसने अपने सखाओं को बुलाया और उनके साथ अश्वारूढ़ हो प्रसन्नता से वन में गया। वहाँ वह शिकार करते हुए भटककर एक पर्वत की तराई में स्थित कन्दरा के सम्मुख पहुँचा।

बसत रहा तहँ हरि एक भारी। जेहिं खाएहुँ सतुरग तेहिं मारी॥
जामवंत पुनि सो हरि मारा। आए मनि गहि निज गुह द्वारा॥

उस गुफा में एक बड़ा भारी सिंह रहता था, जो अश्व सहित मारकर उसे खा गया। फिर उस सिंह को जामवन्त ने मार डाला और वहाँ से मणि लेकर वे अपनी कन्दरा के द्वार पर आ गए।

पैठत मनि करि लागि प्रकासा। कोटर घन तम जेहिं बिनासा॥
इत प्रसेन सख सब हहराई। सतराजित सन कहि लग आई॥

उनके गुफा में प्रवेश करते ही मणि प्रकाश उत्पन्न करने लगी; जिससे उस गुफा का घना अन्धकार नष्ट हो गया। इधर प्रसेन के सब सखा घबराकर सत्राजित् के सम्मुख लौटे और कहने लगे कि

मृग पाछे धावत तव भाई। सघन बिपिन महँ गयउ भुलाई॥
हम खोजेहुँ तेहिं बहु चहुओरा। किन्तु मिलेहुँ न पुनि बन घोरा॥

एक पशु का पीछा करते हुए तुम्हारा भाई सघन वन में कहीं भटक गया है। हमनें उसे चारों ओर बहुत खोजा, किन्तु वह उस भयानक वन में पुनः नहीं मिला।

सुनि कागहि अस प्रतीत भयऊ। अवसि कान्हँ तिन्हँ पाछे गयऊ॥
बधेहुँ न हरि परि लालचु ताहीं। इहइ संक उठि लगि उर माहीं॥

यह सुनकर सङ्कितचित्त सत्राजित् को लगा कि कन्हैया अवश्य ही प्रसेन के पीछे गए होंगे। कहीं कन्हैया ने (मणि के) लोभ में पड़कर उन्हें मार तो नहीं दिया? यही आशङ्का (बार-बार) उसके मन में उठने लगी।

अकसर तेहिं निज तिय सन जाई। संसय आपन कहा सुनाई॥

एक बार उसनें अपनी स्त्री के सम्मुख जाकर अपनी यह आशङ्का उसे कह सुनाई।

दोहा- **तासु नारि निज सखिन्हँ कहा पुनि उन्ह कहि निज कंत।**
एहिबिधि पुर चरचा भई कलुषित भै भगवंत॥३४॥

फिर उसकी स्त्री ने जाकर अपनी सखियों से यह बात कही और उसकी सखियों ने यही बात अपने पतियों से कह दी। इस प्रकार सम्पूर्ण द्वारिका में यही चर्चा फैल गई और भगवान को कलङ्क लग गया।

चौ.- **यह अपबाद सुनेउँ भगवाना। प्रथम त दुख उन्ह भयउँ महाना॥**
तदुप गए तें जदुपति पाहीं। कहि जे पुरजन मानस छाई॥

जब भगवान ने इस अपवाद के विषय में सुना, तो पहले तो उन्हें महान दुःख हुआ। तदुपरान्त वे महाराज उग्रसेन के पास गए और उन्हें पुरवासियों के मन की धारणा कह सुनाई।

तात मोहि मनि हेत कलंका। देहुँ रजाइ निबारौं संका॥
खोजि प्रसेनहिं बन तें आनी। समनउँ आपन कठिन गलानी॥

हे तात्! मणि के कारण मुझे कलङ्क लगा है; अतः आप आज्ञा दीजिये, ताकि मैं लोगों की इस शङ्का का निवारण सकूँ और प्रसेन को वन से खोज लाकर अपनी इस कठोर ग्लानी से मुक्त होऊँ।

राय रजायसु दइ जब ताहीं। फिरे स्याम आतुरि पग माहीं॥
पुनि करि कछु जादव भगवाना। रथ चढ़ि कानन कीन्ह पयाना॥

जब महाराज ने उन्हें अनुमति दे दी, तब अपने पैरों की गति में उतावली लिये श्रीकृष्ण लौट आए। फिर कुछ यादवों को साथ लिये उन भगवान ने रथ पर चढ़कर वन के लिये प्रस्थान किया।

बन अनुगवँनत हय पद चीन्हा। सब सँग उन्ह सो थल लखि लीन्हा॥
जहँ केहरि प्रसेन कहँ खावा। पै मनि सैन कछु न तहँ पावा॥

वन में अश्व के पदचिन्हों का अनुशरण करते हुए सबके साथ उन्होंने वह स्थान खोज लिया; जहाँ सिंह ने प्रसेन को मारकर खाया था। किन्तु वहाँ उन्हें मणि का कोई भी चिह्न नहीं मिला।

निकट रक्तरंजित पट देखा। आसंका भइ सबन्हँ बिसेषा॥
पुनि तहँ लखि मृगपति पद चिन्हा। सबन्हँ परसपर निस्चय कीन्हा॥

(उस स्थान के) निकट ही उन्होंने रक्त में भीगा एक वस्त्र पड़ा देखा, तब उन सबके मन में विशेष आशङ्का हुई। फिर वहाँ सिंह के पदचिह्न देखकर सभी ने आपस में यह निश्चय किया कि

सम्भव अह तेहिं गा हरि खाई। सो आगे गयऊँ अब भाई॥
अस बिचारि सब केहरि जोहा। आए समुख रिछेसहिं खोहा॥

हे भाई! सम्भव है, प्रसेन को मारकर सिंह ने खा लिया हो और अब वह यहाँ से आगे निकला हो। इस प्रकार विचार करके सिंह की खोज में वे सब ऋक्षराज जामवन्त की गुफा के सम्मुख आ पहुँचे।

तहँ मृत हरिहि पाइ सब डोले। तेहिं सवँ सभय कछुक अस बोले॥
अस पसु को एहि कंदर माहीं। मर्देउँ अस दुरंत हरि जाहीं॥

वहाँ सिंह को भी मरा पाकर वे सब चकरा गए, उस समय उनमें से कुछ ने भयभीत हो कहा कि इस कन्दरा में ऐसा कौन-सा पशु है, जिसनें ऐसे दुर्दान्त सिंह को मार गिराया है।

दोहा- **हमहि भयउँ निस्चय अस हरि हरि हत्यो प्रसेन।**
पुनि जे हरि कहँ मर्दि मनि लै गयऊ लघु तें न॥३५॥

हे कन्हैया! हमें तो यह निश्चय हो गया है कि सिंह ने ही प्रसेन को मारा है और उसी सिंह को मारकर जो मणि ले गया है, वह कोई साधारण जीव नहीं हो सकता।

चौ.- **जदपि न अब केउँ रहेहु कलंका। फिरिअ नगर अब भए निसंका॥**
तब हरि कहा निरखि चहुँ भाई। हरिहि निपाति केन्ह मनि पाई॥

यद्यपि अब कोई कलङ्क नहीं रह गया है, इसलिये अब आप निश्चिंत होकर नगर को लौट चलिये। तब श्रीकृष्ण ने कहा- हे भाईयों! मैं देखना चाहता हूँ कि सिंह को मारकर मणि किसने प्राप्त की है?

प्रभु अबिदित जे बस गुह माहीं। प्रबिसन साहस हमहिं त नाहीं॥
अबहि कहत हम फिरि चलु भाई। बन प्रसंग पुर देइ सुनाई॥

(तब उन्होंने कहा-) हे प्रभु! गुफा में जो कोई भी रहता है, वह अज्ञात है। इसलिये इसमें प्रवेश करने का साहस हममें तो नहीं है। हे भाई! हम अब भी कहते हैं, लौट चलो। (प्रसेन के साथ) इस वन में जो कुछ भी हुआ है, वह सब वृत्तान्त हम नगर में जाकर सुना देंगे।

हरि कह मोहि मनि खोजन चाऊ। सो मैं खोह अकेलहि जाऊँ॥
तुम सब बैठि गुहा कर द्वारा। बारह दिनु मग जोहु हमारा॥

तब भगवान ने कहा कि मुझे तो मणि खोजने का चाव लगा है; अतः मैं अकेला ही इस गुफा में जाऊँगा। तुम सब लोग गुफा के द्वार पर ही बैठकर बारह दिन तक मेरी प्रतीक्षा करना।

अवधि बिगत जे मैं नहिं आवौं। जाइ बात यह नृपहि सुनावौं॥
अस कहि राखि सबन्हँ पुनि द्वारे। खोह अकेलहि हरि पइसारे॥

इस अवधि के बीतनें पर भी यदि मैं लौटकर न आऊँ, तो तुम यह बात जाकर महाराज को बता देना। ऐसा कहकर और सबको द्वार पर ही छोड़कर श्रीकृष्ण अकेले ही उस गुफा में प्रविष्ट हुए।

तदुप तहाँ उन्ह देखेहुँ जाई। मनि दुति सब बिभाग रहि छाई॥
खंब झाइ एक निकट निहारी। दुरि तहँ निरखि लाग गुह भारी॥

तदुपरान्त वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि सब ओर मणि की आभा छा रही है। उन्होंने निकट ही में एक खम्भे की परछाई देखी और उसकी ओट में छिपकर वे उस विशाल गुफा का निरीक्षण करने लगे।

पुनि प्रभु निरखेहुँ सो अस्थाना। बसहि जहाँ रिछेस बलवाना॥
तहँहिं सुता उन्हँ सुषमउँ बेला। जामवंति मनि तें कर खेला॥

फिर भगवान ने उस स्थान को देखा, जहाँ महाबली जामवन्त रहते थे। वहीं उनकी पुत्री जामवंती जो सुन्दरता की लता-सी थी, वह उस मणि से खेल रही थी।

सहज तासु सन गै जदुराई। अवचट लखि उन्ह तें किलकाई॥
जामवंत सुनि लगे पुकारा। हरि मिस तहँ छबिसिंधु निहारा॥

यादवेन्द्र श्रीकृष्ण सहज भाव से उसके सम्मुख गए; किन्तु उन्हें अचानक देखकर वह युवती चिल्ला उठी। उसकी पुकार पर जामवन्तजी दौड़े और वहाँ (आकर) उन्होंने श्रीकृष्ण के रूप में सुन्दरता के समुद्र को (साक्षात्) पाया।

हिय अनुराग प्रथम भा भारी। समुझि सत्रु पुनि भिरेहुँ पचारी॥

पहले तो उनके मन में बड़ा अनुराग हुआ, फिर शत्रु समझकर वे ललकार कर उनसे जा भिड़े।

दोहा- **ठनेहुँ द्वंद्व अति भीषन गर्जहि दोउँ रनधीर।**
संतत निसि दिनु सातबिस रनु भा रह गंभीर॥३६॥

तब उनमें अत्यन्त भीषण द्वन्द्व-युद्ध होने लगा और वे दोनों रणधीर योद्धा गरजनें लगे। इस प्रकार निरन्तर सत्ताईस दिन और सत्ताईस रातों तक उनमें बड़ा ही भयङ्कर युद्ध होता रहा।

चौ.- **जामवंत तब कीन्ह बिचारा। को जेहिं अस अतुलित बल धारा॥**
झोंकि सकल बल कीन्ह जुझाई। तदपि न सकेउँ पार इन्ह पाई॥

तब जामवन्तजी ने विचार किया कि ये कौन है, जिन्होंने इतना अतुलनीय बल धारण कर रखा है कि अपने सम्पूर्ण बल को झोंककर युद्ध करने के उपरान्त भी मैं इन्हें पराजित न कर सका।

रघुबर लषनहिं तजि जग माहीं। अस को भट जे रह मम पाहीं॥
अवसि ए सोइ जगपति भगवाना। मतिभ्रम जाहिं न मैं पहिचाना॥

श्रीराम व लक्ष्मण के अतिरिक्त इस संसार में ऐसा कौन योद्धा है, जो युद्ध में मेरे सम्मुख ठहर सके। निश्चय ही ये वे ही जगत्पति भगवान हैं, जिन्हें मतिभ्रम के कारण मैं पहचान नहीं पाया।

पद लखि चिन्ह चक्र अरु संखा। तरक लहे प्रतीति कर पंखा॥
तब तें उमगि परम अनुरागा। नाथ नाथ कहि चरनन्हँ लागा॥

फिर उनके चरणों में चक्र और शङ्ख के चिह्न देखकर उनका अनुमान विश्वास के पङ्ख पा गया। तब वे महान प्रेम में उमगकर नाथ, नाथ इस प्रकार कहते हुए श्रीकृष्ण के चरणों में गिर पड़े।

कहा बहोरि दोउँ कर जोरी। छमिअ कृपालु मोर सब खोरी॥
प्रभुपद दरस पृहा मम भूरी। सहज दयानिधि करि अज पूरी॥

फिर उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर कहा- हे कृपालु! आप मेरे सब अपराध क्षमा कर दीजिये। मुझे प्रभु के चरणों के दर्शन की इच्छा थी, सो दयासिन्धु ने आज वह सहज ही पूरी कर दी।

प्रभु उठाइ उन्हँ हृदयँ लगावा। बिगत समउँ दुहुँ मानस छावा॥
पूजि रिछेस सुआसन दीन्हा। जदुवर तिन्ह परितोषन कीन्हा॥

तब भगवान ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और उन दोनों को पिछली स्मृतियाँ हो आई। फिर चरण पूजकर जामवन्तजी ने उन्हें उत्तम आसन दिया, तब उन यदूत्तम श्रीकृष्ण ने भी उन्हें संतोष प्रदान किया।

अब कहु सोइ हेतू नरराजा। जातें दरस दीन्ह मोहि आजा॥
तब द्वारिकाधीस कह भाई। सत्राजित मनि बिपिन खोवाई॥

(फिर जामवन्त ने कहा-) हे नरश्रेष्ठ! अब आप अपना वह उद्देश्य बतलाईये! जिसके कारण आज आपने मुझे अपना दर्शन दिया। तब द्वारिकाधीश ने कहा- हे भाई! सत्राजित् की मणि वन में कहीं खो गई है;

हरन कलंक जासु सिरु मोरे। तेहिं खोजत आवा गृह तोरे॥

जिसे हर लेने का कलङ्क मेरे सिर लगा है और उसी को खोजता हुआ मैं तुम्हारे घर आ पहुँचा हूँ।

दोहा- जेहिं तें खेलहिं सुता तव तें मनि सोइ रिछेस।
तातें तेहिं फिराउ मुअँ फिरि पावौ निज देस॥३७॥

हे ऋक्षराज! इस समय तुम्हारी पुत्री जिससे खेल रही है, वह मणि वही है। अतः तुम उसे मुझे लौटा दो; ताकि मैं अपने नगर में लौट सकूँ

चौ.- जामवंत कह तब कर जोरी। जामवंति तनुजा प्रभु मोरी॥
त्रिपुरनाथ इन्ह भाग बढ़ाई। लै जैहहुँ मनि सँग परनाई॥

तब ऋक्षराज जामवन्त ने कहा- हे नाथ! जामवन्ती नाम की यह कन्या मेरी पुत्री है। अब हे त्रिलोकीनाथ! इसके भाग्य को बढ़ाते हुए आप मणि के साथ-ही इसे ब्याहकर अपने साथ ले जाईये।

जातें मिट मम हृदयँ गलानी। तब हरि ब्याहि तेहिं जन जानी॥
तदुप तासु कर गहि हरषाई। नगर चले दाइज मनि पाई॥

जिससे कि मेरे मन की ग्लानि मिट सके। तब भगवान ने उन्हें भक्त जानकर उनकी पुत्री से विवाह कर लिया। तत्पश्चात् उस कन्या का हाथ पकड़कर हर्षित हुए वे दहेज में मणि पाकर द्वारिका को चले।

इहाँ रहे जादव जे द्वारा। चौबिस दिनु उन्ह पंथ निहारा॥
जब न फिरे प्रभु तें अकुलाए। समाचार फिरि नृपहि सुनाए॥

इधर जो यादव गुफा के द्वार पर रुके हुए थे, उन्होंने चौबीस दिन प्रतीक्षा की। किन्तु जब भगवान नहीं लौटे, तब व्याकुल होकर उन्होंने लौटकर सारा वृत्तान्त राजा उग्रसेन से कह सुनाया।

सुनि सरोष पुर कर नरनारी। देन लगे स्वारथि कहँ गारी॥
रुकमिनि सहित बिकल रनिवासा। गौरिहि मंदिर गा धरि आसा॥

इस समाचार को सुनकर द्वारिका के स्त्रीपुरुष क्रुद्ध हो स्वार्थी सत्राजित् को गालियाँ देने लगे और व्याकुल हुआ रनिवास रुक्मिणीजी के साथ आशा लेकर भगवती गौरी के मंदिर में पहुँचा।

तहँ सब मिलि देबिहि पद लागी। जाचि कुसल हरि कइ नय पागी॥
ऐतनेहुँ धरे सबन्हँ बिश्रामा। मंदिर समुख अए सुखधामा॥

वहाँ उन सबने मिलकर देवी के चरणों को छुआ और विनयपूर्वक उनसे कन्हैया की कुशलता की याचना की। इतनें में ही सबके निमित्त आनंद व शान्ति लिये सुखधाम श्रीकृष्ण मन्दिर के सम्मुख पहुँचे।

बाम भाग उन्ह निरखि प्रकासा। हरषाचरज भरेउँ रनिवासा॥
नवलिहि घन छबि लखि सब नारी। तृन तोरति पूछहि हिय हारी॥

उनके वाम भाग में प्रकाशरूप एक नारीरत्न देखकर सारा रनिवास आश्चर्य व हर्ष से भर गया। उन तरुणी की महाशोभा देखकर रनिवास की सब स्त्रियाँ तृण तोड़ती हुई थकित-सी उनके विषय में पूछनें लगी।

तब हरि उन्ह सौं कथा सुनाई। जामवंति कहँ जेहिं बिधि पाई॥
तदुप नृपति तें मिले कन्हाई। लीन्ह बायसहिं सभा बोलाई॥

तब श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार जामवन्ती को प्राप्त किया था, वह सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। तदुपरान्त कन्हैया जाकर महाराज उग्रसेन से मिले और सत्राजित् को राजसभा में बुलवा लिया।

आवा तें निज सचिवन्हँ साथा। सहज कान्हँ मनि धरि तिन्ह हाथा॥
पुनि प्रसेन कर मरनु बखाना। सुनि सतराजित दुख अति माना॥

वह वहाँ अपने सचिवों के साथ उपस्थित, तब भगवान ने सहजभाव से मणि उसके हाथ पर रख दी। फिर उन्होंने प्रसेन के मरण के विषय में बताया, जिसे सुनकर सत्राजित् को अत्यन्त दुःख हुआ।

हरि प्रति निज दुरभाय बिचारी। सकुचेउँ ग्लानि भई हिय भारी॥

फिर श्रीकृष्ण के प्रति अपनी दुर्भावना के विषय में विचारकर वह लज्जित हो उठा और उसके हृदय में अत्यन्त ग्लानि हुई।

दोहा- **पूरनकाम सुजन सुहित सगुन बपुष जेहिं लीन्ह।**
निपट संक लघु बस्तु हित तेहिं दोष मैं दीन्ह॥३८॥

जो पूर्णकाम हैं और जिन्होंने सत्पुरुषों के समुचित हित के निमित्त ही सगुणरूप में शरीर धारण किया है, उन्हीं भगवान पर मैंने एक तुच्छ-सी वस्तु के लिये मात्र सन्देह के आधार पर कलङ्क लगा दिया।

चौ.- **भ्रमबस दोष जे भयउँ महाना। मैंहि करौं अब तासु निदाना॥**
अस बिचारि उठि नृप समुहाई। सबिनय कहन लाग सिरु नाई॥

भ्रमवश मुझसे जो महान भूल हुई है, उसका निवारण भी अब मैं ही करूँगा। ऐसा विचारकर वह उठा और महाराज उग्रसेन के सम्मुख सिर नवाकर विनम्रतापूर्वक इस प्रकार कहने लगा-

राय मोर तनुजा सतभामहि। ब्याहिं चहौ गुननिधि घनस्यामहि॥
सुनि प्रस्ताव मंजु स्वीकारा। पुर तब छान आनंद अपारा॥

हे राजन! मैं अपनी पुत्री सत्यभामा को गुणनिधान श्रीकृष्ण के साथ ब्याहना चाहता हूँ। इस सुन्दर प्रस्ताव को सुनकर महाराज ने स्वीकार लिया, तब नगर में महान आनन्द व्याप्त हो गया।

सतराजित प्रोहितहि बोलाई। लीन्ह ब्याह कर लगन सराई॥

पुनि बसुद्यौ कहँ तिलक पठावा। बेगि बिआह उछाह सरावा॥

(इधर) सत्राजित् ने पुरोहित को बुलवाकर विवाह का मुहूर्त निकलवा लिया। फिर वसुदेवजी को टीका भिजवाकर उसने शीघ्र ही विवाह के निमित्त उत्सव का आयोजन किया।

भूप सबन्हँ इत कहा बोलाई। बेगि बरात सजावहुँ जाई॥
तब ऊधौ बल गद हरषाने। हय गय स्यंदनु लाग सजाने॥

इधर राजा उग्रसेन ने भी सबको बुलाकर कहा कि तुम सब जाकर शीघ्र बारात तैयार करो। तब उद्धव, दाऊ व गद आदि यादव हर्षित होकर हाथी, घोड़े और रथों को सजाने लगे।

सकल साज जब सजेहुँ बराता। तब अतिसय हरषे तिहुँ भ्राता॥
पुनि फिरि नृप कहँ सूचित कीन्हा। तब उन्ह सब समाज सँग लीन्हा॥

जब बारात की सम्पूर्ण तैयारियाँ हो गई, तब वे तीनों भाई (उद्धव, दाऊ व गद) अत्यन्त हर्षित हुए। फिर लौटकर उन्होंने महाराज को सूचित किया, तब उन्होंने समस्त यादव समाज को अपने साथ कर लिया।

दोहा- **राजभवन सन जुरे सब सँग हरि दूलह रूप।**
बाहन बिबिध सुबेष सब सोभा लहहि अनूप॥३९॥

वे समस्त यदुवंशी राजभवन के सम्मुख एकत्र हुए, श्रीकृष्ण दूलह के वेष में उनके साथ थे। सुन्दर वेश धारण किये वे सब अनेक प्रकार के वाहनों पर सवार होकर अनुपम शोभा प्राप्त करने लगे।

मासपारायण छब्बीसवाँ बिश्राम

चौ.- **निकसि बरात बजात निसाना। बिदा करहि तिय मंगलगाना॥**
इत बरात कहँ आवत जानी। सतराजित पुलकेहुं सुखमानी॥

तब नगाड़े बजाकर बारात निकली, स्त्रियाँ मङ्गलगीत गाते हुए उन्हें विदा कर रही है। इधर बारात को आती हुई जानकर सत्राजित् सुख की अनुभूति से पुलकित हो उठे।

जब बरात तिन्ह गृह सन आई। सचिवन्ह संग करन अगुआई॥
कनक कलस भरि एक तें एका। सीत पेय मधु द्रब्य अनेका॥

फिर जब बारात उसके घर के सन्मुख आई, तब अगवानी करने के लिये अपने मन्त्रियों के साथ सोने के कलशों में एक से बढ़कर एक शीतल पेय, शहद और अन्य अनेक वस्तुए लेकर

निकसेहुं तें प्रमुदित अतुराई। मनहुँ उमगि सरि उदधिहि पाई॥
जातहि गरगहि चरन पखारी। गयउ नृपति सनमुख सचु भारी॥

वह महान आनन्द से शीघ्रतापूर्वक चला, मानों समुद्र को देखकर कोई नदी उमड़ पड़ी हो। उसने जाते ही महर्षि गर्ग के चरण पखारे, फिर वह बड़े ही आनन्द से महाराज उग्रसेन के सन्मुख गया।

पद पखारि अति आदरु कीन्हा। भेंट समर्पि सबन्हँ सुख दीन्हा॥
दूलह रूप हरिहि लखि ताहूँ। हृदयँ लहेहुँ जनु जीवन लाहू॥

फिर उनके भी चरण धोकर उसने उनका बड़ा सत्कार किया और भेंटसामग्री अर्पित करके सबको सुखी किया। श्रीकृष्ण को दूल्हे के रूप में देखकर उसके हृदय ने जैसे जीवन का लाभ पा लिया।

पुनि जनवास देत बिश्रामा। मुदित फिरेहुँ तें आपन धामा॥
तहाँ पनव अरु बजहि निसाना। करहि कुटुमतिय मंगलगाना॥

फिर सबको जनवासे में विश्राम कराकर वह हर्षित होकर अपने घर लौट आया। वहाँ पणव और नगाड़े बज रहे थे तथा उसके कुटुम्ब की स्त्रियाँ मङ्गलगीत गा रही थी।

बेद मंत्र द्विज पढ़हि प्रबीना। नारि सुहागिनि बाजहि बीना॥
धेनुधूरि बेला बर पाई। जुरे पच्छ जुग मंडप आई॥

प्रवीण ब्राह्मण वेदमन्त्र पढ़ रहे थे और सुहागिन स्त्रियाँ वीणा बजा रही थी। (तदुपरान्त) गौधूलि की उत्तम बेला पाकर दोनों पक्ष विवाह-मण्डप में एकत्र हुए।

दूलह बेषु धरे भगवाना। बैठे सहज सुदिब्य बिताना॥
इंद्रधनुष कर सुबरन स्यामा। श्रवहि स्याम कर गात ललामा॥

दूल्हे का वेष लिये श्रीकृष्ण सहजरूप से सुन्दर और दिव्य मण्डप में जाकर बैठ गए। (उस समय) इन्द्रधनुष के रङ्गसमूह का सुन्दर श्याम रङ्ग भगवान श्रीकृष्ण के मनमोहक अङ्गों से झर रहा था।

पुलक सरित आपन तर पाए। पिअर बसन सोभहि मन भाए॥
हरिहि हृदयँ कर पाइ उछाहू। दमकहि चारु बिभूषन ब्याहू॥

पुलकनरूपी सरिता से स्वयं को सिञ्चित अनुभव करते हुए मनभावन पीत वस्त्र उनके शरीर पर शोभित थे। विवाह के आभूषण कन्हैया के हृदय के उत्साह को पाकर (उनके अङ्गों में और भी अधिक) उद्भाषित हो रहे थे।

लखि बितान हरि सहित समाजू। दुलहिनि बोलि पठइ मुनिराजू॥
सखि सवारि तब दुलहिनि आनी। गावत मंगल अति मृदुबानी॥

श्रीकृष्ण सहित सम्पूर्ण यदुसमाज को मण्डप में एकत्र देखकर महर्षि गर्गजी ने दुल्हन को बुला भेजा। तब शृङ्गार धारण करवाकर सखियाँ अत्यन्त मधुर वाणी से मङ्गलगीत गाते हुए दुल्हन को ले आई।

नव बर बधु इत अति अनुरागे। जब उन्ह बिसिख परसपर लागे॥

इधर जब नवीन वर-वधू के नेत्र आपस में मिले, तो वे प्रेम में अत्यन्त मग्न हो गए।

दोहा- **गरग हरषि हिय भाँति बहु कुलकृत सकल कराइ।**
सहित गौरि हर गनपतिहि क्रम क्रम दीन्हँ पुजाइ॥४०॥

महर्षि गर्ग ने हृदय में हर्षित हो बहुत प्रकार से कुल की समस्त रीतियाँ करवाते हुए क्रमानुसार गणपति और शिव-पार्वती का पूजन करवाया।

चौ.- सत्राजित सँग करि निज नारी। लागा दूलह चरन पखारी॥
पाछ बर बधुहि करन्हिं मिलाई। साखोचार कीन्ह मुनिराई॥

फिर सत्राजित् अपनी स्त्री को साथ लेकर दूलह वेशधारी श्रीकृष्ण के चरण पखारनें लगा। तत्पश्चात् वर श्रीकृष्ण और वधू सत्यभामा का हस्तमिलाप करवाकर मुनि ने शाखोच्चार किया।

अस लखि दुहुँ समाज अनुरागे। प्रमुद कुसुम बरषावन लागे॥
पानिगहन लखि बिबुध समाजा। हरषेहुँ पनव संख अति बाजा॥

यह देखकर दोनों पक्ष प्रेम में मग्न हो गए और परमानन्दरूपी पुष्प बरसानें लगे। श्रीकृष्ण द्वारा सत्यभामा का पाणिग्रहण हुआ देखकर देवताओं ने हर्षित हो सघन ध्वनि से पणव, शङ्खादि बजाये।

पुनि सत्राजित श्रुति अनुहारी। कन्यादान कीन्ह सचु भारी॥
जब घनस्याम संग सतभामा। भाँवरि देन लागि गुनधामा॥

फिर सत्राजित् ने अत्यन्त आनन्दपूर्वक वेदोक्त रीति से कन्यादान किया। हे गुणनिधान परीक्षित्! जब श्रीकृष्ण के साथ सत्यभामा विवाह के फेरे लेनें लगी;

लखि अनूप तब दृस्य पुनीता। सतराजित कर भा मन चीता॥
जब बर बधु सिरु दीन्ह सिंदूरा। उभय पच्छ मनरथ भा पूरा॥

तब उस अनुपम और पुनीत दृश्य को देखकर सत्राजित् का मन (ग्लानिमुक्त होकर) अत्यन्त प्रसन्न हो उठा। फिर जब वर ने वधू की माँग में सिन्दूर पुराया, तब दोनों पक्षों का मनोरथ पूर्ण हो गया।

एहिबिधि लगनकाज जब भयऊँ। सब समाज पंगत महुँ गयऊ॥
सतराजित तहँ सहित सहायक। जाइ दीन्ह आसन बर लायक॥

इस प्रकार जब लग्न के सारे कृत्य पूर्ण हो गए, तब सम्पूर्ण समाज भोजशाला में गया। सत्राजित् ने अपने सहायकों सहित वहाँ जाकर सबको उत्तम और योग्य आसन दिये।

चारि भाँति जेवनार बनाई। पटु सुआर लागे परुसाई॥
एहिबिधि मोद करत अति भारी। रही बरात तहाँ दिनु चारी॥

भोजन में चार प्रकार के पकवान बनाये गये थे, जिन्हें चतुर रसोईये परोसवा रहे थे। इस प्रकार महान आनन्द मनाती हुई बारात वहाँ चार दिनों तक ठहरी रही।

सत्राजित तें राजिवनयना। दाइज लीन्ह निपट मृदु बयना॥
दाइज मनि जब तें हठ लाई। देन लाग तब कहेउ कन्हाई॥

(उस समय) भगवान श्रीकृष्ण ने सत्राजित् से दहेज में केवल मधुर वाणी ही स्वीकार की। फिर जब वह दहेज में हठ करके मणि देने लगा, तब कन्हैया ने उससे कहा-

दाइज तात भेंट सुचि सोई। श्रुति सम्मत अनिबर्य न जोई॥

गो द्विज दीन अतिथि गृह पाई। गृहि जस भेंट देत हरषाई॥

हे तात्! दहेज वह पवित्र भेंट है, जो वेदसम्मत तो है, परन्तु अनिवार्य नहीं। गौ, ब्राह्मण, दरिद्र और अतिथि को अपने घर आया देखकर जैसे एक ग्रहस्थ मनुष्य हर्षित होकर उन्हें भेंट देता है।

तैसेहि आर्ज संसकृतिहुँ माहीं। जामातहि आपन गृह पाहीं॥
निज रुचि भेंट देत ससुरारी। तेहिं दाइज कह प्रबुध बिचारी॥

उसी प्रकार आर्य-संस्कृति में जामाता को भी (विवाह के समय) अपने घर आया देखकर ससुराल-पक्ष अपनी रुचि के अनुरूप (कुछ) भेंट देतें है, उसे ही प्रबुद्धजन विचारपूर्वक दहेज कहते हैं।

किंतु कठिन कलि सुरीति सोई। सुचि सरूप निज देइहि खोई॥
लोभी निपट दाइजहि लाई। लगिहहिं निज पुत्रन्ह परनाई॥

किन्तु कलियुग की कठिनता में वही सुन्दर रीति अपना पवित्र स्वरूप खो देगी और लोभी मनुष्य केवल दहेज ही को चित्त में रखकर अपने पुत्रों का विवाह करने लगेंगे।

मिलिहि न जब तिन्ह मन अनुहारी। तब खल बधु कहँ लगिहि प्रतारी॥
जे न देइ सक दाइज भारी। रहिहहि तासु कुमारि कुमारी॥

फिर जब उन्हें उनकी अपेक्षा के अनुरूप दहेज नहीं मिल पायेगा, तब वे दुष्ट अपनी वधुओं को पीड़ित करने लगेंगे। जो दहेज नहीं दे पायेगा, उनकी पुत्रियाँ अविवाहित ही रह जाया करेंगी।

सो निरमे सुखि मनुज समाजा। दाइज त्याग करउँ मैं आजा॥
हरि बच सुनि हरषे सब लोगा। सकुचे सो जिन्हँ के हिय भोगा॥

अतः एक सुखी समाज के निर्माण के निमित्त, आज मैं दहेज का त्याग करता हूँ। भगवान के ये वचन सुनकर सब हर्षित हो गए और वे लोग सकुचा गए, जिनके हृदयों में भोगरूपी मलिनता थी।

नृप यह कथ जे सुन अरु गावहि। तिन्ह जसु कवन कलंक न खावहिं॥
पूछेहुँ तब परिछित अनुरागा। हरिहुँ कलंक नाथ किउँ लागा॥

हे राजन! इस सुन्दर कथा को जो मनुष्य भी कहता और सुनता है, उसके यश को कोई भी कलङ्क नहीं खाता। यह सुनकर महाराज परीक्षित् ने महामुनि शुकदेवजी से प्रेमपूर्वक पूछा कि हे प्रभु! भगवान श्रीकृष्ण को ऐसा कलङ्क क्यों लगा?

दोहा- **भादौ सुक्ल चतुर्थि कर ससि देखा भगवान।**
तातें बृथा कलंक उन्ह परिछित लगेहुँ महान॥४१॥

हे राजन! भगवान ने भादौ माह के शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि का चन्द्रमा देख लिया था। इस कारण उन्हें झूठा महाकलङ्क लगा।

चौ.- **जाइ द्वारिका कोउँ एक बारा। अस पाँडउहितु समुख उचारा॥**
दुरजोधन रचि लाख निकेता। जारेहुँ पँडउन्ह जननि समेता॥

एक बार किसी ने द्वारिका जाकर भगवान श्रीकृष्ण के सन्मुख कहा कि दुर्योधन ने लाद्याग्रह का निर्माण करवाकर उसमें कुन्ती सहित पाण्डवों को जलाकर भस्म करवा दिया है।

तब हथिनापुर गै दोउँ भाई। सुधि हित बुआ केर अकुलाई॥
सोउ अवधि अकरुर कृतवर्मा। सुनु महीप जे कीन्ह अधर्मा॥

तब वे दोनों भाई अकुलाकर अपनी बुआ कुन्ती की कुशल जानने के लिये हस्तिनापुर गए। हे परीक्षित्! उसी अवधि में अक्रूर और कृतवर्मा ने जो अधर्म किया था, अब आप उसे सुनिये।

ते दोउँ सतधनवउँ पहि जाई। कहि लागे अस तेहिं उकसाई॥
तुअँ सँग रहि सतभाम सगाई। सतराजित परन्तु बरिआई॥

(उस समय) कृतवर्मा और अक्रूर दोनों शतधन्वा के पास जाकर उसे उकसा कर इस प्रकार कहने लगे- हे शतधन्वा! सत्यभामा की सगाई पहले तुमसे हुई थी, किन्तु सत्राजित् ने बलपूर्वक

तेहिं दीन्हि हरि कहँ परनाई। अपजसु भयउँ तोर अति भाई॥
इहि सवँ इहँ न अहहि जदुपाला। सो प्रतिघात करहु इहिं काला॥

उसे श्रीकृष्ण के साथ ब्याह दिया, जिससे हे भाई! तुम्हारी बड़ी अपकीर्ति हुई। इस समय यदुपाल श्रीकृष्ण यहाँ (द्वारिका में) उपस्थित नहीं हैं, इसलिये तुम जाकर इसी समय प्रतिघात करो।

उभयँ भरे जब अस तेहिं काना। तब सठ सत्रजितहि रिपु माना॥
बहुरि निसिहि ताकर गृह गयऊ। सोवत लखि तेहिं क्रोधित भयऊ॥

जब उन दोनों ने इस प्रकार शतधन्वा के कान भरे, तब उस मूर्ख ने सत्राजित् को अपना शत्रु मान लिया और फिर वह रात्रि में ही उसके घर गया और उसे सोते हुए देखकर क्रुद्ध हो गया।

मुअँ तें रिपुता करि बिनु काजा। तुरग बेचि सठ सोवत आजा॥
अस कहि आव न ताव निहारा। सतराजित गर खड़्ग प्रहारा॥

(फिर उसनें कहा-) रे मूर्ख! मुझसे अकारण ही शत्रुता करके तू आज घोड़े बेचकर सो रहा है। ऐसा कहकर उसने आव देखा न ताव और सत्राजित् के कण्ठ पर खड्ग से प्रहार कर दिया;

जातें मरनु भयउँ तेहिं केरा। अस लखि खल हरषान घनेरा॥
हरि मनि पुरट सदन निज आवा। हिय बिचारि अस लग पछितावा॥

जिससे उसकी मृत्यु हो गई, यह देखकर वह दुष्ट अत्यधिक प्रसन्न हुआ। फिर मणि और वहाँ उपलब्ध स्वर्ण चुराकर वह अपने घर आ गया, किन्तु फिर यह सोचकर पछतानें लगा कि,

अज भइ हरि तें रिपुता मोरी। होब काह अब जे भइ खोरी॥
इहँ सतभाम भेद जब जाना। रथ चढ़ि गवनि कंत समुहाना॥

आज श्रीकृष्ण से मेरी शत्रुता हो गई है। अब जो अपराध मुझसे बन पड़ा है, उसका परिणाम क्या होगा? इधर जब सत्यभामा को इस घटना का ज्ञान हुआ, तो वे रथ पर चढ़कर अपने स्वामी श्रीकृष्ण के पास गईं।

पुनि जस भा पितु मरनु बखाना। सुनि अति दुखि भै दयानिधाना॥
नाथ सुना मैं कबहुँ पाहनहिं। जोंक न लग पै लखु भा उलटहिं॥

फिर जिस प्रकार पिता की मृत्यु हुई थी, वह सब घटना उन्होंने उनसे कह दी, जिसे सुनकर दयानिधान भगवान अत्यन्त दुःखी हुए। (सत्यभामा ने फिर कहा-) हे नाथ! मैंने सुना था कि पत्थर को कभी भी जोंक नहीं लगती है, किन्तु देखिये! यह तो उल्टा हो गया।

दोहा- **मरमु बचन करुनामय सुनि अति सकुचे स्याम।**
बहुरि कुपित बलधाम सँग चले द्वारिका धाम॥४२॥

उनके ऐसे करुणापूरित मर्म वचन सुनकर भगवान श्रीकृष्ण अत्यन्त लज्जित हो गए। फिर क्रोध में भरकर वे बलरामजी के साथ द्वारिका को चले।

चौ.- **सतधनवा जब हरि रिस सुनेऊँ। बार बार आपन सिरु धुनेऊँ॥**
तासु हृदयँ मुख लगि उमगाना। तब सो गा तिन्हँ जेहि उकसाना॥

इधर जब शतधन्वा ने भगवान के क्रोध के विषय में सुना, तो उसने बार-बार अपना सिर पीटा। भय के मारे उसका कलेजा मुँह को आ गया। तब वह उनके पास गया, जिन्होंने उसे उकसाया था।

अब न प्रान रह कोपेहुँ स्यामा। सो दुराहु मोहि तुम निज धामा॥
न त अक्रूर मम सारथि होहूँ। हरिहि बिरुद्ध लेउ मैं लोहू॥

(सतधन्वा ने अक्रूर व कृतवर्मा से कहा-) अब मेरे प्राण नहीं बचेंगे, क्योंकि श्रीकृष्ण मुझ पर रुष्ट हो चुके हैं। इसलिये अब तुम मुझे अपने घर में छिपाओ, अन्यथा अक्रूर मेरे सारथि बन जायँ और मैं कन्हैया से युद्ध करूँ।

प्रान मोह तुम तब किन कीन्हा। बैर मोल हरि तें जब लीन्हा॥
लेइहि तें सतभामउँ पच्छा। सो हम करि न पाब तव रच्छा॥

(तब उन्होंने शतधन्वा से कहा-) तुमनें तभी अपने प्राणों का मोह क्यों नहीं किया, जब श्रीकृष्ण से शत्रुता की थी? अब वे सत्यभामा का ही पक्ष लेंगे, इसलिये हम तुम्हारी रक्षा नहीं कर पायेंगे।

हतेहुँ सहज जेहिं कंस कठोरा। को न जान जग उन्ह रिस घोरा॥
सुनि अस रूख बचन उन्हँ केरा। निज कहँ जाना ठगित घनेरा॥

जिन्होंने कठोर कंस को भी सहज-ही में मार डाला, उन श्रीकृष्ण के भयङ्कर क्रोध को इस संसार में कौन नहीं जानता? उनके ऐसे रूखे वचन सुनकर शतधन्वा ने स्वयं को अत्यधिक ठगा-सा अनुभव किया।

गति प्रतिदिनु जोजन सतचारी। रथहिं चलेउँ मनि तहहिं बिसारी॥

फिर वह मणि को वहीं छोड़कर प्रतिदिन चार सौ योजन की गति से रथ हाँककर वहाँ से भागा।

दोहा- **सतधन्वा भजि छूटेउ सुना उभय इत आइ।**

सतभामहि तब राखि पुर लगे पाछ अतुराइ॥४३॥

इधर दोनों भाईयों (श्रीकृष्ण-बलराम) ने द्वारिका आकर सुना कि सतधन्वा भाग छूटा है, तब सत्यभामा को नगर ही में छोड़कर वे दोनों उतावली से उसके पीछे दौड़े।

चौ.- कछुकहि चलि दुहुं घेरेहुं तेहीं। अस लखि तें भजि चला पयादेहिं॥
तब हरि आपन चक्र चलाई। दीन्ह खलहि बैकुंठ पठाई॥

कुछ ही दूर चलकर उन दोनों ने शतधन्वा को घेर लिया, यह देखकर वह पैदल ही भाग चला। तब भगवान श्रीकृष्ण ने अपने चक्र के प्रहार से उस दुष्ट को वैकुण्ठ भेज दिया।

मनि न पाइ जब हरि तिन्ह पासा। कह अग्रज सन परम निरासा॥
बंधु मनि न मिलि मोहिं तिन्ह पाहीं। तब बिचार कर बल हिय माहीं॥

जब श्रीकृष्ण को उसके पास मणि नहीं मिली, तब अत्यन्त निराश होकर उन्होंने दाऊ से कहा कि भाई! मुझे उसके पास मणि नहीं मिली। तब बलरामजी मन में विचार करने लगे कि,

मनि त पाइ पर कान्हँ दुराई। सतभामहि दइ चहहिं कन्हाई॥
पुनि कह प्रगट खोजु तुम स्यामा। जाइ रहा मैं तिरहुत धामा॥

मणि तो मिल गई है, किन्तु कन्हैया उसे मुझसे छिपाकर सत्यभामा को देना चाहता है। फिर प्रकट में उन्होंने कहा कि हे कन्हैया! तुम मणि की खोज करो, मैं मिथिलापुरी जा रहा हूँ।

अस कहि अहिपति मिथिला आए। पुनि मिथिलापति जब सुनि पाए॥
तब उन्ह आइ कीन्ह सनमाना। भेंटे पट भूषन मनि नाना॥

ऐसा कहकर बलरामजी मिथिला आ गए। जब यह समाचार मिथिलानरेश को ज्ञात हुआ तब आकर उन्होंने उनका सत्कार किया और उन्हें अनेक मणियाँ व वस्त्राभूषण भेंट किये।

इहाँ द्वारिका फिरे कन्हाई। सतभामहि कहि लागे जाई॥
प्रिये हत्यो रिपु मैं रनु माहीं। मनि परन्तु नहिं मिलि तिन्ह पाहीं॥

इधर श्रीकृष्ण द्वारिका लौट आए और जाकर सत्यभामा से कहने लगे- हे प्रिये! मैंने शतधन्वा को युद्ध में मार गिराया, किन्तु मणि उसके पास मुझे नहीं मिली।

तब सतभाम हृदयँ अस माना। मनि दाउहि दइ करहि बहाना॥
नृप सरबग्य दुहुँन्ह मनु पारा। तदपि प्रगट करि कछु न उचारा॥

तब सत्यभामा ने मन-ही मन यह समझ लिया कि दाऊ को मणि देकर कन्हैया मुझसे बहाना कर रहे हैं। हे परीक्षित्! सर्वज्ञ श्रीहरि उन दोनों के मन के भाव जान गये, फिर भी प्रकट करके उन्होंने कुछ नहीं कहा।

सतधनवहि मर्दन सुनि काना। कृतवरमा अक्रूर भय माना॥
बहुरि नगर तजि चले पराई। कृतवरमा ग्यो दछिन दुराई॥

इधर शतधन्वा का वध हुआ अपने कानों से सुनकर कृतवर्मा व अक्रूर अत्यन्त भयभीत हो गये। फिर द्वारिका छोड़कर वे भाग चले। कृतवर्मा दक्षिण दिशा में (कहीं) जा छिपे

दोहा- मनि गहि गांदिनिनंदन गया धाम गे आइ।

करि सराध पितरन्ह तहँ बसे कासि पुनि जाइ॥४४॥

और अक्रूर मणि लेकर गयाजी में चले आए। वहाँ पितृों का तर्पण करने के उपरान्त वे जाकर काशी में बस गये।

चौ.- मनि तें पाइ कनक मन बीसा। लाग दान करि तें अवनीसा॥
भेद जान हरि तदपि न कहेउ। तें उन्ह कर प्रिय सेवक रहेउ॥

हे परीक्षित्! वहाँ वे मणि के प्रभाव से प्रतिदिन बीस मन स्वर्ण प्राप्त करके दान करने लगे। भगवान यह भेद जानते थे, किन्तु उन्होंने इसे प्रकट नहीं किया; क्योंकि अक्रूर उनके प्रिय भक्त थे।

इहाँ दाउ पुनि कुरुपुर आए। कलिहिं गदाजुध लाग सिखाए॥
कछु दिनु बिगत तदुप फिरि आए। निरखि ताहि हरि अति हरषाए॥

इधर दाऊ पुनः हस्तिनापुर आ गए और वहाँ दुर्योधन को गदायुद्ध की शिक्षा देने लगे। फिर कुछ दिनों के उपरान्त वे द्वारिका लौट आए। उन्हें आया देखकर कन्हैया अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सतराजित कर मृतक सरीरा। हरि धरि राखेहुँ तेल गभीरा॥
मोच्छद ताहि निकारि बहोरी। करि कृत दाह कीन्ह कर जोरी॥

श्रीकृष्ण ने सत्राजित् के मृत शरीर को गहरे तेल में सुरक्षित रख छोड़ा था। इसलिये उन मोक्षदाता प्रभु ने उसे तेल से निकलवाया और फिर समस्त कृत्य करके हाथ जोड़कर उसका दाहसंस्कार कर दिया।

नृप अक्रूर जाइ बस जहँही। कवन प्रकोप ब्याप जनि तहँही॥
पर द्वारिका बिसरि उन्ह जब ते। बढ़े उपद्रव बहु तहँ तब ते॥

हे परीक्षित्! इधर अक्रूर जहाँ भी जाकर बस जाते थे, वहाँ किसी भी प्रकार का उपद्रव नहीं होता था। किन्तु जब से उन्होंने द्वारिका का त्याग किया था, तभी से वहाँ अनेक प्रकार के उपद्रव होने लगे थे।

अनाबृष्टि आदिक बहु रोगा। पुर महुँ लखि एक दिनु कछु लोगा॥
गवने हरि सन बिथा सुनाई। दीननाथ कह तिन्हहिं बुझाई॥

नगर में हो रहे अनावृष्टि आदि उत्पातों को देखकर एक दिन कुछ लोग श्रीकृष्ण के सन्मुख गए और उन्हें अपनी व्यथा कह सुनाई। तब दीनानाथ भगवान ने उन्हें समझाते हुए कहा कि,

पुरि अकरुर जबहिं तें त्यागी। तब तें ब्याधि इहाँ अस लागी॥
ते त तवहि भय भाजेहुँ स्यामा। अभय लहे बिनु फिरहिं न धामा॥

जब से अक्रूरजी ने हमारी द्वारिकापुरी को त्यागा है, तभी से यहाँ इस प्रकार की व्याधियाँ हो रही है। (तब उन्होंने कहा-) हे श्यामघन! वे तो आप ही के भय से भागे हैं और अब आपसे अभयदान पाए बिना नहीं लौटेंगे।

तब हरि कछु जादवन्हँ पठावा। जे खोजत तेहिं कासिउँ पावा॥
उन्ह हरि आयसु ताहि सुनाई। गाँदिनिसुत चलेउँ हरषाई॥

तब भगवान ने कुछ यादवों को भेजा, जिन्होंने खोजते हुए उन्हें काशी में पाया। फिर उन्होंने भगवान की आज्ञा उन्हें कह सुनाई, तब अक्रूरजी हर्षित होकर चल पड़े।

सुनि आगवन तासु दुहु भ्राता। आए लेन समाज सँघाता॥
पुनि अगहुँअ बढ़ि करि सनमाना। ताहिं भवन लाए भगवाना॥

(जब वे द्वारिका आ गए) तब उनका आना सुनकर श्रीकृष्ण और बलरामजी समाज सहित उन्हें लेनें आए। फिर आगे बढ़कर सम्मान करके, भगवान उन्हें अपने भवन में ले आए।

तहँहि जादवन्हँ सभा बोलाई। पूछा उन्ह मनि बिषय कन्हाई॥

फिर वहीं पर यादवों की सभा बुलाकर भगवान ने उन्हें मणि के विषय में पूछा।

दोहा- तात सबन्हँ देखराहु मनि जातें मिटहि सँदेह।
सुनि तेहिं मनि धरि सभा महुँ हरि प्रति राखि सनेह॥४५॥

हे तात्! आप सबको वह मणि दिखा दीजिये, जिससे कि सबका सन्देह मिट सके। उनकी बात सुनकर और उनके प्रति स्नेह रखकर अक्रूरजी ने सभा में मणि सबके सन्मुख रख दी।

चौ.- मनि कर भेद जानि जब पाए। सतभामा बल अति पछिताए॥
पुनि कह हरिहि दाउ सिरु देई। मैं तव प्रति हिय संका सेई॥

जब सत्यभामा और दाऊ को मणि के सत्य का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने अत्यधिक पश्चाताप किया। फिर श्रीकृष्ण के सन्मुख सिर झुकाकर दाऊ बोले- हे कन्हैया! मैंने अपने मन में तुम्हारे प्रति सन्देह पाल लिया था।

पूरनकाम जे अह सब भागा। जाना मैं अस ससिहि सदागा॥
अस सुनि प्रभु कह उन्हँ हिय लाई। मैं बिलगानेउँ तनक न भाई॥

जो जीवन के प्रत्येक पक्ष में पूर्ण रहता है, ऐसे निष्कलङ्क चन्द्रमा को भी मैंने दोषयुक्त समझा। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने उन्हें हृदय से लगाकर कहा- हे भाई! मैंने मन में तनिक भी बुरा नहीं माना।

सो तुम परिहरि हृदयँ गलानी। धरहुँ धीर एहि अज पृह जानी॥
सतराजित बध सुनि नरराई। हरि द्वारिका फिरे अतुराई॥

अतः तुम अपने मन से ग्लानि त्यागकर इसे ही विधाता की इच्छा समझकर धैर्य धरो। हे परीक्षित्! सत्राजित्वध के विषय में सुनकर भगवान उसी समय उतावली से द्वारिका लौट आए थे।

एहि तें प्रियन्हँ भेंटि जनि पाए। सो हरि तेन्ह मिलन पुनि आए॥
तहाँ बिताएहुँ उन्हँ चौमासा। एहिबिच गवने अरजुन पासा॥

इसलिये वे उस समय अपने प्रिय पाण्डवों व बुआ कुन्ती से मिल नहीं पाए थे; अतः श्रीहरि पुनः उनसे मिलनें आए। वहाँ उन्होंने चार महीने बिताये थे; इसी अवधि में एकबार वे अर्जुन के पास गए और

करन बिहार संग करि ताहीं। गै जमुनातट कर बन माहीं॥

तहँ बिचरत लखि मृगगन नाना। जब अरजुन संधानेहुँ बाना॥

उन्हें अपने साथ लेकर वनविहार के निमित्त यमुनातट से लगे वन में गए। वहाँ अनेक जातियों के पशुओं को विचरते हुए देखकर (आखेट की इच्छा से) जब अर्जुन ने धनुष पर बाण चढ़ाया,

तब पसुपतिचर अति अचराई। बरजि कहा उन्हँ कहँ मुसुकाई॥
उद्यत जिन्हँ बध तुम बरिआई। तिन्ह करि हानि कवनि तव भाई॥

तभी भगवान पशुपति के सेवक श्रीकृष्ण ने अत्यन्त चकित हो उन्हें रोका और हँसकर कहने लगे- हे भाई! जिनके वध के लिये तुम बलात् उद्यत हो, उन बेचारे पशुओं ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

ते निरीह बसि बिपिन बिभागा। संतत नरसमाज हित लागा॥
परिआबरनु संतुलन जोई। महिमा जासु न जग तें गोई॥

वे निरपराध जीव तो वन प्रदेशों में रहते हुए भी निरन्तर मनुष्य-समाज के हित में ही लगे हुए हैं। वे अपने-आप में इस पर्यावरण का संतुलन हैं, जिसकी महत्ता इस संसार से छिपी नहीं है।

पुनि उन्ह तें अह कानन सोभा। मनुज हृदयँ रह जेहिं पर लोभा॥
तनिक बिचारि देखु मनु माहीं। जब कोउँ मृग बिसेष रह नाहीं॥

फिर उन्हीं से तो इन वनों की शोभा है, जिस पर मनुष्य का हृदय लुब्ध हुआ रहता है। अपने मन में इस बात का तनिक विचार करके देखो कि जब कोई पशु विशेष जीवित नहीं होगा,

भोज श्रेनि कर होइहिं काहा। मिटिहि भाँति केहि असम अगाहा॥
पुनि सन्तान जे आवनिहारी। सुनि तिन्ह खोजिहिं कानन भारी॥

तो जीवों की भोजन श्रंखला का क्या होगा और उससे उत्पन्न अथाह विषमता किस प्रकार मिटेगी? फिर हमारी जो आनेवाली संतानें हैं, उनके विषय में सुनकर उन्हें (देखनें की इच्छा से) इस बीहड़ वन में खोजेंगी

पूछिहिं पुनि जब पावहिं नाहीं। तब हम उतरु देइ का ताहीं॥
श्रुति पुरान पुनि सब अस गावा। जे जिव कहँ जग अज उपजावा॥

और जब वे उन्हें नहीं मिलेंगे, तो वे (आकर) हमसे पूछेंगे, तब हम उन्हें क्या उत्तर देंगे? वेदों व पुराणों ने भी यही कहा है कि जिन जीवों को इस संसार में विधाता ने उत्पन्न किया है,

तेहिं जीअन पूरन अधिकारा। नर हित अति अघ तिन्ह संघारा॥
जिव त्रिजाति जग उन्नति माहीं। कवनि भाँति नर तें कमु नाहीं॥

उन्हें जीवित रहनें का पूर्ण अधिकार है और मनुष्य के लिये उनकी हत्या महापाप है। इस संसार की उन्नति में (जल, थल व आकाश में रहनेवाले) तीनों जातियों के जीवों का योगदान किसी भी प्रकार मनुष्य से कम नहीं है।

ते बन सरिस धरनि अलँकारा। मनुजहि जनि तिन्ह बध अधिकारा॥

मृगया पसुपति प्रति अघ भारी। अजहि देहुँ यह कुकृत बिसारी॥

वनों के समान ही वे भी इस वसुन्धरा के अलङ्कार हैं और मनुष्य को उनकी हत्या करने का (कोई) अधिकार नहीं है। मृगया (शिकार करना) पशु-पक्षियों के स्वामी भगवान शिव के प्रति (होनेवाला) घोर अपराध है, इसलिये इस कुकर्म को तुम आज ही त्याग दो।

सब्यसाचि सुनि अति सकुचाए। छमा माँगि पुनि पद सिरु नाए॥
उभय तदुप एक तरु तर आई। करि बिश्राम थकान मेटाई॥

यह सुनकर अर्जुन अत्यधिक लज्जित हुए और उन्होंने श्रीकृष्ण के चरणों में सिर नवाकर उनसे क्षमा माँगी। तदुपरान्त दोनों ने एक वृक्ष के नीचे आकर विश्राम किया और अपनी थकान मिटाई।

तृषावंत भै अरजुन जबहीं। गए बेगि जमुना तट तबहीं॥
तेहिं देखा सरि कर घन नीरा। एक हेमगृह दीप्त गभीरा॥

जब अर्जुन को प्यास लगी, तब वे शीघ्र ही यमुना के तट पर गए। वहाँ उन्होंने देखा कि नदी के गहरे जल के मध्य सोने से बना एक भव्य भवन अत्यधिक उद्भाषित हो रहा था।

जामहँ रत एक कुँअरि ललामा। तप महुँ मुख मनमोहन नामा॥

जिसमें बैठकर एक अत्यन्त सुन्दर युवती अपने अधरों पर श्रीकृष्ण का नाम लिये हुए तप कर रही थी।

दोहा- **पारथ जाइ समीप तिन्हँ पूछि हेतु तप लाग।**
भानुसुता मैं कालिन्दी हरि पद मम अनुराग॥४६॥

अर्जुन उसके निकट जाकर उससे तपस्या के उद्देश्य के विषय में पूछने लगे। (तब उस युवती ने कहा कि) मैं सूर्यपुत्री कालिन्दी हूँ और भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में मेरा अनुराग है।

चौ.- **धनुधर कृष्न ब्रह्म अवतारा। कंत करन जिन्हँ मैं पनु धारा॥**
इहि कारन पितु आयसु पाई। मैं उन्ह तप करि रहि इहँ भाई॥

हे धनुर्धर! श्रीकृष्ण परब्रह्म के अवतार हैं, जिन्हें पतिरूप में प्राप्त करने का मैंने सङ्कल्प लिया है। हे भाई! इसी कारण मैं अपने पिता भगवान सूर्य की आज्ञा से यहाँ उनका तप कर रही हूँ।

फिरेहुँ धनंजय सुनि तिन्ह बयना। चकित भए कह राजिवनयना॥
जुबति करइ तव हित तप भारी। जे न भरोष त लेहुँ निहारी॥

तब अर्जुन उनके वचन सुनकर लौट आए और चकित होकर श्रीकृष्ण से बोले- हे कमलनयन! तुम्हें पाने के लिये युवतियाँ बड़ा भारी तप किया करती हैं, यदि विश्वास न हो तो स्वयं (चलकर) देख लो।

तब हरि रबितनुजा तट आए। अर्जुन कहि लग सैनि लखाए॥
लखहुँ कुँअरि ए सोइ घनस्यामा। जे चह तव पद आपन धामा॥

तब कन्हैया यमुना के तट पर पधारे और अर्जुन उन्हें सङ्केतपूर्वक दिखाकर कहनें लगे- हे घनश्याम! देखो! ये वही युवती है, जो तुम्हारे चरणों में अपने लिये स्थान प्राप्त करना चाहती है।

सुनि पहिचानि जमी उठि धाई। परी पदाम्बुज अति हरषाई॥
तब हरि रस निकाम पहिचानी। सादर गहेहुँ जमुन कर पानी॥

उनका वार्तालाप सुनकर और भगवान को पहचानकर कालिन्दी हर्षित हो उठ दौड़ीं और भगवान के चरणकमलों में गिर पड़ी। तब श्रीकृष्ण ने उनके निष्काम प्रेम को पहचानकर बड़े आदर से यमुनास्वरूपा उन कालिन्दी का पाणिग्रहण कर लिया।

नृप उजैनिपति अनुजा सुन्दर। बंधु अयोजेहुँ जासु स्वयंबर॥
मित्रबिंद कुँअरिहि अस नामा। हरि बरिआन सभा तें स्यामा॥

हे परीक्षित्! उज्जयिनी के राजा विन्द की छोटी बहिन अत्यंत सुन्दर थीं, जिसके विवाह के निमित्त उन भ्राता ने स्वयंवर आयोजित किया। उस राजकुमारी का नाम मित्रविन्दा था, जिसे श्रीकृष्ण स्वयंवर-सभा से बलपूर्वक हर लाए।

तब उछाह गुर करि नरनाहा। श्रुति अनुहार कीन्ह उन्ह ब्याहा॥

तब द्वारिका में महान उत्सव आयोजित करके महाराज उग्रसेन ने वेदोक्त रीति से (श्रीकृष्ण से) उनका विवाह करा दिया।

दोहा- **कोसलाधिपति नगनजित राखेहुँ पनु नरनाह।**
नाथिहि जे मम सप्त बृष बरिहि सुता मम ताहँ॥४७॥

हे परीक्षित्! कोशलदेश के राजा नग्नजित् ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो भी शूरवीर मेरे सात बैलों को नाथ लेगा, मेरी पुत्री उसी का वरण करेगी।

चौ.- **रहे बसहँ सो अति बलि भारी। बस करि चह उन्हँ देइ बिदारी॥**
हरि उन्हँ बिषय सुना एक बारा। नाथन गै उन्हँ नृपतिहि द्वारा॥

वे बैल बड़े विशाल व बलवान थे और जो भी उन्हें नाथने का प्रयत्न करते थे, उन्हें वे विदीर्ण कर देते थे। एक बार उन बैलों के विषय में सुनकर भगवान श्रीकृष्ण उन्हें नाथने के लिये राजा नग्नजित् के द्वार पर पहुँचे।

पुनि गिरिधर भुजबल प्रगटाई। नाथे सकल बसहँ बरिआई॥
निरखि नग्नजित अति हरषाना। सत्या कहँ बिआहि भगवाना॥

फिर उन गिरिधर श्रीकृष्ण ने अपनी भुजाओं का पराक्रम प्रकट करके उन सातों बैलों को बलपूर्वक नाथ लिया। यह देखकर राजा नग्नजित् अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने अपनी पुत्री सत्या को भगवान के साथ ब्याह दिया।

न्यौत पाइ एक बार नरेसा। गए कृपानिधि कैकय देसा॥
तहँ भद्रा कर निरखि स्वयंबर। बैठे सभा अकथ सुषमाधर॥

हे परीक्षित! एक बार निमंत्रण पाकर कृपासिन्धु भगवान श्रीकृष्ण कैकय नामक देश को गए। वहाँ राजकुमारी भद्रा का स्वयंवर होता हुआ देखकर अकथनीय सौन्दर्य धारण करनेवाले वे श्रीकृष्ण उस सभा में जा बैठे।

राजकुँअरि कर गहि बरमाला। सभउ आइ चितएहुँ जगपाला॥

तब उन्ह अनुपम रूप रिझाई। कुँअरि माल उन्हँ कंठ धराई॥

फिर अपने हाथों में वरमाला लिये राजकुमारी स्वयंवर सभा में पधारी और वहाँ उसने जगत्पालक भगवान को उपस्थित देखा। तब उस राजकुमारी ने उनके अनुपम रूप पर रीझकर वरमाला उनके कण्ठ में पहना दी।

पुलकित तन अतिसय सुखमानी। हरि गहेहुँ सादर तिन्ह पानी॥
तब संतर्दन कुँअरिहि भ्राता। सारेहुँ ब्याह तेन्हँ मनु राता॥
बहुरि सबनि तें बिदा कराई। कुँअरि संग पुर फिरे कन्हाई॥

तब श्रीकृष्ण ने भी पुलकित शरीर हो अत्यन्त सुख मानकर आदरपूर्वक उसका पाणिग्रहण कर लिया। तब राजकुमारी के भाई संतर्दन ने प्रसन्नमन से उनका विवाह सम्पन्न करवा दिया। फिर उन सबसे विदा माँगकर श्रीकृष्ण राजकुमारी भद्रा के साथ द्वारिका लौट आए।

मद्रदेस पुनि बारक जाई। कुँअरि तासु हरि आनि कन्हाई॥
रहा लछमना ताकर नामा। श्रुति अनुहार ब्याहि जिहि स्यामा॥
रुकमिनि जामवंति सतभामा। मित्रबिन्द रबिसुता ललामा॥

फिर एकबार मद्रदेश जाकर श्रीकृष्ण वहाँ की राजकुमारी को हर लाये। उसका नाम लक्ष्मणा था; जिसे श्रीकृष्ण ने श्रुतियों की रीति के अनुसार ब्याह लिया। रुक्मिणी, जामवन्ती, सत्यभामा, मित्रविन्दा, सूर्यपुत्री रूपमति कालिन्दी,

दोहा- **सत्या भद्रा लछीमना एहिबिधि आठ कुमारि।**
नृप हरि ब्याहि बसहि पुर बिरतिहुँ करत सुखारि॥४८॥

सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा आदि; इस प्रकार हे परीक्षित्! आठ राजकुमारियों से विवाह करके भगवान श्रीकृष्ण वैराग्य को सुख देते हुए द्वारिका में निवास करने लगे।

चौ.- **राजन बसुन्धरा एक बारा। तपु त्रिदेव कर कीन्ह अपारा॥**
तब हरि हर अज अति हरषाए। तेन्ह देन बरु सनमुख आए॥

हे राजन! एक बार माता पृथ्वी ने त्रिदेवों का अपार तप किया, तब ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी परम संतुष्ट होकर वर देने के लिये उनके सम्मुख उपस्थित हुए।

उन्ह बिलोकि महि सीस नवाई। बरु अस माँगत भइ हरषाई॥
तनय देहिं प्रभु जे अनुकूला। तिहुँ पुर बलि न जाहिं समतूला॥

उन्हें देखकर पृथ्वी ने उन्हें सिर नवाया और हर्षित होकर यह वर माँगनें लगी कि यदि आप भगवन् मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये जिसकी तुलना में तीनों लोकों में कोई अन्य बलशाली न हो।

कोउँ न करि सक जिन्हँ संघारा। सुनि त्रिदेव अस बचन उचारा॥
भौम नाउँ सुत होइहि तोरा। कोउ न हति सक सो अस घोरा॥

और कोई भी जिसका वध न कर सके। पृथ्वी के वचन सुनकर त्रिदेवों ने कहा कि तुम्हें भौम नामक एक पुत्र प्राप्त होगा और वह ऐसा रणधीर होगा कि जिसे कोई भी मार न सकेगा।

महि तें जितिहहि सब महिपालन्हँ। बिबुधन्ह सहित दसहुँ दिगपालन्हँ॥
हरि बिनु मारि सक न तेहिं कोऊँ। सुनि महि कीन्ह नमन कर दोऊँ॥

हे पृथ्वी! वह समस्त भूपालों व देवताओं सहित दसों दिक्पालों को जीत लेगा और भगवान श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कोई भी उसे मार नहीं सकेगा; यह सुनकर वसुधा ने उन्हें दोनों हाथ जोड़कर नमन किया।

समउँ बिगत सुत महि कहँ भयऊँ। पृहन्हि सृष्टि हिय उन्ह निरमयऊँ॥
भौम नरक महिसुत कर नामा। भट प्रचंड भा सो अघधामा॥

फिर समय बीतनें पर पृथ्वी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे देखकर माता के हृदय में ममत्वसम्बंधी कामनाओं की नवीन सृष्टि निर्मित हो गई। भूमि के उस पुत्र के भौम व नरक ये दो नाम हुए और पाप की राशि वह बड़ा ही पराक्रमी योद्धा हुआ।

प्रागजोतिसहि करि रजधानी। अरि हित सबबिधि दुरगम जानी॥
तिहुँपुर भय थापेहुँ तम रूपा। जीति तेहिं महिमंडल भूपा॥

प्राग्जोतिषपुर को शत्रुओं के लिये सब प्रकार से दुर्गम जानकर उसने अपनी राजधानी बना लिया। उस अधर्मी ने पृथ्वीभर के बहुत से राजाओं को जीतकर तीनोंलोकों में भय व्याप्त कर दिया।

सोरह सहस एक सत कुँअरी। रहि जे सोइ भूपालन्हँ खल हरि॥
एक लच्छ जब होइ कुमारी। ब्याहुँ सबन्हँ अस हृदयँ बिचारी॥

उन पराजित राजाओं की जो सोलह हजार एक सौ कन्याएँ थी, उनका उस दुष्ट ने मन-ही मन यह सोचकर हरण कर लिया कि जब इनकी संख्या एक लाख हो जायेगी तब मैं सबसे विवाह करूँगा।

दोहा- **कारा राखिसि सबन्हँ तेहिं सुररिषि तब एक बार।**
गै तहँ पुनि तिन्ह कहेहुँ हरि करिहि तोर उद्धार॥४९॥

उन सबको नरकासुर ने बन्दीगृह में डाल रखा था, तभी एक बार नारदजी वहाँ गए और उन्होंने उन राजकुमारियों से कहा कि (समय आने पर) भगवान श्रीकृष्ण तुम्हारा उद्धार करेंगे।

चौ.- **राउ एक दिनु बैठि बिमाना। चढ़ेहुँ सरग पर भौम गुमाना॥**
जूझेहुँ तें रनु भाँति अपारा। सुनासीर कर दम्भ बिदारा॥

हे राजन! एक बार अपने विमान में बैठकर भौमासुर ने अभिमानपूर्वक स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया और अनेक प्रकार से युद्ध करके उसने इन्द्र का मान भङ्ग कर दिया।

देअँ जननि कुंडल बरिआई। हरे तेहिं सक्रहिं समुहाई॥
हपकि छत्र पुनि सुरपति केरा। फिरेहुँ करत जयनाद घनेरा॥

फिर उसने इंद्र के सामने ही बलपूर्वक देवमाता अदिति के कुण्डल हर लिये और फिर उन देवराज इन्द्र का छत्र छीनकर वह महान जयनाद करता हुआ अपनी राजधानी को लौट आया।

सक्र सभय द्वारिका सिधाए। समाचार सब हरिहि सुनाए॥

नाथ धरनिसुत सो जन्महि ते। अति बलि भूप बहुत तेहिं जीते॥

तब इन्द्र भयभीत होकर द्वारिका आए और उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण से सब वृत्तान्त कह सुनाया। (इंद्र बोले-) हे नाथ! पृथ्वी का वह पुत्र जन्म से ही बड़ा बलवान है और उसनें अनेक भूपालों को भी जीत लिया है।

कपटि जान माया बिधि नाना। तव बिनु मरिहि न तें भगवाना॥
तासु कपाल काज करि आपू। हरिअ नाथ बिबुधन्हँ संतापू॥

वह कपटी अनेक प्रकार की माया जानता है और हे भगवन्! आपके मारे बिना वह नहीं मरेगा। इसलिये हे नाथ! अब आप उसका वध करके देवताओं का दुःख दूर कीजिये।

कह खलहन करि उन्ह परितोषा। हतिहउँ बेगि खलहिं तजु सोषा॥
सुनि अस इंद्र गए निज धामा। मुख धरि प्रनतपाल अस नामा॥

तब असुरनिकंदन श्रीकृष्ण ने इन्द्र को आश्वस्त करके कहा कि तुम निराशा त्याग दो, मैं शीघ्र ही उस दुष्ट का वध कर दूँगा। यह सुनकर 'प्रणतपाल' इस प्रकार जपते हुए इन्द्र अपने लोक को चले गए।

इहँ खलारि खगपतिहि बोलावा। हरषि अए प्रभु हेतु बुझावा॥
पुनि कह सतभामा पहि जाई। नरकहि पुर मैं करब चढ़ाई॥

इधर दुष्टहन्ता श्रीकृष्ण ने पक्षिराज गरुड़ को बुलाया, तो वे हर्षपूर्वक उपस्थित हो गये। तब प्रभु ने उन्हें अपना मंतव्य कह सुनाया। फिर प्रभु ने जाकर सत्यभामा से कहा कि मैं नरकासुर की राजधानी पर आक्रमण करूँगा;

प्रिये चलहु जे चलि चहुँ साथा। तहँ तें जैहहिं पुर सुरनाथा॥
निजहि जानि पिय कइ प्रिय बामा। हरषि संग भइ तब सतभामा॥

इसलिये हे प्रिये! यदि तुम भी साथ चलना चाहो तो चलो! वहाँ से हम स्वर्गलोक को जाऐंगे। तब स्वयं को भगवान की सबसे प्रिय पत्नि मानकर सत्यभामा हर्षित हो उनके साथ हो गई।

तदुप बैठि हरि खगपति पीठा। चले लच्छ करि बध सो ढीठा॥
बाम भाग उन्ह रहि सतभामा। एहिबिधि आए दुहुँ खल धामा॥

तदुपरान्त भगवान श्रीकृष्ण गरुड़ की पीठ पर बैठकर ढीठ भौमासुर के वध को अपना लक्ष्य बनाकर चले। उनके वाम भाग में सत्यभामा विराजमान थीं। इस प्रकार वे दोनों उस दुष्ट की राजधानी आ पहुँचे।

दुरग अगम महिसुत कर मोटा। जिन्हँ चहुँ फेर तीनि परकोटा॥
प्रथम कोट बहु परबत भारी। आयुध तें बिरचानेहुँ बारी॥

भूमिपुत्र नरक का वह दुर्गम किला विशाल था, जिसके चारों ओर तीन परकोटे थे। पहले परकोटे के भीतर कईं विशाल पर्वत थे, तो दूसरा परकोटा शस्त्रों से बनवाया गया था।

तीसर कोटहुँ जरहि कृसानू। निरिखेहुँ त्रयन्हँ बृष्निकुल भानू॥

तीसरे परकोटे में निरन्तर अग्नि प्रज्वलित रहती थी, तब वृष्णिवंश के सूर्यस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण ने उन तीनों परकोटों का निरीक्षण किया।

दोहा- करि पुनि गदा प्रहार एक तिहुँन्हँ कीन्ह बिधबंस।
नगरु द्वार आए तदुप हरि खगपति कर अंस॥५०॥

फिर उन्होंने अपनी कौमोदकी गदा के एक ही प्रहार से उन तीनों परकोटों का विध्वंश कर दिया। तदुपरान्त गरुड़ के कन्धों पर सवार हुए वे भगवान श्रीकृष्ण नगर के द्वार पर आए।
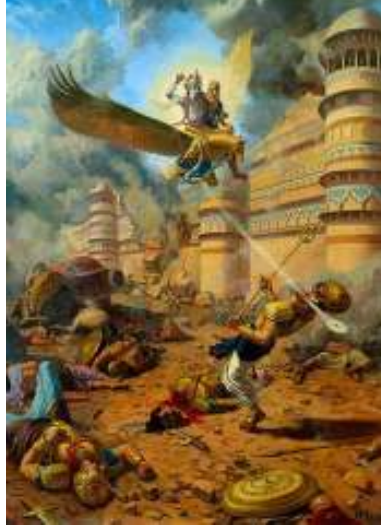
चौ.- उन्हँ लखि बहु जामिक चढ़ि आए। पंखन्हँ तें खग जाहिं उड़ाए॥
नगरु प्रबिसि प्रभु कंबु बजावा। जिन्हँ दारुन रव गड़हि कँपावा॥

उन्हें आया देखकर वहाँ उपस्थित बहुत से द्वारपालों ने उन पर आक्रमण कर दिया, जिन्हें गरुड़जी ने अपने पङ्खों की पवन से दूर उड़ा दिया। फिर नगर में घुसकर श्रीकृष्ण ने शङ्खनाद किया, जिसकी भीषण ध्वनि ने सम्पूर्ण दुर्ग को कम्पायमान कर दिया।

धुनि सुनि भौम नींद भइ भंगा। रोष अतिहि फरकत भए अंगा॥
यह को सठ जेहिं संख बजाई। मोहि छेरेहुं मम पुर बरिआई॥

वह ध्वनि सुनकर भौमासुर की नींद टूट गई और क्रोध की अधिकता से उसके अङ्ग फड़कनें लगे। (तब उसनें कहा-) यह कौन मूर्ख है, जिसनें शङ्ख बजाकर मेरे ही नगर में बलपूर्वक मुझे छेड़ा है?

आवा मुर निसिचर तब पासू। तासु सचिव पंचानन जासू॥
ते कह प्रभु न चिंत कछु आनू। अरि बन मम बल प्रगट कृषानू॥

तब मुर नामक दैत्य उसके सन्मुख उपस्थित हुआ, जिसके पाँच मुँख थे और जो उसका मन्त्री था। उसने कहा- हे नाथ! आप कुछ भी चिंता मत कीजिये; शत्रुरूपी वन के लिये मेरा बल साक्षात् अग्नि के समान है।

अबहि जाइ देखौं तेहिं नाथा। कहि धावा त्रिसूल गहि हाथा॥
जातहि भिरेहुँ पचारि अभागा। हरि ते बहुबिध जूझै लागा॥

हे नाथ! मैं अभी जाकर उसे देखता हूँ, इस प्रकार कहता हुआ हाथ में त्रिशूल लेकर वह दौड़ा। फिर जाते ही वह अभागा ललकार कर भिड़ गया और अनेक उपाय करके श्रीकृष्ण से युद्ध करने लगा।

मधुसूदन गहि चक्र कराला। काटे तिन्ह मुख सब ततकाला॥
नृप हरि जब मुर असुर निपाता। तबहि भए मुरारि बिख्याता॥

तब मधुनिकन्दन श्रीकृष्ण ने अपने कठोर चक्र से तत्काल उसके पाँचों शीश काट दिये। हे राजन्! इस प्रकार जब भगवान ने मुर नामक उस दैत्य का वध किया, तभी से वे मुरारि नाम से प्रसिद्ध हुए।

ताम्र धुआँ लखि पितु कर आपू। चढ़ि आवा रनु करि रिस दापू॥
तब प्रभु सेन प्रथम तिन्ह मारी। तदुप तासु उर दीन्ह बिदारी॥

पिता का वध हुआ देखकर मुरपुत्र ताम्र क्रोध व दर्प के साथ युद्ध में चढ़ आया। तब पहले तो भगवान ने उसकी सेना का संहार किया, तदुपरान्त उन्होंने उसकी भी छाती भेद दी।

जब भौमासुर अस सुनि पावा। बिबिधायुध गहि रिस करि धावा॥
तेहिं बिपलउ सम आवत पाई। भय तें सतभामा अकुलाई॥

जब भौमासुर ने यह सुना तो अनेकानेक अस्त्र-शस्त्र धारण करके वह क्रुद्ध होकर दौड़ा। उस समय उसे किसी प्रचण्ड विप्लव के समान आता हुआ देखकर सत्यभामा भय से व्याकुल हो उठीं।

प्रभु एहिबिधि उन्ह लखि भयभीता। कीन्ह चक्र तें खल मुख रीता॥

उन्हें इस प्रकार भयभीत हुई देखकर भगवान ने सुदर्शन चक्र से भौमासुर का सिर काट दिया।

दोहा- **असुर दवन लखि बिबुधगन हरषि बरषि लग फूल।**
सक्र कीन्ह प्रभु अस्तुति चितइ समउ अनुकूल॥५१॥

दैत्य का वध हुआ देखकर देवता हर्षित हो भगवान श्रीकृष्ण पर पुष्पवर्षा करने लगे। उस अनुकूल समय को देखकर देवराज इन्द्र ने उन भगवान की स्तुति की।

चौ.- **सुतबधु पौत संग करि धरनी। आइ तहाँ लगि उन्ह जसु बरनी॥**
बहुरि पौत निज हरि पद डारा। अभय दीन्हि जेहिं जग आधारा॥

तभी पुत्रवधू व पौत्र के साथ पृथ्वी वहाँ उपस्थित हुई और उनका यश गाने लगी। फिर उसने अपने पौत्र को श्रीकृष्ण के चरणों पर डाल दिया, जिसे जगदाधार श्रीकृष्ण ने अभय कर दिया।

तदुप धरनि करि प्रभु सनमाना। लै गवनी निज गृह सुखमाना॥
पुनि कुंडल छत हरिहिं फिराई। कहत भई अस धीरजु लाई॥

तदुपरान्त सुख मानकर पृथ्वी सम्मानपूर्वक उन प्रभु को अपने घर ले गई। फिर देवमाता अदिति के कुण्डल और इन्द्र का छत्र श्रीकृष्ण को लौटाते हुए वह धैर्यपूर्वक इस प्रकार कहने लगी-

जे खल परधन आँखि गड़ावहिं। जगत माँझ तेहिं को रखि पावहिं॥

हरि हरि कुँअरि कपूत अपारा। बेगि करिअ अब तिन्ह उद्धारा॥

जो दुष्ट पराई सम्पत्ति पर अपनी आँखे गड़ाए रखता है, भला! संसार में उसकी रक्षा कौन कर सकता है? हे हरि! मेरे कुपुत्र ने अनेक युवतियों को हर लिया था, अब आप शीघ्र उनका उद्धार कीजिये।

समउँ सोधि जगपति तब नीका। निज कर कीन्ह भौमसुत टीका॥
तदुप जातही भवगृह माहीं। आतम सब परब्रह्म छराहीं॥

तब भगवान ने उत्तम मुहूर्त देखकर अपने हाथ से भौमपुत्र का राजतिलक किया। तदुपरान्त भवरूपी कारागृह में जाते ही उन परब्रह्मरूप ने वहाँ बन्दी आत्मारूप उन समस्त राजकुमारियों को मुक्त कर दिया।

ते कहि निज कहँ निपट अनाथा। मनमोहन कहँ बरि भइ साथा॥
पानिगहनु उन्ह कीन्ह कन्हाई। बहुरि द्वारिका सबन्हँ पठाई॥

तब स्वयं को नितान्त अनाथ बताकर उन सभी ने श्रीकृष्ण को ही पतिरूप में वर लिया और उनके साथ हो गई। तब भगवान ने उनका पाणिग्रहण करके फिर उन सबको द्वारिका भेज दिया।

खगपति पीठि तदुप चढ़ि स्यामा। अमरावति गै सँग सतभामा॥
लखि सुरेस हरि कहँ गृह लावा। हरषि निजासन पुनि बैठावा॥

तदुपरान्त गरुड़जी की पीठ पर बैठकर श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ अमरावती को गए। यह देखकर इन्द्र श्रीहरि को अपने भवन में ले आए और फिर हर्षित हो उन्हें अपने सिंहासन पर बैठा दिया।

दोहा- **तदुप छत्र कुंडल दिए सक्रहु रमानिवास।**
एतनेहुँ बीनापानि मुनि आए करत प्रकास॥५२॥

तदुपरान्त रमानिवास भगवान ने इन्द्र को छत्र व कुण्डल लौटा दिये। इतने में ही चारों ओर अपना तप-प्रसूत तेज बिखेरते हुए वीणापाणि देवर्षि नारद वहाँ पधारे।

चौ.- **नृप नारद पूरब एक बारा। गए द्वारिका हरि के द्वारा॥**
कुसुम पारिजातहुँ उन्ह हाथा। जेहिं लच्छिहि भेंटेहुँ मुनिनाथा॥

हे परीक्षित्! एक बार पूर्वकाल में देवर्षि नारद द्वारिका में श्रीकृष्ण के द्वार पर पधारे थे। उस समय उनके हाथ में पारिजातवृक्ष का पुष्प था, जिसे उन मुनिश्वर ने रुक्मिणीजी को भेंट कर दिया था।

अस बिलोकि सतभाम रिसाई। उठि पुनि कोप भवन चलि आई॥
तब गोपिकानाथ तहँ आए। बिबिध जतन करि लाग मनाए॥

यह देखकर सत्यभामा रुष्ठ हो गई और वहाँ से उठकर कोप-भवन में चली आई। तब गोपिकावल्लभ श्रीकृष्ण वहाँ आए और अनेक यत्न करके उन्हें मनानें लगे।

जब न मानि हरि कह मुसुकाई। प्रिये धीर धरु रिस बिहराई॥
मैं तुम्हार हित एक सुखदाता। तरुहि आनि दैउँब परिजाता॥

किन्तु जब वे किसी भी प्रकार नहीं मानी, तब कन्हैया ने मुस्कुराकर उन्हें कहा- हे प्रिये! तुम रूठना छोड़कर, धैर्य धारण करो। तुम्हारे सुख हेतू, मैं तुम्हें पारिजात का वृक्ष ही ला दूँगा।

तेहीं समउँ सक्र तहँ आवा। नरक कुकृत पुनि प्रभु सन गावा॥
सुनि अस निरखत सुरपति ओरा। लागे कहन प्रिया रिस घोरा॥

उसी समय इन्द्र वहाँ आए और उन प्रभु से नरकासुर के पापों के विषय में कह सुनाया। यह सुनकर इन्द्र की ओर देखते हुए श्रीहरि उनसे अपनी प्रिया के कठिन रोष के विषय में कहने लगे।

सुनासीर मम प्रिया रिसाई। पारिजात तरु चह अँगनाई॥
कहु का करुँ अब मैं सुरराई। सुनि सुरेस कह पद सिरु नाई॥

हे देवराज! मेरी प्रियतमा रूठ गई है, क्योंकि वह अपने आँगन में पारिजात का वृक्ष पाना चाहती है। हे देवेन्द्र! अब आप ही बताइये, मैं क्या करूँ? यह सुनकर इन्द्र ने चरणों में सिर नवाकर कहा।

नाथ मर्दि भौमासुर रारी। आनु सरग तें बिटप उपारी॥
अस सुनि गै हरि बिबुध सहाई। दीन्ह नरक कहँ नरक पठाई॥

हे नाथ! युद्ध में भौमासुर का वध करके, आप (स्वर्ग से) पारिजात का वृक्ष उखाड़ लाईयेगा। यह सुनकर भगवान देवताओं की सहायता के लिये गए और नरकासुर को मारकर यमलोक भेज दिया।

अब उन्हँ मुनिहि पुनि सरग पाई। कहन लाग कर जोरि कन्हाई॥
पारिजात चहुँ मैं लै जाई। तातें सक्रहि कहु मुनि जाई॥

अब स्वर्ग-लोक में उन्हीं नारद को पुनः पाकर भगवान श्रीकृष्ण उनसे हाथ जोड़कर कहने लगे कि मैं पारिजात-वृक्ष को द्वारिका ले जाना चाहता हूँ, इसलिये आप जाकर इन्द्र से इस विषय में कहिये।

नारद तब कहि समुख पुरंदर। सुनि तेहिं कीन्ह वदनु सम बन्दर॥
बोलेउँ कछु न भए अति छोभा। जथा तज न माखी गुड़ लोभा॥

तब देवर्षि ने जाकर यह बात इन्द्र के सन्मुख कह सुनाई, सुनते-ही इन्द्र ने बन्दर का सा-मुँह बना लिया और अत्यधिक क्षोभ के कारण कुछ न बोला, जैसे मक्खी गुड़ का लोभ नहीं त्याग पाती।

दोहा- **बिमल ग्यान उर पाइ जस बिषयन्ह घटहि प्रभाउ।**
तस प्रभु महिमा सुमिरतहि भा तिन्ह लोभ दुराउ॥५३॥

फिर जिस प्रकार निर्मल ज्ञान को पाकर विषयों का प्रभाव घट जाता है, ठीक उसी प्रकार भगवान की महिमा का स्मरण करते ही, इन्द्र का लोभ दूर हो गया।

चौ.- **भल अह अस कहेउँ सुरनाथा। ताहि समय सचि रहि उन्हँ साथा॥**
पति बच सुनि तें कहइ रिसानी। स्याम करहि नित निज मनमानी॥

तब देवराज ने ठीक है, इस प्रकार कहा। उस समय उनकी पत्नि शचि उनके साथ थी, जो पति के वचन सुनकर इस प्रकार बोली, कन्हैया सदैव अपने ही मन की करते हैं।

प्रथम देखि तव मान मनौती। रोकि ताहि तोहि दीन्हि चुनौती॥
पुनि तव रिस लखि कुधर उपारी। कीन्ह बिरोध तोर अति भारी॥

पहले तो व्रज में आपका पूजन होते देखकर उन्होंने उसे रुकवाकर आपको चुनौती दे दी। फिर आपको रुष्ट हुआ देखकर उन्होंने पर्वत उखाड़ लिया और आपका बड़ा भारी विरोध किया।

सो मुनि हम न देहिं तरु सुन्दर। एकमात्र तें सम्पति हम कर॥
सक्रहुँ चुप लखि मुनि घनस्यामहि। कहि सुनि रिस भा सान्तिधामहि॥

इसलिये हे मुनिराज! हम आपको वह सुन्दर वृक्ष नहीं देंगे। वह एकमात्र हमारी ही सम्पदा है। तब देवराज इन्द्र को चुप देखकर नारदजी ने सारी बात जाकर घनश्याम को कह सुनाई, जिसे सुनते-ही शान्तचित्त भगवान को क्रोध हो आया।

सठ उलूक निज सीध कराई। दीन्ह आपनेउँ बचन बिहाई॥
पुनि गै नंदनबन तरु सोधा। लखि उन्ह रच्छक कीन्ह बिरोधा॥

(तब उन्होंने कहा-) उस मूर्ख ने अपना उल्लू सीधा करवाकर अपने दिये हुए वचन को भुला दिया। फिर श्रीकृष्ण पारिजात की खोज में नन्दन वन को गए। उन्हें वहाँ देखकर रखवालों ने उनका विरोध किया।

तदपि बिसरि उन्ह लच्छ बिलोका। जिहि सुषमा कर हियहुँ असोका॥
ताम्ब बरन पल्लव अति चारू। मनहुँ बैठि छबि धरि सिंगारू॥

फिर भी भगवान ने उन्हें छोड़कर अपने लक्ष्य पारिजात पर ध्यान केन्द्रित किया, जिसकी सुन्दरता हृदय को शोक से छुड़ानेवाली थी। उसके ताम्रवर्ण के पत्ते अत्यन्त ही सुन्दर थे, मानों स्वयं सुन्दरता ही उन पर श्रृङ्गार धारण किये बैठी हो।

कनक बरन सुन्दर मृदु छाला। चहुँ दिसि उमगहि तेज बिसाला॥
नृप बननिधि मंथन जब भयऊँ। तब बारिधि सो तरु उपजयऊँ॥

सोने के रङ्ग की उसकी छाल सुन्दर व कोमल थी, जिससे चारों ओर अपार तेज उमड़ रहा था। हे परीक्षित्! जब समुद्र-मन्थन हुआ था, तब समुद्र ने ही उस वृक्ष को उत्पन्न किया था।

बिटपहिं छबि बिमोहि सतभामा। कहइ सुनहुँ सब समरथ स्यामा॥
यह द्रुम मोर हृदय अति भायौ। सुनतहि कंत उतरि उपटायौ॥

वृक्ष की सुन्दरता पर अत्यधिक मुग्ध हुई सत्यभामा कहने लगी- हे सर्वसमर्थ घनश्याम! सुनिये! यह वृक्ष मेरे मन को बड़ा ही प्रिय लगा है। यह सुनते-ही श्रीकृष्ण ने गरुड़ से उतरकर उसे उखाड़ लिया।

पुनि तेहिं द्विजपति काँध चढ़ाई। चले प्रिया सँग मुदित कन्हाई॥

फिर उसे गरुड़ के कन्धों पर चढ़ाकर वे श्रीकृष्ण अपनी प्रिया सत्यभामा के साथ आनन्दपूर्वक चले।

दोहा- **सचिहि भई जब खबरि अस कंतहि प्रेरेउँ जाइ।**

तब पबिधर चढ़ि नाग निज बिबुधन्ह कटकु सजाइ॥५४॥

जब इन्द्राणी को यह समाचार मिला, तो उसनें जाकर अपने पति को उकसाया। तब वज्रपाणि इन्द्र ने अपने वाहन ऐरावत पर आरूढ़ हो (उन्हें रोकनें के लिये) देवताओं की सेना तैयार की।

चौ.- हरि हठ होइ लाग तिन्हँ खेदा। तब आए नारद निरबेदा॥
पुनि बोले सुनु सुरपति मूढ़ा। जासु महिम हर अज लगि गूढ़ा॥

भगवान के इस हठ का चिन्तन करके उन्हें खेद होने लगा, तभी निर्वेदमना देवर्षि नारद (उनके पास) आए और बोले- हे मूर्ख देवराज सुनो! जिनकी महिमा स्वयं ब्रह्माजी व शिवजी के लिये भी एक (अबूझ) रहस्य है,

प्रनतपाल जे तिहुँपुर नायक। का तुम उन्हँ तें लरिबे लायक॥
अह जे बलु तुम्हार अस भारी। भौमहिं किन हतेहुँ करि रारी॥

जो शरणागत के रक्षक व तीनों लोकों के स्वामी हैं, क्या तुम उनसे जूझने योग्य हो? और यदि तुम्हारा पराक्रम इतना ही विशाल है, तो तुमनेयुद्ध करके स्वयं ही भौमासुर का वध क्यों नहीं कर दिया?

आउँ बसहँ अरु मोकहँ मारू। उकुति ठीक यहि तव ब्यवहारू॥
सक्र सुनत अस परम खिसाना। फेरि कटकु गृह कीन्ह पयाना॥

'आ बैल और मुझे मार' तुम्हारे इस व्यवहार पर यही उक्ति उचित प्रतीत होती है। यह सुनते-ही इन्द्र अत्यन्त लज्जित हुआ और अपनी सेना को लौटाकर घर चला गया।

इहाँ हरषि निज प्रिया समेता। आए निज पुर कृपानिकेता॥
तहाँ तेन्ह मानिनि रुख पाई। थापेउँ तासु अजिर तरु जाई॥

इधर कृपाधाम श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमा के साथ हर्षित हो अपनी पुरी द्वारिका में लौट आए। वहाँ उन्होंने मानवती सत्यभामा का रुख देखा और जाकर उनके भवन के सम्मुख वृक्ष को स्थापित कर दिया।

एहिबिधि आपन उर धरि जोगा। लागे हरि गृह जीवनु भोगा॥
रूप धरे मनमोहन नाना। बसहि सबन्हँ सँग एक समाना॥

इस प्रकार अपने हृदय में योगबल धारण करके भगवान गृहस्थ जीवन जीने लगे। वे मनमोहन अनेक रूप धारण करके समान रूप से अपनी समस्त रानियों के साथ रहते थे।

राजन अकसर कृपानिकेता। बैठे गृह रुकमिनिहिं समेता॥
छाए मनिमय बन्दनिबारा। सुरतरु कुसुम सुबास अपारा॥

हे परीक्षित्! एक बार कृपानिकेत प्रभु अपने भवन में रुक्मिणीजी के साथ विराजमान थे। वहाँ मणियों से अलंकृत वन्दनवार छाए हुए थे और सब ओर कल्पवृक्ष के पुष्पों की अपार सुगन्ध फैल रही थी।

भयउँ रमहि तब एहि अति माना। मैं हरि कहँ निज रूप लोभाना॥
जब सरबग्य भेद यह जाना। कहत भए अस मृदु मुसुकाना॥

तभी रुक्मिणीजी को इस बात पर अत्यंत अभिमान हो आया कि मैंने इन श्रीहरि को अपनी सुन्दरता के बल पर रिझा लिया है। जब उन सर्वज्ञ प्रभु को यह ज्ञात हुआ तो वे कोमल मुस्कान के साथ इस प्रकार कहने लगे-

मैं अहीर तुम राजकुमारी। मोहि बरि कीन्ह चूक तुम भारी॥
मिलन न फब कस तव अरु मेरा। जस तीतरु अध अरध बटेरा॥

हे रुक्मिणी! मैं एक ग्वाला हूँ और तुम राजकुमारी हो। इसलिये मेरा वरण करके तुमनें बड़ी भारी भूल कर दी। तुम्हारा और मेरा मेल कैसे नहीं जँचता; जैसे आधा तीतर और आधा बटेर।

मैं नित पाइ मगधपति त्रासा। बारिधि अंतर करउँ निवासा॥
सुकृत न मैं कबहूँ कछु कीन्हें। पुनि मम पद जिन्हँ निज चितु दीन्हें॥

जरासंध के भय से निरंतर पीड़ित रहनेवाला मैं इस समुद्र के भीतर (द्वारिका में) निवास करता हूँ। न तो मैंने कभी कोई सत्कर्म ही किया है और जो भी मेरे चरणों में अपना चित्त लगाए रखते हैं

दारिद बिरति देहुँ मैं ताही। पै तुम अगुन लखे यह नाहीं॥
पुनि नटखट कहे कछु कटुबादा। भा दारुन चिरप्रियहि बिषादा॥

उन्हें मैं दरिद्रता व वैराग्य दे देता हूँ; किन्तु तुमनें मेरे इन अवगुणों को नहीं देखा। फिर उन नटखट ने कुछ अप्रिय वचन कह दिये, जिन्हें सुनकर उनकी चिरप्रिया रुक्मिनीजी को दारुण विषाद हुआ।

सुनि कठोर बच आपन नाथा। रुकमिनि ररि लगि मुख धरि हाथा॥

अपने स्वामी के उन कठोर वचनों को सुनकर रुक्मिणीजी अपने मुख को हाथों से ढँककर रोने लगी।

दोहा- हरि सप्रेम उर लाइ तब बैठारिहँ निज पास।
बृथा अधिक दुख करति प्रिये मैं त कीन्हँ परिहास॥५५॥

तब श्रीकृष्ण ने प्रेमपूर्वक उन्हें हृदय से लगा लिया और निकट बैठाकर उनसे इस प्रकार कहा- हे प्रिये! तुम व्यर्थ ही इतना अधिक दुःखी हो रही हो। मैंने तो केवल ठिठौली की है।

चौ.- पुनि धरि बर सरूप भुजचारी। पोंछत भै उन्ह अंबक बारी॥
प्रियहि मनावत अति अनुरागे। मृदुल परस कच समरन लागे॥

फिर उन्होंने अपना उत्तम चतुर्भुज स्वरूप धारण कर लिया और उनके नेत्रों से अश्रु पोंछनें लगे। फिर वे अपनी प्रिया को बड़े ही प्रेम से मनाते हुए कोमल स्पर्श से उनके केश सँवारनें लगे।

प्रिये बृथा तुम अति दुख माना। मैं बिनोद हित कछुक बखाना॥
धरहुँ धीर सब बिसरि गलानी। मानहुँ निपट मृषा मम बानी॥

(उन्होंने पुनः कहा-) हे प्रिये! तुमने व्यर्थ-ही में इतना अधिक दुःख माना, मैंने तो केवल विनोद करने की इच्छा से कुछ कह दिया था। अब समस्त ग्लानि को त्यागकर तुम धैर्य धारण करो और मेरी बात को कोरा झूठ ही समझो।

तब रुकमिनि बिसरेहुँ सब सोका। पुनि कह सुनहुँ नाथ त्रैलोका॥

आन अहहि उत्तम नहिं नाथा। बात अहहि यह बिनु पदमाथा॥

तब रुक्मिणीजी ने समस्त शोक त्याग दिया और बोलीं- हे त्रिलोकीनाथ सुनिये! अन्य जन उत्तम हैं, किन्तु मेरे स्वामी नहीं, यह बात बिना सिर पैर की है।

एहि पर चरचा निपट मूढ़ता। बूझ प्रबुध एहि बिषय गूढ़ता॥
तदपि भूलबस भइ जे खोरी। चहहुँ छमा पिय मैं कर जोरी॥

इस पर तो चर्चा करना भी मूर्खता है। जो परम बुद्धिमान हैं, वे ही इस विषय का मर्म समझते हैं। फिर भी यदि भूलवश मुझसे कोई अपराध हुआ है, तो हे स्वामी! मैं हाथ जोड़कर उसके लिये क्षमा माँगती हूँ।

हरि कह मोहि सबभाँति प्रतीती। निर्मल प्रान प्रिये तव प्रीती॥
मोहिं अकथित मुद तुम्ह कहँ पाई। अस कहि प्रियहि स्याम उर लाई॥

तब श्रीकृष्ण ने कहा- हे प्राणप्रिये! तुम्हारा प्रेम निर्मल है, इस बात का मुझे सब प्रकार से विश्वास है। तुम्हें पाकर मुझे अकथनीय आनन्द मिला है, ऐसा कहकर श्यामसुन्दर ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया।

दोहा- **एहिबिधि गृह हरिनारि सब पति कइ कर सेवकाइ।**
भै दस सुत प्रति रानि कहँ सकल असित नरराइ॥५६॥

हे परीक्षित्! इस प्रकार समस्त कृष्णपत्नियाँ अपने भवन में पति की सेवा किया करती थीं। भगवान को प्रत्येक रानी से दस-दस पुत्र प्राप्त हुए, जो सबके-सब अपने पिता के सदृश श्याम रङ्ग के थे।

चौ.- **तनय भए जे आठ पटरानी। उन्ह महुँ कछुकहुँ कहउँ बखानी॥**
संबरारि रुकमिनि के जाए। जासु चरित मैं प्रथमहि गाए॥

हे राजन! भगवान को उनकी आठ पटरानियों से जो पुत्र प्राप्त हुए थे, उनमें से कुछ के विषय में आपसे कहता हूँ। प्रद्युम्न रुक्मिणीजी के पुत्र थे, जिनका वृत्तान्त मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ।

सत्यभानु अरु भानु ललामा। अति गुनि तनय रहे सतभामा॥
जामवन्ति सुत सब तें आला। साम्ब नाउँ भा जिन्हँ महिपाला॥

सुन्दर व कोमल अङ्गोंवाले 'सत्यभानू' व 'भानू' ये दो अत्यन्त गुणवान बालक सत्यभामा के पुत्र थे। हे राजन! जामवन्ती का पुत्र सबसे अधिक अद्भुत था, जिसका नाम 'साम्ब' प्रसिद्ध हुआ।

स्रुत अरु कबि कालिंदिहि जाए। जेन्ह गात रबिदुति उमगाए॥
बीर नाग्नजिति केर कुमारा। कालहुँ हित न जासु बल पारा॥

'स्रुत' व 'कवि' ये दो बालक कालिन्दी के पुत्र थे, जिनके अङ्गों से सूर्य की कान्ति झरती रहती थी। 'वीर' नामक बालक नाग्नजिति का पुत्र था, जिसे जीत पाना काल के लिये भी सम्भव नहीं था।

रहा लछमनातनय प्रघोषा। खलन्ह लागि दारुन जिन्हँ रोषा॥

मित्रबिन्द सुत बृक अस नामा। भद्रासुत रनुजित बलधामा॥

'प्रघोष' नामक बालक लक्ष्मणा का पुत्र था, जिनका क्रोध दुष्टों के लिये बड़ा भयङ्कर था। मित्रविन्दा के पुत्र का नाम 'वृक' था और महाबली 'संग्रामजित्' भद्रा का पुत्र था।

एहिबिधि अगनित सुत हरि केरे। छबि निधान भै बीर घनेरे॥
उन्ह गुन बरनत सकुचहि सेषा। मैं बरनउँ केहि भाँति नरेसा॥

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण के अनगिनत पुत्र थे, जो अत्यधिक सुन्दर और बड़े ही वीर हुए। उनके गुणों का वर्णन करने में शेषजी भी सकुचाते हैं, तो फिर हे परीक्षित्! मैं उनका वर्णन किस प्रकार करूँ।

रुकमि सुना भगिनी सुत जबही। हरि तें बैर बिहानेउँ तबही॥
पुनि कहि लाग जाइ निज नारउँ। सुता स्वयंबर सुभब्य सारउँ॥

जब रुक्मी ने अपनी बहिन रुक्मिणी के पुत्र के विषय में सुना, तो उसने श्रीकृष्ण से बैर त्याग दिया और जाकर अपनी पत्नि से कहने लगा कि मैं अपनी पुत्री का सुन्दर व भव्य स्वयंवर आयोजित करूँगा।

तुम रुकमिनि कहँ पत्र पठाई। सुत समेत इहँ लेहुँ बोलाई॥
हरषि रानि सुनि बिप्र पठाई। लीन्हि ससुत रुकमिनिहिं बोलाई॥

इसलिये तुम पत्र भेजकर रुक्मिणी को उसके पुत्र सहित यहाँ बुलवा लो। यह सुनकर उसकी स्त्री हर्षित हो उठी और एक ब्राह्मण को भेजकर उसनें रुक्मिणीजी को प्रद्युम्न सहित बुलवा लिया।

बड़ दिनु बिगत भगिनि कहँ देखी। रुकमिहि उर भइ सीत बिसेषी॥
पुनि बिनवत कह जुग कर जोरी। बिसरहुँ भगिनि सकल मम खोरी॥

बड़े दिनों के बाद अपनी प्रिय बहन को देखकर रुक्मी के हृदय में महान शान्ति हुई। फिर उसनें दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा कि हे बहिन! तुम मेरा समस्त अपराध भूल जाओ।

दोहा– **सुता ब्याहि चहुँ तव सुतहि दछिन रीति अनुहार।**
होइ बिमल जसु जाँहि तें मम तिहुँलोक अपार॥५७॥

मैं दक्षिण की रीति के अनुसार तुम्हारे पुत्र को अपनी पुत्री ब्याहना चाहता हूँ, जिससे कि तीनों-लोकों में मेरी निर्मल व अपार कीर्ति हो।

चौ.– **भयउँ स्वयंबरु जब महिपाला। कुँअरि आइ सभ गहि बरमाला॥**
तहँ निरखेउँ तेहिं छबिनिधि मारा। रीझि ताहि सनमानेहुँ हारा॥

हे परीक्षित्! फिर जब स्वयंवर हुआ, तब राजकुमारी वरमाला लिये सभा में पधारी। वहाँ उसनें सुन्दरता के स्वामी प्रद्युम्न को देखा और रीझकर उन्हें अपनी वरमाला से सम्मानित कर दिया।

अस बिलोकि खल भूप लजाने। लाग परसपर कुमत जुड़ाने॥
रुकमावति कहँ सँग करि जबहीं। निज गृह चलिहहि मनसिज तबहीं॥

यह देखकर वहाँ उपस्थित दुष्ट राजा लज्जित हो गए और परस्पर इस प्रकार कुमन्त्रणा करने लगे कि राजकुमारी रुक्मावती को अपने साथ लेकर जब प्रद्युम्न अपने घर के लिये निकलेगा, तभी

घेरि सबन्हिं पथ घात लगाई। कुँअरिहिं लेहिं बलात छराई॥
इत रुकमी रस दाइज दीन्हा। बिदा पाहुनहिं प्रमुदित कीन्हा॥

हम सब घात लगाकर उसे मार्ग में ही घेर लेंगे और बलपूर्वक उससे राजकुमारी को छीन लेंगे। इधर प्रेमरूपी दहेज देने के उपरान्त रुक्मी ने आनन्दित हो अपने जामाता को किया।

जब कुमारि अरु जननिहुँ संगा। चले द्वारिका रथहुँ अनंगा॥
घेरि पंथ तब खल भूपाला। लाग पचारन आपन काला॥

फिर जब राजकुमारी व अपनी माता के साथ रथ पर सवार हो प्रद्युम्न द्वारिका के लिये चले, तभी मार्ग में उन्हें घेरकर, वे दुष्ट राजा अपने कालरूप उन प्रद्युम्न को ललकारने लगे।

सुनि कंदर्प पिनाक सँभारा। कटकु खलन्ह छन माँझ सँघारा॥
तदुप नृपति जब तें पुर आए। पुरबासी अतिसय हरषाए॥

उनकी ललकार सुनकर प्रद्युम्न ने अपना धनुष सम्भाला और क्षणभर में ही उन दुष्टों की सेना का संहार कर डाला। हे राजन! तदुपरान्त जब वे द्वारिका आए, तब पुरवासी अत्यन्त हर्षित हुए।

बिगत समउ जब रुकमिकुमारी। जाएहुँ तनय तेज छबि भारी॥
बसुद्यौ द्विजन्ह दीन्ह तब दाना। भयउँ राजगृह मंगलगाना॥

फिर जब समय बीतनें पर रुक्मावती ने एक तेजस्वी और अत्यन्त सुन्दर बालक को जन्म दिया, तब वसुदेवजी ने ब्राह्मणों को (बहुत से) दान दिये और राजभवन में मङ्गलगीत गाए गए।

दोहा- **आपन धेउत जनम सुनि रुकमिहि भयउँ प्रमोद।**
पौ बारह भइ आजु मम भरि मम तनुजहि गोद॥५८॥

अपने दोहित्र के जन्म के विषय में सुनकर रुक्मी को महान आनन्द प्राप्त हुआ। (वह विचार करने लगा कि) आज मेरी पौ-बारह हो गई, क्योंकि आज मेरी पुत्री की गोद भर गई है।

चौ.- **बिबिध भेंट सँग पाति लिखाई। बिप्र बोलि द्वारिका पठाई॥**
पातिहुँ पूछि सबन्हँ कुसलाई। हरि सन पुनि अस पृहा जताई॥

फिर उसनें बहुत-सी भेंट सजाकर, एक पत्र लिखवाया और एक विप्र के हाथ द्वारिका भेज दिया। उस पत्रिका में उसने सबकी कुशल पूछी और भगवान श्रीकृष्ण के सम्मुख यह इच्छा व्यक्त की कि,

निज प्रिय पौतिहि केर बिबाहू। नाथ पौत सँग मैं करि चाहूँ॥
आए समउँ नाथ सोइ करही। जातें दुहुँ कुल आनँद भरही॥

हे नाथ! अपनी प्रिय पौत्री का विवाह मैं आपके पौत्र के साथ करना चाहता हूँ। समय आने पर (उनके तरुण हो जाने पर) स्वामी वही करें, जिससे कि दोनों कुल आनन्द प्राप्त करें।

द्विज हरि सनमुख जाइ बहोरी। रुकमिहि पाति दीन्हि कर जोरी॥

पूहा जानि तिन्हँ हरि हरषाए। दान दीन्ह जे द्विज मन भाए॥

फिर विप्र ने रुक्मी की पत्रिका जाकर हाथ जोड़कर भगवान श्रीकृष्ण को दे दी। उसकी इस प्रकार की इच्छा जानकर श्रीहरि हर्षित हुए और ब्राह्मण को उनकी रुचि के अनुरूप दान दिया।

पौत केर सिसु चरित निहारा। पितुमह कर गत भा प्रति वारा॥
हिय जस तृष्नउँ होत पसारा। तस बढ़ि लाग प्रद्युम्नकुमारा॥

अपने पौत्र की बाललीलाएँ देखते हुए पितामह श्रीकृष्ण का प्रत्येक दिन बीतनें लगा। जैसे हृदय में उत्पन्न तृष्णा विस्तृत होती जाती है, ठीक वैसे ही प्रद्युम्न का पुत्र भी बढ़ने लगा।

सो सिसु भा अनिरुध बिख्याता। रूप रासि बलु खल दुखदाता॥
हरि तब रुकमि निमंत्रनु पाही। गए भोजकट ब्याहन ताही॥

वह बालक आगे अनिरुद्ध नाम से विख्यात हुआ, जो सौन्दर्य का सागर और अपने बल से दुष्टों को दुःख देनेवाला था। तब उसके विवाह के लिये भगवान श्रीकृष्ण रुक्मी के निमन्त्रण पर भोजकट् नगर को गए।

रति रुकमावति संग अनंगा। कामपाल गै रेवति संगा॥
भयउँ ब्याह कर सकल बिधाना। कीन्ह रुक्मि जब कन्यादाना॥

उस समय प्रद्युम्न भी पत्नि रति व रुक्मावती के साथ और बलरामजी अपनी पत्नि रेवती के साथ वहाँ गए। वहाँ जब रुक्मी ने कन्यादान कर दिया तब, विवाह की सारी विधियाँ सम्पन्न हो गई।

भीष्मक लखि हरि सनमुख जाई। कीन्हि बिनय एकान्त सिरु नाई॥

यह देखकर भीष्मक एकान्त में भगवान श्रीकृष्ण के पास गए और सिर नवाकर उनसे विनती करने लगे-

दोहा- भा प्रसान्तिप्रिय ब्याहुँ अब निज गृह करहुँ पयान।
इहँ तुम्हार अगनित अरि उपज न केउ ब्यौधान॥५९॥

हे परम शान्ति प्रिय भगवन्! यह विवाह सम्पन्न हो चुका है, इसलिये अब आप अपने घर के लिये प्रस्थान कीजिये। यहाँ आपके बहुत से शत्रु भी आए हुए हैं, कहीं कोई उपद्रव न हो जायँ।

चौ.- अरि तुम्हार अह कुटिल अपारा। सो न उचित इहँ रहनु तुम्हारा॥
ससुर बचन सुनि सान्त सुजाना। आपन कटि कसि करन पयाना॥

हे नाथ! आपके शत्रु परम कुटिल हैं; इसलिये आपका यहाँ ठहरे रहना उचित नहीं। स्वसुर भीष्मक के ये वचन सुनकर सुजान व शान्त प्रकृति श्रीकृष्ण ने चलने के लिये अपनी कमर कस ली।

पितहि बचन समुझत उर माहीं। रुकमिनि गइ रुकमी समुहाहीं॥
भ्राता भइ सब मनहिं तिहारी। अब चलि चह द्वारिका मुरारी॥

पिता के वचनों का मर्म समझकर रुक्मिणीजी अपने भ्राता रुक्मी के सम्मुख गई और उनसे कहने लगी- हे भैय्या! आप जो चाहते थे, वह सब हो चुका है; अतः अब मुरारि द्वारिका चलना चाहते हैं।

पुनि न अमंगल कछु घटि जाई। सो तुम हमहि बिदा करु भाई॥
सुनि कह भगिनि चिंत परिहरउँ। प्रथम बिदा नृप अपरन्ह करउँ॥

हे भैय्या! पुनः कुछ अमङ्गल न घट जायँ, इसलिये आप हमें विदा कीजिये। यह सुनकर रुक्मी ने कहा- हे बहिन! तुम चिन्ता त्याग दो, पहले मैं अन्य राजाओं को विदा करूँगा,

पाछे बिदा करउँ तुम्ह काहू। सादर अति गुर करत उछाहूँ॥
अस कहि तें खल भूपन्ह डेरे। गयउ प्रबल जम मायहि प्रेरे॥

तत्पश्चात् मैं एक बड़े उत्सव का आयोजन करके सम्मानपूर्वक आप लोगों को भी विदा कर दूँगा। ऐसा कहते हुए वह यम की प्रबल माया से प्रेरित होकर दुष्ट राजाओं के शिविर में गया।

तह कलिंगपति कह तेहिं भाई। अरि तें बृथा बढ़ानि मिताई॥
पुनि मोरे उर गा यह घोंचा। तोर बेन हरि तहि जे पोंचा॥

वहाँ कलिङ्गराज दन्तवक्र उसे कहने लगा- हे भाई! तुमनें व्यर्थ ही में शत्रु से मित्रता बढ़ा रक्खी है। और मेरे हृदय में तो यह बात चुभ रही है कि जिसनें तुम्हारी बहिन को हरकर तुम्हें ही अपमानित किया था,

धरत ब्रह्मसर तुम कस ताही। छमेउँ सकल अपराध बिहाही॥
सौम्य बिनयजुत निजहि सुभावउँ। सखा आज दिनु हित बिसरावउँ॥

उसी को ब्रह्मास्त्रधारी होकर भी तुमने समस्त अपराध भुलाकर क्षमा कैसे कर दिया? हे सखा! तुम अपने इस कोमल व विनम्र स्वभाव को आज के दिन के लिये त्याग दो और

मनिधरपतिहि पठाउब जाई। खेलि ताहि द्युत देहिं हराई॥
निधि महान हरि लेइहि तासू। करत बिबिध बिधि उन्ह उपहासू॥

जाकर मणिधारी सर्पों के स्वामी बलराम को (यहाँ) भेज दो, उनके साथ जुआँ खेलकर हम उन्हें हरा देंगे और अनेक प्रकार से उनकी हँसी करते हुए, उनकी महान सम्पत्ति हर लेंगे।

एहिबिधि सब मिलि तेहिं उकसाई। तिन्हँ कर दाउहि लीन्ह बोलाई॥

इस प्रकार उन सबने उसे उकसाकर उसके हाथ दाऊ को अपने शिविर में बुलवा लिया।

दोहा- **बैठारेउँ सनमानि उन्ह चौसरु सठन्ह बिछाइ।**
करतल पाहन लेन पग जनु रह जतनु जगाइ॥६०॥

फिर उन मूर्खों ने चौसर बिछाकर उन्हें (बलरामजी को) सम्मानपूर्वक बैठा लिया; मानों वे अपने हाथ का पत्थर अपने पैरों पर पटकनें के लिये यत्न कर रहे थे।

चौ.- **रिपु चाँडाल चौकरिहि प्रेरे। दाव लगानेउँ दाउ घनेरे॥**
किन्तु सबन्हँ उन्ह दीन्ह गवाई। लखि रुकमिहि उर अहमिति छाई॥

(उस समय) शत्रुओं की चाण्डाल चौकड़ी से प्रेरित हो दाऊ ने बड़े-बड़े दाव लगाए, किन्तु वे सारे दाव हार गए, यह देखकर रुक्मी के मन में अहङ्कार हो आया।

पुनि कह दाउ सकल निधि तोरी। जे गँवाई तुम अब भइ मोरी॥
अब केहि दाव लगावहि आगे। सुनि बिहँसत भै भूप अभागे॥

फिर उसनें कहा- हे दाऊ! तुम्हारी सारी सम्पति जो तुम हार गए हो, अब वह मेरी हो गई। अब आगे तुम किसे दाव पर लगाओगे? यह सुनकर वहाँ उपस्थित अभागे राजा हँसनें लगे।

दाउ लच्छ एक मुहर लगाई। तेइ ताहि जीते नरराई॥
तब खल करि अधरम हठ लाई। मुहर सो रुकमिहि दीन्हि जिताई॥

हे परीक्षित्! तब दाऊ ने एक लक्ष (लाख) मुद्राएँ दाव पर लगाई और वे ही उस दाव को जीत गए। तब दुष्ट राजाओं ने अधर्म करके हठपूर्वक वे मुद्राएँ भी रुक्मी को ही जितवा दी।

बिहँसि रुक्मि तब कह गरुआई। ग्वालन्हँ सँग जेहिं गाइ चराई॥
ते कि जान द्युत खेलन भाई। सुनि अहिपति रिसान अधिकाई॥

तब रुक्मी ने गर्वित हो मुस्कुराकर कहा- हे भाईयों! जिन्होंने ग्वालों के साथ गायें चराई है, वे द्युत खेलना क्या जाने? यह सुनते ही बलरामजी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे।

रिस तजि बहुरि ताहिं निज जानी। मुहर कोटि दस दाव लगानी॥
तालकेतही जीतेउँ ताहीं। पर खल छलि रुकमिहि दइ चाहीं॥

फिर उसे सम्बन्धी जानकर उन्होंने क्रोध त्याग दिया और पुनः दस करोड़ मुद्राएँ दाव पर लगाई। वह दाव भी दाऊ ने ही जीत लिया, किन्तु दुष्टों ने कपट करके उसे भी रुक्मी को ही देना चाहा।

लखि उन्ह निपट कपट खलनासहि। कोप चढ़ेउँ सातवँ आकासहि॥
तब तें कह रे सठ निज बागी। करि सम्बंध न रिपुता त्यागी॥

उनका ऐसा खुला कपट देखकर दुष्टहन्ता बलराम का क्रोध सातवें आकाश पर चढ़ गया। तब उन्होंने कहा- अपनी ही मनमानी करनेवाले अरे ओ मूर्ख! तूने नाता जोड़कर भी शत्रुता का त्याग नहीं किया।

भल अब लह रुकमिनि बिलगाहीं। तही बधे बिनु मानउँ नाहीं॥
अस कहि कीन्हेंसि मूसरु घाता। सबन्हँ बिलोकत ताहि निपाता॥

अब भले ही रुक्मिणी मुझसे बुरा मान जायँ, किन्तु मैं तुम्हारा वध किये बिना नहीं मानूँगा। ऐसा कहकर उन्होंने मूशल का प्रहार किया और समस्त दुष्टों के देखते हुए ही रुक्मी को मार गिराया।

उठि कलिंगपति भजेहुँ सभीता। मुठिका मारि कीन्ह रदु रीता॥
अस लखि अपर भूप भय पाई। इत उत उठि उठि चले पराई॥

यह देखकर कलिङ्गपति भयभीत हो उठकर भागा, तब बलरामजी ने एक घूँसा मारकर उसके भी दाँत तोड़ दिये। यह देखकर अन्यान्य राजा भय के मारे उठ-उठकर इधर-उधर भाग चले।

दोहा- पटकि पटकि बलधाम निज हल बाढ़त उन्ह रोकि।
तोरत भै भुज पग दसन मुठिका लातन्हि घोंकि॥६१॥

तब बलरामजी ने अपना हल बढ़ाते हुए उन्हें रोक लिया और पटक-पटककर लात-घूँसों से मारकर वे उनके हाथ, पैर और दाँत तोड़नें लगे।

चौ.- फिरि बहोरि हरि समुख बखाना। कीन्ह समाज समेत पयाना॥
नव दंपति जब पुर पइसारी। भयउँ उछाह द्वारिका भारी॥

फिर लौटकर उन्होंने सब बात भगवान के सम्मुख कह सुनाई और समाज सहित (द्वारिका) प्रस्थान किया। जब नवीन वर-वधू नगर में प्रविष्ट हुए, तब द्वारिका में बड़ा भारी उत्सव हुआ।

बान सुतिहि जस भयउँ बिआहू। अब सो चरित सुनिअ नरनाहू॥
अज कर बंस भयउँ बलिराजा। रहा जासु सत पुत्र समाजा॥

हे परीक्षित्! बाणासुर की पुत्री का विवाह जिस प्रकार हुआ था, अब आप वह चरित्र सुनिये। ब्रह्माजी के वंश में बलि नामक एक राजा हुआ, जिनके सौ पुत्रों का विशाल समुदाय था।

जेठ पुत्र बानासुर तासू। जगत प्रसिद्ध पराक्रम जासू॥
सोनितपुर रहि तिन्ह रजधानी। रहा रुद्रचर सो अभिमानी॥

उन्हीं (बलि) के ज्येष्ठ पुत्र का नाम बाणासुर था, जिसका पराक्रम संसारभर में प्रसिद्ध था। शोणितपुर उसकी राजधानी थी और भगवान शिव का भक्त वह बड़ा ही अभिमानी था।

ते कैलास नित्य प्रति जाई। पूजत रहा सिवहि चित लाई॥
एक दिनु उमहि संग त्रिपुरारी। तापर भै प्रसन्न अति भारी॥

वह नित्य प्रति कैलाश पर्वत पर जाकर भगवान शिव की पूजा किया करता था। एक दिन माता पार्वती सहित भगवान त्रिपुरारि उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

पुनि जब चहेहुँ देन बरु ताहीं। माँग सरासुर अस हरषाहीं॥
प्रभु मोहि करहु अतुल बलधामा। जीति पाव नहिं कोउँ संग्रामा॥

फिर जब उन्होंने उसे वर देना चाहा, तब बाणासुर ने हर्षित होकर यह माँगा कि हे प्रभु! आप मुझे अतुलनीय बल का धाम बना दीजिये। मुझे कोई भी युद्ध में जीत न सके।

हर कह देत सहस भुज ताही। कोउँ न चढ़ि सक रनु तुअँ पाहीं॥
जीते तिहुँ पुर तेहिं बरिआई। बसत भयउँ सोनितपुर जाई॥

तब शिवजी ने उसे सहस्र भुजाएँ देते हुए कहा कि अब तुम्हारे सम्मुख युद्ध में कोई नहीं ठहर सकेगा। तब उसनें बलपूर्वक तीनों-लोकों को जीत लिया और जाकर शोणितपुर में निवास करने लगा।

लहि मनकाम न भगति बिसारी। तब बोले प्रसन्न त्रिपुरारी॥
भगति तोर अति भावहि मोही। बसउँ तोर पुर रच्छक होही॥

अपना मनोरथ सिद्ध हो जाने के उपरान्त भी उसने शिवजी की भक्ति नहीं त्यागी, तब त्रिपुरारि शिवजी प्रसन्न होकर बोले- हे बाणासुर! मुझे तुम्हारी भक्ति बड़ी ही प्रिय लगती है; अतः मैं रक्षक होकर तुम्हारे नगर में निवास करूँगा।

तब तें करि सोनितपुर बासा। रच्छत भै पुर मनसिज नासा॥
जब महीप प्रतिभट सम ताही। चौदह भुवन रहा कोउँ नाहीं॥

तभी से कामदेव के शत्रु भगवान शिव शोणितपुर में निवास करते हुए उसके नगर की रक्षा करने लगे। हे राजन! जब चौदहों भुवनों में उसकी बराबरी का योद्धा कोई नहीं रहा,

दोहा- **तब मद उनमत भूधरन्ह गहि गहि पटकन लाग।**
तदपि न मंदिसि ताकर समरहि बिषम तृषागि॥६२॥

तब मद में उन्मत्त होकर वह पर्वतों को उठा-उठाकर पटकनें लगा; किन्तु फिर भी युद्ध करने की उसकी प्रबल इच्छारूपी अग्नि कम न हुई।

चौ.- **तब तें आइ गयउ कैलासा। हरहि लाग कहि हृदय निरासा॥**
फिरि फिरि प्रभु मैं तिहुँपुर सोधा। मिला कत न मोहि मम प्रति जोधा॥

तब वह कैलाश पर्वत पर आ गया और शिवजी के सम्मुख अपने मन की निराशा कहने लगा- हे प्रभु! मैंने घूम-घूमकर तीनों लोक छान मारे, किन्तु मुझे कहीं अपनी जोड़ का योद्धा नहीं मिला।

दिसिप मोहि तें भिरि भिरि हारे। गुर गुर परबत समर पछारे॥
बिबुध महिप मोहि आवत पाई। भागइ रह तें करइ मिताई॥

मुझसे भिड़-भिड़कर दिक्पाल हार गए और बड़े-बड़े पर्वतों को भी मैं पछाड़ चुका हूँ। देवता तथा महिपाल मुझे आता हुआ पाकर भाग जाते हैं और जो रह जाते हैं, वे मुझसे संधि कर लेते हैं।

प्रभु सुझाहुँ अब अस रनधीरा। तोषहिं जे मोहि समर गभीरा॥
रनु कीन्हें बिनु सम्भु उदारा। बाहु सहस मोहि लागति भारा॥

इसलिये हे प्रभु! अब आप ही कोई ऐसा योद्धा दिखलाईये, जो घोर युद्ध करके मुझे सन्तुष्ट कर सके। हे उदारहृदय शिव शम्भो! युद्ध किये बिना (आपकी दी हुई) ये सहस्र भुजाएँ मुझे भाररूप प्रतीत होती है।

सिव सरबग्य बचन सुनि बानहि। भाँपे तासु हृदय अभिमानहिं॥
रे सठ करहु प्रतीछा थोरी। बेगि फुरिहि यह बाँछा तोरी॥

बाणासुर के ये वचन सुनकर सर्वज्ञ भगवान शिव उसके हृदय के अभिमान को भाँप गए। तब उन्होंने कहा रे शठ! तनिक प्रतीक्षा कर। तेरी यह इच्छा भी शीघ्र ही पूरी हो जाऐगी।

नाथ होइहहि अस भट जबही। जानि पाउ कस मैं तेहिं तबही॥
सुनि उन्ह दीन्हि धुजा एक सुन्दर। पुनि कह बाँधेसु एहि निज मंदिर॥

तब बाण ने कहा- हे नाथ! जब ऐसा योद्धा उत्पन्न होगा, तब मैं उसके विषय में कैसे जान सकूँगा? यह सुनकर उन्होंने एक सुन्दर ध्वजा दी और कहा कि इसे अपने भवन पर बाँध देना।

यह पताक जब टूटिहि आपू। समुझहुँ भा दायक तोहि तापू॥
तब बिसिखासुर निज पुरि आई। सदन सिखर धुजे दीन्ह बँधाई॥

जब यह पताका स्वयं ही टूट कर गिर पड़े, तब समझ लेना कि तुम्हें कष्ट देनेवाला उत्पन्न हो चुका है। तब बाणासुर ने नगर में लौटकर वह ध्वजा अपने भवन के शिखर पर बँधवा दी।

रामेस्वर प्रति धरि अनुरागा। पुनि लागा रिपु जोहि अभागा॥
कछु सवँ गए तासु तिय जाइनि। ऊषा नाउँ सुता सुखदाइनि॥

फिर भगवान शिवजी के प्रति अनुराग रखकर वह अभागा अपने शत्रु की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ काल बीतने के उपरान्त उसकी स्त्री ने ऊषा नाम की एक सुखदायिनी कन्या को जन्म दिया।

दोहा- **सम्बत सात सुता भई तब सप्रेम पितु ताहिं।**
सम्भु पाहि बिद्या पढ़न सखिगन सहित पठाहिं॥६३॥

जब वह कन्या सात वर्ष की हो गई, तब बाणासुर ने बड़े-ही प्रेम से सखियों सहित उसे विद्याध्ययन के निमित्त शिवजी के पास भेज दिया।

चौ.- **तब ऊषा कहँ बेद पुराना। लाग पढ़ावन सम्भु सुजाना॥**
तेहिं अलप सँव बिद्या पाई। गान कला तब उमा सिखाई॥

तब सुजान शिवजी उषा को वेद व पुराणों की शिक्षा देने लगे। उसनें अल्पावधि में ही (समस्त) शिक्षा प्राप्त कर ली, तब माता पार्वती ने उसे गायनकला सिखा दी।

अकसर ऊषा गहि कर बीना। गिरिजा सँग रहि गायन लीना॥
तेहीं समय संभ्भु तहँ आए। मदन दहन लग चरित सुनाए॥

एक दिन ऊषा अपने हाथों में वीणा लेकर शैलपुत्री माता पार्वती के साथ गायन में तल्लीन थी, उसी समय शिवजी वहाँ पधारे और कामदेव के भस्म होने का इतिहास उन्हें सुनानें लगे।

पुनि कह नर तनु धरि अब मारा। भा प्रदुम्न हरि केर कुमारा॥
रुकमावति तेहिं गुनि तिय जाही। अनिरुध नाउँ तनय एक आही॥

फिर उन्होंने कहा कि वे कामदेव ही अब प्रद्युम्न नाम से भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र हुए हैं। उन प्रद्युम्न की रुक्मावती नाम की गुणवती पत्नि है, जिनका अनिरुद्ध नाम का एक पुत्र है।

रूप रासि गुन सीलनिधाना। अतुलित बलि अति प्रिय भगवाना॥
सुनि ऊषहि हिय भइ अभिलाषा। मिलहि मोहि उन्ह हृदय निवासा॥

रूप की राशि, गुण व चरित्रनिधान उनका वह पुत्र अतुलनीय बलवान और श्रीकृष्ण का अत्यन्त चहेता है। यह सुनकर ऊषा के मन में यह अभिलाषा हुई कि मुझे उन (अनिरुद्ध) के हृदय में स्थान मिले।

ते मोहि मिल जे कंतहुँ रूपा। लहँ जीवन सुफलता अनूपा॥

गौरि तासु उर इच्छा जानी। तिन्ह सिरु धरि कर कह मृदुबानी॥

यदि वे पतिरूप में मुझे मिल जायँ, तो मेरा जीवन अनुपम सार्थकता पा ले। उसकी मनोकामना जानकर माता गौरी उसके सिर पर हाथ रखकर कोमल वाणी से कहने लगी कि,

पिय तें सपुन मिलन तव होहीं। मानहुँ सत्य गिरा यह मोहीं॥
पुनि तोहि प्रगट बिआहब आई। उन्ह बच सुनि तें अति हरषाई॥

अपने प्रियतम से तुम्हारा मिलन स्वप्न में होगा, मेरे इस वचन को सत्य जानना। फिर वे ही प्रत्यक्ष में यहाँ आकर तुमसे विवाह करेंगे। उनकी वाणी सुनकर ऊषा अत्यन्त हर्षित हो उठी।

बिगत कछुक दिनु बिदा कराई। हर तेहिं पितु पहि दीन्ह पठाई॥
भेंटि सुता तें प्रमुदेउँ बाना। तेहिं हित भिन्न भवन बिरचाना॥

कुछ दिन बीतनें पर शिवजी ने विदा कराकर ऊषा को उसके पिता के पास भेज दिया। अपनी पुत्री से मिलकर बाणासुर परम आनन्दित हुआ और उसके लिये उसने एक अलग भवन बनवा दिया।

जहँ ऊषा निज सखिन्ह सँघाता। बसि करि लगि प्रमोद दिनुराता॥
अठदस बरिस बयस भइ ताही। तात बिचारेहुँ तब उर माहीं॥

जहाँ राजकुमारी ऊषा अपनी सखियों के साथ दिनरात आनन्द मनाती हुई निवास करने लगी। (इस प्रकार) जब उसकी आयु अठारह वर्ष की हो गई तब पिता ने मन में विचार किया कि,

सुता भई अब जोग बिआहा। खोजिअ बर बर गुनी अगाहा॥

अब पुत्री विवाह के योग्य हो चुकी है, अतः मुझे उसके लिये योग्य व अत्यंत गुणी वर खोजना चाहिये।

दोहा- **इत सोवत अकसर कुँअरि देखेउँ सपुन सुचारु।**
असित कुँअर तिहि अनुसरइ छबि धरि अंग अपारु॥६४॥

इधर राजकुमारी ऊषा ने एक बार सोते हुए एक अत्यन्त सुन्दर स्वप्न देखा; जिसमें एक श्यामवर्ण का राजकुमार अपने अङ्गों में अपार सौन्दर्य लिये, उसका अनुशरण कर रहा था।

चौ.- **पुनि देखा सो निकट चलि आवा। बिनु सकोच तेहिं निज उर लावा॥**
ऊषा लखि अस अति सकुचानी। टूटि नींद उठि हिय अकुलानी॥

फिर उसने देखा कि वह उसके निकट चला आया और बिना किसी सङ्कोच के उसे अपने हृदय से लगा लिया। यह देखकर ऊषा अत्यन्त सकुचा गई, इतनें में ही उसकी नींद टूट गई और वह अत्यन्त व्याकुल हो उठी।

अब अति कुँअरु बिरहु भा ताहीं। करि लागेसि बिलाप बिलखाहीं॥
पुनि जब उठि न भयउँ भिनुसारा। तब सखिगन करि लागि बिचारा॥

अब उसे उस राजकुमार का सघन विरह सताने लगा, तब वह बिलखकर विलाप करने लगी। फिर जब सवेरा होने पर भी वह नहीं उठी, तब सखियाँ विचार करने लगी कि,

कारनु कवन जे उठि न कुमारी। भेद लेन चलि अचरज भारी॥
जातहि तहँ उन्हँ सबन्हिं निहारी। कुँअरि ब्यथित महि परि दृग बारी॥

क्या कारण है, जो राजकुमारी (अब तक) नहीं जागीं? इस प्रकार बड़े अचरज के साथ वे सखियाँ इस बात का भेद पाने चली। वहाँ जाते ही उन सबने देखा कि राजकुमारी नेत्रों में जल लिये व्यथितचित्त हो भूमि पर पड़ी है।

सचिव कुँभाँड सुता तब आई। नाउँ चित्ररेखा जिन्हँ राई॥
पूछा सुमुखि कवन दुख ब्यापा। जिन्हँ कारन तुम करति बिलापा॥
चंडि कृपा प्रभाउँ अस मोरा। छिनु महँ मेटि सकउँ दुख तोरा॥

हे राजन! तभी बाणासुर के मन्त्री कुम्भाण्ड की पुत्री (आगे) आई, जिसका नाम चित्ररेखा था। उसनें पूछा- हे सुमुखी! तुम्हें किस बात का दुःख लगा है, जिसके कारण तुम विलाप कर रही हो। माता चामुण्डा के अनुग्रह से मेरा प्रभाव ऐसा है कि मैं छणभर में तुम्हारे सब दुःखों को मिटा सकती हूँ।

चौसठ जोगिनि करतल मोरे। संतत अवसि करउँ कृत तोरे॥
अस सुनि उठि तें नयन उघारी। सखिहि बिथा कहि लगिसि भारी॥

चौसठ योगिनियाँ निरन्तर मेरे वश में रहती हैं, इसलिये मैं तुम्हारा कार्य अवश्य ही कर दूँगी। यह सुनकर ऊषा आँखें खोलकर उठी और चित्ररेखा से अपनी महान पीड़ा कहने लगी-

सपुनेहुँ चितवा एक कुमारा। नवल जलद छबि रासि अपारा॥
मुख मुख जनि नभ उदित मयंका। तिन्ह चख कर खंजन चख संका॥

हे सखि! मैंने स्वप्न में एक राजकुमार को देखा था, जो नवीन मेघ के समान श्याम रङ्गवाला और सौन्दर्य की अपार राशि था। उसका मुख, मुख नहीं अपितु आकाश में उदित चन्द्रमा ही था और उसके दोनों नेत्र खञ्जन पक्षि के नेत्र होने का संदेह उत्पन्न करनेवाले थे।

अलक कटाछ कुटिल अरु कारे। पुष्पबान सम उर पइसारे॥
मदन चाप निंदक भ्रुअ चारू। बिबिध भाँति पुनि कीन्ह सिंगारू॥

उसकी अलकें (केश) व कटाक्ष दोनों ही कुटिल और काले थे, जो कामदेव के पुष्पबाण के समान मेरे हृदय में उतर गए हैं। उसकी सुन्दर भौंहें कामदेव के धनुष की भी निन्दा करनेवाली थी और साथ ही उसनें अनेक प्रकार से शृङ्गार धारण कर रखा था।

दोहा- पिअर चीरजुत स्याम बपु कटि ससिमेखल सोह।
ते निस्चय प्रियतम सोइ उर जाकर पथु जोह॥६५॥

उसनें श्यामरङ्ग के शरीर पर पीले वस्त्र धारण कर रखे थे और उसकी कमर में चन्द्रमेखला सुशोभित थी। वे निश्चय ही मेरे वही प्रियतम होंगे, जिनकी प्रतीक्षा मेरा हृदय कर रहा है।

चौ.- उमा कहेउ जस मोहि बखानी। सोइ कुँअर तें सखि मृदुबानी॥
अस कहि लेत भइ हिम स्वासा। चित्ररेख कह तजहुँ निरासा॥

हे मधुर वचन बोलनेवाली सखी! माता पार्वती ने मुझे जिस प्रकार समझाकर कहा था, वे वही राजकुमार हैं; ऐसा कहकर ऊषा ठण्डी श्वास लेनें लगी। तब चित्ररेखा ने कहा कि तुम निराशा त्याग दो।

तव चितचोर जगत जहँ आहीं। आनौं खोजि सद्य मैं ताहीं॥
सुन्दर कुँअर काम सम जेते। चित्र काढ़ि देखराउब तेते॥

तुम्हारे चित्त को चुरानेंवाला वह राजकुमार संसार में जहाँ कहीं भी है, मैं उसे खोजकर शीघ्र-ही यहाँ ले आऊँगी। कामदेव के समान जितनें भी सुन्दर राजकुमार हैं, मैं उन सबके चित्र बनाकर तुम्हें दिखलाऊँगी।

उन्ह महुँ जे तउ प्रान अधारा। चीन्हहुँ ताहिं किए बिनु बारा॥
तब मैं आनि देउँ तेहिं तोरे। अब धरि धीरु चितउँ कृत मोरे॥

उनमें से जो भी तुम्हारा प्राणेश्वर हो, उसे तुम बिना विलम्ब किये चिन्हित कर देना। तब मैं उसे लाकर तुम्हें सौंप दूँगी। अब तुम धीरज धरकर मेरा कौतुक देखो।

तदुप चित्र तें काढ़न लागी। बूझन हित सखि कर अनुरागी॥
बिबुध नाग जछ नर गंधर्बा। काढ़े क्रम क्रम सुकुँअर सर्बा॥

तदुपरान्त वह ऊषा के प्रियतम को पहचानने के लिये उसका चित्र बनानें लगी। फिर उसनें एक-एक करके देवताओं, सर्पों, यक्षों, गन्धर्वों और मनुष्य जाति के समस्त सुन्दर राजकुमारों के चित्र बनाये।

किन्तु न सपुन कुँअर जब पावा। पुनि लगि सखि कहँ धीर बँधावा॥
बहुरि जतन करि बिबिध प्रकारा। चित्र कढ़े हरि समेत मारा॥

किन्तु इतने पर भी जब ऊषा के स्वप्न का राजकुमार नहीं मिला, तो चित्रलेखा सखी को पुनः धैर्य बँधानें लगी। फिर उसनें अनेक यत्न करके श्रीकृष्ण सहित प्रद्युम्नादि के चित्र बनाये।

जिन्हँ चितवतहि उषा सकुचानी। कहन लागि सखि सन मृदुबानी॥
सुमुखि अवसि मम सपुन अधारा। होइहहि इन्ह कर राजकुमारा॥

जिन्हें देखते ही ऊषा सकुचा गई और सखी चित्रलेखा से मधुर वाणी में कहने लगी- हे सुमुखी! मुझे लगता है, मेरे स्वप्नों के आधार वे राजकुमार अवश्य इन्हीं के पुत्र होंगे।

चित्ररेख सुनि अति हरषाई। अनिरुद्धहि छबि दीन्हि बनाई॥
जिन्हँ अवलोकत रस उमगानी। मुख पट कीन्हँ उषा सकुचानी॥

यह सुनकर चित्रलेखा अत्यन्त हर्षित हो उठी व उसनें राजकुमार अनिरुद्ध का चित्र बना दिया। जिन्हें देखकर ऊषा प्रेम में उमड़ पड़ीं और उसने सकुचाकर अपने मुख पर घूँघट काढ़ लिया।

कुँअरहि अनुपम प्रभा निहारी। थकित सपुन जग भूलि कुमारी॥
उर बिचित्र अनुभउ उमगाना। लाग पुलकजल अंग सिंचाना॥

उन राजकुमार की अनुपम सुन्दरता देखकर स्तम्भित हुई राजकुमारी स्वप्नलोक में खो गई। उनके हृदय में एक विचित्र अनुभूति उत्पन्न हो गई, जो उनके अङ्गों को पुलकरूपी जल से सींचनें लगी।

पुनि जब कछुक चेत उन्ह आई। कहा चित्ररेखहि सकुचाई॥
मम चितचोर ये सोइ कुमारा। सपुन लखेउँ जेहिं धरे सिंगारा॥

फिर जब उसे कुछ चेतना हुई, तब वह सकुचाकर चित्ररेखा से कहने लगी- हे सखि! मेरे चित्त को चुरानेंवाले ये वे ही राजकुमार हैं, जिन्हें मैंने स्वप्न में शृङ्गार धारण किये देखा था।

सुमुखि जे प्रियतम मिलेउँ न मोही। अवसि बियोग मरनु मम होही॥

हे सुमुखी! यदि प्रियतम! मुझे न मिले, तो अवश्य ही इनके वियोग में मेरा मरण होगा।

दोहा- **अलि चिंता सब परिहरहुँ यह प्रद्युम्न कुमार।**
हरिहि नाति द्वारिका बस घन सुषमहि आगार॥६६॥

हे आली! तुम समस्त चिन्ता त्याग दो, ये प्रद्युम्नजी के पुत्र और भगवान श्रीकृष्ण के नाती हैं, जो द्वारिका में निवास करते हैं और महान सुन्दरता की खान हैं।

चौ.- **इन्हहिं नाउँ अनिरुध जग जाना। सोम सुभाय खलन्ह दुखखाना॥**
किए बेगि मैं कछुक उपाई। आनउँ इहँ तुम्हार समुहाई॥

इन्हें संसार अनिरुद्ध के नाम से जानता है। इनका स्वभाव सौम्य है, किन्तु दुष्टों के लिये ये दुःख की खान हैं। मैं शीघ्र ही कुछ उपाय करके इन्हें यहाँ तुम्हारे सन्मुख ले आऊँगी।

बिरहु जरति कहँ धीर बँधाई। बहुरि चली खग रूप बनाई॥
एहिबिधि तें अनिरुध गृह आई। प्रेरि माय उन्ह दीन्ह सुवाई॥

फिर विरह में जलती हुई ऊषा को धैर्य बँधाकर वह पक्षि का शरीर धारण करके चली। इस प्रकार वह अनिरुद्ध के भवन में आई और अपनी माया के प्रभाव से उसने उन्हें सुला दिया।

तदुप आनि उन्ह सखि समुहाना। सौंपि कहत भइ बच रस साना॥
सखी लेहुँ यह प्रियतम तोरा। सपनेहुँ जेहिं तुम्हार चित चोरा॥

तदुपरान्त वह उन राजकुमार को ऊषा के सन्मुख ले आई और उसे सौंपते हुए प्रेमभरी वाणी में बोली- हे सखि! लो ये तुम्हारे वही प्रियतम हैं, जिन्होंने स्वप्न में तुम्हारा चित्त चुराया था।

ऊषा हरषि ताहि उर लाई। लागि सराहन तिन्ह चतुराई॥
सखि तुअ मोहि नवजीवनु दीन्हा। दुष्कर कृत मम पूरन कीन्हा॥

तब ऊषा ने हर्षित होकर चित्ररेखा को हृदय से लगा लिया और उसकी चतुराई को सराहनें लगी। (ऊषा ने कहा-) हे सखि! मेरे इस दुष्कर कार्य को पूर्ण करके तुमनें मुझे नया जीवन दिया है।

चित्ररेख तब बिदा कराई। गई भवन निज सीस नवाई॥
जब अनिरुद्ध नींद तें जागे। चकित चितव थल अचरज पागे॥

तब चित्ररेखा ऊषा से विदा माँगकर और उसे सिर नवाकर अपने घर चली गई। फिर जब अनिरुद्ध की निद्रा टूटी, तब चकित हुए-से वे उस भवन को देखने लगे।

सुअत मोहि को परगृह आना। ऐतनेहुँ सुमुखि निरखि समुहाना॥
की यह जुबति जथारथ आही। अथवा दृष यह सपुनहि झाहीं॥

(फिर उन्होंने कहा-) वह कौन है, जो सोते ही में मुझे इस पराये घर में ले आया? इतनें में ही उन्होंने अपने सम्मुख एक सुमुखी युवती को देखा। (तब उन्होंने पुनः कहा-) क्या यह युवती यथार्थ में (उपस्थित) है; अथवा यह दृश्य किसी स्वप्न की छाया है?

जासु झरोखन्हँ आश्रय पाई। मोहि तकति छबि नयन लगाई॥
निज छबिनिधि सुचि लहर पसारी। तुम को रससिस बाढ़निहारी॥

जिसके झरोखों का आश्रय पाकर स्वयं सुन्दरता ही नेत्र लगाकर मुझे देख रही है। अपने सौन्दर्य के समुद्र की पवित्र तरङ्गों को विस्तृत करके मेरे प्रेमरूपी चन्द्रमा को बढ़ानेंवाली तुम कौन हो?

ऊषा सुनि अस मनहि लजानी। जनु अलि लखि पुरइनि सकुचानी॥
साहसु करि तब कुँअरि बखाना। सपुन सहित सखि चरित महाना॥

अनिरुद्ध के ये वचन सुनकर ऊषा मन ही मन सकुचा गई, मानों भौंरे को देखकर कोई कमलिनी सकुचा गई हो। तब राजकुमारी ऊषा ने साहस करके अपने स्वप्न सहित चित्ररेखा के द्वारा किया गया सारा यत्न अनिरुद्ध के सम्मुख कह सुनाया।

तब कुँअरहि उर भा अनुरागा। कुँअरि गनेहुँ एहि निज सौभागा॥
एहिबिधि जुग बस मंदिर माहीं। कोउँ भेद यह जानेउँ नाहीं॥

तब राजकुमार के मन में भी ऊषा के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया, ऊषा ने इसे अपना सौभाग्य समझा। इस प्रकार वे दोनों साथ-साथ भवन में रहने लगे; किन्तु इस रहस्य को कोई नहीं जान सका।

दोहा- एक दिनु चौसर खेलि रहि कखहि उभय छबि बैठि।
कुँअरि मातु तब सोउ कख सुतिहि बिलोकन पैठि॥६७॥

एक दिन वे दोनों सुन्दरताएँ (अनिरुद्ध और ऊषा) भवन के कक्ष में बैठकर चौसर खेल रही थी। तभी राजकुमारी ऊषा की माता अपनी पुत्री को देखने के निमित्त उसी कक्ष में प्रविष्ट हुई।

चौ.- बैठे छबिनिधि तनुजा पाहीं। देखि तेहिं कहेऊ कछु नाहीं॥
हरषि बानतिय फिरि गृह आसा। इहिबिधि चार बीति गै मासा॥

उसने (वहाँ) अपनी पुत्री के निकट सौन्दर्यनिधान अनिरुद्ध को बैठे देखकर भी कुछ नहीं कहा। फिर बाणपत्नि हर्षित हो अपने भवन की ओर लौट गई। इस प्रकार चार माह बीत गए।

कुँअरि एक दिनु कीन्ह बिचारा। भवनहुँ रहत मोर प्रति बारा॥
संदेह न करई कोउँ मोरे। अस बिचारि निकसी गृह छोरे॥

तब एक दिन राजकुमारी ने विचार किया कि मेरे प्रत्येक दिन भवन में ही बने रहनें के कारण कहीं कोई मुझ पर सन्देह न करने लगे! ऐसा विचार कर वह उस भवन से निकलकर बाहर आई।

पै हेरतहि पियहि ततकाला। बिकल फिरी मंदिर महिपाला॥
द्वारपाल जब अस लखि पाए। भै ससंक पै पूछि न पाए॥

किन्तु हे परीक्षित्! प्रियतम का स्मरण होते ही वह व्याकुल होकर पुनः भवन में लौट गई। जब द्वारपालों ने उन्हें इस प्रकार लौटते देखा; तो उन्हें शङ्का हुई, किन्तु वे कुछ पूछ न पाए।

अकसर बान तहाँ चलि आवा। सचिव अनिप बहु किए बनावा॥
हर पताक जब सिखर न पाई। भाबि सोचि अहमिति हरषाई॥

फिर एक बार बाणासुर अपने बहुत-से मंत्रियों व सेनापतियों के साथ उसी ओर आ निकला और जब उसे शिवप्रदत्त वह पताका राजमंदिर के शिखर पर दिखाई न पड़ी; तब भावि युद्ध का विचार करके उसका अहङ्कार हर्षित हो उठा।

तबहि एक जामिक तहँ आवा। लाग संक निज ताहि जनावा॥
नाथ सुनहुँ छमि अवगुन मोरे। खबरि अप्रिय मैं कहि चहुँ तोरे॥

उसी समय एक द्वारपाल वहाँ आया और अपना सन्देह बाणासुर से कहने लगा- हे नाथ! मेरा अपराध क्षमा करके मेरी बात सुनिये! मैं आपको एक अप्रिय सूचना देना चाहता हूँ।

नृपति कुँअरि कख साँझ सकारा। सुना पुरुष रव मैं बहु बारा॥
ते को अहइ यह न मैं जानू। सुनतहि कुपित भयउँ अति बानू॥

हे नाथ! राजकुमारी के कक्ष में संध्या-सवेरे अनेक बार मैंने किसी पुरुष की वाणी सुनी है। वह कौन है, यह मुझे ज्ञात नहीं। यह सुनते-ही बाणासुर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा।

पुनि तें कुअरिहि कख चलि गयऊँ। दुरत जथारथ सोधत भयऊँ॥
खोजत सूत तहाँ खल पावा। एक कुँमर उर परम रिसावा॥

फिर वह ऊषा के कक्ष में चला गया और छिपकर वास्तविकता का पता लगानें लगा। वहाँ खोजते हुए उस दुष्ट ने एक राजकुमार को सोते हुए पाया, तो वह मन-ही मन अत्यंत क्रुद्ध हो उठा।

किन्तु सूत कर बध गनि पापा। फिरा सचुप रिस कहँ हठि चापा॥
पुनि कह रखवारन्हँ पट राखी। कहेसु मोहि रिपु जागत चाखी॥
इहिबिधि आगिल सबन्हँ चताई। गा गृह गरुअ भुजन्हँ झहराई॥

किन्तु सोते हुए का वध करना पाप मानकर, वह क्रोध को बलपूर्वक दबाकर चुपचाप लौट आया। फिर कक्ष के द्वार पर रक्षकों को लगाकर उसने कहा कि शत्रु को जागा हुआ देखकर मुझे सूचित करना। इस प्रकार पहले ही सबको सचेत करके वह गर्वपूर्वक अपनी भुजाओं को लहराता हुआ अपने महल को चला गया।

दोहा- **अज्ञातहि जागतहि नृप खबरि गई खल कान।**

सुनि धावा तुरतहि कुपित गहि कर बिषम कृपान॥६८॥

हे राजन! उस अज्ञात पुरुष (अनिरुद्ध) के जागते ही, इस बात की सूचना उस दुष्ट के कानों तक पहुँच गई। तब क्रुद्ध हुआ बाणासुर तुरन्त ही हाथ में तलवार लेकर दौड़ा।

चौ.- आवा सुता भवन कर द्वारा। अधम डाँटि अस लाग पचारा॥
निकसहुँ बाहिज रे सठ चोरा। की तुअ जान न रिस मम घोरा॥

अपनी पुत्री के भवन के द्वार पर आकर वह अधम डाटकर इस प्रकार ललकारनें लगा- रे शठ! रे चोर! बाहर निकल, क्या तू मेरे भयानक क्रोध को नहीं जानता?

जे एहिंभाँति दुराइ दुराई। बैठेउँ मोर सुता गृह आई॥
पितुहि देखि उगरत अंगारा। हँहरत कुँअरी कीन्ह बिचारा॥

जो इस प्रकार छिपते-छिपाते तू मेरी पुत्री के भवन में आ बैठा है? अपने पिता को इस प्रकार अत्यधिक क्रुद्ध हुआ देखकर घबराई हुई राजकुमारी ऊषा विचार करने लगी कि,

पियहि प्रान पर अब बनि आई। पितु रिसान करि देइ न घाई॥
पिय अब तुम कस राखब प्राना। आवत इहँ मम तात रिसाना॥

अब तो प्रियतम के प्राणों पर ही आ बनी है। मेरे कुपित पिता कहीं कुछ अनर्थ न कर दें। (फिर उन्होंने अनिरुद्ध से कहा-) हे नाथ! क्रुद्ध हुए मेरे पिता यहाँ आ रहे हैं, अब आप अपने प्राणों की रक्षा कैसे करेंगे?

चिंता तनक न करु मन माहीं। अबहि जाइ देखौ बल ताहीं॥
अनिरुध अस कहि मंत्र उचारी। प्रगटानेउँ कर प्रस्तर भारी॥

(तब अनिरुद्ध ने कहा कि) तुम मन में तनिक भी चिन्ता मत करो, मैं अभी जाकर उनका बल देखता हूँ। ऐसा कहकर अनिरुद्ध ने एक मन्त्र का उच्चारण करके, अपने हाथ में एक बड़ी भारी शिला प्रकट कर ली।

पुनि हरि सम निकसेउँ परचारे। मिले द्वार बहु भट रखवारे॥
संबरारिसुत उन्ह रनु पाही। दीन्ह पबारि सिला दल माहीं॥

फिर गरजते हुए सिंह के समान वे निकले, तो द्वार पर उन्हें अनेक रक्षक योद्धा मिले। उन्हें आक्रमण करता हुआ देखकर प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध ने वह शिला उनके समूह पर डाल दी।

जातें कछु बधान कछु भागे। ठाढ़ थकित सर अचरज पागे॥
पुनि तेहिं अहिसर चाप चढ़ावा। अनिरुध आपन सहज बँधावा॥

जिससे कुछ योद्धा दबकर मारे गए और कुछ भाग चले। चकित हुआ बाणासुर ठगा-सा खड़ा रह गया। फिर उसनें अपने धनुष पर नागपाश का सन्धान किया, जिसमें अनिरुद्ध ने स्वयं को सहज ही बँधवा लिया।

सोउ पासहि हर आयुध जानी। अनिरुध सादर जोरेउँ पानी॥
बानासुर कटु बचन सुनाई। सभा भवन तेहिं दीन्ह पठाई॥

उस पाश को भगवान शिव का अस्त्र समझकर, अनिरुद्ध ने आदरपूर्वक अपने हाथ जोड़ लिये। तब बाणासुर ने कठोर वचन सुनाते हुए उन्हें अपने सैनिकों के हाथ सभाभवन भेज दिया।

कुँअरि निरखि अस अति अकुलाई। कुसिका जनु जल बिनु कुम्हलाई॥
बेगि आइ तें प्रिय सखि पासा। पिय धरान अरु पितु रिस भाषा॥

यह देखकर ऊषा अत्यधिक व्याकुल हो उठी, मानों जल के बिना जीवकोशिका कुम्हला गई हो। वह शीघ्र-ही अपनी प्रिय सखी चित्रलेखा के पास आई और उसे प्रियतम का बाँधा जाना व पिता का कोप कह सुनाया।

धिक धिक मम रस बारहि बारा। होइ गा जे पिय दुख आधारा॥
सुमुखि धीर धरु सँव प्रतिकूला। हरिहि ताहि करिहैं अनुकूला॥

(ऊषा ने कहा-) हे सखि! मेरे प्रेम को बार-बार धिक्कार है, जो प्रियतम के दुःख का कारण हो गया। (तब चित्रलेखा ने कहा-) हे सुमुखी! धैर्य धारण करो। समय प्रतिकूल है; अब श्रीकृष्ण ही उसे अनुकूल करेंगे।

अवसि आब ते गहि कटकाई। लेइहि कुँअरहुँ बेगि छराई॥

वे अवश्य-ही सेना लेकर आऐंगे और राजकुमार को यथाशीघ्र छुड़ा लेंगे।

दोहा- **सुनि न सान्ति भइ ताहि जब उठि संकोच बिहाइ।**
हठ धरि अबलहि मृदुल रिस सभउँ पिता सन आइ॥६९॥

यह सुनकर भी जब ऊषा को संतोष नहीं हुआ, तब वह सङ्कोच त्यागकर उठी और अपने हठ में स्त्रियोचित कोमल क्रोध लिये वह राजसभा में पिता के सम्मुख आ पहुँची।

चौ.- **परुष बचन कहि पितु कहँ नाना। जाइ ठाढ़ि तें पिय समुहाना॥**
कंध नाउँ ताकर एक भाई। कोपि उठा पितु पद सिरु नाई॥

फिर अपने पिता को बहुत-से कठोर वचन कहती हुई वह जाकर अनिरुद्ध के निकट खड़ी हो गई। तब स्कन्ध नामक ऊषा का एक भाई अपने पिता के चरणों में सिर नवाकर क्रोधपूर्वक उठा और

आवा निकट कहत अस रोषा। पितहि बिमल जसु अज तैं सोषा॥
एहि अघ हति देतौ असि काढ़े। बधे भगिनि पर अपजसु बाढ़े॥

यह कहते हुए उसके निकट आया कि आज तुमनें अपने पिता की निर्मल कीर्ति को नष्ट दिया। तुम्हारे इस अपराध पर मैं अपनी तलवार निकालकर तुम्हारा वध कर देता, किन्तु बहिन की हत्या करने से अपकीर्ति होती है।

निपटहि एहि हित जिअति बिसारी। ऊषा कह तब धीरजु भारी॥
भलेहि भ्रात तुम मन रुचि करऊँ। मैं एक उमहि बचन अनुसरऊँ॥

केवल इसी कारण मैंने तुझे जीवित छोड़ रक्खा है। तब ऊषा ने अत्यन्त धैर्यपूर्वक कहा कि हे भैय्या! भले ही तुम अपनी मनभाई कर लो; किन्तु मैं तो केवल माता पार्वती के वचनों का ही अनुशरण करूँगी।

मम रस कहँ अब उमहि अधारा। सुनि कंधहुँ रिस भयउँ अपारा॥

तब हठि ताहि संग लै गयऊ। राखि कखहि रच्छक बैठयऊँ॥

(अनिरुद्ध के प्रति) मेरी प्रीति को अब माता उमा का ही आश्रय है, यह सुनकर स्कन्ध को अत्यन्त क्रोध हुआ। तब वह हठपूर्वक उसे अपने साथ ले गया और कक्ष में छोड़कर वहाँ रक्षक बैठा दिये।

फिरि बाँधेसि कुँअरहि बरिआई। बेगि बंदिगृह दीन्ह पठाई॥
मनुजपाल नारद एक बारा। गै अनिरुध पहि कारागारा॥

फिर उसनें लौटकर बलपूर्वक अनिरुद्ध को भी बन्दी बना लिया और शीघ्र-ही कारागृह में भेज दिया। तब हे परीक्षित्! एक बार देवर्षि नारद कारागृह में अनिरुद्ध के पास गए।

तनय तनक लाउँब हिय धीरा। कछु दिनु महुँ आइहि जदुबीरा॥
सेन सहित खल पाठ पढ़ाइहि। ऊषा सहित तोहि लै जाइहि॥

(नारदजी बोले) हे वत्स! तुम तनिक धैर्य धरो। क्योंकि कुछ-ही दिनों में यदुवीर श्रीकृष्ण यहाँ आऐंगे और सेना सहित उस दुष्ट बाणासुर दण्डित करके राजकुमारी ऊषा सहित तुम्हें अपने साथ ले जाऐंगे।

तदुप गए मुनि सर समुहाई। आसनु दीन्ह तेहिं सिरु नाई॥
मुनि कह राजन तुम जेहिं बाँधा। बिदित कि तोहिं उन्ह असर अगाधा॥

तदुपरान्त मुनि वहाँ से बाणासुर के पास गए, तब उसनें उन्हें सिर नवाकर आसन पर बैठाया। मुनि ने कहा- हे राजन! तुमने जिसे बाँध रखा है, क्या तुम उनके अगाध प्रभाव को जानते हो?

ते सोइ प्रदुमन केर कुमारा। जिहिं सम्बरहिं सहज रनु मारा॥
यह सम्बर सोइ सुभट निकाया। रहा निपुन जे बहुबिध माया॥

ये उन्हीं प्रद्युम्न के पुत्र हैं, जिन्होंने युद्ध में शम्बरासुर को सहज ही में मार डाला। ये शम्बर वही उद्भट और महाबली योद्धा था, जो अनेक प्रकार की माया रचने में निपुण था।

तासु पितामह हरि गिरिधारी। अधिक रह न रिपु जिन्हँ सन रारी॥
उन्ह स्यामहुँ सो अहिपति भ्राता। जेहिं सिसुपनहिं प्रलंब निपाता॥

उसके पितामह वे भगवान श्रीकृष्ण हैं,युद्ध में जिनके सम्मुख कोई भी शत्रु अधिक समय तक नहीं ठहरता। उन श्यामसुन्दर के अग्रज शेषस्वरूप वे बलरामजी हैं, जिन्होंने अपने बाल्यकाल में ही प्रलम्ब जैसे दैत्य को मार गिराया था।

इन्हँ ते बड़ यह नाथ तिहारा। भज तिन्हँ उन्हँ कस पाउब पारा॥
तब तें निज भुज बलधि निहारा। एहिभाँति मुनि समुख उचारा॥

और इनसे बड़ी बात यह है कि स्वयं तुम्हारे अपने इष्ट शिवजी भी उनका भजन करते है, तो फिर तुम उनका पार कैसे पाओगे? तब वह अपनी भुजाओं के बलरूपी अपार सागर को देखते हुए मुनि के सम्मुख इस प्रकार बोला-

दोहा- **भुज समूह मुनि मोर यह बहुमुख अहि अरि लागि।**

इन्ह तारित को तारि सक निज कहँ संकट भाँगि॥७०॥

हे मुनिराज! मेरी भुजाओं का यह समूह शत्रु के लिये विपुलमुखी सर्प के समान है। भला इनसे पीड़ित हुए प्राणी को अपने प्राण सङ्कट में डालकर भी कौन बचा सकता है?

चौ.- जे मोहि तें भिरिहहि सब आई। तदपि जीतिहउँ उन्ह बरिआई॥
सुनि मुनि बेगि द्वारिका आए। सब दिसि देखेउँ मंगल छाए॥

यदि वे सब एक साथ भी आकर मुझसे भिड़ेंगे, तब भी मैं उन्हें बलपूर्वक जीत लूँगा। यह सुनकर नारदजी द्वारिका आ गए और वहाँ उन्होंने सब ओर सुख व्याप्त देखा।

तेहिं दिनु उर धरि मार निरासा। हेरि सुतहि गवने पितु पासा॥
पुनि कह प्रभु मम तनय खोवाना। तबहि देवरिषि भै समुहाना॥

उसी दिन अपने पुत्र अनिरुद्ध का स्मरणकर मन में निराश लिये प्रद्युम्न अपने पिता श्रीकृष्ण के पास गए और बोले- हे भगवन्! मेरा पुत्र कहीं खो गया है। इसी बीच देवर्षि उनके सम्मुख पहुँचे।

तब त्रिपुराधिप उन्ह सनमानी। बैठारेहुँ आसन गहि पानी॥
पुनि कह मुनि बिचरन तिहुँलोका। सो अब तुमहि हरहुँ हम सोका॥

तब त्रिलोकीनाथ ने उन मुनि का सम्मान करके हाथ पकड़कर उन्हें आसन पर बैठाया। फिर वे बोले कि मुनि (आप) का विचरण तो तीनों लोकों में होता है; अतः अब आप ही हमारे शोक का हरण कीजिये।

जे मम पौत खबरि मुनि जानहिं। कहइ बेगि परिजन सुख मानहिं॥
जानहिं नाथ सरहिं भलि भाँती। सोइ भयउँ अनिरुध आराती॥

यदि मुनिवर मेरे पौत्र के विषय में कुछ जानतें हों, तो शीघ्र ही बतलावें; ताकि परिजनों को सुख पहुँचे। तब नारदजी ने कहा कि नाथ (आप) बाणासुर के विषय में तो भलि-भाँति जानते हैं, इस समय वही अनिरुद्ध का शत्रु हो रहा है।

ब्यालपास खल कुँअरहिं बाँधी। राखेउ निज बन्दीगृह साँधी॥
अब तें रनु कीन्हें बिनु स्यामा। कबहुँ न छारिहि तव सुखधामा॥

उस दुष्ट नें राजकुमार अनिरुद्ध को नागपाश में बाँधकर अपने बन्दीगृह में डाल दिया है। हे श्यामसुन्दर! अब वह युद्ध किये बिना कभी भी आपके सुखों के धाम अनिरुद्ध को नहीं छोड़ेगा।

सुजनपाल कहँ अब जे भावहि। जाइ जतन सो सद्य जुड़ावहि॥
अस कहि नारद गै अजधामा। इहाँ नृपति सन आए स्यामा॥

सत्पुरुषों के पालनकर्ता प्रभु को अब जो भी उचित लगे, जाकर शीघ्र वही उपाय करें। ऐसा कहकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गए। इधर भगवान श्रीकृष्ण महाराज उग्रसेन के पास पधारे।

पुनि उन्हँ पद सादर सिरु नाई। अनिरुध बिपदा ताहिं जनाई॥
तब नृप कह अनि बेगि जुड़ावौ। चढ़ि अरि पर तिहिं सद्य छरावौ॥

फिर उनके चरणों में सादर सिर नवाकर उन्होंने अनिरुद्ध की विपत्ति के विषय में उन्हें बताया। तब महाराज उग्रसेन ने कहा कि तुम सेना लेकर शत्रु पर आक्रमण करो और शीघ्र ही उसे छुड़ा लो।

तब ससेन सायुध दुहुँ बीरा। सजदु चले तहँ बेग गभीरा॥
उन्ह सुनि सगरुअ सठ हरषावा। चून मनहुँ तातउ जल पावा॥

तब अस्त्र-शस्त्र धारण करके दोनों भाई यादवों के साथ सेना लेकर बड़े वेग से शोणितपुर की ओर चले। उनके आने के विषय में सुनकर अहङ्कार का मारा मूर्ख बाणासुर हर्षित हो उठा, मानों चूने के चूर्ण को तप्त जल मिल गया हो।

गढ़ घेरेउँ हरि बाजि निसाना। सुनत सहसभुज परम रिसाना॥

भगवान श्रीकृष्ण ने डङ्का बजाकर (सेना के द्वारा) उसके किले को घेर लिया है, यह सुनते-ही सहस्र भुजाओंवाला बाणासुर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

दोहा- **तेपि सचिव अनिपन्हँ सँग पठइ असुर अनि भारि।**
आपुहि गहि त्रयसूल कर आवा समर मँझारि॥७१॥

फिर उसनें भी अपने मन्त्री व सेनापतियों के साथ राक्षसों की बड़ी भारी सेना भेजी और स्वयं भी त्रिशूल लेकर युद्धभूमि में आ गया।

चौ.- **हर निज सेवक संकट जानी। कठिन पिसाचन्हि कटकु रेंगानी॥**
बहुरि बान कर भए सहाई। जूझै लाग रुद्र बपु लाई॥

भगवान शिव ने अपने भक्त को सङ्कट में आया जानकर पिशाचों की भयङ्कर सेना आगे बढ़ाई और बाणासुर के सहायक होकर रुद्ररूप धारण करके (यदुवंशियों से) युद्ध करने लगे।

हरि हर भिरेउँ सातिकी बाना। तारकरिपु तें मार जुझाना॥
जूझ नागपति जनु दुइ भारी। बल तें भिरेउँ कुँभाँड पचारी॥

भगवान श्रीकृष्ण व शिवजी परस्पर भिड़ गये, सात्यिकि बाणासुर से और प्रद्युम्न स्वामी कार्तिकेय से युद्ध करने लगे। जैसे दो बड़े भारी सिंह परस्पर जूझते हैं, वैसे ही बाणमंत्री कुम्भाण्ड ललकारकर बलरामजी से जा भिड़ा।

चारुदेष हरिसुत बलवाना। भए सरोष कंध समुहाना॥
कुंभकरन मंत्री अघखाना। भयउँ साम्ब सन गहि धनुबाना॥

भगवान श्रीकृष्ण के महाबली पुत्र चारुदेष्ण क्रुद्ध हो बाणपुत्र स्कन्ध के सम्मुख हो गये और (बाणासुर का एक अन्य) मन्त्री कुम्भकर्ण जो पाप की राशि था, धनुषबाण धारण करके (जाम्बवन्तीनन्दन) साम्ब से युद्ध करने लगा।

इत जादव अतुलित बलधारी। उत निसिचर पिसाच भयकारी॥
भयउँ अरंभ कठिन संग्रामा। मनहुँ प्रलय उपजेउ दुखधामा॥

इधर अतुलनीय बलसम्पन्न यदुवंशी थे, तो उधर राक्षस व भयानक पिशाच थे। इस प्रकार दोनों सेनाओं में भयङ्कर संग्राम आरम्भ हो गया, मानों महादुःखदायक प्रलय ही आरम्भ हो गया हो।

कुपित रुद्र तकि अज सर मारा। चला हरिहिं दिसि बेग अपारा॥
लखि उन्ह आपन चक्र प्रहारा। भयउँ जासु तिहुँ पुर उजियारा॥

भगवान शिव ने कुपित हो तककर ब्रह्मास्त्र चलाया, जो अपार वेग से श्रीकृष्ण की ओर चला। यह देखकर उन्होंने अपना सुदर्शन चक्र चलाया, जिसका प्रकाश तीनों लोकों में व्याप्त हो गया।

परम अत्र पुनि नभ समुहाए। जूझै लाग परम रिस छाए॥
इत संबर रिपु चाप चढ़ाई। मारे त्रय नाराच रिसाई॥

फिर वे दोनों महान अस्त्र आकाश में एक-दूसरे के सम्मुख हो क्रोध में भरकर परस्पर युद्ध करने लगे। इधर शम्बरारि प्रद्युम्न ने अपना धनुष चढ़ाया और कुपित होकर तीन बाण मारे।

ब्याल सरिस सर आवत जाने। सिखि सँग षडमुख गगन उड़ाने॥

सर्प के समान तीक्ष्ण बाणों को आता हुआ जानकर स्वामी कार्तिकेय अपने वाहन मयूर के साथ आकाश में उड़ गए।

छन्द- उड़ि गगन गवने गजबदनु गुर भ्रात धनु दारुन लियौ।
लागे प्रहारन कठिन सर कंदर्प कहँ ब्याकुल कियौ॥
रतिनाथ करि तब षडबदनु उर लच्छ सायक दस हने।
मुरुछित भए जिन्हँ घात सिवसुत महि सवाहन ढनमने॥

गजाननाग्रज कार्तिकेय उड़कर आकाश में जा पहुँचे; फिर उन्होंने अपना दारुण धनुष उठाया और उससे कठिन बाणों की वर्षा करके उन्होंने प्रद्युम्न को व्याकुल कर दिया। तब उन रतिनाथ ने कार्तिकेयजी के हृदय को लक्ष्य करके दस बाण मारे, जिनके आघात से शिवपुत्र कार्तिकेय मूर्छित होकर वाहन सहित भूमि पर आ गिरे।

दोहा- उहाँ चक्र अरु ब्रह्मसर भीषन बरष कृषानु।
लखि हरि उपसंघारेहुँ निज प्रभाउ सो बानु॥७२॥

उधर ब्रह्मास्त्र और सुदर्शन चक्र युद्ध करते हुए कठिन अग्नि की वर्षा कर रहे थे; यह देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने अपने प्रभाव से ब्रह्माजी के उस अस्त्र का उपसंहार कर दिया।

चौ.- तब पिनाकि पवनहि सर धानी। दारुन आँधि समर प्रगटानी॥
गति प्रचंड सो वात कठोरा। भटन्हँ तरासन लगि चहुँ ओरा॥

तब पिनाकधन्वा भगवान शिव ने वायव्यास्त्र चढ़ाया और युद्धभूमि में भयानक आँधी प्रकट कर दी; जिससे प्रचण्ड वेग से चलती हुई वह वायु चारों ओर यादव वीरों को दुःख देने लगी।

गुर गुर प्रस्तर बिटप उपारे। आनि जदुन्हँ पर लगि तें डारे॥
भगतबछल जब अनि दुख चीन्हा। प्रेरि माय पव निबरन कीन्हा॥

वह वायु अपने साथ बड़े-बड़े पत्थर व वृक्ष उखाड़कर ले आई और उन्हें यादवों पर डालनें लगी। जब भक्तवत्सल श्रीहरि ने अपनी सेना का दुःख देखा, तो उन्होंने अपनी माया के प्रभाव से उस पवन को भी शान्त कर दिया।

जात पवहि जदु भए सुखारी। मानहुँ रोग कटेहुँ अति भारी॥
तब हर अगिनिबान संधाना। जाहिं अंबसर स्याम नसाना॥

पवन के शान्त होते ही यादववीर सुखी हो गए, मानों कोई बड़ा भारी रोग मिट गया हो। तब भगवान शिव ने अग्निबाण का सन्धान किया, जिसे श्रीकृष्ण ने वरुणास्त्र से नष्ट कर दिया।

पुनि बिनोदप्रिय जादवनायक। हरहि कटकु अस डारेउँ सायक॥
भूत पिसाचन्ह जाकर आगी। जटा मूछ दाढ़ी जरि लागी॥

फिर उन विनोदप्रिय यदुनाथ श्रीकृष्ण ने शिवजी की सेना पर एक ऐसे बाण का प्रयोग किया, जिसकी अग्नि में भूत-पिशाचों की जटाएँ, मूछें व दाढ़ीयाँ जलनें लगी।

जातें भै अति बिकल पिसाचा। लखि महेस उन्ह टारन आँचा॥
अंबुबान हति जल बरषाई। तुरत बिषम उन्ह जरनि मेटाई॥

जिससे वे पिशाच अत्यन्त व्याकुल हो गए, यह देखकर उनकी पीड़ा का निदान करने के लिये महेश्वर ने वरुणास्त्र का प्रयोग किया और जल बरसाकर तुरन्त ही उनका दारुण दाह हर लिया।

हरिसर चाप लीन्ह हरिनाथा। कछु बिचारि फेरा पुनि भाथा॥
मधुसूदन हति सर जमहाई। लाग सुवावन हर कटकाई॥

फिर उन विष्णुपति भगवान शिव ने धनुष पर नारायणास्त्र चढ़ाया, किन्तु कुछ विचारकर उन्होंने उसे पुनः तरकस में रख लिया। तब जृम्हणास्त्र का प्रयोग करके श्रीकृष्ण शिवजी की सेना को निद्रा के वशीभूत करने लगे।

लखि सिव तुरत तीन सर मारे। जिन्हँ कालियरिपु सहज निवारे॥
पुनि सायक अस हतेउँ कन्हाई। लेत भए बृषकेत जम्हाई॥

यह देखकर शिवजी ने तुरन्त ही तीन बाण मारे, जिन्हें कालियशत्रु श्रीकृष्ण ने सहज ही में नष्ट कर दिया। फिर उन कन्हैया ने एक ऐसा बाण मारा, जिसके प्रभाव से वृषकेतू भगवान शिव जम्हाई लेनें लगे।

छन्द- **जम्भाइ लेत महेस परिहरि चेत निदराबस भए।**
इत साम्ब अरु बल सघन रनु करि कोप दोउँ सचिवन्ह हए॥
अस निरखि बान सहस भुजन्हँ धनु पंचसत गहि धायऊँ।
टंकारि प्रति चापहि धरे नाराच सत नभ छायऊँ॥

जम्भाई लेते हुए शिवजी अचेत होकर निद्रा के वशीभूत हो गए। इधर साम्ब व बलरामजी ने भीषण युद्ध में कुपित होकर बाणासुर के दोनों मन्त्रियों का वध कर दिया। यह देखकर बाणासुर अपनी हजार भुजाओं में पाँच सौ धनुष लेकर दौड़ा। फिर उन धनुषों की टङ्कार करके उसनें प्रत्येक धनुष पर सौ-सौ बाण चढ़ाए और उनसे सम्पूर्ण आकाश को भर दिया।

दोहा- **तदुप बान भट कहि कुबच गयउ हरिहि समुहान।**
जरहि तासु सब गात रिस बिहँसे लखि भगवान॥७३॥

तदुपरान्त योद्धा बाणासुर दुर्वचन कहता हुआ भगवान श्रीकृष्ण के सम्मुख गया। क्रोध के मारे उसके सारे अङ्ग जल रहे थे, यह देखकर भगवान हँसे।

चौ.- तब सर सहस ऐक एक बारा। छारि लाग खल कुपित अपारा॥
अहि सम झहरति बाहु बिसाला। जदपि मोच संतत सर ज्वाला॥

तब अत्यधिक क्रुद्ध हुआ वह दुष्ट एक-एक बार में हजारों-हजार बाण छोड़नें लगा। यद्यपि सर्पों के समान लहराती हुई उसकी विशाल भुजाएँ निरंतर बाणरूपी अग्नि उगल रही थीं;

तदपि न होत बकारि बिगारा। तब खिसाइ करि कोप अपारा॥
रथ तजि गयउ जदुन्ह के ठट्टा। गहि गहि पटकन लाग सुभट्टा॥

तथापि उससे श्रीकृष्ण का कुछ भी अहित न बन पड़ा; तब लज्जित हुआ वह अत्यधिक क्रोध करके रथ से उतरकर यादवों के समूह में गया और उन उत्तम योद्धाओं को पकड़-पकड़कर भूमि पर पटकनें लगा।

तेहि ते भिरे अमित जदुबीरा। मारहि तदपि न लट रनुधीरा॥
भुजन्ह मरोरत कोउँ बरिआई। मारि लात कोउँ जात पराई॥

अनेक यादव वीर (एक साथ) उससे जा भिड़े और (सब ओर से) मारनें लगे, किन्तु वह रणधीर योद्धा फिर भी विचलित नहीं होता। कोई बलपूर्वक उसकी भुजाओं को मरोड़ देता है, तो कोई उसे लात मारकर भाग छूटता है।

कछु मिलि भुज धरि निज निज आसा। खींचत करि लग बाल बिलासा॥
कोउँ कच धरि तेहिं लाग खिजाई। आउँ काल्ह पुनि करन जुझाई॥

कुछ ने मिलकर उसकी भुजाएँ पकड़ ली और अपनी-अपनी ओर खींचते हुए वे उससे बालकों का-सा खेल करने लगे; तो कोई उसके केश पकड़कर उसे चिढ़ाने लगा कि कल भी युद्ध करने आना।

सुनत कुपित तेहि बाहु पसारी। धरि उन्हँ गगन दीन्हँ संचारी॥
पुनि आतुर सो भट्ट प्रचंडा। गहे अमित भट निज भुजदंडा॥

उनके ऐसे वचनों से क्रुद्ध होकर उसने अपनी भुजाएँ फैलाई और उन्हें पकड़कर आकाश की ओर उछाल दिया। फिर उस प्रचण्ड योद्धा ने उतावली से झपटकर अनेक योद्धाओं को अपनी भुजाओं में बाँध लिया।

इहिबिधि तहँ कोलाहलु भारी। भयउँ जुझाइनि डगि लगि धारी॥
सम्भरत भट्ट गहे जदुबीरा। खसि परेहुँ छिति गरजि गभीरा॥

इस प्रकार वहाँ बड़ा भारी कोलाहल मच गया और संघर्ष की अधिकता से धरती डोलने लगी। सम्हलने का प्रयास करता हुआ बाणासुर अपनी भुजाओं में यादवों को बाँधे (उसी दशा में) कठोर गर्जना के साथ भूमि पर गिर पड़ा।

परत सभट कस रुच बल पुंजा। दलन्हि धरे मधुकन जनु कंजा॥
पुनि उठि सहसहि भुज बलु ढारी। दीन्ह सबेग सबन्हिं महि पारी॥

उन योद्धाओं के साथ गिरते हुए महाबलि बाणासुर कैसे शोभित हुआ; जैसे कमल के पुष्प ने अपनी पङ्खुड़ियों पर पराग के कण धारण कर रखे हों। फिर उसनें उठकर एक ही बार में अपनी हजार भुजाओं का बल उढ़ेलकर वेगपूर्वक उन सब यादवों को भूमि पर पटक दिया।

पुनि फिरि रथ गहि निज धनुबाना। जदु अनि पाछ परेउँ अघखाना॥
तब हरि करन तासु मद भंगा। पनच प्रतारि कठिन सारंगा॥

फिर पुनः अपने रथ पर लौटकर धनुष-बाण धारण किये पाप की खान वह यदुसेना के पीछे पड़ गया। तब उसके अहङ्कार का नाश करने के लिये श्रीकृष्ण ने अपने कठोर सार्ङ्गधनुष की प्रत्यञ्चा को टङ्कारा।

तदुप सिलीमुख एक अस मारा। सरहि छत्र जेहिं सहज बिदारा॥
बिसिख बिपुल छारे हरि चंडा। कटि भै गिरत तासु कोदंडा॥

तदुपरान्त उन्होंने एक ऐसा बाण मारा, जिसनें बाणासुर के (रथ के) छत्र को सहज ही में काट दिया। भगवान ने पुनः बहुत-से कठिन बाण छोड़े, जिससे उसके धनुष कट-कटकर गिरनें लगे।

एकहि सर पुनि अघ आराती। कीन्ह बिरथ सारथी निपाती॥
अस बिलोकि अति डरपेउँ बाना। तुरत दुरग दिसि चलेउँ पराना॥

फिर उन अघसूदन श्रीकृष्ण ने एक ही बाण से उसके सारथी को मारकर उसका रथ भी तोड़ दिया। यह देखकर बाणासुर अत्यधिक भयभीत हो उठा और तुरन्त ही अपने दुर्ग की ओर भाग चला।

अस लखि पाछ लगे कंसारी। फिरे किन्तु मरजाद बिचारी॥
नृपति सुअवसर अस सर पाई। सेन बोलि पुनि कीन्हि चढ़ाई॥

यह देखकर कंससूदन श्रीकृष्ण भी उसके पीछे दौड़ें, किन्तु फिर मर्यादा को विचारकर वे लौट आए। हे राजन! इस सुअवसर को पाकर बाणासुर ने सेना बुलवाकर पुनः यादवों पर आक्रमण कर दिया।

तब हरि गहि कठोर कोदंडा। पुनि ससेन ताकर मद खंडा॥
तदपि कहत भा उतुकचनासा। अबहि न बुझि मम जुद्ध पिपासा॥

तब भगवान ने कठोर धनुष उठाकर पुनः सेना सहित उसके गर्व को चूर्ण कर दिया। इतने पर भी वह कहने लगा- हे उत्कचनिकंदन! अभी मेरी युद्ध-पिपासा शान्त नहीं हुई है।

तासु बचन सुनि सहित गुमाना। हरि कर कठिन चक्र संधाना॥
परिहरि सेष तासु भुज चारी। परसुराम भुज सबनि बिदारी॥

उसके ऐसे अहङ्कारयुक्त वचन सुनकर भगवान ने अपने हाथ में कठिन सुदर्शन चक्र ले लिया। फिर उन परसुरामस्वरूप श्रीकृष्ण ने चार भुजाओं को छोड़कर उसकी शेष सभी भुजाएँ काट दी।

तब गा सभय सरन हर केरी। राखहुँ प्रभु मोहि बिपद घनेरी॥
सुनि हर तुरत सरहि करि आगे। हरि सन जाइ बिनय करि लागे॥

तब भयभीत हुआ वह शिवजी की शरण में गया और बोला- हे भगवन्! इस महान विपत्ती से मेरी रक्षा कीजिये। यह सुनते-ही शिवजी ने बाणासुर को आगे कर लिया और भगवान श्रीकृष्ण के सम्मुख जाकर विनती करने लगे।

छन्द- लागे कहन हर प्रनत भय मोचन दयालु कृपानिधी।
अवतार महि धस्यो खलन्हँ तारन सुजन तारन भवनिधी॥
एहि कीन्ह भ्रम बस खोरि तव प्रति तासु फल भल पाइयो।
प्रभु अब परम प्रिय भगत मम कहँ दीन गनि अपनाइयो॥

शिवजी कहने लगे- हे शरणागत के भय का नाश करनेवाले! हे दया व कृपा के समुद्र! आपनें दुष्टों को दण्ड देने के लिये और सत्पुरुषों को भवसागर से तारनें के लिये ही इस भूतल पर अवतार धारण किया है। इसनें अज्ञानतावश आपके प्रति अपराध किया और उसका यथोचित दण्ड भी पा लिया। अब हे भगवन्! आप मेरे इस परमप्रिय भक्त को दीन समझकर अपना लीजिये।

दोहा- चंद्रमौलि कर बिनय सुनि सीतेउँ हरि रिस ताप।
कह जे हरिहर भेद गन असहि सो लहँ संताप॥७४॥

भगवान चन्द्रमौलि की प्रार्थना सुनकर श्रीकृष्ण का कोपरूपी ताप शीतल हो गया और उन्होंने कहा कि जो भी मनुष्य शिव व मुझ हरि में भेद समझता है, वह इसी प्रकार दुःख प्राप्त करता है।

चौ.- जे नर हर पद ध्यान लगावहि। अंतकाल मम भगति सो पावहिं॥
मम उर हर हर उर मम बासा। सर अब उन्ह नय ग्यान प्रकासा॥

जो मनुष्य भगवान शिव के चरणों में ध्यान लगाता है, अंत समय में वह मेरी भक्ति को प्राप्त करता है। क्योंकि मेरे हृदय में शिवजी हैं और शिवजी के हृदय में मैं रहता हूँ। अतः हे बाणासुर! अब उनके विनयरूपी ज्ञान के प्रकाश में

मिटेउ तोर तम तुल अग्याना। प्रमुदित भा अस सुनतहि बाना॥
पुनि कह दयासिंधु भगवाना। जस अपराध मोर बिसराना॥

तुम्हारा अंधकारतुल्य अज्ञान नष्ट हो गया है। यह सुनते-ही बाणासुर परम आनन्दित हो गया और बोला- हे दयासिन्धु भगवन्! जिस प्रकार आपनें मेरा अपराध क्षमा कर दिया है,

तस अब मानत मोर निहोरा। बेगि करअि सुचि मंदिर मोरा॥
सब कहुँ तब हरि स्वीकृति पाई। निज गृह लै गयउ हरषाई॥

ठीक वैसे ही अब मेरा निहोरा मानकर आप शीघ्र मेरे भवन को भी पवित्र कीजिये। तब भगवान श्रीकृष्ण की स्वीकृति पाकर वह समस्त यादवों को हर्षित होकर अपने घर ले आया।

बहुरि करत बिधि जे श्रुति माहीं। अनिरुद्धहि सहरष सुति ब्याहीं॥
दाइज रस कर देत बहोरी। सादर बिदा कीन्ह कर जोरी॥

फिर वेदों में जो रीति वर्णित है, उसका आचरण करके उसने हर्षपूर्वक अपनी पुत्री ऊषा अनिरुद्ध को ब्याह दी। फिर प्रेमरूपी दहेज देते हुए उसनें आदरपूर्वक हाथ जोड़कर उनको विदा किया।

दोहा- उन्ह उद्धार कथा अब सुनहुँ राउ चित लाइ।
रबिकुल रबि जे धरमधुज नाउँ जासु नृगराइ॥७५॥

हे परीक्षित्! अब आप चित्त लगाकर उन राजन के उद्धार की कथा सुनिये! जो धर्मध्वजधारी व सूर्यवंश के सूर्य हैं तथा जिनका नाम नृग है।

चौ.- नृप नृग प्रतिदिनु लहि भिनुसारा। धेनु दान कर द्विजन्ह अपारा॥
उन्ह द्विज जूथ बिलोकि अपारा। अगनित गौ दानिसि एक बारा॥

राजा नृग प्रतिदिन प्रातःकाल होने पर ब्राह्मणों को अनगिनत गायें दान किया करते थे। एक बार ब्राह्मणों का अपार समुदाय देखकर उन्होंने उन सबको अनेक गायें दान की।

भाबीबस उन्ह महुँ तें राऊ। एक धेनु फिरि नृग गोठाऊँ॥
अनजानत तिहिं राय सुजाना। अपर बिप्र कहँ करि लग दाना॥

हे राजन! होनहारवश दान की गई उन गायों में से एक गाय पुनः राजा नृग की गौशाला में लौट आई; जिसे वे सुजान राजन अनभिज्ञता के कारण किसी अन्य ब्राह्मण को दान करने के लिये उद्यत हुए,

तेहिं छिनु प्रथम बिप्र तहँ आवा। नृग कहँ धेनु खोवान सुनावा॥
पुनि सो गाइहि निज पहिचानी। माँगन लाग ताहि हठ ठानी॥

किन्तु उसी क्षण पहलेवाला ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचा और उसने नृग से अपनी गाय के खो जाने की बात कही। फिर (निकट ही खड़ी) उस गाय को अपनी पहचानकर वह उसे हठपूर्वक माँगनें लगा।

तब दूसर द्विज कह एहि राई। देन मोहि पनुबध भै भाई॥
सो अब एहि पर मम अधिकारा। किन्तु बिप्र सो हठ न बिसारा॥

तभी दूसरे ब्राह्मण ने कहा- हे भाई! महाराज यह गाय मुझे दान करने का संकल्प कर चुके हैं; इसलिये अब इस पर मेरा अधिकार है। किन्तु उस पहलेवाले विप्र ने अपना हठ नहीं त्यागा।

तब दुहुँ बिप्र रारि करि लागे। नृग बिलोकि अस कह पग लागे॥
प्रभु न करिअ अस कलहु कठोरा। यह अपराध निपट अह मोरा॥

तब वे दोनों ब्राह्मण परस्पर कलह करने लगे। यह देखकर राजा ने उनके चरणों में गिरकर कहा- हे प्रभु! आप ऐसा कठोर कलह न कीजिये, यह अपराध तो एकमात्र मेरा है।

अब कोउँ एक राखि एहि गाई। दूसर लच्छ एक लै जाई॥
पै प्रस्ताब यह न उन्हँ भावा। गै रीतेहिं कर परम रिसावा॥

हे नाथ! अब आपमें से कोई एक इस गाय को रख लें और दूसरे मुझसे एक लाख गायें ले जायँ। किन्तु राजा का यह प्रस्ताव उन्हें अच्छा नहीं लगा और वे दोनों अत्यंत रुष्ट होकर रिक्त हाथ ही लौट गए।

तब महीस उर अति पछिताना। पाप समन कीन्हें बहु दाना॥
बिगत समउ नृप बपुष बिहाई। जब गै धरमराज समुहाई॥

तब महाराज नृग ने अपने हृदय में अत्यधिक पश्चाताप किया और इस अपराध के प्रायश्चित् हेतू उन्होंने अनेक प्रकार के दान दिये। फिर जब समय बीतनें पर वे राजा शरीर त्यागकर धर्मराज के सन्मुख गए,

दोहा- **धरम कहा तब जिवन निज सुकृत कीन्ह तुम भारि।**
पर सकलंकित इन्दु जस तस एक भूल तुम्हारि॥७६॥

तब धर्मराज ने कहा- हे राजन! अपने जीवनकाल में तुमनें महान सत्कर्म किये हैं। किन्तु जैसे चन्द्रमा कलङ्कयुक्त है, ठीक वैसे ही तुमसे भी एक भूल हुई है।

चौ.- **कहुँ चह प्रथम कवन फल लेहूँ। नृप कह प्रथम पाप फल देहूँ॥**
देत बपुष सैरिहु कर ताही। डारेउँ धरम कूप एक माहीं॥

अतः कहो! तुम पहले किसका फल भोगना चाहोगे? तब राजा ने कहा कि आप पहले मेरे अपराध का फल दीजिये। तब धर्मराज ने उन्हें गिरगिट का शरीर प्रदान करके एक कुएँ में डाल दिया।

पुनि हरि कर उन्ह मुकुति जनाई। धरम फिरे निज कहँ दुखि पाई॥
तब तें नृग हरि दरसन आसा। अथिरबरन तन कूप निवासा॥

फिर भगवान के हाथ से उनकी मुक्ति होना बताकर धर्मराज स्वयं को दुःखी अनुभव करते हुए लौट गए। हे परीक्षित्! तभी से वे राजन गिरगिट का शरीर लिये उस कुएँ में निवास करने लगे।

बान जीति एक दिनु जगदीसा। सुतन्ह संग गै बिपिन महीसा॥
तहँ बरनत मृग अरु बन लाहूँ। बिचरत भै ते करि सब काहू॥

हे राजन! बाणासुर को युद्ध में जीतने के उपरान्त एक दिन श्रीकृष्ण अपने पुत्रों सहित वन में गये। वहाँ वन और वन्य जीवों की उपयोगिता का बखान करते हुए वे उन सबके साथ विचरण करने लगे।

तब तरसनि तें परम अधीरा। कुँअरु एक खोजत भा नीरा॥
सोइ कूप जब झाँकेउँ ताहीं। निरखतही तिन्ह घिग्घि बँधाहीं॥

तभी प्यास से अत्यधिक अधीर हो एक राजकुमार जल खोजनें लगा। फिर उसने उसी कुएँ में झाँककर देखा (जहाँ गिरगिट के रूप में नृग थे) और देखते-ही उसकी घिग्घि बँध गई।

निरखि कठिन सैरिउँ भय प्रेरे। फूरे पाउँ पानि तेहिं केरे॥
तब ते पितु दिसि चलेउँ पराना। पुनि उन्हँ सनमुख मरमु बखाना॥

उस भीषण गिरगिट को देखकर भय के मारे उसके हाथ-पैर फूल गए। तब वह अपने पिता श्रीकृष्ण की ओर भागा और उनके सम्मुख सब कह दी।

सुनि सरबग्य सुजन अधारा। करन अए नृग कर उद्धारा॥

नृग लखि परे हरिहि कस कूपा। मनहुँ नरक महुँ धर्मि अनूपा॥

जिसे सुनकर सत्पुरुषों के आधाररूप सर्वज्ञ भगवान श्रीकृष्ण राजा नृग का उद्धार करने के लिये उस कुएँ के समीप आए। उस समय वे नृग उन श्रीहरि को कैसे प्रतीत हुए; मानों कोई अनुपम धर्मात्मा ही नर्क में पड़ा हो।

तब हरि निज पद तेहिं परसाना। छूटेहुँ जातें बपुष महाना॥

फिर भगवान ने उन्हें अपने चरण का स्पर्श कराया, जिससे उनका वह विशाल शरीर छूट गया।

दोहा- **बसन बिभूषन दिब्य तनु भै नृग अस्तुति कीन्ह।**
द्रवत सुमंगलदायिनी भगति ताहिं हरि दीन्ह॥७७॥

तब वस्त्राभूषणों से युक्त दिव्य-शरीर धरकर राजा नृग ने भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की और भगवान ने द्रवित होकर उन्हें अपनी उत्तम मङ्गलदायिनी भक्ति प्रदान की।

चौ.- **हरि दय गहि नृग भए असोका। चढ़ि बिमान गवने सुरलोका॥**
भूसुर परम महिम जदुराई। निज तनयन्हँ सन बहुबिधि गाई॥

श्रीहरि की दया पाकर शोकमुक्त हुए राजा नृग विमान पर आरुढ़ हो स्वर्गलोक को चले गए। तब भगवान ने अपने पुत्रों के सन्मुख ब्राह्मणों की महान महिमा का बहुत प्रकार से बखान किया।

तदुप सबन्हँ हरि किए सँघाता। फिरे नगर अति पुलकित गाता॥
नृप बल द्रवित भए एक बारा। ब्रजबासिन्ह कहँ हेरि अपारा॥

तदुपरान्त अपने समस्त पुत्रों को साथ लेकर वे श्रीकृष्ण अत्यन्त पुलकित हो नगर को लौट आए। हे राजन! एक बार ब्रजवासियों का स्मरण करके बलरामजी अत्यन्त भावुक हो उठे।

बहुरि अनुज कइ सहमति पाई। चले ब्रजहुँ अति रस उमगाई॥
जात होत तें जोइ जोइ देसा। तहँ तहँ लहँत आदरु बिसेषा॥

फिर अनुज कन्हैया की सहमति पाकर वे अत्यधिक प्रेम में उमड़कर व्रज के लिये चले। मार्ग में वे जिस-जिस देश से भी होकर निकलते थे, वहाँ-वहाँ उन्हें विशेष सम्मान प्राप्त होता था।

गै उजैनि गुर दरसनु पाए। एहिबिधि कछु दिनु महुँ ब्रज आए॥
जातहिं बल अवलोकेहुँ ताहाँ। हरि बिरहोदधि उमग अगाहा॥

उज्जयिनी जाकर उन्होंने अपने गुरु सान्दीपनी के दर्शन किये। इस प्रकार कुछ-ही दिनों में वे व्रज आ पहुँचे। बलरामजी ने जाते ही देखा कि वहाँ (सब ओर) श्रीकृष्णवियोगरूपी समुद्र उमड़ रहा था।

अधर प्रान धरि मुद अकुलाई। समउँ ढेर तर जात दबाई॥
ब्रजहुँ हृदय कइ पीर गभीरा। बहत थाकि छबि तासु अधीरा॥

वहाँ का (नित्य व्याप्त रहनेवाला) आनन्द अधरों पर अपने प्राण लिये व्याकुल हुआ-सा समय के ढेर में दबा जा रहा था। व्रज की अधीर सुन्दरता उसके हृदय की दारुण पीड़ा का भार उठाते-उठाते सुन्दरता थक चुकी थी।

सुनि ब्रज दुखहि करुन अटहासा। सहमे महिधर परम निरासा॥
भूमिकंप आगिल उर जानी। मृगहि चपलता जनु झुलसानी॥

व्रज की वेदना के उस करुण अट्टहास को सुनकर बलरामजी घोर निराशा के मारे सहम उठे; मानों भूकम्प के आगमन का पूर्वाभाष पाकर मृगों की चञ्चलता झुलस गई हो।

हृदय करहिं उन्ह बारहि बारा। ब्रजहुँ लाइ उर करौं सँभारा॥
आगिल परत डरहि पर पाँऊ। जरत उर न कछु सूझ उपाऊ॥

उनका मन बार-बार कर रहा था कि वे व्रज को छाती से लगा ले और उसे धैर्य बँधायें। किन्तु उनके पैर आगे बढ़नें से डरते थे और दुःख से जलते हुए उनके हृदय को कोई उपाय भी नहीं सूझ रहा था।

धरे मौन अंबक भरि बारी। टूटत हिय धरकनन्हि निहारी॥
रथ असहाय सरिस अति पीरा। काँपि रहेहुँ अति भट रनुधीरा॥

नेत्रों में जल भरकर, मौन धारण किये, अपने हृदय के स्पन्दनों को टूटता हुआ अनुभव करते हुए वे रणधीर महायोद्धा बलरामजी अपने रथ में किसी असहाय (जीव) की भाँति सघन पीड़ा से काँप रहे थे।

एतनहुँ स्यंदन लखि कछु ग्वाला। समुझे अए दाउ नँदलाला॥
प्रेम उमगि तब धरि नव आसा। धाइ परे रथ दिसि उल्लासा॥

इतनें में ही उनके रथ को देखकर कुछ ग्वालसखा समझ गये कि इसमें दाऊ और कन्हैया आए है। तब वे नवीन आशा लिये प्रेम में उमगकर उत्साहपूर्वक उनके रथ की ओर दौड़ पड़े।

निकट आइ बल कहँ लखि ठारे। बालसखा अति भए सुखारे॥
रथ तें उतरि धीर तब त्यागे। लगे हृदय उन्ह अति अनुरागे॥

रथ के निकट जाते-ही उसमें दाऊ को खड़ा देखकर उनके वे बालसखा अत्यन्त सुखी हुए। तभी अधीर होकर दाऊ रथ से उतर पड़े और बड़े प्रेम से उनके हृदय से जा लगे।

तेहीं समउ ग्वाल कोउँ धाई। नंदभवन उन्ह खबरि जनाई॥
सुनतहि नंद परम अनुरागे। जसुमति कहँ करि आपन आगे॥

उसी समय किसी ग्वाले ने दौड़कर नन्दभवन में जाकर उनके आगमन का समाचार कह दिया; जिसे सुनते-ही नन्दरायजी महान प्रेम में डूब गए और यशोदाजी को अपने आगे करके

अति आतुर धाए सोउ आसा। जेहिं दिसि आवत ब्रजदुख नासा॥

बड़ी उतावली से उसी दिशा में दौड़े, जिस ओर से व्रज के दुःखहर्ता बलरामजी आ रहे थे।

दोहा- **दीरघ अवधि बिगत सुखहिं आवत लखि निज गेह।**
तन तें लगि आतम तक मुद भरि भए बिदेह॥७८॥

दीर्घ अवधि के उपरान्त सुख को अपने घर की ओर आता देखकर नन्दजी व यशोदाजी शरीर से लेकर आत्मा तक आनन्द से भरकर विदेह हो गए।

चौ.- जथा कंजबन नव दिनु पाए। बिगसहि निसि सिथिलता बिहाए॥
जथा मरिचि पुरवन लखि आपू। अतिसय हरषहि तजि संतापू॥

जैसे कमलवन नवीन प्रभात पाकर रात्रि की शिथिलता त्यागकर विकसित हो जाता है, जैसे कामनाएँ अपने-आप को पूर्णता प्राप्त करते हुए देखकर सन्ताप का त्याग करके अत्यधिक हर्षित हो उठती हैं;

उषा साँझ लखि जेहिं बिधि गाई। बच्छ हेतु लग रस हमराई॥
तेहिं भाँति जसुमति ब्रजराई। हरषे सुत कहुँ नयन जुड़ाई॥

जैसे प्रभात और संध्या का समय होते देखकर गायें अपने बछड़ों के लिये प्रेम से रम्भानें लगती है; ठीक उसी प्रकार नन्दरायजी व मैय्या यशोदा अपने पुत्र को अपने नेत्रों से देखकर हर्षित हो उठे।

पितृबछल प्रगाढ़ धरि धीरा। पितु पद परे मधुर उर पीरा॥
सुत कहुँ नंद उठावन चाहा। पर तें उठहि न भाव प्रबाहा॥

पितृवत्सल दाऊ सघन धैर्य के साथ बाबा नन्द के चरणों पर गिर पड़े, उनके हृदय में विरह की मधुर पीड़ा थी। नन्दजी ने अपने पुत्र को उठाना चाहा, किन्तु भावना के प्रबल आवेग में वे उठते नहीं थे।

फफकि परी उन्ह पितु बछलाई। सुतबछलता निरखि उमगाई॥
छत्र सरिस निज सींव पसारी। उन्ह सिरु कीन्ह छायड़ो भारी॥

उनकी पितृवत्सलता फफक पड़ी, यह देखकर नन्दजी का वात्सल्य भी उमड़ पड़ा और उसने अपनी सीमा (हाथ) को विस्तृत करके छत्र के समान उनके सिर पर सघन छाया कर दी।

जननि पदाम्बुज निरखि बहोरी। पुलकि लीन्ह उन्ह आश्रय दौरी॥
ममता हृदय पुलक धरि गाता। पुनि पुनि सुत मुख चुम्बति माता॥

फिर मैय्या के चरणकमलों को देखते-ही पुलकित हो उन्होंने दौड़कर उनका आश्रय ले लिया। तब अपने हृदय में ममत्व और शरीर में पुलकन का अनुभव लिये मैय्या बार-बार पुत्र का मुख चूमनें लगी।

एतनहुँ अखिल गुवाल समाजा। हरषि तहँहि आयउँ नरराजा॥
तेहिं समय उन्ह प्रीति बिचारी। प्रेमबिकल भै सब नर नारी॥

हे परीक्षित्! इतनें में ही सम्पूर्ण ग्वाल समुदाय हर्षित होकर वही पर आ पहुँचा। उस समय उन माता-पिता व पुत्र की परस्पर प्रीति का विचार करके समस्त नर-नारी प्रेम की अधिकता से व्याकुल हो गए।

दोहा- पुनि सप्रेम उन्ह तें बल मिले पूछि कुसलात।
चरित बालपनु हेरि सब सूव पराग जलजात॥७९॥

फिर बलदाऊ उन सबसे मिले और उनकी कुशलक्षेम पूछी। (उस समय) उनके बाल्यकाल की लीलाओं का स्मरण करके वे सब अपने नेत्ररूपी कमलों से अश्रुरूपी पराग बहानें लगे।

चौ.- तदुप धीर धरि जसुमति माता। पूछन लागि कान्हँ कुसलाता॥
मम दधिचोर स्याम कस आहीं। बिसरि मातु जेहिं बिभव अगाहीं॥

तदुपरान्त धीरज धरकर यशोदाजी दाऊ से कन्हैया की कुशल पूछनें लगी। (उन्होंने पूछा- मेरा वह माखनचोर घनश्याम कैसा है; जो मथुरा के महान वैभव में पड़कर अपनी मैय्या को भूल गया।

भूतमात्र जेहिं प्रान समाना। कबहुँक करत मात पितु ध्याना॥
कबहुँ जरठ यह नयन हमारे। होइहहि ताहि बिलोकि सुखारे॥

प्राणी-मात्र जिसे अपने प्राणों के समान प्रिय है, वह कन्हैया क्या कभी अपने मैय्या-बाबा को याद करता है? हमारे ये बूढ़े नेत्र उसके दर्शनों से पुनः कब सुखी होंगे?

सुनि बलदाउ बचन उन्ह केरे। धीर बधान सघन हरि हेरे॥
तदुप परम मुद हृदय जुड़ाए। तात मातु उन्ह कहँ गृह ल्याए॥

उनके वचन सुनकर बलदाऊ ने कन्हैया का स्मरण करते हुए उन्हें अत्यंत धैर्य बँधाया। तदुपरान्त अत्यन्त आनन्द से अपने हृदय से लगाकर मैय्या बाबा उन्हें घर ले आए।

मातु ताहि असनान करावा। नवल बिभूषन बसन धरावा॥
अंगराग पुनि गात लगाई। हरषि पलंग पर दीन्ह बैठाई॥

मैय्या ने दाऊ को अपने हाथों से स्नान कराकर नवीन वस्त्राभूषण धारण करवाए। फिर उनके अङ्गों में चन्दनादि अङ्गराग लगाकर हर्षित हो उन्हें पलङ्ग पर बैठा दिया।

बहुरि आपु गइ तुरत रसोई। राँधे छप्पन प्रेम समोई॥
सुतहुँ जिवाँन करत पव सारी। को कहि सक सो सुख महतारी॥

फिर शीघ्र वे स्वयं रसोई में गईं और उन्होंने बड़े प्रेम से छप्पन प्रकार के पकवान बनाए। फिर अपने आँचल से पवन करते हुए उन्होंने अपने पुत्र को भोजन कराया। उस समय उन मैया को जो सुख प्राप्त हुआ उसका वर्णन भला कौन कर सकता है।

तदुप राध सन गै बलरामा। कही कुसल उन्ह तिन्ह सुखधामा॥
स्यामाग्रज पुनि तिहि कुसलाई। पूछि मौनहीं राध सुनाई॥

तदुपरान्त दाऊ राधाजी के पास गए और उन्हें उनके सुखधाम की कुशल सुनाई। फिर उन श्यामाग्रज ने उनसे उनकी कुशल पूछी; तब राधाजी ने अपने मौन से ही सबकुछ सुना दिया।

नृप बैसाख चैत जुग मासा। एहिबिधि बल ब्रज कीन्ह निवासा॥
अवधि मध्य हरि सुचरित नाना। सेष सबन्हँ सन कीन्ह बखाना॥

हे राजन! इस प्रकार बलरामजी ने चैत्र व वैशाख, इन दो महिनों तक व्रज की भूमि पर निवास किया। उस अवधि में उन शेषजी ने उन सबके सन्मुख भगवान के बहुत से सुन्दर चरित्रों का वर्णन किया।

छन्द- ब्रज बसत अहिपति द्वारिकापति चरित नाना उन्ह कहे।
जाते समउ कछु लागि ब्रज कर बिषम दुख मेटत रहे॥
उन्ह चरित कहँ जे मनुज जग हित हेतु निज कृत धारही।
सो हरि पदाम्बुज बिमल भगतिहुँ पाइ घन भव पारहीं॥

व्रज में निवास करते हुए उन शेषजी ने ब्रजवासियों के सम्मुख द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण के अनेक चरित्रों का वर्णन किया; जिससे कुछ समय के लिये ही, किन्तु व्रज का विरहप्रसूत भीषण दुःख जाता रहा। उन भगवान के चरित्रों को जो मनुष्य संसार के हित के लिये अपने कर्मों में धारण करता है, वह उन श्रीहरि के चरणकमलों की निर्मल भक्ति प्राप्त करके भवरूपी अथाह सागर से पार उतर जाता है।

दोहा- जगहित भोगहुँ जोग धरे हरि नित हरि परपीर।
उर उन्ह सुमति सुभाउ बरि कर उन्ह काज सधीर॥८०॥ (क)

संसार के कल्याण के निमित्त भोग में योग धारण करके भगवान ने सदैव ही दूसरों के दुःखों का हरण किया है। (सबका) हृदय उनकी सद्बुद्धि और सद्भावनाओं का वरण करके धैर्यपूर्वक उनके कार्य करता रहे।

कलिमल हरनि बिरति करनि स्याम कथा सुखमूल।
कहत सुनत नर सहज निज बिनसि लेत भवसूल॥८०॥ (ख)

कलिप्रसूत विकारों को हरनेंवाली और वैराग्यदायिनी श्रीकृष्णकथा सुख की मूल है। इसे जो भी मनुष्य कहते और सुनते हैं, वे सहज ही में अपने भवप्रसूत शूल नष्ट कर लेते हैं।

मासपारायण सत्ताईसवाँ बिश्राम

श्री गणेशाय नमः

आनंदसागर

श्रीकृष्णचरितमानस

सप्तम सोपान

दिग्विजयकाण्ड

दोहा- परिछित जे प्रभु भगत हित तत्पर रह दिनु राति।
साधु पुरुष धरि अमल रति उन्हहिं भजहिं बहुभाँति॥

हे परीक्षित्! जो प्रभु अपने भक्तों के लिये दिन-रात तत्पर रहते हैं, सज्जन-पुरुष निर्मल प्रेम धारण करके, अनेक प्रकार से उन्हीं का भजन किया करते हैं।

उग्रहिं नृप करि जाहिं बिधि राजसूय हरि कीन्ह।
सुनु नृप चरित सो पावन प्रभु जस जसु उन्ह दीन्ह॥

हे परीक्षित्! उग्रसेनजी को राजा बनाकर श्रीकृष्ण ने उनसे जिस प्रकार राजसूययज्ञ करवाया और उन प्रभु ने जिस प्रकार उन्हें यश दिलाया था, अब आप उस पवित्र कथा को सुनिये।

चौ.- सतजुग रबिकुल भा एक राजा। मरुत धरमरत हितू समाजा॥
तेहिं करि सबिधि बिस्वजित जागा। हरिहि पाइ सनमुख अस माँगा॥

सतयुग में सूर्यकुल में मरुत नाम के एक धर्मात्मा एवं प्रजाहितू राजा हुए। उन्होंने विधिपूर्वक विश्वजित्-यज्ञ किया और भगवान श्रीहरि को अपने सन्मुख पाकर उनसे यह वर माँगा कि,

प्रभु निज पुर तें लघु महिखंडा। आनि करहु मम राज अखंडा॥
बहुरि आपु नर तनु धरि नाथा। रच्छत बसहुँ सदा मम साथा॥

हे प्रभु! आप अपने लोक से भूमि का एक छोटा टुकड़ा लाकर उस पर मेरा अखण्ड राज्य स्थापित करके, स्वयं भी मनुष्यरूप धरकर मेरी रक्षा करते हुए मेरे साथ निवास कीजिये।

एवमस्तु अस कहि भगवाना। भै अंतरहित नृप सुख माना॥
मरुत सो उग्रसेन तनु पाई। प्रभु रच्छित नृप भै नरराई॥

एवमस्तु इस प्रकार कहकर श्रीहरि अंतर्ध्यान हो गये, तब उन राजा ने सुख माना। हे परीक्षित्! वहीं मरुत भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा रक्षित उग्रसेन का शरीर लेकर राजा हुए।

उधउँ संग अकसर भगवंता। गवने उन्ह पहि पाइ एकान्ता॥
बहुरि नाइ सिरु परहित पागे। हरि राउर सन अस कहि लागे॥

एक बार श्रीकृष्ण उद्धव के साथ, एकान्त में राजा उग्रसेन के पास गये। फिर सिर नवाकर परोपकार की भावना से भावित हुए, वे भगवान राजा के सन्मुख इस प्रकार कहने लगे-

नाथ देव अरु तोर प्रतापा। कत न द्वारिकहुँ दारिद तापा॥
मिटेहुँ जरासुत कंस अतंका। नर समाज अब भए निसंका॥

हे स्वामी! विधाता और आपके प्रताप से हमारी द्वारिका में कहीं पर भी दरिद्रता का ताप नहीं है। जरासंध और कंस का आतङ्क भी अब नहीं रहा। मनुष्य समाज अब निर्भय होकर

उन्नति पथु संतत सबिभागा। बढ़इ परसपर अति अनुरागा॥
पुनि हम आपन जीवन माहीं। निज निज रुचि कम भोगिसि नाहीं॥

चारों वर्णों सहित परस्पर अत्यन्त प्रेमपूर्वक, उन्नति के पंथ पर निरन्तर बढ़ रहा है। फिर हमनें भी अपने जीवन में अपनी-अपनी रुचियों (सुखों) को कम नहीं भोगा है।

तातें हमहि उचित नरराई। मनुज धरम कर होहिं सहाई॥
मनुज धरम जगपति के आहीं। बिस्तृत कहहुँ मोहि समुझाई॥

इसलिये हे नरेश! हमें यह आवश्यक है कि अब हम मानवता के धर्म के सहायक होवें। (तब महाराज ने पूछा-) हे जगत्पति! मनुष्य-धर्म क्या है, आप मुझे विस्तारपूर्वक समझाकर कहिये।

साझा थापि करमु अरु भागा। बिसरि कृपनपनु कुतरकु रागा॥
निज सँग जग हित हेतु बनाई। होहु करम रत एहि मनुजाई॥

(तब श्रीहरि ने कहा-) कर्म व भाग्य में सामञ्जस्य करके, कंजूसी, कुतर्क और आसक्ति त्यागकर अपने साथ संसार के हित को अपना लक्ष्य बनाकर कर्म में प्रवृत्त होना, यही मानवता है।

दोहा- **इहइ सार सब धरम कर पर हित करिअ जुझाइ।**
सान्ति मुकुति भगतिहुँ इहइ बर त्रिबेनि जदुराइ॥१॥

संसार के समस्त धर्मों का सार भी यही है कि दूसरों के हित के लिये सङ्घर्ष किया जाय। हे यदुराज! शान्ति, मुक्ति और भक्ति की यही उत्तम त्रिवेणी है।

चौ.- **जिअहि मरहि जे परहित लाई। ईस सजग रह तासु सहाई॥**
भाग रहइ नित ताकर दासा। ग्रह गति तक तिहि भृकुटि बिलासा॥

जो मनुष्य परहित को ध्यान में रखकर जीते, मरते हैं, उनकी सहायता के लिये स्वयं ईश्वर तत्पर रहता है। भाग्य सदा उसका दास रहता है और ग्रहों की गति उसकी भृकुटी ताकती रहती है।

पुनि परहित हिय राखहि जोई। उन्ह प्रभाउ अस काहे न होई॥
दुबिधा मम हिय एक रमेसा। जस बावइ नर काटइ तैसा॥

फिर जो मनुष्य मन में परहित का भाव रखता है, उनका प्रभाव ऐसा होगा भी क्यों नहीं? (राजा ने पूछा) हे रमापति! मेरे मन में एक यह दुविधा है कि मनुष्य जो बोता है, वही काटता है।

निज निज करम केर अनुहारा। सुख दुख लहहि जीव संसारा॥
श्रुति पुरान अरु बुधन्हँ बखाना। इहइ जे बिधि कर अटल बिधाना॥

इस संसार में सब प्राणी अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख व दुःख प्राप्त करते हैं। यदि वेदों व पुराणों के द्वारा कहा गया, विधाता का यही अटल विधान है,

तो हमार अस काज सुजाना। की न होइ बिधि पथु ब्यवधाना॥
अस सुनि भै गभीर जगदीसा। पुनि कह बूझि सयन अवनीसा॥

तो हे सुजान! हमारा यह कार्य, क्या विधाता के मार्ग की बाधा नहीं होगा? ऐसा सुनकर भगवान श्रीकृष्ण गम्भीर हो गए और उन पृथ्वीपति के सङ्केत को समझकर कहने लगे कि,

अस मत निपट तेन्ह सक होई। स्वारथि लोभि कृपनु अति जोई॥
जोइ कृपनहिं निपट धनु भावहि। सोइ मूढ़ अस बात बनावहि॥

हे राजन! ऐसा मत तो केवल उन्हीं का हो सकता है, जो लोग स्वार्थी, लोभी व अत्यधिक कंजूस होते हैं। जिस कंजूस को केवल धन ही प्रिय लगता है, वही मूढ़ ऐसी बातें बनाता है।

जदपि तें देवालय निरमानहिं। करइ जाग सुन कथा पुरानहि॥
धरमसभा करि चरचहि ग्याना। मृषा माय सब जगत महाना॥

यद्यपि वे लोग देवमंदिरों का निर्माण करवाते हैं, यज्ञ करते हैं, पुराणों की कथाएँ सुनते हैं और धर्मसभाएँ बुलाकर ज्ञानचर्चा किया करते हैं कि यह सम्पूर्ण जगत एक झूठी माया मात्र है।

पर कोउ सुजन तासु पहि जाई। जब दरिद्र हित माँग सहाई॥
तब तें कृपन निज अंचलु झारी। निजहि दीन कहि लग अति भारी॥

किन्तु कोई सत्पुरुष उनके पास जाकर जब उनसे दीन-दुखियों के लिये सहायता माँगता है, तब वे कंजूस लोग अपना पल्ला झाड़कर स्वयं को ही अत्यधिक दरिद्र कहने लगता है।

अस नर प्रजनन उदर भराई। आपन जीवन लच्छ बनाई॥
सुक सम सुमिरत प्रभु कर नाऊँ। पसु सम उअहि मरहि नित राऊ॥

हे राजन! ऐसे मनुष्य प्रजनन व पेट-भराई को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर तोते के समान भगवान का नाम रटते हुए, नित्य ही पशुओं के समान पैदा होते व मरते रहते हैं।

करहि जाग जप कर बहु काजा। परहित उन्ह अति आवहि लाजा॥

ऐसे मनुष्य जप व यज्ञ के बहुत-से कार्य करते रहते हैं, किन्तु परोपकार करने में उन्हें अत्यधिक लज्जा का अनुभव होता है।

दोहा- **कहु नृप ऐसेन्हँ धरम कृत आडम्बर न त काह।**
सो अस कुतरक परिहरत चढ़िअ परभलेहुँ राह॥२॥

हे राजन! कहिये, ऐसे मनुष्यों के द्वारा किये गये धर्म-कृत्य आडम्बर नहीं तो और क्या है? इसलिये इन कुतर्कों का त्याग करके, आप परोपकार के मार्ग का आरोहण कीजिये।

चौ.- **श्रुति कह नृपति ईस परिछाई। सो तेहिं अस चाहिअ नरराई॥**
ते निज देस सहित चित लाई। पर देसन्हँ कइ करइ सहाई॥

श्रुतियाँ कहती है- राजा ईश्वर का प्रतिबिम्ब होता है, इसलिये हे राजन! उसे यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने देश के साथ-साथ चित्त लगाकर दूसरे देशों की भी सहायता करे।

एहि तें महि कर सकल बिभागा। बढ़िहहिं मितइ सान्ति अनुरागा॥
इहइ सो राजनीति सुखखाना। जिन्हँ प्रसंसि सब धरम महाना॥

ऐसा करने पर पृथ्वी पर समस्त दिशाओं में शान्ति, मित्रता व प्रेम बढ़ेगा। यही सुख की खान वह राजनीति है, जिसकी समस्त महान धर्मों ने प्रशंसा की है।

नरहितु पर कि अपर महिराई। एहि कृत करिहि हमार सहाई॥
मिलइ कि नाहिं सहाय अपरही। यह उन्ह दृष्टिकोन निर्भरही॥

हे मनुष्य मात्र के हितैषी प्रभु! क्या दूसरे राजा भी इस कार्य में हमारी सहायता करेंगे? दूसरों की सहायता मिलेगी कि नहीं, यह तो उनके अपने दृष्टिकोण पर निर्भर करेगा।

हम नर नर कर एकौं धरमा। फलहुँ चिंत तजि रह रत करमा॥
जे बिरंचि अपि कह मोहि आई। तोर भाग यह काज न भाई॥

हम मनुष्य हैं और मनुष्य का एक ही धर्म होता है कि वह फल की चिन्ता त्यागकर कर्मरत रहे। यदि स्वयं ब्रह्माजी भी आकर मुझसे कहें कि हे भाई! यह कार्य तुम्हारे भाग्य में नहीं है और

लिखहि देव जे मनु लिलारा। मैं जानउँ तें जाइ न टारा॥

मैं जानता हूँ, विधाता मनुष्य के ललाट पर जो लिख देते हैं, उसे टाला नहीं जा सकता,

दोहा- तदपि मानि दुख करम तजि बैठु न मैं महिराइ।
अपितु कुभाग तें जूझउँ दून उमंग बढ़ाइ॥३॥

तब भी इस बात का दुःख मानकर हे राजन! मैं कर्म को त्यागकर बैठूँगा नहीं, अपितु इस दुर्भाग्य के विरुद्ध दुगुने उत्साह से सङ्घर्ष करूँगा और

चौ.- मम साहस कहँ एक अधारा। जतनिहार कइ होति न हारा॥
भलेहि सुफलता हेतु धरनि पर। मोहि जनम पर जनम लेन पर॥

मेरे इस साहसयुक्त कार्य को इस एक बात का बल है कि प्रयत्न करनेवालों की पराजय नहीं होती। चाहे सफलता पानें के लिये, मुझे इस भूमि पर जन्म पर जन्म ही क्यों न लेना पड़े?

पर मैं पाछ न पाँउ फिराऊँ। सुनि अस धन्य धन्य कह राऊ॥
परहित अस महान पनु जाकें। पुनि जुझारुपन अस हिय ताकें॥

किन्तु तब भी मैं पैर पीछे न हटाऊँगा। यह सुन उग्रसेन ने कहा- धन्य है, धन्य है। परहितसम्बन्धी जिसका ऐसा महान प्रण हो और उसी के हृदय में ऐसी सङ्घर्षशीलता भी हो तो,

अस नर कवन कुभाग पहारा। तें न पाइ सक जाकर पारा॥
प्रति नर कइ जे असि मति होई। तो न असुफल जगत रह कोई॥

ऐसे मनुष्य के लिये दुर्भाग्य का ऐसा कौन-सा पहाड़ है, जिसका वह पार नहीं पा सकता। यदि प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि ऐसी हो जाय, तो इस संसार में कोई असफल नहीं रहेगा।

करिअ भाँति केहि कृत यह भारी। कहहुँ मोहि मानउ हितकारी॥
तात गुपुतचर सरिस दुराई। देस देस मैं देखब जाई॥

हे भगवन्! आप मुझे बताईये कि इस दुष्कर कार्य को कैसे किया जाय? तब भगवान ने कहा- हे तात! मैं गुप्तचर के समान छिपकर देश-देश की यात्रा करते हुए देखूँगा कि,

तहँ नर जाति दसा के आहीं। कवन दोष ब्यापे तिन्ह माहीं॥

वहाँ मनुष्य-समाज की क्या दशा है और उसमें क्या-क्या दोष व्याप्त हो चुके हैं।

दोहा- पुनि फिरि मैं उन्ह दोषन्हँ समन भाँति जेहिं होइ।

जोरि बिभव तव बुद्धि निज करिहउँ सुजतन सोइ॥४॥

फिर लौटकर मैं, उन दोषों का जिस भी प्रकार निराकरण हो सकेगा, आपके ऐश्वर्य और अपनी बुद्धि के बल से, वैसा ही उत्तम प्रयत्न करूँगा।

चौ.- एहिबिच पूछ जे राज समाजू। कहेहु गए बाहेर कछु काजू॥
अस कहि ऊधौ सहित रमेसा। प्राकृत मनुज लीन्ह बर बेषा॥

इसी बीच यदि राजसमाज मेरे विषय में पूछे, तो कहियेगा कि मैं किसी कार्यवश (द्वारिका से) बाहर गया हूँ। इतना कहकर श्रीहरि ने, उद्धजी के साथ, साधारण मनुष्य का सुवेष बना लिया।

चले तुरत नृप पद सिरु नाई। बहुरि कलिंग देस गै आई॥
तहाँ नृपति उन्ह देखेहुं काहा। नारि जाति दुख सहहि अगाहा॥

फिर महाराज उग्रसेन के चरणों में सिर नवाकर वे तुरन्त ही वहाँ से चले और कलिङ्ग देश में आ पहुँचे। हे परीक्षित्! वहाँ उन्होंने क्या देखा कि स्त्री-जाति बड़े भारी दुःख सह रही है।

परंपरागत ताड़न नाना। तेहिं पीरित करि रहे महाना॥
निपट भोग साधन तिन्ह जानी। पुरुष दाबि आपन मनमानी॥

परम्पराओं के रूप में चले आ रहे उत्पीड़न, उसे महान पीड़ा पहुँचा रहे हैं। उसे नितान्त भोग का साधन समझकर पुरुष ने उसे अपनी मनमानी के भार तले दबा दिया है।

तिय कहँ मनुज समाजउ माहीं। नर समान आदरु कत नाहीं॥
जे नर सुखहि सुदृढ़ आधारा। तेइहि नर सम जनि अधिकारा॥

मानव-समाज में स्त्री को कहीं पर भी पुरुष के समान अधिकार नहीं प्राप्त है। जो पुरुष के सुख का सुदृढ़ आधार है, उसी नारी को पुरुष के समान अधिकार नहीं प्राप्त है।

आपन कठिन काम रुचि भारा। नर नारिहि सिरु धरेहुँ अपारा॥
तिन्ह संतति कुलोभ कठिनाई। रही तियहिं आरोग्यहिं खाई॥

पुरुष ने अपनी अपार काम-रुचि का कठोर भार स्त्री के सिर पर लाद रखा है। उसकी संतानप्राप्ति के दुर्लोभ की कठिनता, स्त्री के आरोग्य को खा रही है।

बिधुर सतिय त ब्याह कर नाना। पै बिधवन्हँ बिआह अघ माना॥

विधुर व सपत्नीक अनेक विवाह करते हैं, किन्तु विधवाओं के विवाह को पाप माना जाता है।

दोहा- परुद प्रथा अति दारुन रहि तिय जीवनु खाइ।
खल समाज सुख हित तदपि तेहिं निज पीर दुराइ॥५॥

पर्दे की अत्यधिक दारुण प्रथा, नारी के जीवन को खा रही है। किन्तु फिर भी दुष्ट समाज के सुख के लिये उसनें अपनी इस पीड़ा को छिपा रखा है।

चौ.- कवनेहुँ बिषय पुरुष समुहाहीं। तें बिचार निज धरि सक नाहीं॥
परम धरम नर तिन्ह एक सारा। चारि भीति संसार तुम्हारा॥

किसी भी विषय पर वह पुरुष के सन्मुख अपने विचार नहीं रख सकती, क्योंकि पुरुष ने उसका एक ही परम धर्म निश्चित कर रखा है कि ये चार दीवारी ही तुम्हारा संसार है।

तासु प्रसंस निपट छबि लागी। तिन्ह गुन प्रति सब पुरुष बिरागी॥
कामि प्रतारित निरीह नारी। चारिहुँ दिसि निदिंत दुखि भारी॥

उसकी प्रशंसा केवल सुन्दरता के कारण होती है, उसके गुणों के प्रति सब पुरुष उदासीन रहते हैं। जो स्त्री कामियों के द्वारा सताई जाती है, वह चारों ओर निन्दित व अत्यधिक दुःखी है।

अलप बयस कत पितु अतुराई। रहे बोझ गनि तेहिं परनाई॥
जातें तनु अरु मन तिन्ह काचा। जरत जात नाना रुज आँचा॥

तो कहीं अल्पावस्था में ही शीघ्रता करके, पिता उन्हें बोझ समझकर उनका विवाह कर रहे हैं। जिससे उनका कच्चा शरीर व मन, अनेक प्रकार के रोगों की आँच में जला जाता है।

अलपु बयस कत गरभु धराई। रही मीचु कहँ कंठ लगाई॥
तियहि असिच्छा अरु अग्याना। दइ रहि कत यह रूढ़ि महाना॥

तो कहीं पर अल्पावस्था में ही गर्भ-धारण करके, वह मृत्यु को गले से लगा रही है। तो कहीं पर यही महान रूढ़ियाँ, नारी को अशिक्षा व अज्ञानता प्राप्त करा रही है।

बुधि बिभूति प्रतिभा जे ताहीं। तिन्ह यह जड़ता रहि कस खाहीं॥
कठिन बृष्टि जस ढिसुर कपासहि। मृदा माँझ बिनु उए बिनासहि॥

उसके पास बुद्धिरूपी जो विभूति व प्रतिभा है, उसे यह जड़तापूर्ण कार्य कैसे खा रहा है; जैसे कठोर वर्षा, कपास के अङ्कुरित बीज को उगनें के पूर्व, मिट्टी में ही नष्ट कर देती है।

तात सुता कहँ परधन मानी। सिच्छा तें सबबिधि बिलगानी॥
सुत सन तिहि गनिति न केहि भाँती। बज्र समुख जस काँच कुजाती॥

पिता ने पुत्री को पराया धन मानकर, शिक्षा से सब प्रकार वञ्चित कर दिया है। पुत्र के सन्मुख, उसकी गणना कैसे नहीं होती; जैसे हीरे के सन्मुख काँच को तुच्छ समझा जाता है।

एहि तें कठिन अपोषनु पाई। नारि जाति अवनति उमगाई॥
सुत न एक मम तनुजा नाना। मूढ़ रुदनु अस तहाँ महाना॥

इसी कारण कठिन अपोषण पाकर स्त्री जाति की अवनति उमड़ पड़ी है। मेरी पुत्रियाँ तो बहुत है, किन्तु पुत्र एक भी नहीं, यही मूढ़तापूर्ण रुदन उस नगर में व्याप्त था।

एक पितहि नृप सुता अनेका। पै तें चह कुलदीपक एका॥
गरभु धरा तिय जब अस जाना। अति आनंदु हृदयँ तेहिं माना॥

हे परीक्षित्! (वही पर) एक पिता की अनेक पुत्रियाँ थी, किन्तु वह अपने घर में एक कुलदीपकरूपी पुत्र पाना चाहता था। फिर जब उसे ज्ञात हुआ कि उसकी स्त्री ने गर्भधारण कर लिया है, तब उसनें अपने हृदय में महान आनन्द माना।

हरि अबाधगति उधउँ समेता। निरखि रहे थिति तासु निकेता॥

अबाधगति भगवान उद्धवजी के साथ, उस घर में छिपकर समस्त स्थिति को देख रहे थे।

दोहा- आगिल दिनु संकित सो नर निज पतिनिहिं कहि लाग।
एहि बेर पुनि होइ नहिं तनुजा मोर कुभाग॥६॥

अगले ही दिन आशङ्कित हुआ वह पुरुष अपनी पत्नि से कहने लगा कि कहीं इस बार भी पुत्री ही मेरा दुर्भाग्य न हो जाय।

चौ.- तैं जोतिषि पहि चलु सँग मोरे। कहिहि सोइ के होइहिं तोरे॥
तदुप जोतिषिहुँ पूछेहुँ जाई। तेहिं भाग पुनि सुता बताई॥

इसलिये तुम मेरे साथ ज्योतिषी के पास चलो, वे ही बताऐंगे कि तुम्हें क्या उत्पन्न होगा? तदुपरान्त उसनें जाकर ज्योतिषी से पूछा, तो उसनें उसके भाग्य में पुनः पुत्री का होना बताया।

बैद समुख गै उभय ससंका। तेहिं अपि प्रगटि सुता असंका॥
दुरुपजोग करि तेहिं निज ग्याना। गरभु सुता अह ज्योंहि बखाना॥

तब वे सशङ्कित होकर वैद्य के पास गए, तो उसनें भी पुत्री की ही आशङ्का व्यक्त की। उसनें अपने ज्ञान का दुरूपयोग करके, जैसे ही बताया कि इसके गर्भ में कन्या है,

त्योंहि तें सिरु धुनि लाग अभागा। कोसत भयउँ मूढ़ निज भागा॥
पुनि धरि गिरा अकथ निठुराई। दीन्हि गरभु कहँ मीचु सुनाई॥

वैसे ही वह अभागा अपना सिर धुनने लगा और अपने भाग्य को कोसनें लगा। फिर उसनें अपनी वाणी में अकथनीय निष्ठुरता धरकर अपनी स्त्री के उस गर्भ को मृत्यदण्ड सुना दिया।

बैद छुद्र धन लालचु पाई। भ्रून दलन लग जुगुति जुड़ाई॥
हरि तब घृनउँ भरे हिय माहीं। कहि लग अस बहु कोसत ताहीं॥

फिर थोड़े से धन के लोभ में वह वैद्य जब गर्भस्थ कन्याभ्रूण की हत्या की युक्ति करने लगा, तभी श्रीकृष्ण के मन में घृणा भर गई और वे उन्हें अत्यधिक कोसते हुए उनसे कहने लगे-

थोबु थोबु का करि रहे भाई। की एहि बैद नीति श्रुति गाई॥
भली भाँति जिन्हँ चलि रहि स्वासा। द्रब्य लोभ तिन्ह करिअ बिनासा॥

ठहरो, ठहरो, हे भाई! ये तुम क्या कर रहे हो? क्या वेदों ने एक वैद्य के लिये यही नीति कही है कि जिसका श्वास भली प्रकार चल रहा हो, द्रव्य के लोभ में उसे भी नष्ट कर दो?

तरिबे अस अघ तें तव भाई। केतनेहुँ जनम महादुख जाई॥

हे भाई! ऐसे महापाप से मुक्त होने में तुम्हारे कितनें ही जन्म महान दुःख भोगते बीत जाऐंगे।

दोहा- ऊँच नीच मद ईरषा भय लालचु बिसराइ।
जिहि बिधि रुजि जीवन रह बैद करहि सो उपाइ॥७॥ (क)

ऊँच-नीच, अहङ्कार, ईर्ष्या, भय और लोभ का त्याग करके, जिस प्रकार भी रोगी मनुष्य का जीवन बचे, वैद्य को वही उपाय करना चाहिये।

जिवन त्रान करतब्य अस बिधि सौपेंहुँ जग जाहिं।
तेइ अस करिहिं त अवसि अज पछिताइहिं हिय माहिं॥७॥ (ख)

जीवन की रक्षा करने का ऐसा (महान) कर्तव्य, विधाता ने इस संसार में जिसे सौंपा है, यदि वह वैद्य ही ऐसा (कर्म) करेगा, तो वे विधाता अवश्य ही अपने हृदय में पछताऐंगे।

चौ.- सुजन परन्तु कुरुचि यह ताहीं। गरभु सुता यह जिन्हँ कइ आही॥
बैद कुतर्क ओट तैं लाई। लोभ नीच निज सक न दुराई॥

(वैद्य ने कहा-) हे भाई! किन्तु यह गर्भस्थ कन्या जिनकी है, यह कुरुचि तो उन्ही की है। (भगवान ने कहा-) हे वैद्य! इन कुतर्कों की आड़ में तुम अपने निकृष्ट लोभ को छिपा नहीं सकते।

भोगे बिनु न छूट कोउ करमा। सो तैं पालिअ आपन धरमा॥
कहिअ काह इन्ह सम पितु मातहि। उद्यत जे निज संतति घातहि॥

कोई भी कर्म, फल भोगे बिना नहीं छूटता, अतः तुम अपने धर्म का पालन करो। फिर इन जैसे माता-पिता को तो कहा ही क्या जाय, जो अपनी ही सन्तान की हत्या करने के लिये तत्पर है?

डाकिनिहीं बिसरहि गृह साता। पै इन्ह खलपनु कस न कहाता॥
जस सर्पिनि सुभायँ कुटिलाई। जाइ सपोरनु जात जे खाई॥

डाकिनी भी सात घर छोड़ देती है; किन्तु इनकी दुष्टता कैसे नहीं कही जाती; जैसे सर्पिणि के स्वभाव की कुटिलता; जो जन्म देकर अपने ही सपोलों को खा जाती है।

तनक त धरु बिचार उर भाई। उचित कि ममतहि सरि अस काई॥
पालकही जे घालकु होई। होइहि रच्छक भच्छक जोई॥

हे भाई! अपने हृदय में तनिक तो विचार करो कि ममत्वरूपी सरिता में क्या ऐसी काई उचित है? जो यदि पालनेवाला ही मारनेंवाला हो जायेगा, जो यदि रक्षक ही भक्षक बन बैठेगा,

तबहु त भच्छक कइ कठिनाई। बंधु कवनि बिधि कलपि न जाई॥
तेहिं पितु बाग कवन तव ढाई। जे उतारु तैं ताहिं मराई॥

तब तो हे भाई! भक्षक की कठोरता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसनें तुम्हारे पिता का कौन सा बाग उजाड़ दिया, जो तुम उसकी हत्या ही करवा देने पर उतारू हो।

दोहा- जे निरीह अब लौ मुकुल बपु बिकसेहुँ जिन्हँ नाहिं।
एतनहुँ तिहि अस गति भइ त आगेहुँ होइहिं काह॥८॥

अरे! जो निरीह अब तक कलिका मात्र है; जिसका शरीर अभी ठीक से विकसित भी नहीं हो पाया है; इतनें पर ही यदि उसकी यह दशा है, तो आगे चलकर उसका क्या होगा?

चौ.- जरत रहहि निज जीवन काला। नर आपुनहिं अगुन कइ ज्वाला॥
तब नारिहि धरि सुबेषु नाना। दुसह ताप तिन्ह हरहि महाना॥

पुरुष अपने जीवनकाल में अपने ही अवगुणों की ज्वाला में जब जलता रहता है, तब नारी ही अनेक प्रकार के सुन्दर वेष धरकर उसके असहनीय ताप को हर लेती है।

पै जब तियहि न रह जग माहीं। नरउँ दसा तब होइहि काही॥

बिधि जे अमर करहि नर काहू। तदपि न ताकर होइ निबाहू॥

किन्तु जब नारी ही इस संसार में नहीं रहेगी, तब पुरुष की क्या दशा होगी? जो यदि विधाता पुरुष को अमरत्व भी दे दे, तब भी उसका निर्वाह नहीं हो पायेगा।

सुता फरद अरु सुरसरि सरिसा। हितू सबन्हँ सम जिन्हँ रसु बरिसा॥
तनुजन्हि कइ मृदु सुठि मुसुकाना। मुकुति केर आनंदु महाना॥

पुत्री तो फलयुक्त वृक्ष व गङ्गा जैसी होती है, जिसका प्रेम सब पर समरूप बरसता है और जो सबकी हितैषी होती है। पुत्रियों की कोमल व सुकुमार मुस्कान में, मुक्ति का परमानन्द है।

करु त तनक उर तिन्ह अहसासा। अवसि मिटिहि तव तनय पिपासा॥
बिधि बिधान गहि तें जहँ जाई। निज रसु देति सो जघहुँ सिंचाई॥

तनिक मन में उसका अनुभव करके, तो देखो! तुम्हारी पुत्र की इच्छा अवश्य ही मिट जायेगी। दैव की इच्छा से वह जहाँ भी जाती है, अपने प्रेम से उस स्थान को सींच देती है।

अस सुनि मूढ़ सो बहुत खिसाना। पुनि बूझात भै अस भगवाना॥

ऐसा सुनकर वह मूर्ख अत्यधिक लज्जित हुआ, भगवान श्रीकृष्ण उसे पुनः समझानें लगे कि,

दोहा- **श्रुति पुरान इतिहास महुँ तनक त देखहुँ झाँकि।**
तोहि प्रभाउँ तिन्ह सूझिहिं जेहिं सुत सन कमु आँकि॥९॥

श्रुतियों, पुराणों व इतिहास में तनिक झाँककर तो देखो! तुम्हें उसका प्रभाव ज्ञात हो जायेगा, जिसे तुमने पुत्र से कम आँका है।

चौ.- **तनुजा जोति पुंज सो भाई। तम कन एक न जासु तराई॥**
सुत त पितुहि कुल करइ बिकासा। पै सुति जुग कुल करइ प्रकासा॥

हे भाई! पुत्री तो प्रकाश का वह पुञ्ज है, जिसके नीचे अन्धकार का एक भी कण नहीं। पुत्र तो केवल पिता के ही कुल की उन्नति करवाता है, किन्तु पुत्री दो कुलों को प्रकाशित करती है।

तुम सारिखे लोग जग माहीं। आदरु सुतिन्ह करइ जब नाहीं॥
तबहि असिच्छा अरु अपमाना। सुता सहति नित सुत समुहाना॥

इस संसार में तुम जैसे पिता जब पुत्रियों का आदर नहीं करते, तभी तो पुत्र के सन्मुख पुत्री को सदैव अशिक्षा व अपमान सहना पड़ता है।

अस संतानद्रोहि तैं लोगा। तात मातु कि कहावन जोगा॥
तनय पितहि कुल तारनिहारा। सुत प्रभाउँ अस बेद प्रचारा॥

अपनी ही सन्तान से द्रोह करनेवाले, आप जैसे लोग क्या माता-पिता कहलाने के योग्य हैं? पुत्र पिता के कुल को तारनेंवाला होता है, वेदों ने पुत्र का ऐसा प्रभाव बताया है।

पर सुत जिन्हँ के एक न होई। कहहुँ कि भव न तरत नर सोई॥
बेद पुरान उपनिषद भाई। एक त मोहि अस देहुँ जनाई॥

किन्तु जिनके एक भी पुत्र नहीं होता, कहिये! क्या ऐसे मनुष्य भवरूपी सागर को नहीं तरा करते? वेद, पुराण और उपनिषदों में से हे भाई! आप मुझे एक तो ऐसा बता दो,

जे अस कह तनुजा पितु हेतू। निपट न होइ सकहि भवसेतू॥
तनय होइ जे बर आचारी। तबहि तात कुल सक तें तारी॥

जो यह कहता हो कि पुत्री पिता के लिये भवरूपी सागर पर सेतु बिल्कुल भी नहीं हो सकती। यदि पुत्र उत्तम आचरणवाला हो, तभी वह पिता के कुल को तार सकता है,

पै कन्या होइ पितु कर दाना। तेहिं सँग उन्ह कर कल्याना॥
जात जहाँ गृह लच्छमि होई। सत्य जान यह जग सब कोई॥

किन्तु कन्या तो पिता के हाथों दान होकर पिता के ही साथ उसका भी कल्याण कर देती है, जहाँ जाकर वह गृहलक्ष्मी होती है और इस सत्य को संसार में सब कोई जानता है।

दोहा- **तनय सतिय जब होत तब स्वजनन्हँ देत भुलाइ।**
सुता परन्तु बिरानन्हँहि आपन लेति बनाइ॥१०॥ (क)

जब पुत्र का विवाह हो जाता है, तब वह अपने स्वजनों को भुला देता है, किन्तु पुत्री तो परायों को भी अपना बना लेती है।

सन्तान त सन्तान पुनि जनमि जगत या कोख।
तनय होय अथवा सुता तिन्हँ बध परम अचोख॥१०॥ (ख)

फिर सन्तान तो सन्तान होती है, चाहे वह संसार में जन्म ले चुकी हो या माता के गर्भ में हो। चाहे वह पुत्र हो अथवा पुत्री, उसकी हत्या करना महान अनौचित्यपूर्ण कर्म है।

चौ.- **तरकउँ प्रस्न बिषय एहि माहीं। अद्यौपान्त बंधु कोउ नाहीं॥**
सो हठि जड़पनु तरक दुराई। तैं न छूटि सक अघ तें भाई॥

हे भाई! इस विषय में प्रारम्भ से अंत तक तर्क का तो कोई प्रश्न ही नहीं। अतः अपनी इस मूर्खता को तर्क की आड़ में हठपूर्वक छिपाकर आप इससे होनेंवाले पाप से बच नहीं सकते।

तातें कुमति बिसरि अस कादर। जनम देहुँ तनुजा कहँ सादर॥
पुनि जे अह उन्ह पालिअ ऐसे। पलक पालिअहिं आँखिन्ह जैसे॥

इसलिये इस कायरतापूर्ण दुर्बुद्धि को त्यागकर तुम पुत्री को आदरपूर्वक जन्म दो और जो अभी है, उन पुत्रियों को इस प्रकार पालो, जैसे पलकें नेत्रों का पालन करती है।

यह अधिकार किहुकिं तेहिं केरा। इहइ मात पितु धरम घनेरा॥
अस सुनि निज करतूति बिचारी। भई ग्लानि दंपति कहँ भारी॥

क्योंकि यह उनका अधिकार है और माता-पिता का भी यही परम-धर्म है (कि वे ऐसा करें)। ऐसा सुनकर और अपनी करतूत का विचार करके, उस दम्पति को महान ग्लानि हो आई

तनुजा प्रति धरि परम सनेहा। तदुप गए दुहुँ आपन गेहा॥
ऊधउ संग किए भगवाना। अगहुँअ कीन्ह बहोरि पयाना॥

तदुपरान्त पुत्री के प्रति परम स्नेह धारण करके, वे दोनों अपने घर लौट गए। फिर भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धवजी के साथ आगे की ओर प्रस्थान किया।

जुग देखेउँ एक चार दिवारा। सहहि समरपनु घन अतिचारा॥

तासु साध्य करि मदिरापाना। देइ रहा तिन्ह ताड़न नाना॥

फिर उन्होंने एक स्थान पर देखा कि एक घर में पत्नि के रूप में एक स्त्री बड़ा भारी उत्पीड़न सह रही है। उसका पति मदिरा पीकर उसे अनेक प्रकार से प्रताड़ित कर रहा है।

जुआ हेतु धन माँगेसु ताहीं। पुनि जब नाहिं मिलेउँ तिय पाहीं॥
पीटि लाग खल तब दइ गारी। दाइज आनेहुँ किन तैं भारी॥

उसने जुएँ के लिये पत्नि से द्रव्य माँगा और जब उसे द्रव्य न मिला, तब वह दुष्ट उसे गालियाँ देते हुए, पीटकर कहने लगा कि तुम अपने साथ बहुत-सा दहेज क्यों नहीं लाई?

तब तिय लोचन मोचत पीरा। पति सन बिनवत भइ धरि धीरा॥

तब वह स्त्री पति के सन्मुख अपने नेत्रों से पीड़ा बहाती हुई, धैर्य धरकर विनती करने लगी।

दोहा- **एक त छबि नहिं ताहि पर दाइज तैं नहिं आन।**
पुनि अब रचति प्रपंच नय चाहति मोहि भुलान॥११॥

तब उसने कहा कि एक तो तुम सुन्दर नहीं हो, उस पर भी तुम दहेज नहीं लाई और अब विनम्रता का यह प्रपञ्च रचकर मुझे भ्रमित करना चाहती हो।

चौ.- **अस कहि खल कीन्हा तिन्हँ त्यागा। अबलहि हिय दुख दारुन जागा॥**
तासु समरपित अंतर माहीं। राति बिबसता के उमगाहीं॥

ऐसा कहकर उस दुष्ट ने उस स्त्री का त्याग कर दिया, जिससे उस अबला को दारुण दुःख प्राप्त हुआ। उसके समर्पित अंतःकरण में विवशता की रात्रि उमड़ आई और

तिन्ह घन चिरता हृदय बिचारी। पतिपरितजा सोच कस भारी॥
सिंधु लहरि केउ गत आधारा। सोचहि जस लखि मीचु प्रसारा॥

मन में उसकी चिरता को विचारकर, वह पतिपरित्यक्ता नारी कैसे चिन्ता करने लगी, जैसे समुद्र की लहरों में आधार खो चुका कोई मनुष्य, सब ओर मृत्यु के विस्तार को देखकर सोचता है।

आस रहित दृग अधर बिषादा। तकि रहे मिटत नरहिं मरजादा॥
नराधार कइ लखि असि पीरा। करुनानिधि अति भए अधीरा॥

उसके अधरों पर विषाद छाया हुआ था, आशारहित उसके नेत्र मिटती हुई पुरुषमर्यादा को ताकते रह गए। पुरुष की आधाररूपा नारी की यह पीड़ा देख करुणासागर श्रीकृष्ण अधीर हो गए।

पुनि ऊधौहिं अस कहेउ सुजाना। अबल होत जे सक्ति महाना॥
ते जे चह त अखिल जग माहीं। परिथिति अस न ताड़ जे ताहीं॥

फिर उन सुजान ने उद्धवजी से इस प्रकार कहा- अबला होते हुए भी जो महाशक्ति है, वह नारी यदि चाहे तो इस अखिल विश्व में ऐसी कोई परिस्थिति नहीं, जो उसे दुःख पहुँचा सके।

तब चुप धरि केहि हित एहिंभाँती। तिय भइ जात निजहिं आराती॥

तब फिर चुप रहकर इस प्रकार किस लिये, नारी स्वयं की ही शत्रु हुई जाती है।

दोहा- **अस अतिचार बिरुद्ध तिय साहस प्रबल जुड़ाइ।**
तुरत जूझि सख परति किन सकल सकोच बिहाइ॥१२॥

हे सखा! ऐसे अत्याचार के विरुद्ध नारी, प्रबल साहसपूर्वक, समस्त सङ्कोच का त्याग करके, जूझ क्यों नहीं पड़ती?

चौ.- **कुसमय मार कठिन अति खाई। तिय निज गरिमा दीन्हि भुलाई॥**
सखा कदाचित इहइ सो कारन। जे सहात तेहिं कहँ अस ताड़न॥

लगता है, प्रतिकूल समय की अत्यन्त कठोर मार खाकर नारी ने अपनी गरिमा को भुला दिया है। हे सखा! कदाचित्! यही वह कारण है, जो उसे इस प्रकार के उत्पीड़न सहाता है।

नवजुग भलेहिं गयउ अब आई। नारिदसा पै पूरब नाई॥
भरतखंड अजही प्रतिबारा। दाइज भेंट चढ़इ बहु दारा॥

इस समय भले ही नया युग आ चुका है, किन्तु स्त्री की दशा अब भी पूर्ववत् ही बनी हुई है। इस भरतखण्ड में आज भी प्रतिदिन, बहुत-सी स्त्रियाँ दहेज की भेंट चढ़ जाती है।

एक प्रसून बिगसि केउ डारी। बाढ़न चह सुषमा सब क्यारी॥
तोरि तहँ तें पै तेहिं संसारा। पठवहि अनतहिं करन उजारा॥

एक पुष्प, किसी शाखा पर खिलकर सम्पूर्ण क्यारी की सुन्दरता को बढ़ाना चाहता है, किन्तु यह संसार उसे वहाँ से तोड़कर कहीं और ही प्रकाश करने के लिये भेज देता है।

तदपि तें जग प्रबाह उर लाई। लेत मृदुल भाउन्ह समुझाई॥
पुनि बिषदित मुख धरि नव हासा। चढ़त सूलि करि लाग प्रकासा॥

तब भी वह परम्पराओं को हृदय में धारण करके, अपनी कोमल भावनाओं को समझा लेता है और अपने विषादयुक्त मुख पर नवीन हास्य धरकर शूली पर चढ़ते हुए प्रकाश करने लगता है।

दोहा- **सहनसीलतहिं ऐतनेहुँ परिआपत कि न दंड।**
जे घटतहिं छबि निदरि लग ताहिं पुरुष उद्दंड॥१३॥

उसकी सहनशीलता का क्या इतना ही दण्ड पर्याप्त नहीं है; जो उसके सौन्दर्य के क्षीण होते ही उद्दण्ड पुरुष उसका निरादर करने लगता है?

चौ.- **कहु समाजहितु अब केहि भाँती। मिटिहहिं यह कुरीति तियघाती॥**
ऊधौ जगत तिय न नर चेरी। सहचरि सक्ति अपितु तिन्ह केरी॥

हे मानवसमाज के हितू भगवन्! नारीजाति को हानि पहुँचानेंवाली यह कुरीति अब कैसे मिटेगी; हे उद्धव! इस संसार में नारी पुरुष की दासी नहीं, अपितु उसकी सहचरी एवं शक्ति है।

बिषम परिथितिन्ह जूझत जोई। अस नर दीपसिखा तिय सोई॥
जे तेहिं नव उरजा उतसाहा। देति बिनसि तिन्ह कष्ट अगाहा॥

76त्र.विषम परिस्थितियों से जो जूझ रहा होता है, ऐसे पुरुष के लिये नारी दीपक की वह लौ है, जो उसके अगाध कष्टों का शमन करके, उसे नवीन उर्जा व उत्साह प्रदान करती है।

तिय बिनु नर निज जीवन लच्छा। पाइ न सक दइ कोटि परिच्छा॥
अनुजा तनुजा पतिनी माता। तात मातुमहि रस प्रख्याता॥

नारी के बिना पुरुष अपने जीवन के लक्ष्य को, करोड़ों परीक्षाएँ देकर भी पा नहीं सकता। बहन, पुत्री, पत्नि, माता, दादी व नानी आदि इन सबका प्रेम प्रसिद्ध है।

तिय धरि रूप इहइ सुखखाना। नरहि बनावति आइ महाना॥
अतुलनीय गरिमा एहि नारी। अजहुँ भूलि जेहिं दुख सह भारी॥

सुख की खान इन्हीं रूपों को धारण करके, नारी पुरुष को (सदा से) महान बनाती आई है। यह अतुलनीय गरिमा है नारी की, जिसे भूलकर वह आज महान दु,ख सह रही है।

दोहा- **राजदंड नाना जतन तेहिं न सक उद्धारि।**
जब प्रबोध लहँ निज गरुअ तबहि उबरि सक नारि॥१४॥

राजदण्ड व अन्य अनेक प्रकार के यत्न उसका उद्धार नहीं कर सकते। जब नारी स्वयं ही अपनी गरिमा को भलीभाँति समझ जायेगी, तभी उसका उद्धार हो पायेगा।

चौ.- **निज हित जब संघरषहिं आपू। तेहिं दिनु मिटिहिं तियहिं सब तापू॥**
चिंतन करत उभय एहिंभाँती। गै मरुधनुअ नगर सोउ राती॥

नारी जब अपने लिये स्वयं सङ्घर्ष करेगी, उस दिन उसके सारे सन्ताप अपने-आप मिट जाऐंगे। इस प्रकार चिन्तन करते हुए, वे दोनों उसी रात्रि में मरुधन्व नगर चले गए।

तहँ उन्ह देखेहुँ एक परिवारा। कलह होत बहुभाँति अपारा॥
बालक तहँ कर सोउ बिवादा। अति सभीत भए बस्य बिषादा॥

वहाँ उन्होंने देखा कि एक परिवार में अनेक प्रकार से अपार कलह हो रहा है। वहाँ के बालक उसी विवाद के कारण अत्यधिक भयभीत होने के कारण विषाद के वश हो गए हैं।

अंतरकलह मात पितु केरा। सिसुता कहँ दुख देत गहेरा॥
पै पितु मात न लहहिं प्रबोधा। बालक कुढ़ उन्ह एहि बिरोधा॥

माता-पिता का कलह, उनके बालपन को गहरा दुःख दे रहा था। किन्तु वे माता-पिता इस बात को नहीं समझ रहे थे और उनके इसी झगड़े के कारण, उनके बालक कुढ़ते रहते थे।

दारिद अरु गुरुता परिवारहिं। एहि बिबाद कर मूल अधारहिं॥
सए भाँति एहि बीति निसा जब। परिहरि आलस उठे सबनि तब॥

दरिद्रता और उस पर उस परिवार का बड़ा होना ही, उनके कलह का मूल कारण था। फिर वे सो गए और इस प्रकार जब रात्रि बीत गई, तब आलस्य का त्याग करके, वे सब उठ गए।

कलरव सँग पुनि अमल बालपनु। खोजन चला उदर हित भोजनु॥

फिर पक्षियों के कलरव के साथ, उनका निर्दोष बालपन, पेट के लिये भोजन खोजनें चला।

दोहा- **जोरि परोसिन्हँ मलिन पट गठरि किए सिरु लाइ।**
पृह सुकुमारन्हँ घोटि गर चले भोथ मुद छाइ॥१५॥

अपने पड़ोसियों के मैले वस्त्र एकत्रित करके उनकी गठरी सिर पर लादे; अपनी बाल-सुलभ आकाङ्क्षाओं का गला घोंटकर वे खोखले आनन्द से भरकर चले।

चौ.- रहे दिवस जेइ खेलन पढ़नहि। बीतइ सोउ उन्ह जोरत अनहीं॥
एहिं प्रकार हरि जेइ पुर जाई। तहहिं देख एहिंबिधि अधमाई॥

जो दिन खेलनें-पढ़नें के थे, उनके वही दिन अन्न की व्यवस्था करने में बीत रहे थे। इस प्रकार भगवान जिस भी नगर में जाते, वही इसी प्रकार की अधमता होते हुए देखते।

एक नगरु उन्ह देखेहुँ काहा। अधरम अस होइ रहा अगाहा॥
किए जतन कोटिक अघ जासू। छूटि न सक कराव सब नासू॥

एक नगर में उन्होंने क्या देखा कि ऐसा अगाध अधर्म हो रहा था कि जिसका पाप करोड़ों यत्न करने पर भी छूट नहीं सकता था और सर्वनाश करानेंवाला था।

एक कृषक निज गोठहिं जाई। देखेहुँ बूढ़ भए बृष गाई॥
तब तें खल कह अनुजहिं बोली। कहत तनक आतम नहिं डोली॥

एक किसान ने अपनी गोशाला में देखा कि (एक) गाय और (एक) बैल बूढ़े हो चले थे। तब वह दुष्ट अपने अनुज को बुलाकर बोला, कहते उसकी आत्मा तनिक भी विचलित न हुई।

गरभ धरिहिं नहिं अब यह गाई। बृष तें पुनि ससि सारि न जाई॥
तातें बेचि देब हम उभयहिं। न त इन्ह बृथाहिं पालन परिही॥

हे भाई! यह गाय (बूढ़ी होने से) अब गर्भधारण नहीं कर सकेगी और बैल से भी कृषि के कार्य नहीं हो पायेंगे। इसलिये हम इनको बेच देंगे, अन्यथा व्यर्थ ही में हमें इन्हें पालना पड़ेगा।

सुनत घृना रिस हरि कहँ लागी। समुख भए कह धीरज त्यागी॥
अहो बंधु अति अचरज होई। आश्रय बसहँ धेनु कर जोई॥

ऐसा सुनते ही भगवान श्रीकृष्ण को घृणा व क्रोध हो आया और वे अधीर होकर उस कृषक के सन्मुख जाकर कहने लगे- अरे भाई! बड़ा ही आश्चर्य होता है कि जिस गाय व बैल के बल पर

सारि बिबिध ससि तुअ भा आगे। बूढ़तही अज चह उन्ह त्यागे॥
जीवनु लौ जिन्हँ खाइ कवाँई। अज तुअ उन्हहिं बेचि चह खाई॥

अनेक प्रकार की कृषि करके, उन्नति पाकर, तू समृद्ध हुआ है, बूढ़े होने पर आज उन्हीं को त्याग देना चाहता है। जीवन भर जिनके परिश्रम से उत्पन्न कमाई तूनें खाई, आज तू उन्हीं को बेचकर खा जाना चाहता है।

सठ तोहिं बार बार धिक्कारा। मुख दरसन तव पाप अपारा॥

रे शठ! तुझे बार-बार धिक्कार है, तुम्हारा तो मुँह देखना भी महापाप है।

दोहा- जननि त सम्बत दोइक दूध पिबानिब तोइ।
पै जिन्हँ पय तुअ आज लौ पियहिं गाइहिं त सोइ॥१६॥

तुम्हारी माता ने तो तुम्हें वर्ष दो वर्ष तक दूध पिलाया होगा, किन्तु जिसका दूध तू आज तक पी रहा है, वह गाय ही तो है।

चौ.- जे यह सत्य त गाइहिं केरी। जघ त जननि सन भई गहेरी॥
तदपि बेचि चह तुअ तेहिं भाई। धन्य धन्य तव यह अधमाई॥

जो यदि ये सत्य है, तब तो गाय का स्थान, जन्म देनेवाली माता से भी अधिक ऊँचा हुआ। हे भाई! तू फिर भी उसे बेच देना चाहता है, धन्य है, धन्य है तेरी यह अधमता।

हल जेइ बसहँ कंध तुअ लाधी। मन अनुहार सम्पदा साधी॥
आपन रुजहिं कहे बिनु ताका। घाम दुसह जेहिं हल तव हाँका॥

जिस बैल के कन्धे पर अपना हल लादकर तूने अपने मन के अनुसार सम्पदा पाई है, अपने रोग को देखे व तुझे बताए बिना, जिसने असहनीय धूप में तेरा हल खींचा और

एहिबिधि जे बपुरे दिनुराता। भए तोर परिजन परित्राता॥
उन्हहिं बेचि चह तुअ धिक्कारा। गाइ बिमुख तुअ महि कर भारा॥

इस प्रकार जो बेचारे दिनरात, तेरे परिजनों का पालन करनेवाले हुए, तू उन्हें ही बेच देना चाहता है, धिक्कार है, तुझे। अरे गाय से द्रोह करनेवाले! तू तो भूमि का भार है।

जे दिनुरात करिहि श्रम भूरा। जीवन लौ तव परिहिं न पूरा॥
सुनि कृषकहिं सकोच अति लागा। पापवंत निस्चय तेहिं त्यागा॥

जो तू दिनरात कठोर परिश्रम भी करेगा, तब भी जीवनभर तेरा पूरा नहीं पड़ेगा। यह सुनकर कृषक को अत्यधिक लज्जा आने लगी और उसनें अपना पापयुक्त निश्चय त्याग दिया।

एहिंभाँति बहु पुर हरि देखा। अधरम ब्यापि रहेहुँ बिसेषा॥
अधरम कर बहुतक महिपाला। न्याय बिमुख हिय कृपन कराला॥

इस प्रकार भगवान ने अनेक नगरों में घूम-फिरकर देखा कि अधर्म विशेषरूप से बढ़ रहा है। बहुत-से राजा अधर्म कर रहे हैं, न्याय से विमुख उनके हृदय कंजूस और कठोर हैं।

निज प्रभाउ प्रगटावन लागी। अस्त्र प्रचंड सृजइ भय त्यागी॥
पुनि कर रनु निज सींव प्रसारा। अबल नृपन्हँ दुख देइ अपारा॥

अपनी धाक जमाने के लिये वे निर्भय होकर प्रचण्ड अस्त्रों का सृजन करते हैं। अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ानें के लिये वे युद्ध करते हैं और निर्बल राजाओं को अपार कष्ट देते हैं।

दोहा- कोटि नरन्हँ हति समर मिस कह यह खलन्हँ बिरोध।
देस आन कहँ पंथ निज मानहिं बड़ अवरोध॥१७॥

युद्ध के बहाने करोड़ों मनुष्यों का वध करके, वे कहते हैं कि यह दुष्टों का विरोध है। वे राजा दूसरे देशों को अपने मार्ग का बड़ा रोड़ा मानते हैं।

चौ.- उन्हहिं समान सचिव अधिकारी। मन्दबुद्धि अनपढ़ अबिचारी॥
प्रजहिं सेव हित बेतनु लहहीं। द्रब्य लिए बिनु काज न करही॥

उन्हीं राजाओं के समान उनके मन्त्री व अधिकारी मन्दबुद्धि, अशिक्षित व अविवेकी हैं। यद्यपि वे प्रजा की सेवा के लिये वेतन पाते हैं, किन्तु प्रजा से द्रव्य लिये बिना उसका कार्य नहीं करते।

सच्छम देत जात पृह पाई। दीन बापुरे रहहि ठगाई॥
द्रब्य देइ प्रज हित नृप भारी। जेहिं ग्रसि जात भ्रष्ट अधिकारी॥

जो सक्षम होते हैं, वे लोग द्रव्य देकर अपनी इच्छाएँ पूरी कर लेते हैं और जो दीन-दरिद्र होते हैं, वे बेचारे ठगाकर रह जाते हैं। प्रजा का हित करनें के लिये राजा बहुत-सा धन देते हैं, किन्तु उस धन को भ्रष्ट अधिकारी ही खा जाते हैं।

निज सुख हित खल तजि मरजादा। जोरहिं धन प्रज लहहिं बिषादा॥
पुनि बिरोध कर जे कोउ आई। सब खल मिलि तेहिं देइ बधाई॥

ये दुष्ट निजी सुख के लिये मर्यादा त्यागकर, धन जोड़ते रहते हैं और प्रजा बेचारी दुःख पाती है। उस पर भी यदि कोई विरोध करता है, तो सारे दुष्ट मिलकर उसकी हत्या करवा देते हैं।

जहँ तहँ आलस बाँदरबाटा। लोकपाल देखहिं बठि ठाटा॥
कालदंड गत रव अस भूले। भ्रष्टाचरत समात न फूले॥

जहाँ देखो वहीं बन्दरबाट मची है। जो लोकपाल हैं वे निश्चिंत बैठे चुपचाप देखा करते हैं। वे भूल चुके हैं कि काल की लाठी में शब्द नहीं होता। इसीलिये वे भ्रष्टाचरण करते बड़ा सुख पाते हैं।

तात मात सोइ सुतन्हँ सिखावहिं। जेहिं करि हाथ माँझ धन आवहिं॥

माता-पिता भी अपने पुत्रों को केवल वही शिक्षा देते हैं, जिसे करने पर धन हाथ लगे।

क.- कलह बढ़हिं जेहिं बिधि सास ससुर सौं, जेठ देवरहिं जेहिं बिधि बैर आवही।
होय बिलगान सब कुटुम्ब तें जाहिं करि, निज तनुजान्हँ मातु पट्टी सो पढ़ावहीं॥
सान्ति छमा पेमु दया जस जेहिं बिधि बढ़े, उन्ह कारन सौं मातु बिरोध सिखावही।
सास ससुरे की मनगढ़ि कहि दंतकथा, पुनि ससुरारि कहँ पीरन पठावही॥

जैसा करने पर सास-स्वसुर से कलह बढ़े, जिस प्रकार भी जेठ और देवर में बैर बढ़े और जिस कार्य को करने पर सारे कुटुम्ब में मनमुटाव जन्म ले, (ससुराल भेजते समय) माता अपनी पुत्री को केवल वही शिक्षा देती है। जिन कारणों से शान्ति, क्षमा, प्रेम, दया और कीर्ति बढ़ती है, उनसे माता अपनी पुत्री को विमुख होना सिखाती है और सास-ससुर की अनेक मनगढ़ंत दन्तकथाएँ कह-कहकर फिर अपनी पुत्री को ससुराल को दुःख देने के लिये भेजती है।

दोहा- कतहुँ मात पितु गरभु महुँ बधहिं निजहिं संतान।
कतहुँ अनीति धनारजन करन देत अग्यान॥१८॥

कहीं पर माता-पिता स्वयं अपनी ही सन्तान को गर्भ में मरवा रहे हैं और कहीं पर माता-पिता स्वयं अपनी सन्तान को अनीतिपूर्वक धन प्राप्त करनें की शिक्षा दे रहे हैं

चौ.- सास ससुर पति दाइज लोभा। जारइ बधुन्हँ किए बिनु छोभा॥
तनु मनु सोषन कत तिय केरे। कत बंदिनि अग्यान अंधेरे॥

दहेज के लोभ में सास-ससुर और पति बिना किसी क्षोभ के, वधूओं को जला देते हैं। कहीं नारी के तन व मन का शोषण हो रहा है, तो कहीं वह अशिक्षा के अन्धकार में बन्दिनी बनी हुई है।

कत परपुरुषप्रिया अबिचारिनि। कतहुँ आपु आपन पतिघातिनि॥
एहिंबिधि सृमिक निधन अति दीना। कतहुँ आलसि अकाज प्रबीना॥

कहीं पर नारी अविचारिणी और परपुरुष की प्रिया बनी हुई है, तो कहीं पर वह स्वयं ही अपने पति की हत्या कर रही है। इसी प्रकार श्रमिक निर्धन और अत्यन्त दीन हैं, तो कहीं वे ही आलसी और काम से जी चुरानें में चतुर सिद्ध हो रहे हैं

कतहुँ किए श्रमु मिल न पगारा। सोषइ नाथ लोभ बिस्तारा॥
कृषक देत नृप कहँ कर भारी। बिनु धन हित न करइ अधिकारी॥

कहीं पर श्रम करने के उपरान्त भी उन्हें पगार नहीं मिल रही है और उनके स्वामी अपने लोभ के विस्तार में उनका शोषण कर रहे हैं। कृषक राजा को कर के रूप में बड़ा भारी द्रव्य चुकाते हैं और उनसे धन पाए बिना राज्य के अधिकारी उनका हित नहीं करते।

बनिक होत पुनि कनक सुहागा। संग्रह नीति जेन्हँ अनुरागा॥
पुनि अकाल बर अवसर पाई। देत अन्न कर दावँ चढ़ाई॥

उस पर भी साहूकार सोने पर सुहागा सिद्ध होते हैं, जिनकी संग्रह की नीति पर प्रीति रहती है और अकाल का सुन्दर अवसर पाते ही वे अपने संग्रह किये अन्न का मूल्य बढ़ा देते हैं।

सृमिक प्रजा तरषहिं बिनु आना। ए निकम्म धन जोर महाना॥

श्रमिक और प्रजा अन्न के बिना तरस रही हैं और ये निकम्में भारी धन जोड़नें में लगे हैं।

क.- **जुबान जुबती कत तात मात द्रोह रत, चरहिं सुछंद उपजात अपवादहूँ।**
मदन पिपास निज कहँ बर पेमु कहि, उचितानुचित भेद तजि मरजादहूँ॥
सब रत निज निज जीवन सवारन में, सबनि प्रबल प्रिय घोर निजवादहूँ।
देस जग परहित त्याग स्वाँग इन्हँ लागि, पसु सम जीअहिं मरहिं भोगवादहूँ॥

कहीं पर युवक युवतियाँ माता-पिता से द्रोह करने में लगे हैं, जो स्वच्छंद विचरण करते हुए, अपवादों को उत्पन्न करते हैं। अपनी कामपिपासा को ही उत्तम प्रेम कहकर उन्होंने उचित व अनुचित का भेद और मर्यादा त्याग दी है। वे सब के सब अपने-अपने जीवन को सवाँरने में लगे हैं और उन सबको केवल अपनी स्वार्थ साधना में मस्त रहना प्रिय जान पड़ता है। देश, संसार व दूसरों का हित व उसके लिये किया जानेवाला त्याग उनके लिये दिखावा मात्र है और इसलिये वे सब भोग-विलाश करते हुए पशुओं के समान जीते और मरते रहते हैं।

दोहा- **लोभ क्रोध छल मदनपृह भूतद्रोह अभिमान।**
परहँसिप्रियता बिभूषन गुरन्हँ करइ अपमान॥१९॥

लोभ, क्रोध, कपट, कामप्राप्ति की इच्छा, प्राणीमात्र से द्रोह, अहङ्कार, दूसरों की हँसी उड़ाना आदि ही उनके आभूषण हैं और वे अपने गुरुजनों का अपमान किया करते हैं।

चौ.- **धन बिनु बैद न कर उपचारा। मकु उजरहिं केउ कर घरबारा॥**

जद्यपि सिच्छक वेतनु पावहीं। तदपि न चेरन्हँ ग्यान सिखावहि॥

धन पाए बिना चिकित्सक उपचार नहीं करते, फिर भले ही किसी का घर-बार उजड़ जाय। शिक्षक यद्यपि वेतन प्राप्त करते हैं, फिर भी शिष्यों को ज्ञान नहीं देते।

सिल्पि तिरस्कृत सह दुख भारा। मान न लहहिं कला फनकारा॥
छुद्र समाज भयउँ अति दीना। बहुबिधि सोषइ तेन्हँ कुलीना॥

शिल्पी तिरस्कार व दुःख उठाते हैं और कला व उसे जाननेवाले आदर नहीं प्राप्त कर पाते हैं। शुद्रों का समाज अत्यन्त दीन हो गया है और जो कुलीन हैं, वे उनका शोषण कर रहे हैं।

ईसहि पूज जदपि बिधि नाना। पाछे पीर उन्हहिं संताना॥
मानव जाति रंग धन भेदा। चहहिं मनुजता कर हिय छेदा॥

यद्यपि वे कुलीन ईश्वरपूजा करते हैं, किन्तु बाद में शूद्र के रूप में उसी ईश्वर की सन्तान को दुःख देते हैं। मनुष्यजाति में व्याप्त रङ्ग व धन का भेद मानवता का हृदय चीर देना चाहता है।

प्रजा भई सासन बिद्रोही। सान्ति बिनासक अरु अति कोही॥
धरहि बिबेक न संकट काला। करहिं उपद्रव पुर बिकराला॥

प्रजा राज्य से द्रोह करनेवाली, शान्ति की विनाशिका और अत्यन्त क्रोधी हो गई है। आपत्तिकाल आने पर वह धैर्य नहीं धरती और नगर में विकराल उपद्रव खड़े कर देती है।

केउ केउ मत पराय अपमानहिं। एक निजहिं मत कहँ गुरु मानहिं॥
धरम होत सम जनि गुरु छोटा। किन्तु लगहि यह मत उन्हँ खोटा॥

कुछ दूसरो के धर्म का अपमान करते हैं और अपने मत व धर्म को ही बड़ा मानते हैं, जबकि धर्म समान होते हैं, न कोई बड़ा होता है और न कोई छोटा। किन्तु यह बात उन्हें खोटी लगती है।

धरम ओट हति मानवताई। मानहिं ते यह धरम जुझाई॥
धरमहि प्रतिनिधि सान्ति बसीठी। अपमानहिं हरिजन कहँ ढीठी॥

धर्म की आड़ में मानवता की हत्या करके, वे दुष्ट अपनी इस करतूत को धर्मयुद्ध मानते हैं। धर्म ही के प्रतिनिधि व शान्तिदूत कहलानेवाले लोग ढीठतापूर्वक हरिभक्तों को अपमानित करते हैं।

मोहिं मारा एहि तें मैं मारा। अस अबिबेक प्रजा हिय धारा॥
निज प्रतिसोधहुँ देस बिसारी। कर बिद्रोह अराजककारी॥

मुझे मारा इसी कारण मैंने भी मारा, यही अविवेक प्रजा ने मन में धारण कर लिया है। अराजककारी लोग अपने प्रतिशोध में देशहित को भुलाकर विद्रोह किया करते हैं।

भायप कत न पेमु नहिं दाया। मानव जाति भूलि कलि माया॥
हा धन हा धन सब करि रहेहूँ। सुरति सुधार कत न कोउँ लहेहूँ॥

न कहीं भाईपना है, न प्रेम है और न दया ही है। सम्पूर्ण मानवजाति ही कलि की माया में भ्रमित है। सब कोई हा धन, हा धन कर रहा है और कहीं पर कोई भी सुधार की सुध नहीं लेता।

दोहा- बन पसु जल थल नभ अनिल भोग आपनेहुँ दोहि।
उन्नति मिस नर आपन अवनति रहेहुँ पिरोहि॥२०॥

वन, पशु, जल, स्थल, आकाश, वायु आदि का अपने विलाश के लिये उपभोग करते हुए, उन्नति के नाम पर मनुष्य अपने ही हाथों अपने पतन को पिरो रहा है।

चौ.- अनाचार अधरम अस देखी। भई प्रभुहि हिय पीर बिसेषी॥
तब ऊधौहिं कहा भगवाना। पंथ एकही एहि निदाना॥

ऐसे अनाचार और अधर्म को देखकर भगवान श्रीहरि के हृदय में विशेष दुःख हुआ। तब उन भगवान ने उद्धवजी से कहा कि इस अधर्म के निवारण का एक ही उपाय है।

अब मैं उग्रसेन धुज छाहा। मख सारौं दिसिजयहि अगाहा॥
पुनि अधरम चितवा हम जेऊ। खलन्ह ताड़ि समनौं मैं तेऊ॥

(वह यह कि,) अब मैं महाराज उग्रसेन के ध्वज की छाया में विश्वजित् नाम का महायज्ञ करूँगा और जो भी अधर्म हमने देखा है, दुष्टों को दण्ड देते हुए, मैं उसका निवारण करूँगा।

तदुप द्वारिका दुहुँ फिरि आए। सुना राउ अतिसय हरषाए॥
बैठि सुधरमा पुनि भिनुसारा। हरि नृप सन एहिभाँति उचारा॥

तदुपरान्त वे दोनों द्वारिका लौट आए। उनके लौटनें की सूचना से उग्रसेन अत्यन्त हर्षित हो उठे। फिर सवेरा होने पर सुधर्मा सभा में बैठकर श्रीहरि ने महाराज उग्रसेन से इस प्रकार कहा-

बिगत दिवस बहु पुर मैं देखा। अनाचार बढ़ि रहेहुँ बिसेषा॥
तातें समन हेतु मैं ताहीं। जदुपति तोर पताकहिं छाहीं॥

पिछले दिनों मैंने बहुत-से नगरों में देखा कि अनाचार अत्यधिक बढ़ रहा है। इसलिये मैं उसके शमन हेतु, हे यादवेन्द्र आपके ध्वज की छाया में,

राजसूय मख तोरे हाथा। सारउँ होइहिं प्रजा सनाथा॥

आपके हाथ राजसूय-यज्ञ करवाऊँगा, ताकि प्रजा सनाथ हो जायेगी।

दोहा- पान केर बीड़ा तदुप बोलि कहा भगवान।
जम्बुदीप जिति सक जे भट बढ़ि गह सो एहि पान॥२१॥

तदुपरान्त भगवान श्रीकृष्ण ने पान का एक बीड़ा बुलवाकर कहा कि जो भी योद्धा जम्बुद्वीप को जीत सके, वह आगे बढ़कर यह बीड़ा उठा ले।

चौ.- आन उठत कोउँ मौन बिहाई। सम्बरारि ऐतनेहुँ अतुराई॥
जदुपति पद सरसिज सिरु नाई। हरषि सो बीड़हि लीन्ह चबाई॥

मौन त्यागकर, कोई दूसरा उठता, इससे पहले ही शम्बरासुर के शत्रु प्रद्युम्न ने शीघ्रता से आकर महाराज उग्रसेन के चरणों में सिर नवाकर प्रसन्नतापूर्वक उस बीड़े को चबा लिया।

तब जदुनाथ तिलक तेहिं कीन्हा। आसिस देत खड़ग निज दीन्हा॥
फनिपति हरषि दीन्ह उर त्राना। अखय त्रोन जुग दए भगवाना॥

तब यादवेन्द्र महाराज ने उनका तिलक करके, आशीर्वाद देकर उन्हें अपना खड्ग दे दिया। बलरामजी ने उन्हें कवच प्रदान किया और भगवान श्रीकृष्ण ने दो अक्षय तूणीर दिये।

पुनि साँरग तें धनु प्रगटाई। देत बिबिध रनुनीति सिखाई॥
कुंडल छत्र पीत पट चारू। सूरसेन तें पाएहुँ मारू॥

फिर शार्ङ्गधनुष से वैसा ही धनुष प्रकट करके, उन्हें देते हुए अनेक प्रकार की युद्धनीति का उपदेश दिया। (वसुदेवजी के पिता) सूरसेन से प्रद्युम्न ने कुण्डल, छत्र और सुन्दर पीताम्बर पाया।

बसुद्यौ दीन्हसि सतससि ढाला। ऊधौ दइ किंजल्कनि माला॥
दीन्ह कम्बु अक्रूर कामहीं। बामाबरत बिजय अस नामहिं॥

वसुदेवजी ने उन्हें शतचन्द्र नामक ढाल और उद्धवजी ने किञ्जल्किनी नामक एक माला भेंट की। अक्रूरजी ने प्रद्युम्न को एक शङ्ख दिया, जिसका नाम वामावर्त था।

मुनिगन पाइ समय अनुकूला। दीन्ह कृसानू तेजमय सूला॥
भेंट देन मारहिं अतुराए। अज हर बिबुध तबहिं तहँ आए॥

मुनियों ने अनुकूल समय पाकर अग्नि के तेज से युक्त एक शूल उन्हें प्रदान किया। तभी प्रद्युम्न को भेंट देने के लिये, शीघ्रतापूर्वक ब्रह्माजी, शिवजी व देवगण वहाँ पधारे।

पदुमरागमनि सिरु धरे जोगा। दइ द्विजनाथ जे हर सब रोगा॥
बरुन पास किंध सकति प्रघोरा। भानु गदा जम दंड कठोरा॥

ब्रह्माजी ने सिर पर धारण किये जाने योग्य, पद्मराग मणि दी जो समस्त प्रकार के रोगों को हर सकनेंवाली थी। वरुणदेव ने पाश, स्कन्ध ने अपनी प्रचण्ड शक्ति, सूर्यदेव ने गदा और यम ने उन्हें अपना कठोर (यम नामक) दण्ड दिया।

अनिल ब्यजन द्वै दीन्हे दिब्यहि। भेंटि हरषि पदत्रान दिब्य महि॥
परिघ प्रदानेहुँ कठिन कृसानू। कीन्ह धनिक मनिमालहि दानू॥

वायुदेव ने दो दिव्य व्यजन दिये और पृथ्वी माता ने हर्षित होकर दिव्य जूतियाँ भेंट की। अग्निदेव ने कठोर परिघ प्रदान किया और कुबेर ने मणियों की माला उन्हें दान की।

चंद्रकान्त मनि दीन्ह निसीसा। सनमुख भै सब पाछ सचीसा॥

चन्द्रदेव ने उन्हें चन्द्रकान्त मणि प्रदान की, फिर सबके पश्चात् शचि के पति इन्द्र सन्मुख हुए।

दोहा– **मनहिं बेग जयदायक मनिमय रथ उन्हँ दीन्ह।**
सादर गहि रतिनाथ जिन्हँ सब कहँ बन्दन कीन्ह॥२२॥

उन्होंने प्रद्युम्न को मन की गति के समान चलनेंवाला, विजयप्रदायक और मणियों से जड़ा हुआ एक रथ दिया, जिसे सादर ग्रहण करके रतिपति प्रद्युम्न ने उन सबका अभिनन्दन किया।

चौ.– **पुनि कुलगुर नृप हरि अहिराई। गुरुन्हँ सुभाषिस आयसु पाई॥**
सुभ घरि माँझ बजाइ निसाना। जीतन चले अनंग जहाना॥

फिर कुलगुरु गर्गजी, महाराज उग्रसेन, भगवान श्रीकृष्ण व बलरामजी आदि बड़ों से आज्ञा व आशीर्वाद पाकर शुभमुहूर्त में डङ्का बजाकर प्रद्युम्नजी दिग्विजय के लिये प्रस्थित हुए।

बलहिं अनुज गद आदिक बीरा। चले ससेन उछाह गभीरा॥
सुत समूह हरि कर अति भारी। तेहिं सवँ भयउँ संग सो धारी॥

बलरामजी के छोटे भाई गद आदि वीर योद्धा सेना सहित अत्यन्त उत्साह से उनके साथ चले। उस समय श्रीकृष्ण के पुत्रों का विशाल समुदाय उस समय उस सेना के साथ हो गया।

भोज बृष्नि अन्धक कुल केरे। सूरबंसि मधु सुभट घनेरे॥
निज निज सेन साजि हरषाई। आए तेहिं अवसर तहँ धाई॥

उसी समय भोज, वृष्नि, अन्धक, सूर व मधुवंश के अनेक उत्तम योद्धा, प्रसन्नतापूर्वक अपनी-अपनी सेनाएँ सजाकर दौड़ते हुए वहाँ आ पहुँचे।

उन्ह सुभटन्ह कर कठिन पिनाका। सर कलमलत त्रोन रनु ताका॥
सिरु किरीट कुंडल बर काना। जानु पानि हिय अति दृढ़ त्राना॥

उन उद्भट योद्धाओं ने अपने हाथों में कठोर धनुष धारण कर रखे थे और युद्ध की ताक में उनके तरकशों में बाण कसमसा रहे थे। उनके सिरों पर मुकुट व कानों में उत्तम कुण्डल शोभित थे और उन्होंने घुटनों, हाथों व छातियों पर अत्यन्त कठोर कवच धारण कर रखे थे।

सिखि मराल झष खगपति तालहि। नाना धुज रथ सोहत आलहि॥

मयूर, हंस, मत्स्य, गरुड़ व ताल के चिह्नयुक्त अनेक विचित्र ध्वज उनके रथों पर शोभित थे।

दोहा- **रथन्ह कलस अरु सिखर सब कंचन मनिमय चारु।**
बेग अनिल सम सब सुदृढ़ सज्जित बन्दनवारु॥२३॥

उन रथों के कलश और शिखर सभी सोने व सुन्दर मणियों से निर्मित थे और वे सभी पवन के वेग के समान गतिवाले, अत्यन्त सुदृढ़ व वन्दनवारों से सुसज्जित थे।

चौ.- **चतुरंगिनि अनि तेहिं के संगा। जहँ उन्मत्त सुभट रनु रंगा॥**
कटकु रहे गज नाना जाती। जाहिं कहे सारद सकुचाती॥

उनके साथ चतुरङ्गिणी सेना थी, जिसमें समस्त योद्धा, युद्ध की इच्छा से उन्मत्त हुए जा रहे थे। उस सेना में बहुत प्रकार के हाथी थे, जिनका वर्णन करने में सरस्वतीजी भी सकुचाती है।

तेन्हँ गंडथल मद झर कैसे। निरझर भूधर सिखरन्हिं जैसे॥
मृगमद पत्रावलि कढ़ि भालन्हँ। भयद होत चिक्करि दिगपालन्हँ॥

उनके गण्डस्थल से मद कैसे झरता था; जैसे पर्वतशिखरों से झरना झरता है। उनके कुम्भस्थलों पर कस्तूरी से पत्ररचना की गई थी और उनकी चिंग्घाड़ दिक्पालों के लिये भी भयदायक थी।

उभय भाग घंटिका सुबाजति। झूल बिबिध रँग पीठिहुँ राजति॥
पहिराने पबि सम तन त्राना। बैठे भट अनेक बलवाना॥

उनके पार्श्वों में मधुरध्वनि से घण्टियाँ बज रही थी और पीठों पर अनेक रङ्गों की झूलें लदी हुई थी। उनके शरीरों पर वज्र के कवच पहनाये गए थे और उन पर अनेक बलवान योद्धा बैठे थे।

पाबस घटा सरिस कछु स्यामा। कछु ससिबरन चपल बल धामा॥
मद झारत गिरिगन अन्हवावहि। तरु उपारि नभ लागि चलावहि॥

उन हाथियों में कुछ वर्षाकालीन मेघों के समान श्यामवर्ण के, कुछ चञ्चल व अत्यन्त बलवान हाथी चन्द्रमा के समान श्वेत वर्णवाले थे। मद की वर्षा करके, वे पर्वतों को नहला दिया करते और वृक्षों को उखाड़कर आकाश की ओर चलाते थे।

कंपित करहि भुविहि पद घाता। चलत करहि समीर तें बाता॥
उन्हहिं पाछ हय अनि उमगानी। गुरुता जासु न जाइ बखानी॥

वे पैरों की धमक से भूमि को कम्पायमान करतें हुए वायु से बाते करते हुए चलते हैं। उन हाथियों के पीछे-पीछे ही अश्वसेना निकली, जिसकी विशालता का वर्णन नहीं किया जा सकता।

पवन सरिस जिन्हँ गति न कहाती। निकसे हय अस नाना जाती॥
ससि सम स्वेत कछुक अरुनारे। चित्तिदार हय कछु मतवारे॥

पवन के समान जिनकी गति का वर्णन नहीं किया जा सकता, सेना के साथ ऐसे अनेक जातियों के अश्व निकले। कुछ अश्व श्वेत, तो कुछ लाल और कुछ मतवाले अश्व चित्तिदार थे।

पुरटबरन कछु हय हरिआरे। कछु पाबस मेहन्ह सम कारे॥
बहुतक पीत प्रसून कपासा। कछु कर पदुमराग परिहासा॥

कुछ अश्व स्वर्णवर्णी, कुछ हरे और कुछ वर्षाकालीन मेघों के समान श्याम थे। बहुत से अश्व कपास के पुष्प के समान पीले रङ्ग के थे और कुछ अश्व पद्मराग मणि की आभा से युक्त हैं।

पुरट हार मनिमाल सुहाए। नाचत इत उत लोलहि छाए॥
सिरु चामर सुषमित मुख चारू। नाघि सकहि अति अगम पहारू॥

स्वर्णहारों व मणियों की मालाओं को धारण किये, वे अश्व अपनी चपलता से इधर-उधर नाच रहे हैं। सिर पर चामर धरे, उनके मुख सुन्दर थे, जो बड़े दुर्गम पर्वतों को भी लाँघ सकते थे।

एहि प्रकार जग जीतन लागी। चलि जदु सेन उमंगहुँ पागी॥
पुर बाहेर जुरि कटकु गभीरा। जेहिं सेनप मनसिज रनुधीरा॥

इस प्रकार दिग्विजय करनें के निमित्त यादवसेना उमंग में भरकर चली। नगर के बाहर बड़ी ही भारी सेना एकत्र हो गई, जिसके सेनापति रणधीर प्रद्युम्न थे।

दोहा- **सीलसिन्धु हरि मलय मनु दिसिजय लच्छ बुझान।**
उग्रसेन बलदाउ सँग आए अनि समुहान॥२४॥

फिर शील के समुद्र और चन्दन के समान शीतल मनवाले भगवान श्रीकृष्ण महाराज उग्रसेन व बलदाऊ के साथ इस दिग्विजय-यात्रा का उद्देश्य समझाने के लिये उस सेना के सन्मुख पधारे।

चौ.- सुनु सुत समर सदा दुखकारी। मानउ जाति केर रिपु भारी॥
यह अनिबर्य न प्रति थिति माहीं। केउ निरदोषहिं छोरत नाहीं॥

उन्होंने कहा- हे वत्स! युद्ध सदैव ही दुःखदायक और मानवजाति का महान शत्रु होता है। यह प्रत्येक परिस्थिति में अनिवार्य नहीं होता, क्योंकि ये किसी निर्दोष को भी नहीं छोड़ता।

सस्त्री हित जे बेद बखाना। कउँ सुत सो आचरन महाना॥
धरमवान नर अहमिति प्रेरा। करत प्रदर्सन नहिं बलु केरा॥

हे पुत्र! शस्त्रधारी मनुष्य के लिये वेदों ने जो महान आचरण कहा है, उसे मैं तुमसे कहता हूँ। धर्मज्ञ मनुष्य अपने अहङ्कार से प्रेरित होकर अपने बल का प्रदर्शन नहीं करते।

किन्नर प्रनत बृद्ध पसु नारी। बालक निद्रानिरत दुखारी॥
रिपु सभीत मुरछित मतवारा। बाँवर असौधान रनु हारा॥

किन्नर, शरणागत, वृद्ध, पशु, स्त्री, बालक, सोया हुआ, दुःखी, भयभीत शत्रु, मूर्छित, मद में चूर, पागल, असावधान और युद्ध में हारा हुआ (शत्रु)

छमा जोग ए चौदह प्रानी। कीन्हिसि मकु इन्हँ धरम गलानी॥
जगत उदारबाद अति नीका। होत जाहिं तें सुभ सबही का॥

ये चौदह प्राणी क्षमा कर देने के योग्य होते हैं, फिर भले ही उन्होंने अधर्म किया हो। संसार में उदारवाद की नीति बड़ी ही उत्तम होती है, जिससे सभी का हित ही होता है।

तातें अस अपराधिन्हँ लागी। नेमिअ दंड कठिनता त्यागी॥

इसलिये ऐसे अपराधियों के लिये कठोरता का त्याग करके दण्ड निश्चित किया जाना चाहिये।

दोहा- सुत उदारता सान्तिप्रद सान्ति उन्नतिहि माइ।
उन्नति करि नर पावहिं जिअनि कला निपुनाइ॥२५॥

हे पुत्र! उदारता शान्ति प्रदान करती है, शान्ति उन्नति की जननी होती है और उन्नति करके मनुष्य जीवन जीने की कला में निपुणता प्राप्त करता है।

चौ.- लच्छ एक दिसिजय अभियाना। सबबिधि मनुज धरम परित्राना॥
जाकें राज प्रजहि दुख भारी। भ्रष्ट जाहिं सासन अधिकारी॥

हमारे इस दिग्विजय अभियान का एक ही लक्ष्य है कि सब प्रकार से मानवधर्म का उद्धार हो। जिसके राज्य में प्रजा को महान दुःख प्राप्त होता हो और जहाँ के राज्याधिकारी भ्रष्ट हों,

जेइ पुर गुर अरु बैद कठोरा। परिहरि धरम करहि अघ घोरा॥
सैनिक पीरहि जहँ निरदोषा। अनुचर प्रजा केर कर रोषा॥

जिस नगर में गुरु व चिकित्सक कठोर हों और धर्म त्यागकर महान पाप किया करते हों, जिस राज्य में सैनिक निर्दोषों को दुःख देते हों और जहाँ प्रजा के सेवक प्रजा पर क्रोध करते हों,

जहाँ बालश्रम सिसु बध होई। बूढ़न्ह जहँ पालहि नहिं कोई॥

तिय सोसन जहँ नाना भाँती। गुन न पुजाहि तासु नर जाती॥

जहाँ बालश्रम हो व शिशुओं का वध होता हो, जहाँ वृद्धों का कोई पालन न करता हो, जहाँ स्त्री का बहुत प्रकार से शोषण होता हो और पुरुषों में उसके गुण नहीं पूजे जाते हों।

राज सचिव जहँ धन पद लोभा। राजधरम निदरहि बिनु छोभा॥
राजकर्मि स्वारथि अतिचारी। सेव लागि धन माँगहि भारी॥

जहाँ राजा के मन्त्री धन व पद के लोभ में पड़कर बिना किसी क्षोभ के राजधर्म का निरादर करते हों, जहाँ स्वार्थी व अत्याचारी राज्यकर्मी प्रजा से सेवा करनें के बदले भारी धन माँगते हों,

श्रमिक कृषक अरु सिल्पि समाजा। दारुन दुख पावहिं जिन्हँ राजा॥
तरकत लोलुप बनिक बिपारहि। इन्ह छलि चापहि रिनु कर भारहि॥

जिसके राज्य में श्रमिक, कृषक और शिल्पियों का समुदाय महान दुःख पाता हो और तर्क करते हुए वणिक व व्यापारी कपटपूर्वक इन्हें कर व ऋण के भार के नीचे दबा देते हों।

पुनि सोइ धनहिं धरम करि नाना। आडम्बर जहँ होइ महाना॥
जहँ अनुचित कर प्रजा दुखारी। बढ़े जहाँ खल चोर जुआरी॥

पीछे उसी धन से अनेक धर्ममय कार्य करते हुए, जहाँ बड़े-बड़े आडम्बर होते हों, राजा के द्वारा लगाए गए अनुचित करों से जहाँ प्रजा दुःखी हो और जहाँ दुष्ट, चोर व जुआरी बढ़ गए हों,

निज निज धरमन्ह देत दुहाई। जहँ कर उपद्रव नर समुदाई॥
धेनु दरिद्र जहाँ दुख पावही। पाहरु कहँ जहँ चोर डेरावही॥

जहाँ अपने-अपने धर्मों की दुहाई देते हुए मनुष्यों के समुदाय उपद्रव किया करते हों। जहाँ गाय और दरिद्र मनुष्य दुःख पाते हों और जहाँ चोर मिलकर रक्षकों को डराते हों।

दोहा- **अस पुर महुँ नय नीति तें अथवा किए चढ़ाइ।**
करेसु मनुज कल्यानु सुत खलन्ह कुराज नसाइ॥२६॥

हे पुत्र! ऐसे नगरों में विनम्रता की नीति से अथवा चढ़ाई करते हुए, दुष्टों के कुराज्य को नष्ट करके, तुम मानवता का कल्याण करना और

चौ.- **जाकें राज न अस अतिचारा। करेसु न ताकर कवन बिगारा॥**
उन्ह निर्भय करि पुनि फिरि आवौ। सान्ति केर सुभ खबरि सुनावौ॥

जिसके राज्य में इस प्रकार का अत्याचार नहीं है, उनका कुछ भी अहित न करना। उन्हें निर्भय करके, फिर लौट आना और शान्ति का शुभ सन्देश सुनाना।

सान्ति हेतु यह समर अपारा। भलीभाँति सुत मोहि स्वीकारा॥
जे पुर जीतहुँ तुम रनु माहीं। तहँ कइ प्रजहुँ प्रतारेसु नाहीं॥

हे पुत्र! शान्ति-स्थापना के लिये भली-प्रकार मुझे यह महायुद्ध भी स्वीकार है। युद्ध में तुम जिस राज्य को जीतो, वहाँ की प्रजा को कष्ट न देना।

जे जारहि सुत सदन बिराने। धरमहीन जिन्हँ कृत मनमाने॥
जे पर खेत तियहि हरि लेही। जे भेषज महुँ माहुर देही॥

हे पुत्र! जो पराये घरों को जलाते हैं, जो धर्महीन और मनमाना आचरण करनेवाले हैं, जो पराये खेत और पराई स्त्री को हर लेते हैं, जो औषधी में विष मिलाकर दे देते हैं,

जे पर संपति लखि हिय जरही। जे अनुचित धन तें घर भरही॥
अस खल तनय प्रतारन जोगा। इन्हहि बधे न लाग अघ रोगा॥

जो पराई सम्पदा को देखकर ईर्ष्या करते हैं और जो अधर्मपूर्वक अर्जित धन से घर भरते हैं, हे पुत्र! ऐसे दुष्ट दण्ड देने योग्य ही होते हैं। इनका वध करने पर पापरूपी रोग नहीं लगता।

अनाचार केइ पुर को आहीं। तदुप सुतहिं हरि दीन्ह बुझाहीं॥

तदुपरान्त किस नगर में क्या अनाचार है, यह बात श्रीहरि ने अपने पुत्र को समझा दी।

दोहा- **राजधरम मानव धरम बहुरि समन्वित गाइ।**
धरम सान्ति थापनहि हरि सुत कहँ दीन्ह पठाइ॥२७॥

फिर राजधर्म और मानवता दोनों को समन्वितरूप से समझाकर इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने अपने पुत्र प्रद्युम्न को धर्म और शान्ति की स्थापना के लिये भेज दिया।

चौ.- **सक्र केर रथ चढ़ि अनि संगा। कच्छ गए हरि सरिस अनंगा॥**
सुभ्र तासु नृप अति हरषाई। सनमुख गयउ सुभेंट सजाई॥

इन्द्र के दिये रथ पर चढ़कर और सेना साथ लेकर प्रद्युम्न सिंह के समान कच्छ नामक देश को गए। वहाँ का राजा शुभ्र अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भेंट सजाकर प्रद्युम्न के सन्मुख गया।

हरषि प्रदुम्न अभय तेहिं दीन्हा। बहुरि कलिंग गवन अनि कीन्हा॥
सुनि कलिंगपति जदु अनि आई। प्रति उत्तर हित सेन सजाई॥

तब प्रद्युम्न ने प्रसन्न हो उसे अभय कर दिया और वहाँ से सेना सहित कलिङ्ग को प्रस्थान किया। कलिङ्गराज ने यादव सेना का आगमन सुना तब उसने उनके विरुद्ध सेना सजा ली।

गज चढ़ि खल आयुध गहि नाना। गर्जेउँ घन इव रिपु समुहाना॥
सुनि अनिरुद्ध क्रुद्ध धनु धारी। भए ताहि सनमुख रिस भारी॥

फिर वह दुष्ट बहुत-से अस्त्र-शस्त्र लिये हाथी पर चढ़कर शत्रु के सन्मुख गया और मेघ के समान गर्जा। उसे गरजता देखकर अत्यधिक क्रोधित हुए अनिरुद्ध धनुष लेकर सन्मुख गए।

पुनि सर बिषम पिनाक चढ़ाए। छूटत काल सरिस जे धाए॥
कटि कटि भट पर धरनि उछंगा। करइ जतन पुनि रहे अपंगा॥

फिर उन्होंने धनुष पर कठिन बाण सन्धाने, जो छूटते ही काल के समान दौड़े। उनसे पीड़ित शत्रु योद्धा कट-कटकर भूमि पर गिरने लगे और जो अपङ्ग हो गए थे वे पुनः उठकर युद्ध करते हैं।

सर आवत लखि आपन आसा। कछु भट भाजि चले अति त्रासा॥

कुछ योद्धा बाणों को अपनी ओर आते देख अत्यन्त भयभीत होकर भाग चले।

दोहा- अनिरुध मारे प्रति रथिहिं तकि तकि दस दस बान।
सत सर मारि कलिगपतिहि तासु धीर बिचलान॥२८॥

अनिरुद्ध ने प्रत्येक रथी को तक-तककर दस-दस बाण मारे। फिर सौ बाण मारकर कलिङ्गराज का धैर्य भी विचलित कर दिया।

चौ.- निज बाहिनिहुँ पलायन पाई। पुनि गज चढ़ि तें फिरेउँ रिसाई॥
बज्र सरिस निज गदा भँवाई। मर्दन मनसिज सुतहिं चलाई॥

अपनी सेना का पतन होता हुआ देख वह अत्यन्त क्रोधित हो हाथी पर चढ़कर पुनः लौटा। फिर उसने वज्र जैसी कठोर गदा घुमाकर अनिरुद्ध का वध करने के लिये उनकी ओर चलाई।

तब अनिरुध परे चेत बिहाना। लखि कलिंगपति अति हरषाना॥
नागानुज गद गदा सँभारी। कुपित खलहिं नागउ सिरु मारी॥

गदा के उस आघात से अनिरुद्ध मूर्छित हो गिर पड़े। यह देख कलिङ्गराज अत्यन्त हर्षित हुआ। तब गद ने कुपित होकर कलिङ्गराज के हाथी के कुम्भस्थल पर गदा का आघात किया।

अरध इन्दु सर पुनि तेहिं मारा। खल महि ढरकेउ जासु प्रहारा॥
भिरे जुगल जोधा पुनि धाई। सम बल बयस समान सुहाई॥

फिर उन्होंने उसे एक अर्द्धचन्द्राकार बाण मारा, जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर वे योद्धा दौड़कर पुनः भिड़ गये। बल में दोनों सम थे और उनकी अवस्था भी समान ही शोभित थी।

ढन ढन बाजति गदा कठोरा। चूरन भई बिथुरि चहुँ ओरा॥
तब गद गहि तेहिं महितल पारा। मुख तें फूटि परी लहु धारा॥

उनकी कठोर गदाएँ ढनढन का शब्द करती टूटकर चूर्ण हो चारों ओर बिखर गई। तब गद ने उसे उठाकर पृथ्वी पर पछाड़ दिया, जिससे उसका मुख फूट गया और उससे रक्त निकल पड़ा।

दोहा- तब सभीत करि भेंट बहु सरन ताकि तेहिं काम।
अभय देत सम्बर दवन गवने गय के धाम॥२९॥

तब वह अत्यन्त भयभीत होकर बहुत प्रकार से भेंट सजाकर प्रद्युम्न की शरण में गया। यह देखकर शम्बरारि प्रद्युम्न उसे अभय देकर गय नामक राजा के नगर की ओर गए।

चौ.- गिरि प्रदेस मरुधन रजधानी। गय असंक जहँ बसहि गुमानी॥
सम्बरारि तहँ दूत पठावा। आपन दिसि जय लच्छ जनावा॥

मरुधन्व नामक वह देश पर्वत की तराई में बसा था, जहाँ वह अभिमानी गय निडर होकर बसता था। प्रद्युम्न ने वहाँ दूत भेजा और अपनी दिग्विजय यात्रा का उद्देश्य उसे विदित कराया।

गय मदांध तेहिं पाछे फेरा। कहत उगर कहँ ग्वालन्हँ चेरा॥
तब खलारिसुत कीन्हि चढ़ाई। इहि बिधि दुहु दल परी लराई॥

किन्तु अभिमान में अन्धे गय ने उग्रसेन को ग्वालों का दास कहकर दूत को वापस लौटा दिया। तब प्रद्युम्न ने उसके नगर पर आक्रमण कर दिया, इस प्रकार दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ गया।

जदुन्ह केर बिपलव अति पाई। गय बाहिनि चलि तुरत पराई॥
तब अकेल गय धनुष सँभारी। जदुन्ह कटकु हति लाग पचारी॥

यादवों का अत्यन्त कठोर आक्रमण पाकर गय की सेना तुरन्त ही भाग चली। तब गय अकेला ही धनुष लेकर और ललकार कर यादवसेना का संहार करने लगा।

दीप्तिमान जे कृष्नकुमारा। रिपु सन भए करत ललकारा॥
मारि बिषम सर धुजा निपाती। पुनि सर भै हय सारथि घाती॥

यह देख श्रीकृष्णनन्दन दीप्तिमान शत्रु को ललकारते हुए उसके सन्मुख पहुँचे, फिर कठिन बाणों से उन्होंने गय के रथ की ध्वजा काट दी। तदुपरान्त उनके बाणों से गय का सारथी व घोड़े मारे गये।

बहुरि मारि सर बीस करारा। रथहुँ सहित तेहिं भुवितल पारा॥
सत सर मारि पिनाक निपाता। खंडेउँ हृदयत्रान करि घाता॥

फिर उन्होंने बीस कठोर बाण मारकर रथ सहित उसे पृथ्वीतल पर पटक दिया। सौ बाणों से उसका धनुष तोड़कर फिर उसके हृदय को लक्ष्य करके, उसका कवच भी नष्ट कर दिया।

दोहा- गय रिसाइ गहि अपर धनु छारे बिसिख कराल।
दीप्तिमान कहँ तेहिं बिकल कछुक कीन्ह तेहिं काल॥३०॥

तब गय ने क्रोधित होकर दूसरा धनुष लिया और विकराल बाण छोड़े, उस समय उसने दीप्तिमान को कुछ क्षण के लिये व्याकुल कर दिया।

चौ.- पुनि घननाद करत अनि आसा। धावा जदपि हृदय जदु त्रासा॥
इत मुरुछागत कान्हँकुमारा। भै पुनि समुख करत ललकारा॥

फिर मेघ-सा गरजता हुआ वह यदुसेना की ओर दौड़ा। यद्यपि उसके हृदय में यादवों का भय था। इधर मुरछा टूटनें पर दीप्तिमान ललकारते हुए पुनः शत्रु के सन्मुख जा डटे।

दारुन सकति पिनाक चढ़ाई। उन्ह बहोरि गय आस चलाई॥
पन्नगि सरिस परम दुखकारी। सो दुतिमान सकति अति भारी॥

फिर उन्होंने एक भयङ्कर शक्ति अपने धनुष पर चढ़ाई और उसे गय की ओर चला दी। पन्नगी नामक सर्पास्त्र के समान महादुःखदायिनी वह तेजपुञ्ज और कठोर शक्ति

उर लगि गयहु महादुख दीन्हा। रक्तपान करि मुरुछित कीन्हा॥
पास बाँधि तब तेहिं दुतिमाना। ले आनेउँ मनसिज समुहाना॥

गय के हृदय में जा लगी जिससे उसे महान पीड़ा हुई। फिर उस शक्ति ने उसका रक्तपान करके, उसे मूर्छित कर दिया। तब दीप्तिमान उसे पाश में बाँध कर प्रद्युम्न के सन्मुख ले आए।

सम्बरारि पद पूजि बहोरी। गय तब भेंट दीन्ह कर जोरी॥

तदुप उजैनि महिषमति जाई। सादर काम भेंट बहु पाई॥

तब गय ने शम्बरारि प्रद्युम्न के चरणों का पूजन करके, हाथ जोड़कर उन्हें भेंट दी। तदुपरान्त उज्जयिनी व माहिष्मति नामक नगरों में जाकर प्रद्युम्न ने आदरपूर्वक बहुत-सी भेंट पाई।

कटकु सहित पुनि गै गुजराता। रिष्य नाउँ जाकर नृप ख्याता॥
चेदि देस गवने तेहिं जीता। सबन्हँ भई तहँ प्रीति प्रतीता॥

फिर सेना सहित प्रद्युम्न गुजरात गए, जहाँ का राजा ऋष्य नाम से विख्यात था। उसे जीतकर फिर वे चेदिदेश गए, जहाँ उन्हें प्रेममय वातावरण प्रतीत हुआ।

दोहा- **पर दमघोष नृपति तनय हरि प्रति राखहि रारि।**
सोइ सिसुपाल मिताइ तजि लाग सजावन धारि॥३१॥

किन्तु वहाँ के राजा दमघोष का पुत्र भगवान श्रीकृष्ण के प्रति शत्रु-भाव रखता था। वही शिशुपाल यादवों के प्रति मैत्री त्यागकर सेना सजाने लगा।

चौ.- **जद्यपि पितु तेहिं बहुत बुझावा। पै इरिषांध प्रबोध न पावा॥**
साजि जुजुत्सु बाहिनि बहोरी। चढ़ेहुँ जादवन्ह पर बरजोरी॥

यद्यपि पिता ने उसे बहुत समझाया किन्तु ईर्ष्या में अन्धे शिशुपाल को कुछ भी बोध न हुआ। फिर युद्धाकाङ्क्षी दमघोषनन्दन शिशुपाल ने सेना सजाकर बलपूर्वक यादवों पर आक्रमण कर दिया।

रंग पिंग दुइ सचिव जुझारे। रहे संग बहु आयुध धारे॥
सक्त द्युमान सखा तेहिं केरे। महाबली रनरंग घनेरे॥

रङ्ग और पिङ्ग नाम के उसके दो जुझारु मन्त्री अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण किये उसके साथ थे। शिशुपाल के शक्त और द्युमान नामक दो महाबली मित्र जो युद्धविद्या में निपुण थे,

सठहि सैन निज सेन बढ़ाई। भिरे जादवन्ह तें बरिआई॥
बरषि उभय भट अगनित बाना। जदुन्ह समुख दुरदिन उपजाना॥

उन्होंने मूर्ख शिशुपाल का सङ्केत पाकर अपनी सेना आगे बढ़ाई और बलपूर्वक यादवसेना से जा भिड़े। उन दोनों योद्धाओं ने अनेक बाण बरषाकर यादवों के सन्मुख दुर्दिन खड़ा कर दिया।

दमन चक्र तिन्ह देखि कठोरा। भा अकरुरउँ रोष प्रघोरा॥
बिसिख सहसदस तब उन्ह मारे। छिनु महुँ दुरदिन मूल निबारे॥

उनके द्वारा हुआ भयङ्कर संहार देखकर अक्रूर के हृदय में महान क्रोध हुआ। तब दस हजार बाण मारकर च्चण भर में ही उन्होंने दुर्दिन उपस्थित करनेवाले उन बाणों को नष्ट कर दिया।

दोहा- **तदुप सकति गहि बिषम एक उन्ह दुमान उर मारि।**
जातें खसेहुँ तें धरनि पर कायहुँ चेत बिसारि॥३२॥

तदुपरान्त उन्होंने द्युमान के हृदय में एक विकराल शक्ति मारी, जिससे वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

चौ.- **पुनि जब उठेहुँ गदा गहि भारी। खल अकरुर हृदय तल मारी॥**

उन्ह लखि बिकल धए जुजुधाना। खल सिरु छेदेहुँ एकहि बाना॥

फिर मूर्छा टूटनें पर जब वह उठा तो उसने एक भारी गदा अक्रूर की छाती पर दे मारी। उन्हें व्याकुल हुआ देखकर युयुधान दौड़े और एक ही बाण से उस दुष्ट का सिर काट दिया।

मेघनाद पुनि कीन्हेंसि भारी। सुनि सभीत भजि चलि अरि धारी॥
सक्त बिकल निज दलु जब पावा। साढ़साति इव रनु चढ़ि आवा॥

फिर उन्होंने मेघ के समान गम्भीर गर्जना की, जिसे सुनते-ही भयभीत होकर शत्रु-सेना भाग चली। जब शक्त ने सेना को व्याकुल देखा तो वह शनि की बाधा के समान युद्ध में चढ़ आया।

बहुरि तेहिं कर गहि बिकरारा। जुजुधानोपर सूल प्रहारा॥
किन्तु तुरत सातिकि बरिबंडा। निज सर कीन्ह तासु सत खंडा॥

फिर उसने अपने हाथ में एक शूल लिया और उससे युयुधान पर प्रहार किया, किन्तु उत्तम योद्धा सात्यिकि ने तुरन्त ही अपने बाण से उसके सौ टुकड़े कर दिए।

तब गहि परिघ सक्त अतुराई। मुरुछाँचल तेहिं दीन्ह डँसाई॥
अस अवलोकि बीर कृतबरमा। आइ कीन्ह तहँ अद्भुत करमा॥

तब शक्त ने परिघ लेकर बड़ी ही उतावली से सात्यिकि पर आघात किया और उन्हें मूर्छित कर दिया। यह देखकर वीर कृतवर्मा ने उसके निकट आकर अद्भुत कर्म किया।

निज धनु बिकट सिलीमुख रोपी। सक्तहि रथ भंजेहुँ उर कोपी॥
खल फिरि गदा मारि निज भारी। कृतबरमहि रथ दीन्ह बिडारी॥

उन्होंने अपने धनुष पर कठिन बाणों का सन्धान किया और क्रोध करके, शक्त का रथ तोड़ डाला। तब उस दुष्ट ने पलटकर अपनी कठोर गदा से कृतवर्मा का रथ भी तोड़ डाला।

तब बलपुंज खलउँ दिसि धाई। तेहिं बिसाल भुज लीन्ह उठाई॥

फिर उन महाबली ने उस दुष्ट की ओर दौड़कर उसे अपनी विशाल भुजाओं में उठा लिया।

दोहा– परम कुपित संचारेहुँ नभ दिसि ताहि बहोरि।
तब महि परतहि प्रान तिन्ह गए तासु तन छोरि॥३३॥

फिर अत्यन्त क्रोधित होकर उसे आकाश की ओर उछाल दिया। तब पृथ्वी पर गिरते ही शक्त के प्राण उसके शरीर से निकल गए।

चौ.– बल बिलोकि अस जदुन्ह बिसाला। रंग पिंग प्रेरे सिसुपाला॥
सैन पाइ सायुध करि क्रोधा। काल सरिस धाए दुहुँ जोधा॥

यादवों का ऐसा महापराक्रम देख शिशुपाल ने रङ्ग और पिङ्ग नामक मन्त्रियों को शत्रु के सन्मुख भेजा। सङ्केत पाते ही वे दोनों योद्धा शस्त्र लिये, क्रोधित होकर काल के समान दौड़े।

आवत लखि उन्ह सरिस कृषानू। पथ रोधेहुँ रिपुसूदन भानू॥
तेहिं सव जे जे भट समुहाने। असि प्रहारि सब उन्ह बिनसाने॥

उन्हें अपनी सेना की ओर अग्नि के समान बढ़ता देख शत्रुहन्ता भानु ने उनका मार्ग रोक लिया। जो दूसरे योद्धा उनके सन्मुख आए उन्हें उन्होंने अपनी तलवार से नष्ट कर दिया।

एहिबिधि मारग सूल नसाई। चढ़े तें रंग पिंग पर जाई॥
पितु प्रदत्त पुनि गहि तरवारा। भानु तेन्ह रथ तुरत निबारा॥

इस प्रकार मार्ग में पड़नेवाली बाधा को नष्ट करके, उन्होंने रङ्ग पिङ्ग पर आक्रमण कर दिया। फिर अपने पिता भगवान श्रीकृष्ण की दी हुई तलवार से भानु ने तुरन्त ही उनके रथ तोड़ दिए।

निज निज असि तब खलन्ह चलाई। किन्तु कृष्नसुत ढाल जिराई॥
असि प्रहार करि उन्ह पुनि एकउँ। मूलक इव खंडे सिरु दूनउँ॥

तब उन दुष्टों ने अपनी-अपनी तलवारें चलाई, किन्तु श्रीकृष्णनन्दन ने उन्हें ढाल पर रोक लिया। फिर उन्होंने तलवार के एक ही प्रहार से उन दोनों के सिर मूली के समान काट दिए।

दुदुंभि हनि घन भानु बहोरी। मार समुख गवने कर जोरी॥

फिर सघन ध्वनि से दुन्दुभी बजाकर भानु हाथ जोड़कर प्रद्युम्न के सन्मुख गए।

दोहा- धुआँ देखि सिसुपाल उन्ह पुनि अरिबल अनुमानि।
चला पनच परतारि अनि तिन्हँ पाछे उमगानि॥३४॥

उनका वध हुआ देखकर और शत्रु के बल का अनुमान करके शिशुपाल अपने धनुष की प्रत्यञ्चा की टङ्कार करता हुआ युद्ध में आगे बढ़ा और उसकी सेना उसके पीछे-पीछे उमड़ चली।

चौ.- जलदनाद करि बारहि बारा। करि लग कठिन पिनाक टँकारा॥
सेन सहित तेहिं आवत पाई। मार लाग सुभटन्ह समुझाई॥

मेघ के समान बार-बार गम्भीर गर्जन करके वह अपने कठोर धनुष की टङ्कार करने लगा। सेना सहित उसे आते हुए देखकर प्रद्युम्न अपने उत्तम योद्धाओं को समझाने लगे-

बंधु करेहुँ तैं कटकु सँभारा। मैं करुँ तासु दम्भ संघारा॥
अस कहि मार चले रथ सोई। सुरपति दीन्ह चलत उन्ह जोई॥

हे भाइयों! तुम सेना को सँभालना, मैं जाकर उस दुष्ट के अहङ्कार को नष्ट करता हूँ। ऐसा कहकर प्रद्युम्न उस रथ में सवार होकर चले, जो चलते समय उन्हें देवराज इन्द्र ने दिया था।

जातहि बिजय कंबु उन्ह फूँका। सुनि अरि धीरज भा दुइ टूका॥
बहुतक भजे तेहिं सव सुनतहि। कछुक रहे हिय धीर किंतु नहिं॥

शत्रु के सन्मुख जाते ही उन्होंने विजय नामक अपना शङ्ख बजाया, जिसकी ध्वनि सुनकर शत्रुसेना का धैर्य नष्ट हो गया। उस ध्वनि को सुनते-ही बहुत से तो उसी समय भाग छूटे और कुछ वहाँ डटे रहे किन्तु उनके हृदय में धैर्य नहीं था।

ऐते पर खल कटकु महाना। अगम लाग रनिवास समाना॥
सो तेहिं भेदन पनच चढ़ाई। मदन बरषि लग सर समुदाई॥

इतने पर भी उस दुष्ट की सेना किसी राजप्रासाद के समान दुर्गम जान पड़ती थी। अतः उसे भेदने के लिये अपने धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाकर प्रद्युम्न बाण समूह बरसानें लगे।

क.- सर समुदाइ इत उत हरि नाइ धाइ, भट बनचर खाइ खाइ भय बाएहुँ।
भुज कटे मुंड कटे रुंड दुइ खंड बँटे, भागु भागु संबरारि लल्हाटि मचाएहुँ॥

तब सिसुपाल सेन त्रान ब्रम्हबान हेरौ, जेहिं दत्तात्रेय तेहिं पूरब सिखाएहुँ।
बारह तरनि कर तेज मुखबिन्दु धरि, अस्त्र सो प्रद्युम्न दिसि रिस करि धाएहु॥

उन बाण-समूहों ने दौड़कर यहाँ-वहाँ सिंह के समान योद्धारूपी वन्य-पशुओं को खा-खाकर महान भय उत्पन्न कर दिया। भुजाएँ कट गई, सिर कट गए और कितनों ही के धड़ों के दो टुकड़े हो गए। इस प्रकार शम्बरारि प्रद्युम्न ने शत्रु सैनिकों के मुख से भागो-भागो यह कहलवाकर कोहराम मचा दिया। तब शिशुपाल ने अपनी सेना की रक्षा करने के लिये ब्रह्मास्त्र का आह्वान किया, जो पूर्वकाल में दत्तात्रेयजी ने उसे दिया था। तब अपने मुख की नोक पर बारह सूर्यों जितना तेज धारण करके, वह महाअस्त्र क्रोधपूर्वक प्रद्युम्न की ओर दौड़ा।

दोहा- **तब प्रदुम्न अपि छाड़ेहुँ ब्रम्हबान बिकराल।**
जेहिं काटेहुँ सो सायक तेहिं चितवत ततकाल॥३५॥

तब प्रद्युम्न ने भी भयङ्कर ब्रम्हास्त्र का प्रयोग किया, जिसनें शिशुपाल के देखते हुए ही उसके ब्रह्मास्त्र को उसी समय काट दिया।

चौ.- **तब सिसुपाल बिसिख अस मारा। बरषि लाग रनु जे अंगारा॥**
तेहिं प्रभाउ उन्ह अनि जरि लागी। दिसि अरु बिदिसि बिकल चलि भागी॥

तब शिशुपाल ने एक ऐसा बाण मारा जो युद्धभूमि में अङ्गारे बरसाने लगा। उसके प्रभाव से यादव सेना जलनें लगी और व्याकुल होकर दिशाओं-विदिशाओं में भाग चली।

तब परजन्यबान धनु लाई। मयन जलद नभ दीन्ह उगाई॥
बरषत जेन्ह मोटि जलधारा। छिनु महुँ अग्निबान संघारा॥

तब प्रद्युम्न ने अपने धनुष पर पर्जन्यास्त्र चढ़ाकर आकाश में जलयुक्त मेघ प्रकट कर दिये, जिन्होंने जल की मोटी-मोटी धाराएँ बरसाकर क्षणभर में ही अग्निबाण को नष्ट कर दिया।

लखि दमघोषतनय करि कोपा। कठिन गजास्त्र मार अनि रोपा॥
तब जहँ तहँ अगनित बिकराला। उए मत्त गज परम बिसाला॥

यह देख क्रुद्ध हुए दमघोषनन्दन शिशुपाल ने भयानक गज नामक दिव्यास्त्र का प्रयोग किया। तब युद्धभूमि में जहाँ-तहाँ करोड़ो विकराल, उन्मत्त और अत्यन्त विशाल गजराज प्रकट हो गए।

पदन्हँ रौंधि उन्ह जदु बल भंगा। तट ताड़े जनु जलधि तरंगा॥
एहिबिधि करि पद सूँड चपेटा। खाइ लाग कंदर्पउँ खेटा॥

फिर उन्होंने अपने पैरों के तले रौंधकर यादवों के बल को नष्ट कर दिया, मानों समुद्र की कठोर तरङ्गों ने आघात से उसके किनारों को व्याकुल कर दिया हो। इस प्रकार अपने पैरों और विशाल सूँड़ों के चपेटों से यादवों को मार-मारकर वे महागजराज प्रद्युम्न को उकसानें लगे।

देखि तासु पद निज दल घाता। परम क्रुद्ध भै जदु सुखदाता॥
पुनि उन्ह धानेउँ नरहरि बाना। रनु प्रगटान नृसिंह भगवाना॥

उनके पैरों से अपनी सेना का विध्वंश होते देखकर यादवों को सुख देनेंवाले प्रद्युम्न अत्यन्त क्रोधित हो उठे और उन्होंने नृसिंहास्त्र का सन्धान करके युद्धभूमि में भगवान नृसिंह को प्रकट कर दिया

छन्द- **नरहरि प्रगट भए समर महुँ अरु मेघगर्जन करि लगे।**
उन्ह बिषम नख अरु दसन लखि गजराज डरपत चलि भगे॥
भागत गजन्हँ धरि धरि नृसिंह करि कोप महि पटकत भए।
नख फारि कुभन्हँ भच्छि बहुतक भाँति एहि सब गज हए॥

भगवान नृसिंह युद्धभूमि में प्रकट हुए और मेघ के समान गर्जना करने लगे। उनके कठोर नखों और दाँतों को देखकर वे उन्मत्त गजराज भयभीत होकर भाग चले। तब भागते हुए उन हाथियों को भगवान नृसिंह क्रुद्ध हो पकड़-पकड़कर पृथ्वी पर पटकनें लगे। फिर उन्होंने अपने नखों से कितनों ही के ललाट फाड़ दिये और बहुतों को पकड़-पकड़कर खा गए, इस प्रकार उन्होंने समस्त हाथियों को मार डाला।

दोहा- **गज निदान लखि जदुन्ह अनि पुनि सरोष चढ़ि आइ।**
लखि जय आसा बिसरि खल छारेहुं परिघ रिसाइ॥३६॥

हाथियों को नष्ट हुआ देखकर यादवसेना पुनः क्रोध करके, युद्धभूमि में चढ़ आई यह देखकर शिशुपाल ने विजय की आसा त्याग दी और क्रुद्ध होकर परिघ चलाया।

चौ.- **काम परन्तु मारि जमदंडा। कीन्हें बेगि परिघ कर खंडा॥**
तदुप निकट अति खल कर जाई। बाधेउँ बरुन पास बरिआई॥

किन्तु प्रद्युम्न ने यमदण्ड का प्रयोग करके, तुरन्त ही उस परिघ के टुकड़े कर दिए। तदुपरान्त उस दुष्ट के अत्यन्त निकट जाकर उन्होंने बलपूर्वक उसे वरुण पाश में बाँध लिया।

बहुरि घसीटत महि रिस पागे। तेहिं असि गहि जब मारन लागे॥
तब रोहिनिनंदन गद धाई। बरजि हाथ गहि लाग बुझाई॥

फिर क्रोधित हुए प्रद्युम्न उसे पृथ्वी पर घसीटते हुए तलवार लेकर जब उसका वध करने लगे, तब रोहिणीनन्दन गद ने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया और रोककर उन्हें समझाने लगे,

बत्स होइ हरि कर एहि घाता। एहि जन्मत सुर कहि असि बाता॥
तातें एहि बधि बिबुधन्ह बचना। करहु न निपट अनृतजुत रचना॥

हे वत्स! इस दुष्ट का वध भगवान श्रीकृष्ण के हाथों होगा, इसके जन्म के समय देवताओं ने ऐसा कहा था। इसलिये अब तुम देवताओं की बात को नितान्त असत्ययुक्त सिद्ध न करो।

ऐतनेहुँ अए तहाँ दमघोषा। गहि बहु द्रव्य भेंट सहरोषा॥
निरखि धरनि धरि आयुध भारा। लगे तासु पद सबिनय मारा॥

इतने ही में हर्षपूर्वक भेंट में बहुत-सा द्रव्य लेकर चेदिदेश के राजा दमघोष वहाँ आ गए। उन्हें आया देख शस्त्र भूमि पर रखकर प्रद्युम्न ने विनम्रतापूर्वक उनके चरणों में प्रणाम किया।

दोहा- **पाइ सुभासिस मार तब परिहरेहुं सिसुपाल।**
पुनि ससेन तहँ तें गए करुष देस तेहिं काल॥३७॥ (क)

उनका आशीर्वाद पाकर प्रद्युम्न ने शिशुपाल को मुक्त कर दिया और उसी समय सेना सहित वे वहाँ से करुष देश को गए।

श्रुतदेवा बसुधौ भगिनि बृधसरमा पति जासु।
करुषराज तें रहेउ नृप दन्तबक्र सुत तासु॥३७॥ (ख)

हे परीक्षित! वसुदेवजी की श्रुतदेवा नामक एक बहन थी, जिनके पति का नाम वृद्धशर्मा था। वे करुष देश के राजा थे तथा दन्तवक्र उनका पुत्र था।

चौ.- **दन्तबक्र सो रहा अभिमानी। तेहिं जब जदु अनि आवत जानी॥**
तेपि दर्पि सिसुपाल समाना। जुद्ध बिचार हृदय निज ठाना॥

वह दन्तवक्र बड़ा अभिमानी था, जब यादव सेना को आते जाना तब उसने भी अपने मन में शिशुपाल के समान दर्प करके, उनसे युद्ध करने की ठानी।

असुरबृत्ति प्रति तेहिं अनुरागा। गनइ कृष्न कहँ सत्रु अभागा॥
पुनि तृन तूल जानि जदु जोधा। चला गदा गहि करि अति क्रोधा॥

उसके हृदय में आसुरीप्रवृत्ति के प्रति प्रेम था और वह अभागा श्रीकृष्ण को अपना शत्रु मानता था। वही दन्तवक्र यादव योद्धाओं को तिनके के समान समझकर गदा ले अत्यन्त क्रुद्ध होकर चला।

कज्जल बपु उन्नत दस ताला। बदनु बिकट लोयन बिकराला॥
चलत प्रचंड भार सो अभागा। बसुधा कहँ कंपावन लागा॥

उसका काजल जैसा काला शरीर ताड़ के दस वृक्षों जितना ऊँचा था। उसका मुख विकट और नेत्र विकराल थे। चलते समय अपने महान भार से वह अभागा पृथ्वी को कम्पित करने लगा।

गदहि अरिबधिक सो बलवाना। दुरजय लखि पर काल समाना॥
समर लागि तेहिं आवत पाई। मार तासु प्रति फौज रेंगाई॥

गदा के प्रहार से शत्रुओं का वध करनेवाला वह बलवान योद्धा यम के समान दुर्जय दिखाई पड़ता था। उसे युद्ध की इच्छा से आता जानकर प्रद्युम्न ने सेना को उसकी ओर बढ़ाया।

दोहा- **घेरि तेहिं जदु बरिषि लगे सायक भल्ल कुठार।**
सकल कुकृत फलु जीव पर मिलि कर मनहुँ प्रहार॥३८॥

तब यादव सेना उसे घेर कर उस पर बाण, भाले और फरसे बरसाने लगी; मानों जीव के द्वारा किये गए समस्त कुकर्मों के फल मिलकर उस (जीव) पर प्रहार कर रहें हों।

चौ.- **सहत ब्याल सम बिषजुत बाना। तनक न रनु प्रमत्त बिचलाना॥**
फिरि क्रोधातुर भुजा पसारी। लागा तें अरि कटकु बिडारी॥

सर्प के समान विषैले बाणों को सहकर भी युद्धदुर्मद वह योद्धा जरा भी विचलित न हुआ। फिर उसनें पलटकर भुजाएँ फैला ली और अत्यन्त क्रोध करके, शत्रुसेना को विदीर्ण करने लगा।

गदा मारि दुहुँ कर पुरजोरे। बहुतक गजन्हँ कुम्भ तेहिं फोरे॥
कछु गजराजन्ह लात प्रहारी। इत उत दीन्ह भूमितल पारी॥

उसने दोनों हाथों से पूरी शक्ति लगाकर गदा का प्रहार करके, बहुत से हाथियों के मस्तक फोड़ दिए। फिर अपनी लात के आघात से कुछ हाथियों को यहाँ-वहाँ भूमि पर पटक दिया।

रथ हय गय समेत असवारे। गहि कछु तेहिं गगन संचारे॥
तहँ तें परत सुभट रुच कैसे। धूमकेतु नभ तें खस जैसे॥

कुछ रथों, हाथियों और घोड़ों को सञ्चालकों सहित उठाकर उसने आकाश में उछाल दिया। वहाँ से गिरते समय वे योद्धा कैसे शोभा देते हैं; जैसे आकाश से टूटकर पुच्छल तारे गिर रहे हों।

बल बिलोकि ताकर एहिंभाँती। भागिसि मैनु कटकु बिचलाती॥
रोहिनिसुत सारन तब धायो। तापर तरल कुठार चलायो॥

उसका इस प्रकार का बल देखकर प्रद्युम्न की सेना विचलित होकर भाग चली। तब रोहिणीनन्दन शारण ने दौड़कर उस पर चमचमाता हुआ फरसा चलाया।

कृतबरमा सर तिन्ह उर भेदा। असि तें सातिकि पुनि तनु छेदा॥
सकति प्रहार कीन्ह अकरुरा। दंतबक्र रनु तद्यपि न मुरा॥

कृतवर्मा ने बाणों से उसका हृदय भेद दिया और सात्यिकि ने तलवार से उसका उसका शरीर छेद दिया। फिर अक्रूर ने उस पर शक्ति से प्रहार किया, किन्तु फिर भी दन्तवक्र विचलित नही हुआ।

तेहिं फिरि भुजन्हँ बेग लपटाई। सारन कहँ महि दीन्ह भँवाई॥

उलटा उसने पलट कर अपनी भुजाओं के वेग में लपेट कर शारण को भूमि पर घुमा दिया।

दोहा- **क्रतबरमहि मारेसि मुठिका गदउँ सातिकिहि तारि।**
अक्रूरहुँ पुनि खबरि तेहिं लीन्हि लात उर मारि॥३९॥

कृतवर्मा को घूँसा मारकर और सात्यिकि को गदा से पीड़ित करके, फिर उसने अक्रूर की छाती पर लात मारकर उनकी खबर ली।

चौ.- **इन्ह चहुँ सुभटन्हँ मुरुछित पाई। धाए रिछपधौत रिस खाई॥**
उरोमध्य पुनि गदा प्रहारी। जातें बिकल भयउँ भट भारी॥

इन चारों योद्धाओं को मूर्छित देखकर ऋक्षराज जामवन्त के दोहित्र साम्ब क्रुद्ध होकर दौड़े और उसकी छाती के बीचों बीच गदा मारी, जिससे उत्तम योद्धा दन्तवक्र अत्यन्त व्याकुल हो गया।

फिरि खल उभय भुजन्ह दइ झटका। सरिस साम्ब कहँ मेदिनि पटका॥
तेपि तुरत उठि कहि बलु ठाटा। धरि पद पट सम ताहि झिकाटा॥

फिर पलटकर उस दुष्ट ने अपनी दोनों भुजाओं से झटका देकर क्रोधपूर्वक साम्ब को पृथ्वी पर पटक दिया। तब उन्होंने भी तुरन्त उठकर उसके पराक्रम की प्रशंसा करते हुए पैर पकड़कर वस्त्र के समान उसे पृथ्वी पर पछाड़ दिया।

जदपि साम्ब तेहिं कीन्ह हतासा। तदपि लाग करि उठि अटहासा॥

सम्बरारि जब भै समुहाई। तब सठ उन्ह अस लाग सुनाई॥

यद्यपि साम्ब ने उसे व्याकुल कर दिया, किन्तु फिर भी वह उठकर अट्टहास करने लगा। फिर जब प्रद्युम्न उसके सन्मुख गये, तब वह मूर्ख उन्हें सुनाकर कहने लगा कि

मैं अकेल तुअ अहहि समूहा। तद्यपि मैं सनमुख रनु जूहा॥
प्रबल परन्तु अरिहि रनु पाई। भागेहुँ पितु तव पीठ देखाई॥

मैं अकेला हूँ और तुम सेना सहित हो, फिर भी मैंने तुमसे सन्मुख होकर युद्ध किया है। किन्तु शत्रु को अत्यधिक बलवान देखकर तुम्हारा पिता पीठ दिखाकर भाग गया था।

पुनि कादर सो नँद चरबाहा। दिग्गबिजय केइ मुख करि चाहा॥
अलपउँ बल तुम अति इतराई। मो सम उदभट कहँ चह पाई॥

फिर वह कायर और नन्द की गाए चरानेंवाला चरवाहा किस मुख से दिग्विजय करना चाहता है। थोड़े ही बल में इतना अधिक इतराकर तुम लोग मुझ उद्भट योद्धा को जीतना चाहते हो।

सहित सहाय किंतु तोहि बाँधी। अबहि देउँ कारागृह साँधी॥
कहा मार सठ बोलु सँभारी। की द्युत मंदिर बात बिसारी॥

किन्तु मैं सहायकों सहित तुझे अभी बाँधकर कारागृह में डाल दूँगा। तब प्रद्युम्न ने कहा- रे मूर्ख! सम्भलकर बोल। क्या तू द्युतक्रीड़ाभवन का प्रसङ्ग भूल गया?

दाउँ हाथ जहँ दसन गँवाई। भली भाँति तुअ छाति जुड़ाई॥
सोइ बलानुज कर मैं बालक। बेद संत जिन्हँ कह जगपालक॥

जहाँ तूने बलदाऊ के हाथों अपने दाँत तुड़वाकर भली-भाँति छाती ठण्डी की थी। मैं भी उन्हीं बलरामजी के अनुज श्रीकृष्ण का पुत्र हूँ, वेद और संत जिन्हें संसार के पालनकर्ता कहते हैं।

द्रोन नाउँ बसु अह पुनि नंदा। गनहिं ग्वाल जिन्हँ तैं मतिमंदा॥

फिर रे मन्दबुद्धि! तू जिन्हें ग्वाला समझता है, वे नन्दरायजी द्रोण नामक वसु हैं।

दोहा- **जिअत रहन जे चहसि अब धरम पंथ अपनाइ।**
फिरहुँ सदन न त गरुअ तव अबहि देउँ बिनसाइ॥४०॥

अब यदि जो तू जीवित रहना चाहता है तो धर्म का मार्ग अपना कर घर लौट जा, अन्यथा मैं अभी तेरा अहङ्कार नष्ट कर दूँगा।

चौ.- **सुनत बिहँसि पुनि रिस करि धावा। गदा मारि मयनहुँ हय ढावा॥**
बिकल हयन्हँ देखेहुँ महि छाए। परस अमिअमय मार उठाए॥

यह सुनते-ही वह हँसा, फिर क्रुद्ध होकर उसने अपनी गदा के प्रहार से प्रद्युम्न के घोड़ों को भूमि पर गिरा दिया। अपने रथ के घोड़ों को व्याकुल और पृथ्वी पर पड़ा हुआ तब प्रद्युम्न ने अपने अमृतमय स्पर्श से उन्हें उठाया।

परम क्रुद्ध पुनि सम्बरघाती। मारेसि गदा कठिन तिन्ह छाती॥
तब खल नयन तिमिर उमगाना। गर्जि परा महि चेत बिहाना॥

फिर शम्बरारि प्रद्युम्न ने अत्यन्त क्रुद्ध हो उसकी छाती में गदा का कठोर आघात किया। तब उस दुष्ट के नेत्रों में अन्धकार छा गया और वह गरजता हुआ मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा।

बृधसरमा तेहिं सव तहँ आए। बिबिध भाँति बहु भेंट जुड़ाए॥
बसुद्यौपौत तेहिं सिरु नावा। पाइ मिताइ सतनय फिरावा॥

उस समय अनेक प्रकार की बहुत-सी भेंट सजाकर वृद्धशर्मा वहाँ आए। तब वसुदेवपौत्र प्रद्युम्न ने उन्हें सिर नवाया और उनसे मित्रता पाकर उनके पुत्र दन्तवक्र सहित उन्हें विदा किया।

खलन्हँ जीति पथ पुनि जदुबीरा। गवने दच्छिन सागर तीरा॥
लंका खबरि बिभीषन पाई। समुहावा बहु भेंट सजाई॥

फिर मार्ग में आए हुए दुष्टों को जीतकर समस्त यादव दक्षिण दिशा में समुद्र के तट पर गए। जब लङ्कापति विभीषण ने उनके आने का समाचार पाया तो वे भेंट सजाकर सन्मुख आए।

दोहा- **रामकृष्न कहँ एक गनि सबन्हँ दीन्ह तेहिं मान।**
बहुरि भेंट अर्पन करि निज पुरि कीन्ह पयान॥४१॥ (क)

भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण को एक ही जानकर उन्होंने उन सबका सम्मान किया, फिर प्रद्युम्न को भेंट समर्पित करके, वे अपनी पुरी को लौट गए।

तदुप मयन गवने मगध बंगादिक पुर जीति।
मिले पंथ कुंभज परसु जिन्हँ उपदेसि सुनीति॥४१॥ (ख)

तदुपरान्त बङ्ग आदि राज्यों को जीतकर प्रद्युम्न मगध देश गए। उस समय मार्ग में उनकी महर्षि अगस्त्य और परसुरामजी से भेंट हुई, जिन्होंने उन्हें उत्तम नीति की शिक्षा दी।

चौ.- **आवत रनछोरउँ अनि जानी। बिहँसि जरासुत सभ कह बानी॥**
खेतछोड़ अति ओछहु जोई। देखु किए चह दिसिजय सोई॥

इधर रणछोड़ की सेना को आते हुए जानकर जरासंध हँसकर सभा में कहने लगा कि देखो! जो युद्धभूमि से भागनेवाला और अत्यन्त तुच्छ है, वही कृष्ण दिग्विजय करना चाहता है।

जानि परत गइ मति तिन्ह मारी। स्यार होइ चह हरिहुँ पछारी॥
एक बार भागेहुँ मोहि पाए। मंदबुद्धि अब सुतन्हँ पठाए॥

लगता है उसकी मति मारी गई है, जो सियार होकर सिंह को जीतना चाहता है। वह स्वयं तो एक बार मुझसे भाग चुका है और अब मन्दबुद्धि ने अपने पुत्रों को मुझसे युद्ध करने भेजा है।

किंतु ससुत ताकर मद तोरौं। पुरि उखारि तिन्ह जलनिधि बोरौं॥
अस कहि मूढ़ निसान बजाई। गरुअत चला करन प्रतिघाई॥

किन्तु अब मैं पुत्रों सहित उसके घमण्ड को तोड़कर फिर उसके नगर को उखाड़कर समुद्र में डुबो दूँगा। ऐसा कहकर वह मूढ़ डङ्का बजाकर गर्वपूर्वक प्रत्याक्रमण करने चला।

गज अरु तुरग समेत पदाती। तेइस अखहिनि तेहिं सँघाती॥
अरि अपारपनु जब जिअँ हेरा। झषध्वज रिछपनबासहुँ प्रेरा॥

गजारोहियों और घुड़सवारों सहित तेईस अक्षौहिणी पैदल सैनिक उसके साथ थे। शत्रुसेना की यह विशालता देखकर, मीनध्वज प्रद्युम्न ने ऋक्षराज जामवन्त के पौत्र साम्ब को भेजा।

छन्द- प्रेरेहुँ साम्बहि सेन करि जेहिं अरिहि जुद्ध पचारेहूँ।
दोउँ सेन बढ़ि निज निज पतिन्हँ बल लगि परसपर मारेहूँ॥
रथ चक्क गहि गहि फेंक केउ केउँ बीर परसु प्रहारही।
केउ भिंडिपाल बिसिख गदा हति प्रतिभटहि महि पारही॥

प्रद्युम्न ने साम्ब को प्रेरित किया तब उन्होंने सेना साथ लेकर शत्रु को युद्ध में ललकारा। दोनों दल अपने-अपने सेनपतियों का बल पाकर आगे बढ़े और परस्पर युद्ध करने लगे। कोई टूटे हुए रथ के पहियों को उठा-उठाकर शत्रुओं पर फेंकता है तो कोई योद्धा फरसों से प्रहार करता है। कोई भिंडिपाल, बाण और गदा के प्रहार से शत्रुओं को पृथ्वी पर पछाड़ देता है।

दोहा- साम्ब प्रतारित अरि कटकु कटि कटि रनु परि लागि।
देखि मगधपति बाढ़ेहु सायुध बरिषत आगि॥४२॥

साम्ब के बाणों से आहत हुई मगध की सेना कट-कटकर युद्धभूमि में गिरनें लगी। यह देखकर मगधनरेश जरासंध शस्त्रों सहित अग्नि बरसाता हुआ आगे बढ़ा।

चौ.- तेहिं कठिन रव धनु टंकारा। फेरि कटकु साम्बहि परचारा॥
सिंधु उताल तरंग समाना। पनच संघरष अरिहि महाना॥

उसने भागती हुई अपनी सेना को पुनः युद्धभूमि की ओर लौटाया। फिर कठोर ध्वनि से अपने धनुष की टङ्कार करके, साम्ब को युद्ध के लिये ललकारा।

सुनत साम्ब सायक दस मारी। सहित सरासन तेहिं निबारी॥
पुनि नाराच मारि दस तेहीं। मूलक सरिस छेदि खल देहीं॥

घोर टङ्कार को सुनते-ही साम्ब ने दस बाण मारकर धनुष सहित उसकी प्रत्यञ्चा को काट दिया। पुनः उन्होंने दस बाण मारकर उस दुष्ट जरासंध के शरीर को मूली के समान छेद दिया।

कुपित मगधपति कछु बिचलाना। सर छारै लग धनु गहि आना॥
दस सर तासु धाइ जनु ब्याला। काटेहुँ साम्बहि धनुष बिसाला॥

क्रुद्ध जरासंध कुछ विचलित हो गया, किन्तु फिर दूसरा धनुष लेकर वह बाण बरसाने लगा। फिर उसके दस बाणों ने मानों सर्प के समान दौड़कर साम्ब के विशाल धनुष को काट दिया।

चारउँ धुज हय पुनि चौ बाना। रथ समेत सारथी नसाना॥
हय सारथि रथ धनु बिनसाना। चढ़े कृष्नसुत तब रथु आना॥

जरासंध ने पुनः चार बाणों से साम्ब की ध्वजा व घोड़ों और चार से सारथी सहित रथ नष्ट कर दिया। जब सारथी, रथ, घोड़े व धनुष नष्ट हो गया तब कृष्णनन्दन दूसरे रथ पर आरूढ़ हो गए।

दोहा- उन्ह अति उग्र पिनाक पर परितँच सबिधि चढ़ाइ।
पुनि सत सिलिमुख कठिन हति खलु रथ दीन्ह नसाइ॥४३॥

फिर उन्होंने अत्यन्त कठोर धनुष पर विधिपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ाई और सौ कठिन बाणों से दुष्ट जरासंध के रथ को भी तोड़ डाला।

चौ.- तदुप साम्ब एक सकति प्रहारी। जे सकबच तिन्ह हृदय बिदारी॥
बिजु सौं कड़कि महि माँझ समानी। तदपि जरासुत हार न मानी॥

तदुपरान्त साम्ब ने (जरासंध पर) एक शक्ति चलाई, जो कवच सहित उसका हृदय भेदकर बिजली के समान कड़कती हुई पृथ्वी में समा गई; फिर भी जरासंध ने हार नहीं मानी।

चेत पाइ तब गज पर चढ़ेऊ। परम क्रुद्ध साम्बहि दिसि बढ़ेऊ॥
खल प्रेरित गज सूंद प्रहारा। सरथु साम्ब कहँ दूर पबारा॥

जब उसकी मूर्छा टूटी तब वह हाथी पर सवार हो परम क्रुद्ध होकर साम्ब की ओर बढ़ा। उस दुष्ट की प्रेरणा से हाथी ने सूँड़ के प्रहार से रथ सहित साम्ब को उछालकर दूर फेंक दिया।

अस लखि उन्ह अनि हहरि पराई। धाए गद तब परम रिसाई॥
पुनि गज सिरु चढ़ि मुठिका मारी। आकुल परेउँ सो प्रान बिसारी॥

यह देख साम्ब की सेना हाहाकार करके, भाग चली, तब रोहिणीनन्दन गद परम क्रुद्ध हो दौड़े और हाथी के मस्तक पर चढ़कर उसे एक घूँसा मारा, जिससे अकुलाया वह निष्प्राण होकर गिर पड़ा।

जरासंध तब गदा भँवाई। गद उर माँझ सक्रुद्ध जमाई॥
गदपि कठोर गदा गहि तर्जा। पुनि तेहिं मारि महाधुनि गर्जा॥

तब जरासंध क्रोधित हो उठा और उसने अपनी गदा घुमाकर गद की छाती पर दे मारी। फिर गद ने भी अपनी कठोर गदा उठाई और ललकार कर उसे मारा फिर बड़े जोर से गरजे।

परेउँ बिकल भय मारुत ग्रसेऊँ। मनहुँ महागिरि केउ महि खसेऊ॥

व्याकुल जरासंध भयपवन से ग्रस्त हो गिर पड़ा, मानों कोई महापर्वत ही पृथ्वी पर गिरा हो।

दोहा- पुनि उठि गदहुँ गदा सहित गहि नभ दीन्ह संचारि।
किंतु बलानुज फिरि तुरत तेहिं महि दीन्ह पछारि॥४४॥

उसने पुनः उठकर गद को उसकी गदा सहित उठा लिया और आकाश की ओर उछाल दिया, किन्तु बलरामजी के अनुज गद ने लौटकर पुनः उसे पृथ्वी पर पछाड़ दिया।

चौ.- ऐतनेहुँ साम्ब फिरे रनु माहीं। दुहुन्हँ संग लखि भा रिस ताहीं॥
तब खल उभयन्ह मुठिका मारी। मुरुछित करि दीन्हें महि डारी॥

इतनें में ही साम्ब पुनः युद्ध में लौट आए, उन दोनों को एक साथ उपस्थित देखकर जरासंध को बड़ा क्रोध आया। तब उसने दोनों को घूँसा मारकर मूर्छित करके, भूमि पर डाल दिया।

पुनि गहि गदा काल सम धाई। खल जदु सुभटन्हँ लाग खसाई॥
तासु प्रहार तुरग अरु नागा। बिकल भाजि चले सकल बिभागा॥

फिर गदा उठाकर वह दुष्ट काल के समान दौड़ा और यादव योद्धाओं को पीड़ित करने लगा। उसके प्रहार से यदुसेना के हाथी-घोड़े व्याकुल होकर समस्त दिशाओं में भाग चले।

लखि अरि दलु जे प्रथम परावा। पुनि बहु आयुध गहि चढ़ि आवा॥
जादव कटकु उभय दिसि मारा। ब्याकुल अति करि लाग पुकारा॥

यह देख जरासंध की सेना जो पहले भाग गई थी, पुनः बहुत प्रकार के शस्त्र लेकर युद्धभूमि में लौट आई इस प्रकार दोनों ओर की मार से व्याकुल होकर यादव सेना पुकार करने लगी।

देखि बारिचरकेतु रिसाने। गै अरिदल धनु श्रव लगि ताने॥
तासु बिषम सर दाव फिराना। अरि दल दारुन भय उपजाना॥

यह देखकर मत्स्यध्वज प्रद्युम्न क्रोधित हो उठे और धनुष को कानों तक तानकर शत्रुसेना के सन्मुख गए। उनके बाणों ने चारों ओर अग्नि-सी लगाकर शत्रुसेना में भय उत्पन्न कर दिया।

जरासुतहि सत सायक भेदी। मार लाग पुनि अनि तिन्ह छेदी॥

फिर जरासंध को सौ बाणों से विदीर्ण करके, प्रद्युम्न पुनः उसकी सेना का संहार करने लगे।

दोहा- **उन्ह सहाय लगि तेहिं समय प्रगटे तहँ हलधारि।**
अरिदल सविंटि हलाग्र पुनि मूसर तें लग मारि॥४५॥

उस समय उनकी सहायता के लिये युद्धभूमि में हलधर बलराम प्रकट हुए और शत्रुसेना को अपने हल के अग्रभाग से समेंटकर फिर मूसल से मारने लगे।

चौ.- **इत प्रद्युम्न खलहुँ हठि बाँधा। पुनि आपन रथु पाछे साँधा॥**
जरासंध सुत तेहिं सवँ आवा। भेंट अर्पि पुनि पितहि छरावा॥

इधर प्रद्युम्न ने दुष्ट जरासंध को बलपूर्वक बाँध लिया और अपने रथ के पिछले भाग में डाल दिया। उस समय जरासंध के पुत्र सहदेव ने आकर उन्हें भेंट दी और पिता को मुक्त कराया।

एहिबिधि मगधप गरुअ बिदारी। गई हस्तिनापुर जदु धारी॥
मार कुरुन्हँ पहि दूत पठावा। कलि परन्तु तेहिं निदरि फिरावा॥

इस प्रकार जरासंध का मान तोड़कर यादव सेना हस्तिनापुर गई। उस समय प्रद्युम्न ने कौरवों के पास दूत भेजा; किन्तु दुर्योधन ने उसका निरादर करके, उसे वापस लौटा दिया।

कटकु बिसाल किए पुनि संगा। जदुन्ह बिमुख चलेउँ सठ बंगा॥
भीष्म द्रोन तेहिं जदपि बुझावा। किंतु मदान्ध कान नहिं लावा॥

फिर वह मूर्ख और उद्दण्ड दुर्योधन विशाल सेना लेकर यादवों से युद्ध करने चला। यद्यपि भीष्म और आचार्य द्रोण ने उसे बहुत समझाया, किन्तु उस अभिमानी ने उनकी बात न सुनी।

तेहिं सवँ इंद्रप्रस्थ कइ धारी। कुरु सहाय हित धरम संचारी॥
महासेन कुरु सोरह अखहिनि। लाग कँपाइ गरुअ निज मेदिनि॥

उस समय युधिष्ठिर ने कौरवों की सहायता के लिये इन्द्रप्रस्थ की सेना भेज दी। अपनी विशालता में कौरवों की वह सोलह अक्षौहिणी महासेना अपने भार से पृथ्वी को कम्पित करने लगी।

सब दिसि तिन्ह पद रेनु उड़ाई। लीन्ह रबिहि निज सींव दुराई॥

उनके पैरों से उड़ती हुई धूल ने सूर्य को सब ओर से अपनी सीमाओं में ढँक लिया।

दोहा- **कुरु अरु जदुन्हँ महाकटकु एहिबिधि भइ समुहान।**
प्रलय उभय पाथोधि सम रनु करि लागि महान॥४६॥ (क)

इस प्रकार कौरवों और यादवों की महान सेनाएँ आमने-सामने आ गई और प्रलयकाल के दो समुद्रों के समान भयङ्कर युद्ध करने लगी।

कलि तें जूझ बिषमसर अनिरुध भीषम संग।
दीप्तिमान कृप तें भिरे मधु अरु करन उतंग॥४६॥ (ख)

उस समय प्रद्युम्न दुर्योधन से और अनिरुद्ध गङ्गापुत्र भीष्म से युद्ध करने लगे। दीप्तिमान कृपाचार्य से और मधु किसी का भी भय न माननेवाले कर्ण से भिड़ गए।

भानु द्रोन बाह्लीक तें साम्ब भिरे परचारि।
बृक गुरसुत पुष्कर ते पुनि कलिसुत करि लग रारि॥४६॥ (ग)

भानु आचार्य द्रोण से और साम्ब ललकारकर बाह्लीक से जा भिड़े। (श्रीकृष्णपुत्र) वृक गुरूपुत्र अश्वत्थामा के साथ और पुष्कर दुर्योधनपुत्र लक्ष्मण के साथ युद्ध करने लगे।

कृष्नतनय श्रुतदेव भिरे दुस्सासन कहँ पाइ।
बेदबाहु सकुनिहिं समुख भए पितहि जय गाइ॥४६॥ (घ)

श्रीकृष्णनन्दन श्रुतदेव दुःशासन को अपने सन्मुख पाकर उससे भिड़ गए और वेदबाहु अपने पिता श्रीकृष्ण का जयगान करके, गांधारनरेश शकुनि से युद्ध करने लगे।

कृतबरमा अरु भूरिश्रव गद अरु बिदुर भिरेउँ।
संजय ऊपर सुनंदन प्रतिभट जानि चढ़ेउ॥४६॥ (ङ)

कृतवर्मा भूरिश्रवा से और गद विदुर से जूझने लगे। सुनन्दन ने अपनी जोड़ का योद्धा जानकर सञ्जय पर आक्रमण कर दिया।

चौ.- **एहिबिधि उभय दलन्हँ सब जोधा। भिरे परसपर प्रतिभट सोधा॥**
मार लीन्ह कर धनुष बिसाला। बरिषहि सिलिमुख कठिन कराला॥

इस प्रकार एक-दूसरे की जोड़ के योद्धा देखकर दोनों दलों के योद्धा परस्पर भिड़ गए। प्रद्युम्न अपना विशाल धनुष हाथ में लेकर कठिन व विकराल बाण बरसाने लगे।

कुरुन्हँ सेन सो बिसिखन्हि मारी। खरभर करि लागेसि अति भारी॥
दुरजोधन लखि अति रिस पावा। तुरत बिषमसायक सन आवा॥

उन बाणों से पीड़ित होकर कौरवों की सेना अत्यधिक हाहाकार करने लगी। यह देखकर दुर्योधन को बड़ा क्रोध हुआ, तब वह शीघ्र ही विषमबाण प्रद्युम्न के सन्मुख आया।

बहुरि कारमुक धरि दस बाना। छाड़ेसि सरिस श्रवन लगि ताना॥
मार बिसिख सो आवत पाई। एकउँ सर हति दीन्ह नसाई॥

फिर उसने धनुष पर एक साथ दस बाण चढ़ाए और क्रुद्ध हो धनुष को कानों तक खींचकर बाण छोड़े। प्रद्युम्न ने उन बाणों को आते देखकर एक ही बाण मारकर उन्हें नष्ट कर दिया।

तब उन्ह त्रान साधि कलि मारे। कनक फलक सर दस बिकरारे॥

धाइ बिसिख जे बेग गभीरा। प्रबिसे कवचउँ भेदि सरीरा॥

तब दुर्योधन ने उनके कवच को लक्ष्य करके, सोने के पङ्खवाले दस विकराल बाण मारे जो बड़े वेग से दौड़कर प्रद्युम्न के कवच को भेदकर उनके शरीर में जा लगे।

दोहा- **पुनि बलनिधि दुरजोधन ताकि बान सत मारि।**
पनच सहित उत्तम धनुष उन्ह कर दीन्ह बिडारि॥४७॥

महाबलि दुर्योधन ने पुनः तककर सौ बाणो से प्रत्यञ्चा सहित उनका उत्तम धनुष तोड़ डाला।

चौ.- **प्रकुपित मार काढ़ि सारंगा। संधानेहुँ एक बिसिख अभंगा॥**
बहुरि प्रबलभुज बेग अपारा। सर सो दुरजोधन दिसि छारा॥

तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रद्युम्न ने सार्ङ्ग धनुष लिया और उस पर एक अमोघ बाण चढ़ाया, फिर अपनी प्रबल भुजाओं के अपार वेग से वह बाण दुर्योधन की ओर छोड़ दिया।

कलि तेहिं आवत लखि भय माना। ऐतनेहुँ सर तेहिं सरथु उड़ाना॥
पुनि पितु सन ताकहँ अस पटका। आतुर रजक मनहुँ पट झटका॥

उसे आता देखकर दुर्योधन भयभीत हो उठा, इतने में ही उस बाण ने रथ सहित उसे उड़ा दिया और धृतराष्ट्र के सन्मुख ऐसे ला पटका, मानो धोबी ने उतावली में कोई कपड़ा पटका हो।

धरनि परत रथु तिन्ह बिनसाना। पुनि सो रुधिर बमत मुरछाना॥
जुबराजहुँ अस पतनु निहारा। कर पिनाक पनुबिबस सुधारा॥

भूमि पर गिरते ही उसका रथ टूट गया और वह मुख से रक्त वमन करता हुआ मूर्छित हो गिर पड़ा। युवराज की पराजय हुई जानकर प्रतिज्ञाविवश गङ्गापुत्र ने अपने हाथ में धनुष सम्भाला।

पुनि करि पनच संघरषु भारी। जदुन्ह बिषम सर लाग बिडारी॥
बिप्लव उठि मनु बननिधि अंका। महि तें चलि चह परसि मयंका॥

फिर प्रत्यञ्चा का भयङ्कर सङ्घर्षण करके, वे कठिन बाणों से यदुसेना को विदीर्ण करने लगे। विप्लव मानों समुद्र की गहराई से उठकर पृथ्वी से होता हुआ चन्द्रमा को स्पर्श करना चाहता हो।

सस्त्रि मर्मि ब्रति धर्मिन्ह माहीं। सादर प्रथम लीक रहि ताही॥
उन्ह आसीष समुझि निज ऐनू। आपु कृष्न चह उन्ह पद रेनू॥

शस्त्रधारियों, मर्मज्ञों, व्रतियों और धर्मात्माओं में उनकी गणना सबसे पहले व बड़े आदर से होती थी। उनके आशीष पर अपना अधिकार मानकर स्वयं श्रीकृष्ण उनकी चरणरज पाना चाहते थे।

ब्रम्हचारि सो अति बिदवाना। रहे गंग सांतनु संताना॥
धवल सिखंड त्रान कच धवला। सिसुन्ह सरिस रहि आतम अमला॥

ब्रह्मचारी और परम विद्वान वे भीष्म गङ्गा और शान्तनु के पुत्र थे। उन्होंने श्वेत मुकुट व कवच धारण कर रखा था, उनके केश श्वेत हो गए थे और उनकी आत्मा बालकों सी निष्कलङ्क थी।

पितुमह तें कुरु पँडउन्ह रहेऊ। अतिहि जरठपुन तनु उन्ह लहेऊ॥

वे कौरवों व पाण्डवों के पितामह थे और उनका शरीर अत्यधिक वृद्ध हो चला था,

दोहा- तदपि परसु मदभंजन रनु महुँ चरत बलात।
सोरह सम्बत बयस कर नवजुब सरिस लखात॥४८॥

किन्तु फिर भी परसुराम का बलाभिमान को तोड़नेवाले, वे गङ्गापुत्र युद्धभूमि में बलपूर्वक विचरते हुए वृद्धावस्था में भी किसी सोलह वर्ष की अवस्थावाले नवयुवक के समान दिखाई पड़ते थे।

चौ.- उन्ह सर कठिन सकल दिसि धाई। अनिरुद्धहि अनि लाग नसाई॥
असि समेत उत्तम पदचारा। कटे भाग दुइ सायक मारा॥

उनके कठिन बाण समस्त दिशाओं से दौड़कर अनिरुद्ध की सेना को नष्ट करने लगे। उन बाणों के आघात से तलवारों सहित बहुत-से उत्तम पदातियों के दो टुकड़े हो गए।

रथि सारथि समेत हय स्यंदन। बिपुल भीष्म कीन्हें रनु भंजन॥
सायुध बाहु बहुत सर काटी। सिरन्हि सहित रनुमेदिनि पाटी॥

भीष्म ने युद्धभूमि में घोड़ों और सारथी सहित यादवों के अनगिनत रथ नष्ट कर दिये। फिर उन्होंने बाणों से सिरों सहित यदुसैनिकों की शस्त्रयुक्त भुजाएँ काटकर युद्धभूमि को भर दिया।

खसे प्रानगत अमित सुभट्टा। देखि पराहिं चले बहु ठट्टा॥
देखि सेन निज भुवितल छाई। भै अनिरुद्ध भीष्म समुहाई॥

अनेक उत्तम योद्धा प्राणहीन होकर गिर पड़े, यह देखकर सैनिकों के बहुत-से समूह भाग चले। अपनी सेना को धराशायी हुई देखकर अनिरुद्ध गङ्गानन्दन भीष्म के सन्मुख आए।

बहुरि कठिन संघरषनिहारी। भीष्म पनच उन्ह सरन्हि बिदारी॥
उन्ह तुरंत गहि तब धनु आना। भीषन ब्रम्हबान संधाना॥

फिर उन्होंने अपने बाणों से भीष्म के धनुष की भयङ्कर सङ्घर्षणध्वनि करनेवाली प्रत्यञ्चा को काट दिया। तब भीष्म ने तुरन्त दूसरा धनुष लेकर भयङ्कर ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया।

पुनि छारेहुँ आवत अति धाई। देखि निजउँ अनि हित चित लाई॥
अनिरुद्धपि अज सायक मारा। महाअस्त्र दुहुँ करि लग रारा॥

फिर उसे यादवसेना पर छोड़ दिया। उसे बड़े वेग से आते देखकर अपनी सेना की रक्षा के लिये अनिरुद्ध ने भी ब्रह्मास्त्र प्रयोग किया। तब वे दोनों महाअस्त्र परस्पर युद्ध करने लगे।

जब प्रभाउँ उन्ह बिकट बिचारा। कीन्ह मारसुत उपसंघारा॥
द्विसर बहोरि मारि बरजोरा। धनु उन्ह बिद्युत्दुतिजुत तोरा॥

जब उन महाअस्त्रों के भयङ्कर प्रभाव का विचार किया तब अनिरुद्ध ने उनका उपसंहार कर दिया। फिर दो बाणों से उन्होंने भीष्म के विद्युत के समान चमकते हुए धनुष को भी तोड़ दिया।

तब गंगासुत गदा भँवाई। बल प्रजंत उन्ह ओर चलाई॥

तब उन गङ्गापुत्र ने अपने सिर के चारों ओर घुमाकर पूरी शक्ति से एक गदा चलाई।

दोहा- किंतु उझकि अनिरुद्ध गहि सहज बाम कर ताहिं।
पुनि भवाइ सो मारिसि गंगतनय उर माहिं॥४९॥

किन्तु अनिरुद्ध ने उछलकर सहज ही में उसे बाये हाथ से पकड़ लिया और फिर उन्होंने वही गदा घुमाकर गंगापुत्र की छाती पर दे मारी।

चौ.- महाघात सो उरतल पाई। परे भीष्म रथु महुँ अकुलाई॥
परत तेन्हँ सुषमा भइ कैसे। नभ तें खसेहुँ दिवाकर जैसे॥

छाती पर उस भीषण आघात को पाकर भीष्म व्याकुल होकर रथ में गिर पड़े। गिरते समय वे कैसे शोभा दे रहे थे; जैसे आकाश से स्वयं सूर्य गिरे हों।

कृप उन्ह कहँ अस ब्याकुल पाई। सेनरुद्ध दिसि सक्ति चलाई॥
उन्ह परन्तु करि खड़ग प्रहारा। पंथहि बिच कृप सस्त्र निबारा॥

उन्हें व्याकुल हुआ देखकर कृपाचार्य ने अनिरुद्ध पर एक शक्ति चलाई। किन्तु उन्होंने खड्ग के प्रहार से मार्ग में ही कृपाचार्य के शस्त्र को नष्ट कर दिया।

भरद्वाजसुत निरखि रिसाना। अरि दिसि छारेहुँ भूधर बाना॥
जिन्हँ प्रभाउ बहुतक गिरि भारी। नभ तें खसि लग जादव धारी॥

यह देखकर क्रुद्ध हुए भरद्वाजपुत्र द्रोण ने पर्वतास्त्र चलाया, जिसके प्रभाव से यादव सेना पर आकाश से बड़े-बड़े पर्वत गिरनें लगे।

जे जहँ रह तें तहहि दबाई। जाइ जहाँ तहँ पर गिरि आई॥
देखि वातसर मारेसि भानू। कीन्ह सैलसर केर निदानू॥

जो जहाँ थे वह वहीं दब जाते थे और भागते हुए जो जहाँ जाते वहीं पर पर्वत आकर गिरते थे। यह देख श्रीकृष्णनन्दन भानु ने वायव्यास्त्र का प्रयोग करके, पर्वतास्त्र को नष्ट कर दिया।

तब बहलीक अग्निसर छारा। साम्ब बरुनसर जेहिं निबारा॥
रबिनंदन तब परम रिसाना। मधु कहँ समर माँझ बिसराना॥

तब बाह्लीक ने अग्निबाण छोड़ा, साम्ब ने अपने वरुणास्त्र से जिसे काट दिया। यह देखकर सूर्यपुत्र कर्ण अत्यन्त क्रोधित हो उठे और उन्होंने मधु को तो युद्धभूमि में ही छोड़ दिया

दोहा- साम्बहि पुनि सर बीस हति गर्जेउ मेघ समान।
आहत तब स्यंदनु सहित साम्ब लाग चकरान॥५०॥

और साम्ब को बीस बाण मारकर वे मेघ के समान गर्जे। तब साम्ब आहत होकर रथ सहित चक्कर खाने लगे।

चौ.- सँभरि सक्रुद्ध साम्ब अति धाई। रथु चढ़ि तिन्ह उर गदा चलाई॥
गदाघात सो पाइ कठोरा। धरनि खसा रबिसुत रव घोरा॥

फिर क्रोधित हुए साम्ब सम्भले और वेगपूर्वक दौड़कर कर्ण के रथ पर जा चढ़े और उसकी छाती पर गदा मारी। गदा के उस भीषण आघात से गर्जना करते हुए सूर्यनन्दन कर्ण भूमि पर गिर पड़े।

हरिसुत रथु फिरि पुनि धनु धारे। अस्वथामहि सर दस मारे॥
धौम्यहि दस संजय कहँ बीसा। पंच बिसिख सकुनिहिं रनु खीसा॥

फिर साम्ब पुनः रथ पर लौट आए और द्रोणपुत्र अश्वथामा को दस बाण मारे। फिर उन्होंने धौम्य को दस, सञ्जय को बीस और शकुनि को पाँच बाण मारकर युद्धभूमि में व्याकुल कर दिया।

बहुरि बीस सर हति बिकरारा। दुस्सासन कर हृदय बिदारा॥
तदुप सारथिन्ह दस दस सायक। सत सत बिसिख हते अनिनायक॥

फिर बीस विकराल बाणों से दुःशासन की भी छाती विदीर्ण कर दी। तदुपरान्त उन्होंने कुरु-सारथियों को दस-दस और सेनापतियों को सौ-सौ बाण मारे।

प्रति सैनिकहि मारि दुइ बाना। साम्ब कीन्ह घननाद महाना॥
उन्हँ कर करलाघव अस देखी। कुरु जोधा कर सोच बिसेषी॥

फिर प्रत्येक कुरु-सैनिकों को दो-दो बाण मारकर साम्ब ने भयङ्कर गर्जना की। उनका ऐसा हस्तलाघव देखकर समस्त कुरु-योद्धा विशेष सोच के वश हो गए।

दोहा- परसुसिष्य तब फिरि समर भंजेहुँ उन्ह कोदंड।
कृप अरु द्रोन सहित लगे पुनि सर बरषि प्रचंड॥५१॥

तब परसुरामशिष्य भीष्म ने पुनः युद्ध में लौटकर उनके धनुष को तोड़ दिया और कृपाचार्य व द्रोण के साथ मिलकर वे पुनः प्रचण्ड बाण बरसाने लगे।

चौ.- इत दुरजोधन रनु पुनि आई। गरजि लाग जब गाल बजाई॥
तेहिं सव दुहुँ तट जोरन सेतू। रनु सबंधु प्रगटे खगकेतू॥

इधर दुर्योधन पुनः युद्धभूमि में आकर गाल बजाते हुए जब गरजने लगा, तभी दोनों पक्षों में संधि करवानें के लिये युद्धभूमि में बलरामजी सहित भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हुए।

कलि भीष्मादिक आयुध त्यागे। सबिनय उन्ह अस्तुति करि लागे॥
जथा जोग उन्ह मिलि सिरु नाई। प्रभु दुहुँ पच्छ मिताइ कराई॥

यह देख दुर्योधन और भीष्मादि कौरव शस्त्र त्यागकर विनयपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे। तब यथायोग्य सबसे मिलकर और उन्हें सिर नवाकर भगवान ने दोनों पक्षों में मित्रता करवा दी।

दाउ समेत तदुप भगवाना। हरषि द्वारिका कीन्ह पयाना॥
इत प्रद्युम्न चले अनि संगा। करत अधर्मिन्ह कर मद भंगा॥

तदुपरान्त दाऊ सहित प्रभु ने वहाँ से द्वारिका प्रस्थान किया। इधर अधर्मियों के अभिमान को चूर्ण करते हुए प्रद्युम्न सेना सहित आगे की ओर चले।

देइ नदी नद कंपति राहा। तरकि पराक्रम जदुन्ह अगाहा॥
तदुप कटकु सोनितपुर चीन्हा। बान भेंट सिव प्रेरित दीन्हा॥

यादवों के महाप्रभाव का अनुमानकर, नदियाँ, नद्य और समुद्र स्वयं मार्ग दे देते हैं। तदुपरान्त सेना सोणितपुर आ पहुँची, तब शिवजी की प्रेरणा से बाणासुर ने यादवों को भेंट अर्पित की।

एहि प्रकार गुह्यक गंधरबा। असुरन्हँ सहित महीपति सरबा॥
जीति मार जदुबाहिनि संगा। लिये अकथ धन कीति अभंगा॥

इस प्रकार गुह्यकों (यक्षों), गन्धर्वों और असुरों सहित भूमण्डल के समस्त राजाओं को जीतकर कामदेव के अवतार श्रीप्रद्युम्नजी यादवसेना के साथ, अकथनीय सम्पदा व अक्षय कीर्ति लिये,

कछु दिनु माँझ द्वारिका आए। लखि नृप सचिव सहित समुहाए॥
मार सबन्धु गुरुन्हँ पद परसे। आसिस दीन्ह सबन्हँ अति हरषे॥

कुछ ही दिनों में द्वारिका आ गए। यह देखकर महाराज उग्रसेन अपने मन्त्रियों सहित उनकी अगवानी करने उनके सन्मुख आए। (उस समय) भाईयों सहित उन प्रद्युम्नजी ने अपने बड़ों के चरण-स्पर्श किये, तब सबनें अत्यन्त हर्षित होकर आशीर्वाद दिये।

राउ मार भुज पूजि बहोरी। हृदय लगाएहुँ गहि बरजोरी॥
मैनु लहेहुँ जस लच्छ महाना। जदु सुभटन्हँ सो चरित बखाना॥

(उस समय) महाराज उग्रसेन ने प्रद्युम्न की भुजा का पूजन किया और उन्हें पकड़कर जबरदस्ती अपनी छाती से लगा लिया। दिग्विजय के इस महान लक्ष्य को प्रद्युम्न ने जिस प्रकार प्राप्त किया था, यादव-योद्धाओं ने वह सम्पूर्ण चरित्र उन्हें कह सुनाया।

सुनि सुत चरित प्रसंसा भूरी। पितहिं गरुअबस छाती फूरी॥

पुत्र के पराक्रम की भूरी-भूरी प्रशंसा सुनकर पिता श्रीकृष्ण की छाती गर्व से चौड़ी हो गई।

दोहा- **हरि सारन नृप कर तदुप राजसूय क्रतुराज।**
पूछि महूरत कुलगुरहिं बोलेहुँ मख सब साज॥५२॥

तदुपरान्त भगवान श्रीकृष्ण ने महाराज उग्रसेन के हाथ क्रतुराज राजसूय का सम्पादन करवानें के लिये, कुलगुरु महर्षि गर्ग से शुभमुहूर्त पूछा और यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्री बुलवा ली।

चौ.- **पेमु सहित जब नृपति बोलावा। मुनि समुदाय द्वारिका आवा॥**
कन्ब बसिष्ठ पैल दुरबासा। अत्रि बिभांड गाधिसुत ब्यासा॥

जब महाराज उग्रसेन ने प्रेमपूर्वक बुलाया, तब मुनियों का (विशाल) समुदाय द्वारिका में पधारा। उनमें मुनि कण्व, वशिष्ठ, पैल, दुर्वासा, अत्रि, विभाण्ड, विश्वामित्र, वेदव्यासजी,

प्राड्बिपाक अंगिरा जैमिनि। सुक मैत्रेय कपिल गौतम मुनि॥
द्रोन परसुधर कृप धनुबादी। दत्त सुमन्तु असित सनकादी॥

महर्षि प्राड्विपाक, अंगिरा, जैमिनि, शुकदेवजी, मैत्रेयजी, महामुनि कपिल, मुनि गौतम, आचार्य द्रोण, आचार्य कृप व परसुराम आदि धनुर्धर, दत्तात्रेय, सुमन्तु, असित, सनकादि,

बामदेअँ सतमुद भरद्वाजा। साँडिल्यादि अमित मुनिराजा॥

भाग लेन मख जदुपति द्वारे। प्रमुदित सिष्यन्हँ सहित पधारे॥

वामदेव, सतानन्द, भारद्वाज, शाण्डिल्य आदि अनगिनत मुनिश्रेष्ठ उस राजसूय यज्ञ में भाग लेनें के लिये अपने शिष्यों सहित परम आनन्द से यादवेन्द्र महाराज उग्रसेन के द्वार पर पधारे।

सिव बिरंचि जम बरुन सुरेसा। सोम देअँगन अगिनि गनेसा॥
रुद्रादित्य मरुत गंधरबा। लोकपाल अरु दिसिपति सरबा॥

शिवजी, ब्रह्माजी, यम, वरुण, देवराज इन्द्र, सोम, अग्नि आदि देवताओं के साथ, गणेशजी (आदि के साथ समस्त) रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, गन्धर्व, लोकपाल और समस्त दिक्पाल,

हरषि लिये सुत नारि समाजहि। आए जग्य माँझ जदुराजहि॥
हरिगुन बरनत सुररिषि आए। उन्ह सँग सिद्ध समाज सुहाए॥

हर्षित हो स्त्रियों व पुत्रों का समूह साथ लिये, यदुराज उग्रसेन के यज्ञ में पधारे। श्रीहरि का गुणानुवाद करते हुए नारदजी भी उस यज्ञ में आए, उनके साथ सिद्धों का समाज सुशोभित था।

बिपुल दानवन्हँ संग लगाए। बलि प्रलाद सो मख हित आए॥
राच्छस संग किए निज भारे। लंकापति सो जग्य पधारे॥

बहुत-से दानवों व दैत्यों को साथ लेकर उस यज्ञ में भाग लेनें के लिये महाराज बलि व प्रह्लादजी भी पधारे। लङ्का के राजा विभीषण भी बड़े भारी-भारी राक्षसों को अपने साथ लेकर उस यज्ञ में आए।

सबनि खगन्हँ समेत हरिजाना। महिभर कपिन्हँ संग हनुमाना॥
जामवंत बलसिंधु उतंगा। रिच्छ दाढ़धर बनपसु संगा॥

समस्त पक्षियों के साथ, भगवान श्रीहरि के वाहन गरुड़जी, पृथ्वी भर के वानरों के साथ हनुमानजी, रीछों व वन के दाढ़वाले अन्य पशुओं के साथ, बल के अपार सागर जामवन्तजी भी,

पाइ निमंत्रनु सारँगधन्वहि। आए मख मनु मोद अलपु नहिं॥

सार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्ण का निमन्त्रण पाकर उस यज्ञ में पधारे; उनके मन में आनन्द कम न था।

छन्द- **मनु मोद कमु नहिं अहिन्हँ सँग बलवंत बासुकि मख अए।**
सब कामधेनुन्हँ संग सो मख आइ महि गौ तनु लए॥
तरु गुल्म लतिकन्हँ सहित तरुपति अखयबट आए जहाँ।
सुचि सरिन्हँ सँग गंगा जमुन पाथोधि सब पधरे तहाँ॥

उनके मन में आनन्द कम न था। उनके साथ ही समस्त सर्पों के साथ सर्पों के स्वामी बलवान वासुकि भी यज्ञ में आए। समस्त कामधेनुओं के साथ, गाय का शरीर धरे पृथ्वी भी उस यज्ञ में पधारी। वृक्षों, गुल्मों, लताओं आदि के साथ वृक्षराज अक्षयवट जहाँ यज्ञ में पधारे, वहीं गङ्गाजी व यमुनाजी सहित समस्त पवित्र नदियों के साथ, समस्त समुद्र भी वहाँ आए।

दोहा- **तीरथपति सँग तीरथ दिसि सुमेरु हिमवंत।**
आन गिरिन्हँ सँग सादर मख नेउते श्रीकंत॥५३॥

समस्त तीर्थों के साथ तीर्थराज प्रयाग, समस्त दिशाएँ और अन्य समस्त पर्वतों के साथ पर्वतराज हिमालय व सुमेरु को भी रमानिवास भगवान ने उस यज्ञ में सादर न्योता दिया।

चौ.- धेनुमीत बृंदाबन साथा। ब्रज सगरौ नेवतेहुँ ब्रजनाथा॥
कुरुन्हँ माँझ भीषम मनलोयन। दुरजोधन आएहुँ करि करन॥

व्रजनाथ श्रीकृष्ण ने पर्वतराज गोवर्धन व वृन्दावन के साथ सम्पूर्ण व्रजमण्डल को आमन्त्रित किया। कौरवों में गङ्गानन्दन भीष्म, महाराज धृतराष्ट्र आए और दुर्योधन कर्ण के साथ उपस्थित हुआ।

पाँडव पंच कुंति संघाता। जग्य माँझ न्योते सुखदाता॥
उन्हहिं संग महिभर सब भूपा। हरषि पधारे जग्य अनूपा॥

सुखदायक भगवान श्रीकृष्ण ने कुंती के पाँचों पाण्डवों को उस यज्ञ में निमन्त्रित किया। उन्हीं के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी के समस्त राजा हर्षित होकर उस अनुपम यज्ञ में पधारे।

तदुप खेत पिंडारक माहीं। मुनि नृप कर मख लाग सराहीं॥
कुंड प्रमुख मख गा जे सारा। जोजन पंच रहेहुँ बिस्तारा॥

तदुपरान्त पिण्डारक-क्षेत्र में मुनिगण महाराज उग्रसेन के हाथों राजसूय का सम्पादन करवानें लगे। यज्ञ में जो प्रमुख कुण्ड बनवाया गया था, वह पाँच योजन जितनी भूमि पर फैला था।

तेहिं तें अछत बीच मखसाला। रहे कुंड कछु अलपु बिसाला॥
उमगि भब्यता तहँ जेहिं कारन। बेदमंत्र करि लग दिसि पावन॥

उनके अतिरिक्त यज्ञशाला के मध्य में कुछ अन्य छोटे, तो कुछ विशाल कुण्ड भी थे। जिससे यज्ञशाला में भव्यता उत्पन्न हो गई थी, वेदों के पढ़े जाते हुए मन्त्र दिशाओं को पवित्र कर रहे थे।

दोहा- बृष्नि दसारह अंधक सूरसेन मधु भोज।
इन्हँ जदुबंसिन्हँ संग मख नृपति अकथ लहँ ओज॥५४॥

वृष्णि, दशार्ह, अन्धक, सूरसेन, मधु और भोज, इन समस्त यदुवंशियों के साथ यज्ञ-मण्डप में बैठे हुए, महाराज उग्रसेन अकथनीय तेजस्विता प्राप्त कर रहे थे।

चौ.- सुकृतन्हँ संग मनुज रुच जैसे। जदुन्हँ संग सोभहिं नृप तैसे॥
तसहिं अमित सुत पौत सँघाता। सोभहिं अखिल बिस्व सुखदाता॥

अपने सत्कर्मों से जैसे मनुष्य की शोभा होती है, उन यादवों के साथ बैठे हुए महाराज उग्रसेन की भी वैसी ही शोभा पा रहे हैं और सम्पूर्ण विश्व को सुख देनेवाले भगवान भी अपने पुत्र-पौत्रों के अपार समूह के साथ बैठे हुए, उसी प्रकार सुशोभित हैं।

द्विबिध बिभव एहिंभाँति जुड़ाई। गरग तें नृप मख दीच्छा पाई॥
मंत्रोच्चार संग मख कुंडा। परि लागा घृत जनु करि सूँडा॥

इस प्रकार द्विविध-वैभव (परोपकार की इच्छा व दिग्विजय से उपार्जित धन) को लेकर महाराज उग्रसेन ने महर्षि गर्ग से राजसूय-यज्ञ की दीक्षा प्राप्त की। फिर मन्त्रोचार के साथ हाथी की सूँड़ के समान, घृत की मोटी-मोटी धाराएँ यज्ञकुण्ड में गिरनें लगी।

गहिं जेहिं त्रिपुर पाचि सक जेई। अगिनि देअँ अजराने तेई॥
देअँ सबनि मख सोमपान करि। सुजसु बरनि लग उगरहिं जिअँ भरि॥

जिसे ग्रहणकर, वे अग्निदेव, जो तीनोंलोकों को पचानें में समर्थ थे, अजीर्णरोग से ग्रस्त हो गए। समस्त देवता, यज्ञ में सोमपान करके, जी भरकर उग्रसेन की कीर्ति का बखान करने लगे।

तदुप बेदधुनि सीतल छाहा। भूप सतिय आनंद अगाहा॥
ब्यास गरग आदिन्हँ रुख पाए। तीरथ जल बिधि सहित नहाए॥

तदुपरान्त वेदमन्त्रों की ध्वनिरूपी शीतल छाया में, वेदव्यास व गर्गाचार्य आदि ऋषियों के रुख से उग्रसेन ने स्त्री सहित अत्यन्त आनन्दित हो तीर्थों के पवित्र जल से विधिपूर्वक स्नान किया।

बिभव जेइ दिसिबिजय जुड़ाना। नृप तेहिं कीन्ह जाचकन्हँ दाना॥

फिर जो वैभव उन्होंने दिग्विजय करवाकर प्राप्त किया था, उसे याचकों को दान कर दिया।

छन्द- **जाचकन्हँ दीन्हेहुँ बिभव सो जेहिं मार भुजबल सारेहू।**
यह देखि अज हर बिबुध मृदु रव साधु साधु उचारेहू॥
हरिसुतन्ह दिसिजय चरित गरगहि कथित यह अति पावना।
बिस्वास अह मोहिं एहिं कथा ते बिलग गनिहि न हरिजना॥

महाराज उग्रसेन ने वह सारी सम्पदा याचकों को दान कर दी, जो प्रद्युम्न ने अपने बाहुबल से अर्जित की थी। यह देखकर ब्रह्माजी, शिवजी व देवताओं ने कोमल वाणी से साधु, साधु इस प्रकार कहा। भगवान श्रीहरि के पुत्रों का दिग्विजय सम्बन्धी यह अत्यन्त पवित्र चरित्र महर्षि गर्ग द्वारा कहा गया है और मुझे विश्वास है कि हरिभक्त इसे मुख्य कथा से अलग नहीं समझेंगे।

दोहा- **परिथिति आज अहहि जेइ होति हरिहि समुहान।**
तब ते करते काहि एहिं कलपि मैं कीन्ह बखान॥५५॥ (क)

आज के समय में जो परिस्थितियाँ है, यदि वही भगवान श्रीकृष्ण के सन्मुख होती, तो उस समय वे क्या करते, इसी बात का मैंने कल्पना के द्वारा वर्णन किया है।

तदपि जे अधजल गगरि अह छलकि हँसिहि अग्यान।
सत्य त सत्य परन्तु रह कलपिअ या हिय जान॥५५॥ (ख)

फिर भी जो लोग अधजल गगरी-से हैं, वे अज्ञानवश छलकते हुए मेरी हँसी ही उड़ाऐंगे। किन्तु सत्य तो सत्य ही रहता है, भले ही उसकी कल्पना की जाय या मन उसे जानता हो।

मासपारायण अट्ठाईसवाँ बिश्राम

श्री गणेशाय नमः

श्रीकृष्णचरितमानस

अष्टम सोपान

उत्तरकाण्ड

चौ.- कीन्ह जाहिं उत्तर भगवाना। सुनु नृप रुचिर चरित सो नाना॥
पुँडरक नाउँ नृपति बस कासी। जे सिरायधन जड़पनु रासी॥

हे परीक्षित! अब आप वे अनेक सुन्दर चरित्र सुनिये! जिन्हें भगवान ने (अपनी लीलायात्रा के) उत्तरार्द्ध में किया था। काशी में पौण्ड्रक नामक एक राजा रहता था; जो झूठी प्रशंसा पर उमड़नेवाला और जड़ता की खान था।

ताकर सचिव सिराइ सिराई। कहत रहे तिहि नित जदुराई॥
एक दिनु कह तिन्हँ सचिव लबारा। तुम उए हरन मेदिनि प्रभारा॥

उसके मन्त्री उसके सम्मुख उसकी झूठी प्रशंसा कर करके, नित्य उसे यदुराज कहा करते थे। एक दिन उसके लबार मन्त्रियों ने उससे कहा कि, आप पृथ्वी का महान भार हरने के लिये अवतरित हुए हैं।

सुनतहि सठ समान नहि फूरा। इहि बिच भाट बखानेउ भूरा॥
जेहिं सुनि सिरि सठ सिल्पि बोलाई। काठ बाहु दुइ लीन्ह बनाई॥

यह सुनते ही वह मूर्ख फूला न समाया; इतने में बन्दीजनों ने गाकर उसकी भूरी-भूरी प्रशंसा कर दी; जिसे सुन वह उमड़ उठा और शिल्पियों को बुलवाकर उसने लकड़ी की दो भुजाएँ बनवा ली।

संख पदुम दुइ आयुध भारी। सहित ताहि धरि भा भुजचारी॥
असततमाभ किरीट सुहावन। साधन भा रह गुन प्रगटावन॥

शङ्ख, पद्म और दो महान शस्त्र चक्र व गदा से युक्त उन भुजाओं को धारण करके वह चतुर्भुज बन गया। असत्यरूपी अन्धकार की आभा से युक्त उसका सुन्दर मुकुट उसके गुण प्रकट करने का साधन हो रहा था।

सचिवन्ह मृदु बच केर समीरा। जड़मति सिखिपख होत अधीरा॥
काँधपीत पट अवगुन केरा। आँधरपनु दुति दमक घनेरा॥

उसके मुकुट पर स्थित मूर्खतारूपी मोर पङ्ख मन्त्रियों के मीठे वचनों की वायु के संसर्ग से हिल रहा था। उसके कन्धे पर स्थित अवगुणरूपी पीताम्बर अन्धेपन की आभा से दमक रहा था।

हिय बैजयन्ति परिधि कठोरा। बसहि निसंक जहाँ मद चोरा॥
श्रवन बधिरपनु कुंडल न्यारे। होत जे हित बच रोकनिहारे॥

उसके हृदय पर बैजयन्तीमाला की कठोर परिधि थी, जिसके मध्य मदरूपी चोर निर्भय होकर बसता था। उसके कानों में बहरेपन के विचित्र कुण्डल सुशोभित थे; जो हितकारक वचनों का विरोध करनेवाले थे।

दोहा- काठ जोरि सिल्पिन्ह कर निरमयऊँ उरगारि।
तापर चढ़ि हरि जानि निज निकसेउँ नगरि मँझारि॥१॥

उसने शिल्पियों की सहायता से लकड़ी का एक गरुड़ बनवा लिया और उस पर चढ़कर स्वयं को श्रीकृष्ण समझता हुआ वह नगर में निकला।

चौ.- पुनि मृतिका माधौ हरषाई। हठि आपन कहँ लाग पुजाई॥
कृत्य तासु जब लोअन्ह देखा। भयउँ तेहिं आचंभ बिसेषा॥

फिर मिट्टी का वह माधव हर्षित होकर; हठपूर्वक (सबसे) अपनी पूजा करवाने लगा। उसके इस कृत्य को जब लोगों ने देखा; तो उन्हें विशेष आश्चर्य हुआ।

बासुदेव एक अह जदुबंसा। कंसहि बधि जेहि पाइ प्रसंसा॥
ते अब बसहि नीरनिधि अंतर। उयउँ काह तें अब यह दूसर॥

(वे विचार करने लगे कि,) एक वासुदेव तो यदुवंश में उत्पन्न हुए है; जिन्होंने कंस को मारकर कीर्ति अर्जित की। वे अब समुद्र के मध्य द्वारिका में रहते हैं; तो फिर यह दूसरा वासुदेव कहाँ से पैदा हो गया?

गनिअ चोख अब किन्हँ जुग माहीं। इहि दुबिधा उमगी उर ताही॥
पुँडरक तबहि बिप्र हँकराई। सचिवन्ह प्रेरित पाति लिखाई॥

अब इन दोनों में किसे वास्तविक समझा जायँ; यही दुविधा उनके हृदय में उमड़ने लगी। तभी पौण्ड्रक ने ब्राह्मणों को बुलवाया और अपने मन्त्रियों से प्रेरित होकर उसने उनसे एक पत्र लिखवाया।

सोउ बिप्रन्हँ कर पुनि सो पाती। हरिहि पठइ गरुअत निजघाती॥
हरिहि सभा द्विज जाइ बहोरी। कहि लग निज अगवन कर जोरी॥

फिर उस कुलघ्न ने गर्वपूर्वक उन्हीं ब्राह्मणों के हाथ वह पत्र (द्वारिका में) श्रीकृष्ण को भेजा। वे ब्राह्मण भगवान श्रीकृष्ण की सभा में गए और हाथ जोड़कर, अपने आने का कारण कहने लगे।

सो.- प्रभु हित एक सँदेस दीन्ह कासिपति पुंडरकु।
जदपि नाथ दीनेस तदपि कहत भय होत हिय॥२॥

(ब्राह्मण बोले-) काशीराज पौण्ड्रक ने प्रभु (आप) के लिये एक सन्देशा भेजा है; यद्यपि स्वामी (आप) दीनजनों के ईश्वर हैं; तथापि (उस संदेश को) कहते हुए हमारे हृदय में भय हो रहा है।

चौ.- तातें अभय प्रथम भगवाना। देहु हमहि हम करहि बखाना॥
अस सुनि प्रनतपाल द्विजदासा। सबिनय गै माधविसुर पासा॥

इसलिये हे भगवन्! पहले आप हमें अभयदान दीजिये; ताकि हम पत्र का वर्णन कर सकें। यह सुन शरणागतवत्सल और ब्राह्मणों के सेवक श्रीकृष्ण विनम्रतापूर्वक उन ब्राह्मणों के निकट गए।

पुनि सिरु नाइ अभय उन्हँ कीन्हें। चरन बंदि बर आसनु दीन्हें॥
तदुप बिप्र सो लहि हरि सैना। पढ़न लाग उन्हँ सन सठ बैना॥

फिर उन्होंने सिर नवाकर उन्हें अभय कर दिया और उनके चरणों की वंदना करके उन्हें उत्तम आसन दिये। तदुपरान्त वे ब्राह्मण श्रीकृष्ण का सङ्केत पाकर पौण्ड्रक का सन्देश पढ़ने लगे।

रे अहीर छोहरे बिमूढ़ा। सुनु उघारि श्रव मम बच गूढ़ा॥
बासुदेव हौंही जगपाला। ममहि हाथ नित तीनिउँ काला॥

अरे ग्वाले के महामूर्ख लड़के! मेरे गूढ़ वचनों को कान खोलकर सुन! मैं ही जगत्पालक वासुदेव श्रीकृष्ण हूँ और तीनों काल निरन्तर मेरे ही वश में रहते हैं।

नर तन ममहि भयउँ अवतारा। हरन हेतु धरनी कर भारा॥
पुनि तुम बिभव चार दिनु पाई। बासुदेव जग लाग कहाई॥

पृथ्वी का भार हरण करने के लिये मनुष्य शरीर में मेरा ही अवतार हुआ है और तुम चार दिन का वैभव पाकर, इस संसार में वासुदेव कहलाने लगे हो!

सो जे चह सुखि जिवनु बिताई। बासुदेव तजु बेगि कहाई॥
न त मैं चढ़ि आपन उरगारी। धरे चारिभुज रूप खलारी॥

इसलिये यदि तुम अपना जीवन सुखपूर्वक बिताना चाहते हो; तो शीघ्र ही वासुदेव कहलाना छोड़ दो! नहीं तो मैं दुष्टों का नाश करनेवाला चतुर्भुजरूप धारण करके, अपने गरुड़ पर चढ़कर

दोहा- **हरत भार महि बेगिहि सकुल तोहि रनु मारि।**
घन जलनिधि महुँ बोरिहउँ तव द्वारिका उखारि॥३॥

पृथ्वी का भार हरण करते हुए शीघ्र ही युद्ध में तुम्हें कुल सहित मार डालूँगा और तुम्हारी द्वारिका को उखाड़कर गहरे समुद्र में डूबो दूँगा।

चौ.- **बिषय गभीर अवसि केउ होई। सुन सचेत अस गनि सब कोई॥**
पर सुनि तिन्ह अस बाग बिलासा। सभासदन्ह मुख छूटेउ हासा॥

"अवश्य ही कोई गम्भीर विषय होगा", यह समझकर सभी सभासद् वह सन्देश ध्यान से सुन रहे थे। किन्तु पौण्ड्रक का ऐसा मूर्खतापूर्ण सन्देश सुनकर; उन सभासदों से मुख से हँसी छूट पड़ी।

चइत मास घन स्वेत गभीरा। जनु अवचट बरषत भै नीरा॥
बिंग्य करत कह एक मुसुकाई। खनेउ महीधर ऊँदरि पाई॥

मानों चैत्र माह के घने श्वेत बादल अचानक जल बरसाने लगे हों। तब एक सभासद् ने व्यंग्य करते हुए मुस्कुराकर कहा कि खोदा पहाड़ और निकली चुहिया।

भाबि बिचारि सुभट हरषाने। प्रबुध प्रलाप जानि अचराने॥
कौतुकि करत भए परिहासा। चिंतक लखा निकट तिन्हँ नासा॥

सम्भावित युद्ध की कल्पना करके, (वहाँ उपस्थित) उत्तम योद्धा हर्षित हुए। प्रबुद्ध सभासद् इस सन्देश को प्रलाप समझकर आश्चर्य चकित हो गए। जो मौजी थे, वे उपहास करने लगे और चिन्तकों ने (इस सन्देश के रूप में) पौण्ड्रक का विनाश निकट देखा।

क्रोधि सुभाय सुनतहि अस कहा। जीवन सठ कर चारि दिनु रहा॥
तातें काल बस्य मरजादा। तजि कर बाँवर सम बकवादा॥

जिनका स्वभाव क्रोधयुक्त था, उन्होंने सुनते-ही कहा कि मूर्ख पौण्ड्रक का जीवन केवल चार दिनों का और है। इसीलिये काल के वशीभूत हुआ वह मर्यादा को त्यागकर पागलों के समान ऐसी बकबक कर रहा है।

इहिंबिधि जस सुभाय जिन्ह रहेउ। सठ प्रति बचन तेहिं तस कहेउ॥
बिदा करत बिप्रन्हँ भगवाना। सठ हित प्रतिसंदेस बखाना॥

इस प्रकार जिसका जैसा स्वभाव था, उसने मूर्ख पौण्ड्रक के लिये वैसी ही बात कही। फिर दूतरूपी ब्राह्मणों का सम्मान करके विदा करते हुए श्रीकृष्ण ने उस मूर्ख के लिये प्रत्युत्तर में यह बात कही-

दोहा- द्विज निज कान्हहुँ कहु सकुल आवत छदुम कन्हाइ।
सो तुम हरिबे भार महि साधन लेहु जुड़ाइ॥४॥

हे ब्राह्मणदेवताओं! अपने कन्हैया से कह देना कि कपट से वासुदेव कहलानेवाला यह कन्हैया कुल सहित (काशी) आ रहा है; अतः तुम पृथ्वी का भार हरने के लिये उपयुक्त साधन जोड़ लो।

चौ.- बिप्र जूह तब सठ सन आवा। हरि आवत अस ताहि जनावा॥
इहँ खलारि जदु कटकु सजाए। पुँडरक भ्रम तोरन निअराए॥

तब वे ब्राह्मण पौण्ड्रक के सन्मुख लौट आए और "शत्रु आ रहा है", ऐसा उसे बता दिया। इधर दुष्टनिकन्दन श्रीकृष्ण यादवों की सेना सजाकर; पौण्ड्रक का भ्रम तोड़ने के लिये (काशी के) निकट आ गये।

अस लखि पुँडरकु सखन्हँ सहाई। पाँच अछौहिनि कटकु जुड़ाई॥
पुनि हिय धरि अतिसय अभिमाना। भा बिमूढ़ खलरिपु समुहाना॥

यह देखकर पौण्ड्रक ने अपने मित्र राजाओं की सहायता से पाँच अक्षौहिणी सेना एकत्र की; फिर वह महामूर्ख मन में अत्यधिक गर्वित होता हुआ, दुष्टशत्रु श्रीकृष्ण के सन्मुख आ पहुँचा।

बहुरि करत बहुबिधि परिहासा। करन लाग अस बागबिलासा॥
रे अहीर बालक मतिमंदा। भा मैं हरन भूत भव फंदा॥

फिर भगवान श्रीकृष्ण की बहुत प्रकार से हँसी करते हुए यह डींग हाँकने लगा- अरे ग्वाले के मन्दबुद्धि बालक!! मैं जीवमात्र के भव का बन्धन हरने के लिये अवतरित हुआ हूँ।

कंसादिक बहुतक बलवाना। हठि बधेहु उन्हँ तुम अभिमाना॥
जग जाहिर तुम ग्वाल गँवारा। कहिअत तद्यपि राजकुमारा॥

कंस आदि निर्दोष और गुणों की खान थे; किन्तु अभिमानवश हो तुमने उन्हें व्यर्थ ही मार डाला। यह बात जगतभर में प्रसिद्ध है कि तुम गँवार ग्वाले हो; फिर भी राजपुत्र कहलाते फिरते हो।

ऐतनहुँ जिय न भरानेउँ तोरा। जे कहाइ चह हरि बरजोरा॥
पै अब बासुदेव अस नामा। तजि सकुसल फिरहू निज धामा॥

इतने पर भी तुम्हारा जी नहीं भरा; जो अब बलपूर्वक 'श्रीहरि' कहलाना चाहते हो? किन्तु अब तुम 'वासुदेव' यह नाम त्यागकर, सकुशल अपने नगर में लौट जाओ।

न त करि सकुल तोर संघारा। हरउँ अवसि अज मेदिनि भारा॥
बिनु सिर पद बच सुनि तिन्हँ केरे। बिहँसे प्रबुध जथारथ प्रेरे॥

अन्यथा कुल सहित तुम्हारा वध करके, आज मैं निश्चय ही पृथ्वी का भार हर लूँगा। उसकी ऐसी बिना सिर-पैर की बातें सुनकर, वहाँ उपस्थित प्रबुद्ध यादव सत्य के ज्ञान से प्रेरित हो हँसने लगे।

दोहा- प्रजाबछलता निज हृदय जे तुम लेहुँ बसाइ।
तो मैं तव अस जड़पनहुँ फिरु कदचित सिरु नाइ॥५॥

तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि यदि तुम अपने हृदय में प्रजा के प्रति प्रेम बसा लो; तो कदाचित् मैं तुम्हारी इस जड़ता को भी सिर नवाकर लौट जाऊँ।

चौ.- नभ सुरसरि परन्तु जस भाई। निज उर जनि सक कमल उगाई॥
बालदिवस कइ बर चपलाई। जस न पाइ सक निसि अलसाई॥

किन्तु जिस प्रकार आकाशगङ्गा अपने (अस्तित्व के) मध्य कमल नहीं उगा सकती और जिस प्रकार नवीन अलसाई हुई रात्रि, सवेरे की उत्तम चञ्चलता को नहीं पा सकती।

तस न सकहि करि परहित काजा। तुम सारिखे भोगप्रिय राजा॥
अस कहि तोरन अरि अभिमाना। गिरिधर चक्र धरेउँ महाना॥

उसी प्रकार तुम जैसे विलाशी राजा लोकहितैषी कार्य नहीं कर सकते। ऐसा कहकर शत्रु का अभिमान नष्ट करने के लिये गिरधर ने अपने हाथ में महान सुदर्शन चक्र धारण कर लिया।

बहुरि सपदि छेदा तिन्हँ सीसा। लखि जदु कह जय जय जगदीसा॥
नगर द्वार धरि सिरु सठ केरा। फिरेउँ चक्र हरि पहि हरि प्रेरा॥

फिर शीघ्र ही उसका सिर काट लिया; यह देख यादव 'जय-जय जगदीश' इस प्रकार कहने लगे। इधर कृष्णप्रेरित सुदर्शन मूर्ख पौण्ड्रक का सिर उसके नगर के द्वार पर रखकर, पुनः उनके पास लौट आया।

धुँआ देखि आपन पितु केरा। भा सुदछिन कहँ कोप घनेरा॥
सिवहि साधि आयोजेउ जागा। पुनि खल सजतन मख करि लागा॥

अपने पिता पौण्ड्रक को मारा गया देखकर पुत्र सुदक्षिण को अत्यन्त क्रोध हुआ। तब उसने शिवजी को साधकर यज्ञ का आयोजन किया और विधिपूर्वक यज्ञ करने लगा।

तेहिं मख तें कृत्या उपजाई। दहन द्वारिका बहुरि पठाई॥
कोप तासु झरसावनिहारा। जब द्वारिकहिं सींव पइसारा॥

उसने उस यज्ञ से कृत्या को प्रकट करके, फिर उसे द्वारिका को भस्म करने के लिये भेज दिया। उस कृत्या का अत्यन्त दाहक क्रोध जब द्वारिका की सीमाओं में पहुँचा।

दोहा- **तब त्रितापहर दीनहितु प्रजहिं त्रास अनुमानि।**
माय प्रेरि आपन अनल खलहि समुख उलटानि॥६॥

तब तीनों तापों से छुड़ानेवाले, दीनबन्धु भगवान श्रीकृष्ण ने प्रजा के दुःख का अनुमान करके, अपनी माया से उस कृत्या को वापस सुदक्षिण की ओर लौटा दिया।

चौ.- **लखि सुदछिन भा छोभु अपारा। तासु दुराग्रह तेइहिं जारा॥**
निरखि भए जदु सकल सुखारी। गावत भए सुजसु असुरारी॥

यह देखकर सुदक्षिण को अत्यन्त क्षोभ हुआ और उसके दुराग्रह ने उसे ही भस्म कर दिया। यह देखकर समस्त यादव सुखी हुए और असुरों के शत्रु भगवान श्रीकृष्ण का सुयश गाने लगे।

नृप सुग्रीवहि सचिव इक अहा। द्विबिद बिसेषन तासु अस रहा॥
भौम सखा सो सुभट प्रचंडा। नाग सहस दस बल भुजदंडा॥

हे परीक्षित! वानरराज सुग्रीव एक मन्त्री था, जिसका 'द्विविद' यह नाम था। वह प्रचण्ड व उत्तम योद्धा द्विविद भौमासुर का मित्र था; जिसके भुजदण्डों में दस हजार हाथियों का बल था।

जब तेहिं सुना भौम कर घाता। रिस जरि उठे तासु सब गाता॥
तेहिं दिनु सुमिरि मिताइहि नाता। कपि सो चला करन प्रतिघाता॥

जब उसने भौमासुर के मारे जाने के विषय में सुना, तो क्रोध के मारे उसके सारे अङ्ग जल उठे और उसी दिन (भौमासुर से) अपनी मित्रता के सम्बंध का स्मरण करके वह वानर (श्रीकृष्ण पर) प्रतिघात करने चल पड़ा।

पुनि द्वारिका कीस जब आवा। मुनिन्ह देखि अतिसय रिस छावा॥
अवजल मल करि पुनि मखसाला। उधम लाग करि बपुष बिसाला॥

फिर जब वह वानर द्वारिका में आया, तो वहाँ मुनियों को देखकर अत्यंत क्रुद्ध हो उठा। फिर उनकी यज्ञ शाला में मल-मूत्र करके विशाल शरीर धारण किये वह उत्पात मचाने लगा।

एहिबिधि देत मुनिन्ह दुख भारी। चढ़ा सो कपि हरि भवन अटारी॥
कूदि फाँदि करि लग अटहासा। निरखि तियन्ह उर भइ अति त्रासा॥

इस प्रकार मुनियों को अत्यन्त दुःख देते हुए वह वानर श्रीकृष्ण के भवन की अटारी पर जा चढ़ा। वहाँ उछलकूद करके वह अट्टहास करने लगा; यह देखकर स्त्रियों के मन में बड़ा भय हुआ।

दोहा- **दाउ गए रैवतक गिरि पुनि न इहाँ जदुनाह।**
बाढ़ि रहा कपि उधम सखि अब धौं होइहि काह॥७॥

वे परस्पर कहने लगी कि दाऊ इस समय रैवतक पर्वत पर गए हैं और श्रीकृष्ण भी यहाँ नहीं है और इस वानर का उत्पात तो बढ़ता ही जा रहा है। हे सखि! अब क्या होगा?

चौ.- डरपत तिय अस बचन जब सुना। कपि उर भा तब आनँद दूना॥
प्रथम जाइ मर्दउँ बलरामहिं। तदुप पाछ फिरि हतिहउँ स्यामहिं॥

तब भयभीत हुई उन स्त्रियों का यह वचन सुनकर द्विविद के मन में दुगुना आनन्द हुआ। वह सोचने लगा कि पहले जाकर मैं बलराम को मारूँगा। फिर वहाँ से लौटकर कृष्ण को मारूँगा।

अस बिचारि सठ अति गरुआवा। बहुरि रैवतक गिरि पर आवा॥
अहिकुँअरिन्ह सँग तहँ अहिराई। रहे भाँति बहु मोद मनाई॥

ऐसा विचारकर वह मूर्ख अत्यन्त गर्वित हो उठा और रैवतक पर्वत पर आ गया। वहाँ पर बलरामजी नागकन्याओं के साथ अनेक प्रकार से आनन्द मना रहे थे।

तहँ मानस कछु नागकुमारी। जल बिहरत होइ रही सुखारी॥
तटहिं बसन जब उन्ह लखि पावा। कपि सुभाउ तेहिं अति उमगावा॥

उस समय वहाँ जल विहार करते हुए कुछ नाग कन्याएँ सुखी हो रही थी। तट पर ही धरे हुए उनके वस्त्रों को देखकर द्विविध नामक उस वानर की वानरी-प्रकृति अत्यधिक मचल उठी।

झपटि अपावन करि तेहिं फारी। तियन्ह खिजावत भा दै तारी॥
एतनेहुँ जब न धापि चपलाई। धरि लघु बपुष चढ़ा तरु जाई॥

तब झपटकर उसने उन वस्त्रों को उठा लिया और अपवित्र करके, फाड़ दिया। तत्पश्चात् उन नागकन्याओं को वह ताली बजा-बजाकर चिढ़ाने लगा। इतने पर भी जब उसकी चञ्चलता नहीं अघाई तब छोटा-सा शरीर धारण करके, वह एक वृक्ष पर जा चढ़ा।

पुनि किलकत सो इत उत डारी। उझकि कूदि लागेहुं अति भारी॥
नटखटपनु तरु चोटि चढ़ाई। पुनि लागेउँ साखन्ह झँझराई॥

फिर किलकारी मारकर वह इधर-उधर डालियों पर भारी उछलकूद करने लगा। फिर अपनी नटखटता को वृक्ष की चोटी पर चढ़ाकर वह वृक्ष की शाखाओं को झिंझोड़ने लगा।

दोहा- तिय पुकार करि लागि तब बलनिधि लखि कपि खेल।
सपदि आइ सोइ बिटप तर मारेउँ तेहिं एक ढेल॥८॥

उस समय उन स्त्रियों की पुकार को सुनकर बलरामजी ने उस वानर का खेल देखा। फिर शीघ्र ही उस वृक्ष के नीचे आ गए और उसे मिट्टी का एक ढेला मारा।

चौ.- ढेलाघात कपिहि चपलाई। अरुनरेख ढरि दृग उमगाई॥
लखेउँ राम कपि गयउ रिसाई। जाँघ प्रतारि लाग उकसाई॥

ढेले के आघात से वानर की चञ्चलता लाल रेखाओं में बदलकर उनके नेत्रों में उमड़ आई। बलरामजी ने देखा कि वानर क्रुद्ध हो उठा है, तब वे अपनी जाँघ ठोंककर उसे उकसाने लगे।

अस बिलोकि तनु धरि बिकरारा। उतरा हेठ सुभट तजि डारा॥
बहुरि उखारि बिटप अरु प्रस्तर। लाग प्रहारन सरोष सब पर॥

यह देखकर वह उद्भट वानर विकराल शरीर धारण करके, वृक्ष की शाखाओं से नीचे उतर आया और पत्थर व वृक्ष उखाड़कर उन्हीं से कुपित होकर उन सब पर प्रहार करने लगा।

तब हल मूसर गहि करि क्रोधा। धाए बलनिधि करन बिरोधा॥
पुनि कपि सिरु उन्ह मूसर मारा। जेहिं तें फूटेउ रुधिर पनारा॥

तब क्रोध करके, हल और मूशल उठाकर बलरामजी उसके विरुद्ध दौड़े। फिर उन्होंने द्विविद के सिर पर मूशल से प्रहार किया। जिससे उसके सिर से रक्त का पनाला फूट पड़ा।

तदपि महाभट तुरत सँभारी। बल कहँ मारेउँ बिटप उखारी॥
फुरति तें अहिपति ताहि चुकाई। कपिहि लूम गहि लाग भँवाई॥

फिर भी उस महायोद्धा ने तुरन्त सम्भलकर बलरामजी को एक वृक्ष उखाड़कर मारा। किन्तु बलरामजी ने बड़ी फूर्ती से उस प्रहार से बचकर वानर की पूँछ पकड़ ली और उसे घुमाने लगे।

दोहा- घूर्मित भा कपि केर सिरु सजतन चल न चलाइ।
तब प्रचंड सिलखंड पर पारेउँ तेहिं अहिराइ॥९॥

जिससे वानर का सिर चकराने लगा। प्रयत्न करने पर भी उसकी एक न चली। तदुपरान्त बलरामजी ने उसे एक प्रचण्ड शिला पर पटक दिया।

चौ.- जब चित थवेहुँ कीस पुनि लागा। काय परन्तु महाश्रमु जागा॥
द्वंद कीन्ह तद्यपि बहुभाँती। किन्तु न टरे ब्योम आराती॥

कुछ क्षण पश्चात् चित्त स्थिर हुआ, तब बानर पुनः युद्ध करने लगा, किन्तु उसका शरीर अत्यन्त थकने लगा था। उसने पुनः सघन द्वन्द्व किया, किन्तु व्योमनिकन्दन उससे पराजित न हुए।

द्वंद बिषम लखि इत सब नारी। हाहाकार लागि करि भारी॥
तब गर घोंटि कपिहि बलरामा। काज तासु करि दीन्ह तवाँमा॥

इधर उनके कठोर द्वन्द्व-युद्ध को देखकर वहाँ उपस्थित स्त्रियाँ बड़ा भारी हाहाकार करने लगी। तब बलरामजी ने उस वानर का गला घोंटकर उसका काम तमाम कर दिया।

अहिबनितन्हि करि अभय बहोरी। फिरे दाउ आपन पुर ओरी॥
साम्ब केर जस भेउ बिहाआ। सुनिअ चरित बर सो नरनाहा॥

फिर नागकन्याओं को अभय देकर बलरामजी अपने नगर की ओर लौट आए। हे परीक्षित! जामवंतिनन्दन साम्ब का विवाह जिस प्रकार हुआ, अब आप उस सुन्दर चरित्र को सुनिये।

नृप दुरजोधन केरि कुमारी। नाउँ लछमना गुन छबि भारी॥
पितु जब लखि तेहिं जोग बिआहा। कीन्ह स्वयंबरु हरिषि अगाहा॥

राजा दुर्योधन की लक्ष्मणा नामक एक पुत्री थी, जो गुणवती व परम सुन्दरी थी। जब दुर्योधन ने उसे विवाहयोग्य देखा, तब उसने बड़े हर्ष से उसके लिये भव्य स्वयंवर का आयोजन किया।

जामवंति अरु कृष्न कुमारा। पाइ खबरि अस तहाँ पधारा॥
राजसुता कर धरि बरमाला। निदरत राजसमाज बिसाला॥

यह समाचार सुनकर भगवान श्रीकृष्ण और महारानी जामवंति के पुत्र राजकुमार साम्ब वहाँ गये। उस समय हाथों में वरमाला लिये राजसमाज का निरादार करती हुई राजकुमारी

जातहि साम्ब समुख सकुचानी। मनहुँ तेन्ह निज निधि पहिचानी॥
लुब्ध नयन मरजाद बिहाई। जनु चह प्रिय छबि स्वत्व बुड़ाई॥

साम्ब के सन्मुख जाते ही सकुचा गई। मानों उसने अपनी निधि पहचान ली हो। उसके लुब्ध नेत्र मर्यादा को त्यागकर मानों उन प्रियतम की सुन्दरता पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर देना चाहते थे।

दोहा- **पेमुपारखीतनय तिहि उरगति जब अनुमानि।**
तब सकोच तजि बाहु गहि कुँअरिहुँ बाम जुड़ानि॥१०॥

प्रेम के पारखी कृष्ण के पुत्र साम्ब ने जब राजकुमारी के हृदय की बात जान ली, तब सङ्कोच त्यागकर उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे अपनी दाहिनी ओर खड़ा कर लिया।

चौ.- **बहुरि चला रथ ताहि चढ़ाई। परम पेमु आनंद बढ़ाई॥**
अस बिलोकि कह राज समाजा। परिहरि निपट जादवन्ह लाजा॥

फिर अत्यधिक प्रेम व आनंद को बढ़ाते हुए वे उसे रथ पर चढ़ाकर द्वारिका की ओर चले। यह देखकर वहाँ उपस्थित राजागण कहने लगे कि देखों तो यादवों ने लज्जा बिल्कुल ही त्याग दी।

यह सठ पितु सम लाज बिहाई। चला कुँअरि कहँ हरि बरिआई॥
जदुबंसिन्ह रीतिहि असि भाई। जाउ जहाँ तहँ करौ ढिठाई॥

यह मूर्ख अपने पिता ही के समान लज्जा का त्याग करके राजकुमारी को बलपूर्वक हरकर ले जा रहा है। हे भाई! यदुवंशियों की तो रीति ही यह है कि जहाँ भी जाओ वहाँ मनमानी करो।

जातिहीन कर इहइ सुभाऊ। लहि समाज बिच तनक प्रभाऊ॥
जब आपन मद सक न जिराई। तब सिरु चढ़हि छार के नाई॥

हे भाई! जो जातिहीन होते हैं, वे समाज में थोड़ा-सा प्रभाव पाकर जब अपने अभिमान को पचा नहीं पाते, तब वे पैरों से उड़ी हुई धूल के समान सिर पर चढ़ जाते हैं।

करन बिकरन भूरिश्रव तहवाँ। दुरजोधन सन अस बच कहवा॥
बेगिहि बाँधिअ स्यामकुमारहि। अस सम्मति करि बाढ़त रारहि॥

उस समय कर्ण, विकर्ण और भूरिश्रवा ने दुर्योधन के सन्मुख कहा कि शीघ्र ही कृष्ण के पुत्र को बन्दी बना लिया जाय। ऐसा निश्चय करके, फिर राजकुमार के विरुद्ध शत्रुता बढ़ाकर

दोहा- **सेन संग करि सबन्हँ मिलि घेरेउँ मग महुँ ताहि।**
करन कहा परचारि पुनि तव निबाह अब नाहिं॥११॥

सेना साथ में लेकर उन सबने मिलकर राजकुमार को मार्ग में जा घेरा। उसी समय अङ्गराज कर्ण ने साम्ब को ललकारते हुए कहा कि अब तेरा बचाव नहीं हो सकता।

चौ.- **बहुरि बिषम कोदंड चढ़ाई। रिस नाराच लाग बरषाई॥**

निरखि कालपति तनय दुरंता। काटत भै अरि बान तुरंता॥

फिर उसने अपना कठिन धनुष चढ़ा लिया और साम्ब पर क्रोधरूपी बाण बरसाने लगा। यह देख काल के स्वामी श्रीकृष्ण के पुत्र दुर्दम योद्धा साम्ब तुरन्त ही शत्रु के बाणों को काटने लगे।

बहुरि बलात करन चहुँ ओरा। सरावगुंठन कीन्ह कठोरा॥
करलाघव लखि सिसु कर ऐसा। रिपु समाज रहेउ जड़ जैसा॥

फिर उन्होंने बलपूर्वक कर्ण के चारों ओर अपने बाणों का कठोर आवरण खड़ा कर दिया। उस बालक का ऐसा हस्तलाघव देखकर शत्रु समाज स्तब्ध रह गया।

पृथक पृथक जतनै न धरावा। तब तापर सब कीन्हेहुँ धावा॥
बहुरि बाँधि दुरजोधन पाही। सभा माँझ लै आने ताहीं॥

इस प्रकार अलग-अलग प्रयत्न करने पर जब साम्ब उनसे जीते नहीं गये, तब सबने मिलकर उन पर आक्रमण किया। तत्पश्चात् बन्दी बनाकर वे उन्हें राजसभा में ले आये।

गंगासुत तब कह समुझाई। यह उन्ह सुत जे तिहुँपुरराई॥
राजसुता उर बहुरि जे रहा। सभा स्वंबरु सबन्हौं निरहा॥

उस समय गङ्गापुत्र ने दुर्योधन से कहा कि हे वत्स! यह बालक उनका पुत्र है, जो तीनोंलोकों के स्वामी हैं। फिर राजकन्या के हृदय में जो था उसे स्वयंवर सभा में सभी ने देखा भी था।

सो बिआहि उन्ह लहुँ जसु भूरा। हरिहि बिमुख भए परिहि न पूरा॥

अतः उन्हें ब्याहकर सुयश पाओ। क्योंकि भगवान से विमुख होने पर हमारा पूरा नहीं पड़ेगा।

दोहा- **राजब्रती हित नीति अस प्रति निरनय तिन्हँ केर।**
होवहि प्रतिनिधि प्रजहि हित रहित स्वत्व मद मेर॥१२॥

और किसी राजनीतिज्ञ के लिये तो यह नीति भी कही गई है कि उनका प्रत्येक निर्णय, उसके आत्माभिमान की सीमाओं से परे होकर उसकी प्रजा के हित का प्रतिनिधि होना चाहिये।

चौ.- **पै उन्ह बच कलि कान न लावा। बन्दीगृह हरिसुतहिं पठावा॥**
द्वारिकेस जब अस सुनि पाए। हरि संमति उन्ह बलहि पठाए॥

किन्तु दुर्योधन ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और साम्ब को बन्दीगृह में डाल दिया। जब उग्रसेन को यह पता चला, तो उन्होंने श्रीकृष्ण की सम्मति से बलरामजी को हस्तिनापुर भेजा।

राम सुमिरि कुरुअन्ह प्रति नातहि। तनक न धरेउँ भाउ प्रतिघातहि॥
ऊधउ आदि किए जदु चारी। चले हस्तिनापुर जनि धारी॥

बलरामजी ने कौरवों से सम्बन्ध का विचार करके, मन में तनिक भी दुर्भावना नहीं आने दी। फिर वे उद्धव आदि कुछ यादवों को साथ लेकर बिना सेना के ही हस्तिनापुर को चले।

नगर आइ करि उपबन बासा। अक्रूरहिं पठवा कलि पासा॥
दुरजोधन सुनि अगवन तासू। करि आगे सनमान सुपासू॥

नगर में आकर एक उपवन में डेरा डालकर फिर बलरामजी ने अक्रूरजी को दुर्योधन के पास भेजा। उनका आना सुनकर दुर्योधन स्वागत की सामग्री आगे किये

भीष्म जुधिष्ठिर द्रोनहि सँग करि। हरषि मनहि चलेउ अति आतुरि॥
जातहि तिहि धरि भेंट बहोरी। कीन्ह नमन बल कहँ कर जोरी॥

भीष्म, युधिष्ठिर और द्रोणाचार्य आदि को अपने साथ लेकर मन-ही मन हर्षित होता हुआ बड़ी उतावली से चला। फिर उसने जाते ही भेंट-सामग्री सम्मुख रखकर हाथ जोड़ते हुए बलरामजी को प्रणाम किया।

आदरु जोग गुरन्ह लखि आगे। राम परसि पद अति अनुरागे॥
दुरजोधन कह कहु बलधामा। भेउँ आगवन तव केहि कामा॥

आदरणीय गुरुजनों को अपनी सन्मुख आया देखकर बलरामजी ने बड़े प्रेम से उनका चरण स्पर्श किया। फिर दुर्योधन ने कहा- हे बलदाऊ! किस कारण से आपका आगमन हुआ है।

दोहा- जदुपति मोहि पठाएहुँ मुकुत करावन ताहि।
महारथी षट तोर मिलि छल तें बाँधेउ जाहिं॥१३॥

तब बलरामजी ने कहा कि मुझे महाराज उग्रसेन ने उसे मुक्त करवाने के लिये भेजा है, जिसे तुम्हारे छः महारथियों ने मिलकर कपट से बन्दी बना लिया है।

चौ.- कीन्ह बाँधि तेहिं अनुचित काजा। उगर कर न तैं कीन्ह मुलाजा॥
करि जे खोरि तेहिं लरिकाई। तदपि भुलाइअ सील देखाई॥

तुमने उसे बन्दी बनाकर बड़ा ही अनुचित कार्य किया है। तुमने महाराज उग्रसेन का भी मान न रखा। यदि उसने लड़कपनवश भूल की भी हो, तो भी तुम शिष्टतापूर्वक उसे भुला दो।

किअँकि जरठ सिसु छमिबे लायक। तिन्ह उर अमल जदपि बच सायक॥
बहुरि तोर तनुजा सकुचाई। चुप धरि बरेउँ तेहिं सभ पाई॥

क्योंकि बालक और वृद्ध क्षमा के योग्य होते हैं। यद्यपि उनके वचन बाण-से लगते हों फिर भी उनका मन निर्मल होता है। फिर तुम्हारी पुत्री ने भी सभा में पाकर सकुचाते हुए चुपचाप उसी का वरण किया था।

सो सादरु तुम परिहरि ताही। तनुजा आपन देहुँ बिआही॥
बिनय उगर कइ इहई भाई। सुनि जड़मति अस कहा रिसाई॥

इसलिये अब तुम सम्मान सहित उसे छोड़कर अपनी पुत्री उसे ब्याह दो। यही महाराज उग्रसेन की प्रार्थना है। यह सुनकर उस मन्दबुद्धि दुर्योधन ने कुपित होकर कहा कि,

बात उगर कइ करु बल नाहीं। कल्ह लौ जसु न रहा कछु ताही॥
भा हमार तें नातउ गाढ़ा। तब तें जग आदरु उन्ह बाढ़ा॥

हे दाऊ! आप उग्रसेन की बात मत कीजिये, क्योंकि कल तक उनके पास कुछ भी यश नहीं था। जब से हमारे साथ उनका सम्बन्ध गहरा हुआ है, तभी से संसार में उनका आदर भी बढ़ा है।

होत मोर उर अचरज भाई। तुअ इहिबिधि किन्हँ रहे सुनाई॥
बहुरि साम्ब जे कीन्हि ढिठाई। लखि सो देतौं तेहि बधाई॥

हे भाई! मुझे तो आश्चर्य होता है कि पैरों से उड़ी हुई धूल सिर पर चढ़ना चाहती है। फिर साम्ब ने जो ढीठता की है, उसे देखते हुए यदि मैं उसकी हत्या भी करवा देता।

तद्यपि जनि अनुचित कछु जाता। पैं बाँधा तिन्हँ हेरि सुनाता॥

तब भी कुछ अनुचित न होता। किन्तु मैंने अच्छे सम्बन्ध का विचारकर, उसे केवल बाँधा है।

दोहा– सुनतहि अस अच्युताग्रज बिहँसन लगे ठठाइ।
पुनि ऊधौ सन कह निरखु एहि जड़मतिहि ढिठाइ॥१४॥

यह सुनते ही अच्युताग्रज बलरामजी ठहाका मारकर हँसने लगे। फिर वे उद्धवजी से कहने लगे कि इस मन्दबुद्धि की ढीठता तो देखो!

चौ.– जगपति परस पदाम्बुज जाके। रहत महीप जासु रुख ताके॥
सुजसु जासु जग फिरि श्रमु पाई। रहा सक्र बन थकनि मेटाई॥

जगत्पति जिनके चरणकमलों का स्पर्श करते ही और राजागण जिनका रुख देखा करते हैं। जिनका सुन्दर यश संसारभर में भ्रमण करके थककर इन्द्र के नन्दनवन में थकान मिटा रहा है।

करत उन्हहि प्रति अस दुरबादा। सठहुँ नाघि सीलहि मरजादा॥
पावहिगो फल अब भलिभाँती। कहि कोपेउ प्रलंब आराती॥

उन्हीं के प्रति ऐसी निरादर भरी बातें करते हुए तुम सभ्यता की मर्यादा को लाँघ चुके हो। अब इसका फल भी तुम भली-भाँति पाओगे; ऐसा कहकर प्रलम्बनिकंदन बलरामजी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे।

बोरे बिनु तोहि जमुना माहीं। छाति मोर अब सीतइ नाहीं॥
हल गड़ाइ तिन्ह पुरहिं उपारी। बोरि लाग पुनि तें सरि बारी॥

(बलरामजी पुनः बोले-) तुम्हें यमुना में डुबोये बिना मेरी छाती अब ठण्डी नहीं होगी। फिर भूमि में हल गड़ाकर वे उसके सम्पूर्ण नगर को ही उखाड़कर यमुना के जल में डुबोने लगे।

लखि जड़मति अति भय उर माना। कहै करै बन कछु न खिसाना॥
तब मननयन भीष्म भै आगे। पुनि पुनि उन्ह समुझावन लागे॥

यह देखकर मन्दबुद्धि दुर्योधन मन-ही मन भयभीत हो उठा। लज्जा के मारे उससे न तो कुछ कहते बना और न ही करते। तब धृतराष्ट्र और भीष्म आगे आए और बार-बार उन्हें समझाने लगे।

बिनय करत उन्ह सनमुख पाई। सकुचे राम हेरि गुरताई॥
भीष्म पूज्य तिहुँ पुर के माहीं। तोहि छोरउँ मुलाज करि ताहीं॥

उन्हें इस प्रकार अपने सन्मुख विनय करते देख उन्हें आदरणीय जानकर बलराम सकुचा गये और उससे बोले गङ्गापुत्र तीनोंलोकों में पूज्य हैं। उन्हीं का मान रखकर मैं तुम्हें जीवित छोड़ रहा हूँ।

सुनि कलि सकुचि भूल निज मानी। माँगिसि छमा कहत मृदु बानी॥

यह सुन दुर्योधन ने लज्जित होकर भूल स्वीकार कर ली और कोमल वाणी से क्षमा माँगी।

दोहा- **बहुरि सुता निज साम्ब कहँ ब्याहि तेहिं सनमानि।**
भेंट देत उन्ह द्वारिका बिदा कीन्ह सुखमानि॥१५॥

फिर उसने अपनी पुत्री आदरपूर्वक साम्ब को ब्याह दी और भेंट देकर उन्हें सुखपूर्वक द्वारिका विदा किया।

चौ.- **बैठि सुधरमा हरि एक बारा। करत रहे नृपनीति बिचारा॥**
आवा बिप्र एक तेहिं काला। पठएहु तहँ जेहिं उन्ह महिपाला॥

एक बार सुधर्मा सभा में बैठे-बैठे भगवान श्रीकृष्ण राजनीति के विषय में विचार कर रहे थे। उसी समय एक ब्राह्मण वहाँ आया। जिसे वहाँ पर उन राजाओं ने भेजा था,

जरासंध हठि बाँधेहुँ जाही। राखे तमागार के माहीं॥
बिप्र बिथा उन्ह नृपतिन्ह गाई। निज सनमुख दिनेस कहँ पाई॥

जिन्हें जरासंध ने बलपूर्वक बन्दी बनाकर कारागृह में डाल रखा था। उस समय उस ब्राह्मण ने दीनेश्वर श्रीकृष्ण को सन्मुख पाकर उन्हें उन राजाओं की सारी व्यथा कह सुनाई।

बिदा कीन्ह कहि करन सहाई। ऐतनहुँ नारद गै तहँ आई॥
करि दंडवत मुनिहिं बैठारेउँ। भगतदास पुनि कमल पखारेउँ॥

तब उन्होंने सहायता का आश्वासन देकर ब्राह्मण को विदा किया। इतने में नारदजी वहाँ आ गए। भगवान ने दण्डवत करके, उन्हें बैठाया और भक्तों के सेवक उन्होंने उनके चरण धोये।

बुहरि जोरि कर कह मुनिराई। कहउँ बुआ कुंतिहि कुसलाई॥
पुनि पांडउ मम भ्रात पिआरे। रहइ भाँति कस कलि परतारे॥

फिर हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे मुनिराज! आप मुझे बुआ कुंती की कुशल कहिये। फिर दुर्योधन के द्वारा सताये गये मेरे प्रिय पाण्डव भाई किस प्रकार रह रहे हैं

दोहा- **समाचार उन्ह मिलेहुँ नहिं केते दिनु गै बीत।**
जानत जे तुम कहहु मोहि उर अधीर मम भीत॥१६॥

कितने दिन बीत गए, मुझे उनका कोई समाचार नहीं मिला। जो यदि आप उनके विषय में जानते हो तो मुझे उनका समाचार कहो। मेरा आशङ्कित हृदय अधीर हो रहा है।

चौ.- **मातु सहित सकुसल सब भाई। राजसूय करि चह जदुराई॥**
एतनहुँ सभहि दूत एक आवा। जुधिठिर जेहिं कर पत्र पठावा॥

तब देवर्षि ने कहा- हे यदुराज! वे सभी भाई अपनी माता सहित सकुशल हैं और राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। इतने में ही सभा में एक दूत आया जिसके हाथों युधिष्ठिर ने पत्र भेजा था।

लिखेउँ पाति मख पनु मम नाथा। जासु सुफलता तोरेहिं हाथा॥
सो तैं आइ कराइअ जागा। पढ़ि उपजेउ प्रभु के अनुरागा॥

पत्र में लिखा था- हे नाथ! मैंने राजसूययज्ञ का सङ्कल्प किया है, जिसकी सफलता आपके हाथ है। अतः आप यहाँ आकर यज्ञ करवाइये। यह सन्देश पढ़कर प्रभु श्रीकृष्ण प्रेममग्न हो गए।

तब ऊधौ सँग तें गवने तहँ। पांडउ नगर बसानेउँ नव जहँ॥
भेंटि सबन्हँ हरषे सुखाधामा। भयउँ पाँडउन्ह उर बिश्रामा॥

फिर उद्धवजी के साथ वे वहाँ गये जहाँ पाण्डवों ने अपने लिये नवीन नगर बसाया था। वहाँ सुखधाम प्रभु सबसे मिलकर हर्षित हुए और पाण्डवों के हृदय में भी शान्ति हुई।

भोजन गत करि बिनय अपारा। धरम हरिहि अस बचन उचारा॥
नाथ तोर बल आश्रय हेरी। राजसूय मोहि पृहा घनेरी॥

फिर भोजन के उपरान्त अत्यन्त विनय करते हुए धर्मराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा कि हे नाथ! आपके बल का आश्रय पाकर मुझे राजसूय यज्ञ करने की प्रबल इच्छा है।

मख करि फलु तहि अर्पित करऊँ। नाथ सकुल भवसागर तरऊँ॥

यज्ञ करके, उसका पुण्य आपको अर्पित करके, मैं कुल सहित भवसागर तर जाऊँगा।

दोहा- तब हरि कह संपति अमित चहिअ होम हित भाइ।
पठइ प्रथम आपन अनुज दिसि जय लेहुँ कराइ॥१७॥

तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि हे भाई! यज्ञ करने के लिये तो बहुत-सा धन चाहिये होगा। अतः आप अपने अनुजों को भेजकर सर्वप्रथम दिग्विजय करवा लीजिये।

चौ.- चारिउँ अनुजन्ह तदुप पठाई। धरम दिसिबिजय कराई॥
कहा बहोरि धरम कर जोरे। आयसु काह कहिअ प्रभु मोरे॥

चारों अनुजों को समझाते हुए भेजकर युधिष्ठिर ने दिग्विजय करवा ली। तदुपरान्त धर्मराज ने भगवान श्रीकृष्ण से हाथ जोड़कर कहा- हे प्रभु! कहिये! अब मेरे लिये क्या आज्ञा है?

तब ऊधौ प्रभु कर रुख पाई। कहा जोरि कर सुनु नरराई॥
जरासंध तव बस जनि जब लौं। दिवा सपुन मख इच्छा तब लौं॥

तब श्रीकृष्ण का रुख पाकर उद्धवजी ने युधिष्ठिर से हाथ जोड़कर कहा- हे नरराज! जब तक जरासंध आपके वश में नहीं होता, तब तक राजसूय आपके लिये दिवास्वप्नमात्र है।

सुनेउ जरासुत सियाल जबही। धरम कमल बन मुरुझेउ तबही॥
आस किरन रबि सरिस पसारी। धीर देत तब कह कंसारी॥

उस समय जरासंधरूपी जाड़े की बात सुन युधिष्ठिररूपी कमल वन मुरझा गया। तब सूर्य के समान आशारूपी किरणें फैलाकर उन्हें धैर्य बँधाते हुए कंस के शत्रु भगवान श्रीकृष्ण बोले-

अरजुन भीम किए निज संगा। करब बेगि मैं तिन्हँ बलु भंगा॥
अस कहि उभयन्हँ करि निज साथा। गै द्विज बेषु मगध जदुनाथा॥

हे राजन! अर्जुन और भीम के साथ मैं शीघ्र ही उस दुष्ट के बल का विध्वंस कर दूँगा। ऐसा कहकर उन दोनों के साथ ब्राह्मण का वेष धरकर यदुनाथ श्रीकृष्ण मगध देश को गए।

निरखि तेज उन्ह वदनु महाना। जरासंध अति अचरज माना॥

उनके मुख पर महान तेज देखकर जरासंध को अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

दोहा- **बिप्रबछल मगधाधिप कह करि उन्ह सेवकाइ।**
कहउँ मोहि बाँछा हृदय द्विजबर सकुच बिहाइ॥१८॥

उस समय ब्राह्मणभक्त मगधराज जरासंध उनकी सेवा करके, कहने लगा कि आप समस्त सङ्कोच त्यागकर मुझे अपनी इच्छा कह दीजिये।

चौ.- **रीतउ जात न कोउँ मम गेहू। प्रथम सत्य परिचय निज देहू॥**
छत्रि सरिस दुति आनन तोरे। देखि होत अति अचरज मोरे॥

हे ब्राह्मणों! मेरे घर से कोई रीते हाथ नहीं जाता। अतः पहले आप अपना सच्चा परिचय दीजिये। आपके मुख पर क्षत्रियों का-सा तेज हैं, जिसे देखकर मुझे अत्यधिक अचरज होता है।

आए इहाँ कपट बपु धारे। दुरइ परन्तु न ससि फफु ढारे॥
जदपि होत द्विज अमित दुति लसें। मृदु बपु रहहि न दृढ़ छत्रिन्ह से॥

आप (ब्राह्मण के) झूठे वेष में यहाँ आए है, किन्तु राख डालने से चन्द्रमा नहीं छिपता। यद्यपि ब्राह्मण भी अपार तेज से सम्पन्न होते हैं, किन्तु वे कोमल शरीरवाले होकर क्षत्रियों के समान दृढ़ नहीं होते।

बिहँसि सिहाइ तासु चतुराई। हरि कह मैं जदुबंसि कन्हाई॥
पुनि ए दुहुँ कुंतिज बलधामा। अरजुन भीम प्रसिध जिन्हँ नामा॥

ऐसा सुनकर और उसकी चतुराई की सराहना करके, तब भगवान ने कहा- मैं यदुवंशी कृष्ण हूँ और बल के ये दोनों धाम कुंतिपुत्र हैं। जिनके नाम अर्जुन और भीम प्रसिद्ध हैं।

प्रतिभट निज हम महुँ लखि लेहूँ। मल्ल जुद्ध पुनि ताकहुँ देहूँ॥
सुनि सठ हृदय परम हरषाना। भोगि मुदेउँ जस बिषय जुड़ाना॥

अब आप हम तीनों में से अपनी जोड़ का योद्धा चुन लीजिये और उससे मल्लयुद्ध कीजिये। यह सुनकर वह मूर्ख मन-ही मन (ऐसे) हर्षित हो उठा; जैसे कोई विलासी मनुष्य विषयों को पाकर आनन्दित हुआ हो।

भजे मोहि तुम पीठि देखाई। तातें तहिं बधि मम न बढ़ाई॥
अरजुन बालक मम समुहाना। भीम किन्तु लग कछु बलवाना॥

(जरासंध ने श्रीकृष्ण से कहा कि) तुम मुझे पीठ दिखाकर भाग चुके हो, अतः तुम्हें मारने में मुझे कुछ भी बड़ाई नहीं मिलेगी और यह अर्जुन तो मेरे सन्मुख बालक है; किन्तु भीम कुछ बलशाली प्रतीत होता है।

दोहा- **सो मैं जूझउँ ताहिं तें भए काल्ह भिनुसार।**
तातें अब आतिथ्य मम हरषि करहु स्वीकार॥१९॥

इसलिये मैं कल सवेरा होने पर उससे युद्ध करूँगा। इसलिये अब सर्वप्रथम आप सब मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।

चौ.- नेह अतिथि प्रति अरि उर चीन्हा। तीनिहुँ सादर भोजनु कीन्हा॥
सयन कीन्ह निसि भए बिहाना। लागे उभय जुझाइ महाना॥

शत्रु के हृदय में अतिथि के प्रति प्रेम देखकर उन तीनों ने विनम्रतापूर्वक उत्तम भोजन किया। फिर रात्री में शयन करके, प्रातः होने पर जरासंध और भीम भयङ्कर युद्ध करने लगे।

गहि कर गदा जूझ जुग कैसे। जुगल असनिधर जूझइ जैसे॥
दुहुहिं प्रबलभुज दुहुँ बिकरारा। करइ परसपर कठिन प्रहारा॥

वे दोनों योद्धा हाथ में गदा लेकर परस्पर कैसे जूझने लगे; जैसे दो इन्द्र ही परस्पर जूझ रहे हों। वे दोनों योद्धा प्रबलबाहु और दोनों ही विकराल हैं और परस्पर भीषण प्रहार करते हैं।

उभयन्ह रनु प्रति चाउ समाना। जुगल लरत जनि पाउँ फिराना॥
भीम तुम त रनछोरहि भाई। प्रथमहि मुए मोर समुहाई॥

युद्ध के प्रति दोनों ही का चाव सम है और जूझते हुए दोनों में से किसी ने भी पैर पीछे न हटाया। जरासंध बोला- अरे भीम! तू रणछोड़ का भाई है। अतः मेरे सामने तू पहले ही मरा हुआ है।

पै मैं दीन्ह तोहिं रनुदाना। देब अवसि सो मोद महाना॥
लरत भयउँ उन्ह दिनु छब्बीसा। जुगन्हि प्रचंड गदा भइ खीसा॥

किन्तु मैंने तुम्हें द्वन्द्वयुद्ध का दान दिया है, अतः तुम्हें निश्चय ही महान आनन्द दूँगा। इस प्रकार युद्ध करते-करते उन्हें छब्बीस दिन बीत गए और दोनों की प्रचण्ड गदाएँ भी टूट गई।

मल्ल जुद्ध तब करि रिस पागे। बहत परसपर पटकन लागे॥
भीम काल सम मारइ ताही। जरासंध भट पै मर नाहीं॥

तब वे दोनों क्रुद्ध होकर मल्ल युद्ध करते हुए एक-दूसरे को उठा-उठाकर पटकने लगे। भीम काल के समान उस पर प्रहार करता है, किन्तु योद्धा जरासंध नहीं मरता।

अचरज रिस श्रम एक सँघाता। बोरि लाग तब भीवँहिं गाता॥
तेहिं सवँ जरासंध तेहिं मारी। छाति माँझ मुठिका अति भारी॥

तब आश्चर्य, क्रोध और थकान मिलकर एक साथ भीम के अङ्गों को डुबोने लगे। उसी समय जरासंध ने भीम की छाती के बीचों बीच एक भयङ्कर मुक्का मारा।

जातें दिनहिं माँझ तेहिं तारे। दीखि लाग लोचन अँधिआरे॥
साहसगत मनु बपु अति थाका। पूर गाँउ मनु मारेहुँ साका॥

जिससे उन्हें दिन में तारे दिखने लगे और नेत्रों के आगे अन्धकार छा गया। उनका साहसरहित मन और शरीर अत्यधिक थक गया, मानों किसी भरेपूरे गाँव को महामारी मार गई हो।

दोहा- राति भोज करि तब हरिहिं भीम कहा एहिंभाँति।

अरि दुरंत अस जिन्हँ कहत अबहि जाति जरि छाति॥२०॥

तब रात्रि होने पर भोजन के उपरान्त भीम भगवान श्रीकृष्ण से कहने लगा कि हे वासुदेव! हमारा शत्रु जरासंध ऐसा दुर्वध्य है कि जिसके विषय में कहते हुए, अब भी मेरी छाती जली जाती है।

चौ.- **खलसूदन कल्ह होइहि केहा। थाकेउँ मम साहस अरु देहा॥**
हरन ताप गोबिन्द घनेरा। कर चन्दन तब तिन्ह उर फेरा॥

हे दुष्टनिकन्दन! मेरा साहस और मेरा शरीर थक चुका है, अब कल क्या होगा? तब श्रीगोविन्द ने भीम की पीड़ा मिटाने के लिये अपना हाथरूपी चन्दन, उसके हृदय पर फिराया।

जेहिं सितलाइ पाइ उर तासू। जलझिरि सम उमगेउँ उल्लासू॥
पुनि हरि कह तैं तारन पाई। भच्छहि भच्छक जानेउ भाई॥

जिसकी शीतलता पाकर भीम के हृदय में निर्झर के समान उत्साह उमड़ पड़ा। फिर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि हे भाई! तुमने कष्ट पाकर भक्ष्य को ही भक्षक समझ लिया है।

पै कल्ह करब सैन मैं जोई। बधेसु अरिहि करि अचरन सोई॥
तदुप प्रात भा जुद्ध अरंभा। भिरे प्रानजुत जनु दुइ खंभा॥

किन्तु कल मैं जो भी सङ्केत करूँ, तुम वही आचरण करके, शत्रु को मार देना। तदुपरान्त सबेरा होने पर पुनः उनमें युद्ध आरम्भ हो गया। वे दोनों ऐसे भिड़े जैसे दो प्राणयुक्त खम्भे ही भिड़े हों।

तेहिं सवँ हरि तृन एक उठाई। चीरत भीमहि दीन्ह देखाई॥
सैन बूझि करि कोप अपारा। भीम ताहि गहि धरनि पछारा॥

उस समय भगवान ने एक तिनका उठाकर बीच से चीरते हुए भीम को दिखाया। उनका सङ्केत समझकर भीम ने अत्यन्त क्रोधित हो जरासंध को पकड़ लिया और पृथ्वी पर पछाड़ दिया।

दोहा- **बहुरि खलहिं एक जाँघ उन्ह दाबि निज चरन एकि।**
अपरहि कर गहि बाम दिग फारि दीन्ह तेहिं फैंकि॥२१॥

फिर भीम ने उसकी एक जाँघ अपने एक पैर से दबा ली और उसकी दूसरी जाँघ को हाथों से पकड़कर उसे बीच से चीर दिया और उन दोनों फाड़ों को परस्पर विपरीत दिशा में फेंक दिया।

चौ.- **तेहिं बधाइ करि तिलक तासु सुत। मुकुत करानेहुँ नृपतिन्ह अच्युत॥**
पुनि प्रभु इंद्रप्रस्थ जुग संगा। फिरे हृदय धरि जाग उमंगा॥

इस प्रकार जरासंध का वध करवाकर और उसके पुत्र का तिलक करवाकर भगवान श्रीकृष्ण ने उसके बन्दी सभी राजाओं को मुक्त करवा लिया। फिर हृदय में यज्ञ का उत्साह भरकर भीम और अर्जुन के साथ भगवान इन्द्रप्रस्थ लौट आए।

उपकृत नृप सब तहाँ पधारे। बिनयोदधि उर लेत उछारे॥
इत ससि भानु बंसि नृप जेते। भाग लेन आए मख तेते॥

उस समय समस्त उपकृत राजा वहाँ आए। उनके हृदय में भगवान के प्रति विनम्रता का सागर उमड़ रहा था। इधर जितने भी सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजा थे, वे भी यज्ञ में भाग लेने आए।

कान्ह धरम करि उन्ह सतकारा। पृथक पृथक सुपास सब सारा॥
सुक नारद कस्यप अरु ब्यासा। बामदेव हरि दरसन आसा॥

श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर ने उनका सत्कार किया और सबके लिये अलग-अलग उत्तम प्रबन्ध कर दिया है। श्रीहरि के दर्शनों की आशा लिये महर्षि शुकदेव, नारद, कश्यप, वेदव्यास, वामदेव और

अत्रि बसिष्ठ संग तहँ आए। परम तेज निज लग बरिषाए॥
अज हर सक्र निमंत्रनु पाई। आए मख करि सुर समुदाई॥

अत्रि आदि मुनिगण महर्षि वशिष्ठ के साथ उस यज्ञ में पधारे और वहाँ अपना तेज बरसाने लगे। यज्ञ का निमन्त्रण पाकर इन्द्र और देवगणों के साथ ब्रह्माजी और शिवजी भी पधारे।

जदु समाज सुनि पँडउन्ह जागा। दाउ संग तेहिं दिनु तहँ लागा॥

पाण्डवों के यज्ञ के विषय में सुनकर बलरामजी के साथ सब यादव भी उस दिन वहाँ आए।

दोहा– **गंगासुत मननयन कलि आदिक कुरु कृप द्रोन।**
हरषि निमंत्रनु पाइ अए साखि जाग कर होन॥२२॥

गङ्गापुत्र भीष्म, महाराज धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदि कौरवों के साथ ही पाण्डवों से निमन्त्रण पाकर आचार्य कृप और आचार्य द्रोण भी हर्षित होकर यज्ञ के साक्षी होने के लिये वहाँ पधारे।

चौ.– **श्रुति अनुहार भयउँ सब जागा। भीष्म द्रोन उर अति अनुरागा॥**
पूजन प्रथम करिअ किन्ह केरा। तदुप उएहु यह प्रस्न घनेरा॥

सम्पूर्ण यज्ञ वेदों के अनुसार सम्पन्न हो गया; यह देख गङ्गापुत्र भीष्म और आचार्य द्रोण प्रेम में मग्न हो गए। सर्वप्रथम किनका पूजन किया जाय, तदुपरान्त वहाँ यह महान प्रश्न खड़ा हो गया।

भीष्म कहा हरि नाम सुझाई। प्रथम पूज्य प्रभु करिमुख नाई॥
मनुज धरम महि थापेहुँ उन्हही। दारुन कलि अति ताड़ेहुँ जिन्हहीं॥

भीष्मजी ने श्रीहरि का नाम सुझाकर कहा कि वे श्रीगणेशजी के ही समान प्रथम पूजन के योग्य हैं। उन्होंने ही पृथ्वी पर मानवता की स्थापना भी की है, जिसे कठोर कलि ने अत्यधिक कष्ट दिया था।

उन्हहि प्रसाद भयउँ यह जागा। सो तेइ जोग प्रथम मख भागा॥
सभा सकल उन्हँ बात सिहाई। साधु साधु कहि लग हरषाई॥

उन्हीं के अनुग्रह से यह यज्ञ भी सम्पन्न हुआ है, अतः वे ही इस यज्ञ में प्रथम भाग के अधिकारी है। तब सम्पूर्ण सभा उनके इस प्रस्ताव की प्रशंसा करके हर्षित होकर 'साधु'-'साधु' कहने लगी।

लखि प्रभाउ रुकमिनिपति केरा। जर सिसुपाल ईरषा प्रेरा॥

चुपहिं रहेउ कछु छिनु बिष घोटी। अति बलखात भई तिहि चोटी॥

रुक्मिणीवल्लभ श्रीकृष्ण का ऐसा प्रभाव देख शिशुपाल ईर्ष्या से जलने लगा। अपने क्रोध को पीकर कुछ क्षण तक वह चुपचाप बैठा रहा। किन्तु उसकी चोटी में अत्यधिक बल पड़ने लगा।

दोहा- **सभा माँझ पुनि धरम जब हरिपूजन करि लाग।**
तब सिसुपाल रिसान अति मनहुँ परा घृत आग॥२३॥

फिर जब सभा में सम्राट युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण का पूजन करने लगे, तब शिशुपाल अत्यंत क्रुद्ध हो उठा; मानों (प्रज्वलित) अग्नि में घृत पड़ गया हो।

चौ.- **परुष बचन सर धरि मुख चापा। सभहिं बरिषि लग सठहुँ सदापा॥**
मति हति गइ भीषम कइ भाई। नृपन्हि सभा चह ताहि पुजाई॥

तब वह मूर्ख अपने मुखरूपी धनुष पर कठोर वचनरूपी बाण चढ़ाकर अहङ्कारवश सभा पर बरसाते हुए बोला- हे भाई! भीष्म की तो मति मारी गई है, जो वे इस राजसभा में उसका पूजन कराना चाहते हैं,

परिहरि लाज जेहिं बन जाई। बसि ग्वालन्हँ सँग धेनु चराई॥
कहु सो नीच कस पूजन जोगा। प्रेम स्वांग जेहिं ऐठउँ भोगा॥

जिसने लज्जा त्यागकर वन में जाकर ग्वालों के साथ रहते हुए गायें चराई थी। कहो तो वह नीच किस प्रकार पूजने योग्य हो गया, जिसने प्रेम का ढोंग करके, दूसरो की जूठन खाई है।

लखु पबित्र यह राजसमाजा। अस अपबित्रन्ह इहँ को काजा॥
मति कुंठित भइ भीषम केरी। पुनि तैं सब चर तिन्ह के प्रेरी॥

देखो यह पवित्र राजसमाज है। फिर ऐसे अपवित्र लोगों का यहाँ क्या काम? भीष्म की तो बुद्धि कुण्ठित हो गई है और आप सब उसी की सम्मति के अनुसार चल रहे हैं।

सुनतहिं अरजुन कलि कृप भीवाँ। द्रोन भीष्म बल कुपे असीवाँ॥
बल कह रे सठ बोलु सँभारी। रसना न त तव लेउँ उपारी॥

यह सुनकर भीष्मजी सहित अर्जुन, भीम, दुर्योधन, कृप, द्रोण और दाऊ असीम क्रोध को प्राप्त हुए। दाऊ ने शिशुपाल से कहा- रे शठ! सम्भलकर बोल नहीं तो तेरी जीभ उखाड़ लूँगा।

अरजुन कहा सठहुँ मतिमंदा। कीन्हेंउ कस तैं उन्ह कइ निंदा॥
जे परब्रह्म त्रिपुर प्रतिपाला। भुज प्रताप जिन्हँ अकथ बिसाला॥

अर्जुन ने कहा- रे मूर्ख! मन्दबुद्धि! तूने उनकी निन्दा कैसे कर दी; जो स्वयं परब्रह्म और त्रिलोकी के पालनकर्ता हैं; जिनकी भुजाओं का प्रताप अकथनीय और विशाल है।

ते कि ग्वाल जिन्हँ पद सुक ब्यासा। सेइ लहत नित नवल प्रकासा॥
बिधि उर जपहि जेन्ह दिनुराता। बिबुध जान जिन्हँ आपन त्राता॥

क्या वे ग्वाले हैं, जिनके चरणों के सेवन से शुकदेवजी व व्यासजी नित्य नवीन ज्ञान, शान्ति व आनन्द पाते हैं? ब्रह्माजी मन में दिनरात जिन्हें जपते हैं और देवता जिन्हें अपना रक्षक जानते हैं।

दीनन्ह हित जिन्हँ उर दय सागर। प्रनतन्हि पीर हरन जे नागर॥
वात बिहग बाहिनि कल नादा। प्रगट बसइ जे हरन बिषादा॥

दीनों के लिये जिनका हृदय दया का सागर है और जो शरणागत का दुःख हरने में निपुण है। वायु, पक्षियों और नदियों के कलनाद में दुःखहर्ता होकर प्रत्यक्ष बसते हैं।

पुनि सुरसरि उपजी पद जाकें। सठ अपबित्र कहेउ कस ताकें॥
जिन्हँ सुर सिद्ध बिप्र समुदाई। बिषम जतन संतत चह पाई॥

फिर जिन चरणों से देवनदी गङ्गा की उत्पत्ति हुई है, रे शठ! तूने उन्हें ही अपवित्र कैसे कह दिया? देवता, सिद्ध और ब्राह्मणों के समूह कठोर यत्न करके, निरन्तर जिन्हें प्राप्त करना चाहते हैं,

उन्हहि नीच कहि राजसमाजा। रे लबार तोहि लाग न लाजा॥
रबि ससि सुजसु जासु जीवंता। ए सोउ परातपर भगवंता॥

राजाओं के इस समाज में उन्हीं को नीच कहते हुए रे लबार! तूझे लज्जा नहीं आती। सूर्य और चन्द्रमा जिनकी जीवन कीर्ति है, ये श्रीकृष्ण वे परात्पर भगवान है।

प्रथमपूज्य नित पूजहि जाहीं। मूढ़ सो प्रथम पूज्य कस नाहीं॥

स्वयं प्रथमपूज्य गणेशजी भी सदैव जिनका पूजन किया करते हैं, रे मूढ़! वे वासुदेव प्रथम पूज्य क्यों नहीं हैं?

दोहा- **पुनि अस अमित प्रतापधर जिन्हँ पद परि गरुआत।**
रे उज्जड़ उन्ह भीष्म प्रति कस कहि तुअ असि बात॥२४॥

फिर ऐसा अनन्त प्रताप धारण करनेवाले भगवान श्रीकृष्ण स्वयं भी जिनके चरणों से लगकर गर्वित हुआ करते हैं, अरे उज्जड़! उन गङ्गापुत्र भीष्म के प्रति तूने ऐसी नीचता कैसे दिखा दी?

चौ.- **करि कि राखि तैं मदिरापाना। जे बक देखि इहाँ भगवाना॥**
जे थूकिहि करि मुख रबि ओरा। तदपि भींजिहहि आनन तोरा॥

क्या तूने मदिरा पी रखी है, जो साक्षात् भगवान को यहाँ उपस्थित देखकर भी तू दुर्वचन कह रहा है। यदि तू चन्द्रमा की ओर मुख करके, थूकेगा; तब भी थूक तेरे ही मुख पर गिरेगा।

छमा माँगु उन्ह तें एहि काला। बृथा बोलाहुँ न आपन काला॥
सूख पात न त उड़ जस वाता। उड़िहि तोर तस सगरुअ गाता॥

तू इसी समय उनसे क्षमा माँग ले, व्यर्थ ही अपने काल को न बुला। नहीं तो जिस प्रकार वायु में सूखे पत्ते उड़ते हैं, उसी प्रकार कटकर अहङ्कार से भरे तेरे ये अङ्ग भी उड़ेंगे।

सुनि कह होत सत्य कटु भाई। सुनत जाहिं सब जात रिसाई॥
अरजुन भाट सरिस खल केरा। सभा कीन्ह गुनगान घनेरा॥

यह सुनकर वह बोला कि सत्य कडुआ होता है, जिसे सुनकर सभी क्रोधित हो जाते हैं। अर्जुन ने सभा में किसी भाट के समान इस दुष्ट का बड़ा भारी गुणगान किया है।

बलप्रताप पुनि नीचउ गाई। सत्य दीन्ह एहि मोहि डेराई॥

नैकु प्रसंग सो कहुँ अब भाई। इहि जिहि बिधि द्वारिका बसाई॥

फिर इस नीच के बल प्रताप का बखानकर इसने मुझे सचमुच ही डरा दिया। हे भाई! इसने जिस प्रकार द्वारिका बसाई थी, अब तनिक वह प्रसङ्ग भी कह दो,

रहा प्रथम इन्ह बहुत प्रभाऊ। पै न अधिक चल कागद नाऊ॥
बैठि रहा कल्ह लौ दुरि सागर। रिपु भय यह तुम्हार रनुनागर॥

पूर्वकाल में इसका बहुत प्रभाव था। किन्तु कागज की नाव अधिक नहीं चलती। शत्रु के भय से तुम्हारा यह युद्धकुशल कृष्ण कल तक तो सागर में छिपकर बैठा हुआ था।

अज यह बंचक कादर भारी। कहहुँ मोर का लेइ बिगारी॥

कहो तो! कपटी और अत्यन्त डरपोक; यह कृष्ण आज मेरा क्या बिगाड़ लेगा?

दोहा- **पुनि तैं अधिक बखानेहुँ सभा सहित अनुराग।**
भीष्म सो सठ पौरुष रहित करइ ब्रह्मचर स्वाँग॥२५॥

फिर तुमने बड़े प्रेम से जिसकी बहुत अधिक प्रशंसा की है, वह मूर्ख भीष्म तो वीर्यहीन है और ब्रह्मचारी होने का ढोंग मात्र करता है।

चौ.- **खरभर भयउँ सभा तेहिं काला। भीम आप तजि भै बिकराला॥**
रे सठ थोबु नीच महिभारा। कहत तेन्ह एक खंभ उपारा॥

उस समय सारी सभा में खलबली मच गई। उसकी बात सुनकर भीम आपा खोकर विकराल हो बोले- रे शठ! धरती के बोझ! रे नीच! ठहर! ऐसा कहकर उन्होंने एक खम्भा उखाड़ लिया।

पुनि सिसुपालहि मारन धाए। पै हरि तेहिं बरजत समुहाए॥
अधर काटि कह सरकहुँ स्यामा। लग इहि बाँछा बढ़ि जमधामा॥

फिर शिशुपाल को मारने दौड़े, किन्तु श्रीकृष्ण उन्हें रोकते हुए सामने हो गए। तब भीम ने होंठ चबाते हुए कहा- कन्हैया! आप हट जाईये। लगता है, यमलोक पर इसकी इच्छा बढ़ गई है।

करि पितुमह अरु तव अपमाना। कीन्हेंसि पातक मूढ़ महाना॥
अति भइ अब त बधब मैं ऐहीं। तबहि छाति धधकत सितलैहीं॥

पितामह और आपका अपमान करके, इस मूढ़ ने महान पाप किया है। बहुत हुआ, अब तो मैं इसे मार ही डालूँगा। तभी क्रोध से धधकती हुई मेरी छाती ठण्डी हो पायेगी।

सुनि हरि बरजि कहा मुसुकाई। निपट लखत रहुँ इहि अधमाई॥
किए हेतु पितुमह अपमाना। चहिअ सठहु गुन ब्रह्म समाना॥

यह सुनकर भगवान ने उन्हें रोकते हुए मुस्कुराकर कहा- आप इसकी नीचता को केवल देखते रहिये। पितामह भीष्म का अपमान करने के लिये इस मूर्ख को ब्रह्मा जैसी योग्यता चाहिये।

एतनेहु सठ हँसि पुनि कछु बोला। सुनतहि धीर भीम कर डोला॥
हरिहि हँसत लखि कह निज पाही। तैं किन सुबक सिखावसि ताहीं॥

इतने में ही हँसते हुए वह मूर्ख पुनः कुछ बोल दिया; जिसे सुनते-ही भीम का धैर्य छूट गया। तब अपने पास खड़े कन्हैया को हँसते हुए देख उन्होंने कहा- आप इसे दण्ड क्यों नहीं देते?

दै राखेउँ मैं बचन इन्ह माइहि। छमउँ सोइ सत इन्ह अधमाइहि॥
जे रह मीचु दंड के जोगा। सुनि हरि चुप बूझे सब लोगा॥

तब भगवान ने कहा- मैंने इसकी माँ को वचन दे रखा है कि मैं इसके उन सौ अपराधों को क्षमा कर दूँगा, जो मृत्युदण्ड के योग्य होंगे। यह सुनकर सब लोग श्रीहरि के मौन को समझ गए।

बहुत भाँति सठ कहि दुरबादा। दीन्ह सबन्हँ उर परम बिषादा॥

दुष्ट शिशुपाल ने बहुत से दुर्वचन कहकर सभा में उपस्थित सभी को महान दुःख पहुँचाया।

दोहा- **करि बीते अपराध सत कह खलरि मुसुकात।**
सठ अब कहि देखउँ हृदय मम प्रति बस जे बात॥२६॥

तदुपरान्त श्रीकृष्ण उससे मुस्कुराकर कहने लगे- रे शिशुपाल! अब तुम सौ अपराध कर चुके हो। इसलिये रे मूर्ख! मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में जो कुछ है, उसे अब कहकर देखो।

चौ.- **चोर निलज्ज डरउँ मैं तोही। जे गुर सरिस सिखावसि मोही॥**
अंधउ सम यह राज समाजा। तैं एकदृग सम उन्ह महुँ राजा॥

(यह सुनकर शिशुपाल बोला-) रे चोर! रे निर्लज्ज! मैं तुझसे डरता हूँ, जो गुरु के समान मुझे सिखा रहा है। यह राजसमाज तो किसी अन्धे जैसा है और तू काना उनके बीच राजा है।

एहिबिधि भरेउँ पाप घट ताही। कीन्ह खलारि कोप सभ माहीं॥
बहुरि धरेहुँ कर चक्र कराला। खल सिरु छेदि दीन्ह ततकाला॥

इस प्रकार उसके पाप का घड़ा भर गया। तब दुष्टशत्रु श्रीकृष्ण ने सभा में ही क्रोध किया और विकराल सुदर्शन चक्र धारण करके, उस दुष्ट शिशुपाल का सिर उसी समय काट लिया।

डरपे कपटि सुजन सुख माना। इहइ उचित जे अह अघखाना॥
तेज तासु मृत बपुष बिहाई। प्रबिसेउँ सहसानन पद जाई॥

यह देख कपटी राजा भयभीत हो उठे और सज्जनों को सुख हुआ कि जो महापापी है उसके लिये यही उचित है। तभी उसका तेज उसके शरीर से निकलकर श्रीहरि के चरणों में समा गया।

तदुप धरम सँग करि निज बामा। पूजे सादर पद सुखधामा॥
पुनि जिन्हँ जोइ रहा मख काजा। लगेउँ काज सोइ सकल समाजा॥

तदुपरान्त धर्मराज ने द्रोपदी के साथ सर्वप्रथम सुखधाम श्रीकृष्ण की पूजा की। फिर उस राजसूय यज्ञ में जिसे जो कार्य सौंपा गया था, सारे लोग अपने उसी कार्य में जा लगे।

भीवँ किएहुँ भोजनु तैयारा। अरजुन करइ अतिथि सतकारा॥
बिदुर सभा बहुभाँति सजाई। जागसेन परुसेहुँ हरषाई॥

भीम ने भोजन तैयार किया, अर्जुन अतिथियों का सत्कार कर रहे थे, विदुरजी ने सभा को बहुत प्रकार से सजाया और यज्ञसेन ने हर्षित होकर अतिथियों को भोजन परोसा।

रिसि मुनि द्विजन्हँ नकुल सहदेवा। सजग भाँति बहु कीन्हेंसि सेवा॥
ऐठउ भोजपत्र महिराई। सादर रहे रमेस उठाई॥

नकुल और सहदेव ने तत्परतापूर्वक बहुत प्रकार से आगन्तुक ऋषि, मुनियों और ब्राह्मणों की सेवा की और लक्ष्मीपति भगवान श्रीहरि स्वयं आदरपूर्वक ब्राह्मणों की जूठी पत्तलें उठा रहे थे।

किए जाचकन्ह कर परितोषा। रहेहुँ कलिहिं कर पँडउन्ह कोषा॥
तातें उन्हँ कइ जगत हँसाई। सारन कलि धन लाग बहाई॥

याचकों को सन्तुष्ट करने के लिये पाण्डवों का राजकोष दुर्योधन के हाथ में था। इसलिये उनकी जग हँसाई करवाने के लिये दुर्योधन धन को (जल के समान) बहाने लगा।

दोहा- **पै न कोष लट अपितु बढ़ खरचे बढ़ जस प्रीति।**
हरषि रमापति बसहि जहँ तहँ अस कौतुक नीति॥२७॥

किन्तु फिर भी राजकोष घटता नहीं अपितु बढ़ता ही जाता है। जैसे प्रेम खर्च किये जाने पर और बढ़ जाता है। फिर जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति भगवान ही प्रसन्नमन से निवास करते हो, वहाँ ऐसा कौतुक होना स्वभाविक है।

चौ.- **इहि तें जसु रबि बढ़ उन्ह जैसे। कलि उलूक उर लहँ दुख तैसे॥**
भा एहिबिधि जब पूरन जागा। सबुहि सिहान पाँडवन्ह भागा॥

इस घटना से उन पाण्डवों का यशरूपी सूर्य जैसे-जैसे बढ़ने लगा, वैसे-ही वैसे दुर्योधनरूपी उल्लू दुःखी होने लगा। इस प्रकार जब यज्ञ पूरा हो गया तब सबने पाण्डवों के भाग्य को सराहा।

बहुरि गए सब निज निज धामा। धरमहि प्रीति रहे बल स्यामा॥
किंतु किए द्वारिका बिचारा। प्रभु फेरा जदु निकर अपारा॥

फिर वे सब अपने-अपने घर चले गए। युधिष्ठिर के प्रेमवश दाऊ व श्रीकृष्ण वही रुक गए। किन्तु द्वारिका के सूनी होने का, विचार करके, श्रीहरि ने यादवों का अपार समूह वापस लौटा दिया।

आइ नगरु उन्ह काज सँभारा। पै कुसमउँ तहँ पैर पसारा॥
नृपति प्रथम कुंडिनपुर माहीं। जेहिं पराभउ लहि हरि पाही॥

द्वारिका आकर उन यादवों ने अपना-अपना कार्य सँभाल लिया। किन्तु कुसमय वहाँ पैर फैला लिये। हे परीक्षित! पहले कुण्डिनपुर में जिसने भगवान श्रीहरि के सन्मुख पराजय पाई थी,

सोइ सालव अति सेन सजाई। चढ़ेहु द्वारिका अवसर पाई॥
प्रथम दीन्ह हर तेहिं बिमाना। जेहि ते अनि सँग जलधि लँघाना॥

वही साल्व मौका देखकर बड़ी भारी सेना सजाकर द्वारिका पर चढ़ आया। पूर्वकाल में शिवजी ने उसे एक विमान दिया था, जिसकी सहायता से उसने अपनी सेना सहित समुद्र पार कर लिया।

दोहा- **गढ़हि घेरि पुनि माय तेहि अवचट उपजइ आँधि।**
भल बपु सहसा ब्यापि मनु हृदयघात कइ ब्याधि॥२८॥

फिर (द्वारिका के) किले को घेरकर उसने माया रची और अचानक आँधी प्रकट कर दी। मानों स्वस्थ शरीर को हृदयाघात की व्याधि मार गई हो।

चौ.- महावात सो तरुन्ह उपारी। चलि पुर दिसि सोउ बेग सँभारी॥
कोट कँगूरन्हि पुनि परतारा। रव करि लागिसि भीषन भारा॥

वह भयङ्कर वायु वृक्षों को उखाड़कर फिर उसी वेग से द्वारिका की ओर चली और परकोटों के कंगूरों से टकराकर भयङ्कर शब्द करने लगी।

खुरखुर नाद तासु सुनि भारी। डरपे हृदय नगर नर नारी॥
सालव कादरपुन सुनि पाए। उगर साम्ब प्रद्युम्न पठाए॥

उस भयङ्कर आँधी की खुर-खुर शब्द नगर के स्त्री-पुरुष हृदय में भयभीत हो उठे। जब उग्रसेन ने साल्व की इस कायरता को सुना, तो उन्होंने प्रद्युम्न और साम्ब को उससे युद्ध करने भेजा।

अक्रूर कृतबरमादिक संगा। चले कटकु करि कुपित अनंगा॥
सालव पाइ कटकु रिपु केरा। कीन्ह माय रचि तिमिर घनेरा॥

तब क्रोधित हुए प्रद्युम्न सेना लेकर अक्रूर, कृतवर्मा आदि योद्धाओं के साथ चले। साल्व ने शत्रु की सेना को आती हुई देखकर माया रची और सब ओर अन्धकार उत्पन्न कर दिया।

निरखि तिमिर रन माँझ गभीरा। जदु सैनिक अति भए अधीरा॥
अंधकारि सुत सहज सकोपा। माय परखि पावक सर रोपा॥

युद्धभूमि में सघन अन्धकार देख यदुसैनिक अत्यन्त अधीर हो उठे। तब शत्रुरचित माया को समझकर अन्धकार के शत्रु भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने अग्निबाण का सन्धान किया।

दोहा- तेज पुंज लखि तम सघन हरषे जदु बलवान।
मनु निरास मन आस गहि उमगेउँ चाउ महान॥२९॥

उस सघन अन्धकार में अग्निबाण से उत्पन्न प्रकाश को पाकर बलवान यादव हर्षित हुए। मानों निराश हो चुका मन नवीन आशा पाकर पुनः उत्साह से भर गया हो।

चौ.- सालव कुपित गयउ जब पासू। मैनु हते हय सारथि तासू॥
सहस बिसिख मारेसि पुनि मारा। रिपु अनि खरभर कीन्ह अपारा॥

क्रोधित हुआ साल्व जब निकट गया, तब प्रद्युम्न ने उसके रथ के घोड़ों और सारथी को मार डाला। फिर प्रद्युम्न ने एक हजार बाण मारे। जिससे शत्रु सेना में भयङ्कर खलबली मच गई।

सर अहि करवट निज दिसि पाई। अरि भट दादुर चले पराई॥
सोउ सर भट कट जहँ तहँ कैसे। प्रबुध सभा कट कुतरक जैसे॥

वाणरूपी सर्प को अपनी ओर पलटता हुआ देख शत्रुसैनिकरूपी मेढ़क भाग चले। उन बाणों से शत्रुयोद्धा जहाँ-तहाँ किस प्रकार कटने लगे, जैसे प्रबुद्धसभा में कुतर्क कट जाते हैं।

संबरारि रनु कौसल देखी। भइ सालव उर सोच बिसेषी॥
इहिबिधि होइ पराभव मोरा। कादर माय कीन्ह तब घोरा॥

शम्बरासुर के शत्रु प्रद्युम्न का युद्ध कौशल देखकर साल्व के हृदय में विशेष चिन्ता हुई। वह सोचने लगा कि इस प्रकार तो मेरी पराजय हो जायेगी। तब उस कायर ने भयङ्कर माया रची।

पुनि धरि मायहि बिपुल सरीरा। प्रस्तर बरिषि लाग गम्भीरा॥
कबहि प्रकृत तनु धरि धनु बाना। अमित सिलीमुख बरष महाना॥

फिर क्षणभर में ही वह माया से बहुत बड़ा शरीर धारण करके, बड़े-बड़े पत्थर बरसाने लगा। वह कभी वास्तविक शरीर से धनुष बाण लेकर बहुत से कठिन बाण बरसाता।

दोहा- **हाड़ पूय कच रुधिर रज नभहि कबहुँ बरिषात।**
अट्टहास करि भीषन कबहि जलद कंपात॥३०॥

तो कभी आकाश पर चढ़कर हड्डियाँ, पीब, रक्त और धूल बरसाता और कभी भयङ्कर अट्टहास करके, बादलों को कम्पायमान कर देता था।

चौ.- **तेहिं छिनु सचिव तासु सुरमाना। बरषत भयउँ काम पर बाना॥**
सहज मार सर निकर निबारा। अरिहि हृदय पुनि सर अस मारा॥

उस समय उसका देवमान नामक मन्त्री प्रद्युम्न पर बाणों की वर्षा करने लगा। तब प्रद्युम्न ने भी सहज ही में उसके बाण काटकर फिर उसके हृदय में एक ऐसा बाण मारा कि,

जेहिं प्रभाउ खल धरनि ढनमना। किएहुँ जतन कछु करत जनि बना॥
थकनि अम्ल जब पेसिन्ह टूटा। गरजि गदा गहि खल पुनि छूटा॥

जिसके प्रभाव से वह दुष्ट पृथ्वी पर लुढ़क गया। यत्न करके भी उससे कुछ न हुआ। जब उसकी पेशियों में उत्पन्न श्रान्ति अम्ल टूट गया, तब गरजता हुआ वह दुष्ट गदा उठाकर पुनः दौड़ा।

कीन्ह मदन सिरु गदा प्रहारा। भए अचत तें करि चिक्कारा॥
खल कह गरजि निसुध लखि ताही। हता मार कहँ मैं रनु माहीं॥

उसने प्रद्युम्न के सिर पर उस गदा से प्रहार किया; जिससे वे चीत्कारकर मूर्छित हो गए। उन्हें मूर्छित देख वह दुष्ट गरजकर कहने लगा- मैंने युद्ध में प्रद्युम्न का वध कर दिया।

सुनि अस अनि करि लगि हहकारा। इत रथ सूत एकाँत निकारा॥
सजतन बहुरि रथिहिं चेतावा। कह लखि सून मार पछितावा॥

यह सुनकर सेना हाहाकार करने लगी। इधर प्रद्युम्न को मूर्छित देखकर सारथी रथ को एकान्त में ले आया। फिर यत्न करके, उसने प्रद्युम्न को चेता लिया। स्वयं को एकान्त में पाकर प्रद्युम्न पछताकर सारथी से कहने लगे-

दोहा- **सूत कीन्ह तैं भूल बड़ मोहि रन भूमि छराइ।**
सुभट सभा मम होइहि निस्चय नाउँ धराइ॥३१॥

हे सारथी! तुमने यह बड़ी भारी भूल कर दी, जो मुझे युद्धभूमि से अलग कर दिया। अब उत्तम योद्धाओं की सभा में निश्चय ही मेरी अपकीर्ति होगी।

चौ.- **चलहुँ तुरत अब अरि समुहाना। करत होब उतपात महाना॥**

आवत लखि रथ धुज पहिचानी। नव उछाह जदु अनि उमगानी॥

अब तुम शीघ्र मुझे शत्रु के सन्मुख ले चलो। वह बड़ा ही उत्पात कर रहा होगा। उनके रथ को आता हुआ देखकर और उनके ध्वज को पहचानकर यदुसेना नवीन उत्साह से भर गई।

फुफ्फुस प्रान वायु पुनि पाई। मनहुँ स्वास गति लाग जुड़ाइ॥
हरिसुत सब कहँ धीर बँधाई। चाप टँकोरेउ अरि समुहाइ॥

मानों पुनः प्राणवायु पाकर फेफड़े श्वास की गति पाने लगे हों। श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न ने सबको धैर्य बँधाया। फिर शत्रु के सन्मुख अपने धनुष की टङ्कार की।

रे सठ का मर्दसि पदचारा। मीचु तोर मम सर असवारा॥
देवमान सुनि चाप चढ़ाई। लाग मार दिसि बिसिख चलाई॥

उन्होंने कहा कि रे मूर्ख! पैदल सैनिकों को क्या मारता है? देख तेरी मृत्यु मेरे बाणों पर बैठी हुई है। यह सुनकर मन्त्री देवमान अपना धनुष चढ़ाकर प्रद्युम्न की ओर बाण चलाने लगा।

संबरारि उन्ह काटेहुँ ऐसे। भानु निकर तम काटइ जैसे॥
अरिहि आठ सर पुनि उन्ह मारे। बिरथ भयउँ पै लाग पचारे॥

किन्तु प्रद्युम्न ने उन्हें ऐसे काट दिया, जैसे सूर्य की किरणें अन्धकार को काट देती है। उन्होंने पुनः शत्रु को आठ बाण मारे, जिससे उसका रथ टूट गया, फिर भी वह ललकारता रहा।

दोहा- **निरखि मार सर मारि सत अरि कपाल कृत सारि।**
गाजे कहि जय कृष्न जय सुनि अनि भई सुखारि॥३२॥

यह देखते ही सौ बाण मारकर शत्रु का वध करके प्रद्युम्न श्रीकृष्ण की जय हो, जय हो, ऐसा कहकर गर्जे; जिसे सुनकर यादव सेना सुखी हो गई।

चौ.- **इत सरबग्य जानि सब हाला। आए रनुमेदिनि ततकाला॥**
धीर देन पुनि सब कहँ स्यामा। पठएहुँ रामहिं आपन धामा॥

इधर सर्वज्ञ भगवान श्रीकृष्ण युद्ध का सारा हाल जानकर उसी समय युद्धभूमि की ओर चल पड़े और सबको धैर्य बँधाने के लिये उन्होंने बलरामजी को अपने नगर द्वारिका में भेज दिया।

खलरिपु जातहि अरि समुहाई। लाग पचारि पिनाक चढ़ाई॥
रे सठ नगरु सून मम पाई। चोर सरिस तैं कीन्ह चढ़ाई॥

दुष्टशत्रु भगवान श्रीकृष्ण साल्व के सन्मुख जाते ही धनुष चढ़ाकर उसे ललकारने लगे। रे मूर्ख! मेरे नगर को सूना पाकर तूने किसी चोर के समान उस पर धावा किया है।

अब देखाइ रन कौसल आपन। जितहुँ मोहि अथवा धरु चाप न॥
लखि खलारि रिस तेहिं भय माना। पुनि बिचारि अस धीरज ठाना॥

अब अपना युद्ध कौशल दिखाकर मुझे जीत ले या तो धनुष त्याग दे। दुष्टनिकन्दन श्रीकृष्ण का क्रोध देख साल्व को बड़ा भय हुआ। फिर उसने यह विचार कर धैर्य धारण किया कि,

दिएहुहि सिरु जब ऊखल माहीं। तब भय कवन मूसरहिं पाही॥
अस बिचारि दारुकहिं बनाई। सठ एक साँग प्रचंड चलाई॥

अब जो ऊखल में सिर दे ही दिया है तो मूसल से क्या डरना? ऐसा समझकर उस मूर्ख ने भगवान श्रीकृष्ण के सारथी दारुक को लक्ष्य करके, उस पर एक प्रचण्ड साँग चलाई।

गहि कोदंड प्रबल भुजदंडा। हति नाराच कीन्ह बहु खंडा॥

तब अपने प्रबल भुजदण्डों में धनुष लेकर श्रीहरि ने एक बाण से उसके कई टुकड़े कर दिए।

छन्द- खंडेहुँ साँग प्रचंड सर कोदंड पुनि सोरह धरे।
सालव बिमान प्रघात तिन्ह नभ भँवि लगेहुँ लखि अरि डरे॥
तब बिबस खल रचि माय नभ चढ़ि बरषि लग प्रस्तर महा।
सारंगधर हते बिषम सर सबिमान सालव महि ढहा॥

साँग के टुकड़े करके, उन्होंने पुनः धनुष पर प्रचण्ड सोलह बाण चढ़ाये। जिसकी भयङ्कर चोट से साल्व का विमान आकाश में चक्कर खानें लगा, यह देख शत्रुयोद्धा भयभीत हो उठे। तब विवश हो उस दुष्ट ने माया रची और आकाश पर चढ़कर बड़े-बड़े पत्थर बरसाने लगा। यह देखकर सार्ङ्गपाणि श्रीकृष्ण ने कठिन बाण छोड़े, जिससे साल्व सविमान पृथ्वी पर आ गिरा।

दोहा- पुनि उठि मारिसि गदा तेहिं भंजि प्रबलभुज जाहि।
भूधरधर सबिमान पुनि मिलएहुँ तेहिं रज माहिं॥३३॥

पुनः उठकर उसने गदा का प्रहार किया, प्रबल भुजाओंवाले भगवान श्रीकृष्ण ने जिसे नष्ट कर दिया। फिर उन गिरिधर ने विमान सहित उस दुष्ट को नष्ट करके, मिट्टी में मिला दिया।

चौ.- धुँआ देखि रनु सालव केरा। खरभर भा तिन्हँ कटकु घनेरा॥
लखि रदबक्र बिदूरथ धाए। अमित कटकु करि रनु चढ़ि आए॥

साल्व को मारा गया देखकर उसकी सेना में अत्यन्त खलबली मच गई। यह देखकर बहुत बड़ी सेना लेकर दन्तवक्र और विदूरथ दौड़े और युद्ध में चढ़ आए।

किंतु बलानुज सहज पचारे। सहित कटकु जुग भ्रात सँघारे॥
पुनि जय धुनि करि सुतन्हि सँघाता। फिरे नगर प्रमुदित जदुत्राता॥

किन्तु बलानुज श्रीकृष्ण ने ललकार कर सहज ही में उन दोनों भाईयों को सेना सहित मार डाला। फिर जय ध्वनि करके, आनन्दपूर्वक यदुपाल अपने पुत्रों सहित नगर में लौट आए।

उन्ह निरखतहि नगर नर नारी। परिहरि भय भै परम सुखारी॥
बिबुधसिल्पि सुरपाल बोलाई। खंडित गृह पुनि लीन्ह बनाई॥

उन्हें देखते ही नगर के स्त्रीपुरुष भय त्यागकर परम सुखी हो गए। फिर देवपालक भगवान श्रीकृष्ण ने देवशिल्पी विश्वकर्मा को बुलवाकर टूटे भवनों को पुनः बनवा लिया।

तब पनु कीन्ह कृष्न मन माहीं। अजहुँ तें सस्त्र धरब मैं नाहीं॥
रहा बिप्र हरि सखा पिआरा। नृपति सुदामा ग्यान अगारा॥

उस समय उन्होंने प्रतिज्ञा की कि आज के उपरान्त मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा। हे परीक्षित! सुदामा नाम का एक ब्राह्मण परम ज्ञानी और भगवान श्रीकृष्ण का प्रिय सखा था।

गुरकुल पढ़न गए दोउँ भाई। तहँ भइ उन्ह तें हरिहिं मिताई॥

जब श्रीकृष्ण व बलरामजी पढ़ने गुरुकुल गए थे, वहीं श्रीकृष्ण की उनसे मित्रता हुई थी।

दोहा- **दारुन दारिद देखि उन्ह तजि न भगति कइ आन।**
करि हरि प्रति रति तेहिं जसि सुनु अब तासु बखान॥३४॥

उन्होंने भयङ्कर दरिद्रता देखकर भी भक्ति की मर्यादा नहीं छोड़ी और भगवान श्रीहरि के चरणों में उन्होंने जैसा प्रेम किया, अब आप उस कथा को सुनिए।

चौ.- **तासु हृदय करि संग बिरागा। प्रति छिनु बसइ ब्रह्म अनुरागा॥**
छप्परजुत गृह मृतिका केरा। पूरब कृत जहँ दारिद डेरा॥

उसका हृदय वैराग्य के साथ प्रतिक्षण ब्रह्म के प्रेम में डूबा रहता था। उनका घर घास के छप्पर और मिट्टी से बना था। जहाँ उनकेपूर्वकर्म के कारण दरिद्रता निवास करती थी।

नाउ सुसीला उन्ह कर बामा। गुनवति सील नेह कइ धामा॥
दारिद बिषम बसइ गृह कैसे। अहिबिष माँझ ताप बस जैसे॥

सुशीला नामक उनकी एक पत्नि थी, जो गुणवती, शीलवती और प्रेम का धाम थी। उनके घर में कठोर दरिद्रता कैसे बसती थी; जैसे सर्प के विष में ताप व्याप्त रहता है।

मिलइ द्रब्य जेतनौ बिनु माँगे। दंपति देइ सुतन्हँ रसु पागे॥
रहहि सेष तिन्ह करि सम भागा। दंपति गह समेत अनुरागा॥

बिना माँगे जितना भी द्रव्य मिलता, वे पति-पत्नि उसे बड़े प्रेम से पुत्रों को देते थे और जो शेष रह जाता था, उसके बराबर भाग करके वे पति-पत्नी प्रेमसहित स्वयं ग्रहण कर लेते थे।

एहिबिधि देवबस्य एक बारा। गै दिनु दुइ जनि मिलेउँ अहारा॥
छुधा प्रसूत बिकलता भारी। चरन चाँपि उन्ह गृह पइसारी॥

इस प्रकार एक बार देववश दो दिन बीत गए किन्तु उन्हें भोजन नहीं मिला। उस समय भूख से उत्पन्न भयङ्कर व्याकुलता दबे पाव उनके घर में आ घुसी।

आतुर मुख मलीन द्विज बालक। रुदन लाग करि तब नरपालक॥
सुतन्ह दसा अस दीन निहारी। पति सन कहन लागि महतारी॥

हे परीक्षित! तब उन ब्राह्मण के भूख की आतुरता से मलिनमुख हुए पुत्र रोने लगे। अपने बालकों की ऐसी दीन-दशा देखकर उनकी माता सुशीला अपने पति से कहने लगी कि

नाथ लच्छिपति सखा तुम्हारे। बहुरि तुअँपि उन्ह प्रान पिआरे॥
दीनबंधु जग पालनहारा। भगत सबनि एकौ आधारा॥

हे नाथ! भगवान लक्ष्मीपति आपके सखा है। फिर आप भी उन्हें प्राणों के समान प्यारे है। दीनबन्धु और जगत का पालन करनेवाले वे अपने भक्तों के एक मात्र आधार है।

दोहा- **उन्ह पहि जाइअ जानिहहि तें जब दसा हमारि।**
अवसि द्रवहि पुनि मेटिहहि दुख हमार यह भारि॥३५॥

आप उनके पास जाइए। जब हमारी दरिद्रता के विषय में वे जान पायेंगे, तब वे अवश्य ही दया करके, हमारे इस महान दुःख को हर लेंगे।

चौ.- **प्रिये गइ कि तोर मति मारी। परिछा सवँ जे धीर बिसारी॥**
उलट पट्टि एहिंभाँति पढ़ाई। भगति पंथ चह मोहि डगाई॥

तब सुदामाजी ने कहा- हे प्रिये क्या तुम्हारी मति मारी गई है; जो परीक्षा के इस समय में धैर्य त्यागकर और इस प्रकार उल्टी पट्टी पढ़ाकर; मुझे भक्तिमार्ग से विचलित करना चाहती हो?

भगति माँझ कछु जाइ न माँगा। अस उत्तम श्रुतिकथ करि त्यागा॥
अब कहुँ कस निज हाथ पसारे। हरि दीजिअ धन स्वजन दुखारे॥

भक्ति में तो कुछ भी नहीं माँगा जाता, इस श्रेष्ठ वेदवाक्य का त्याग करके, अब मैं हाथ फैलाकर किस प्रकार कहूँ कि हे श्रीकृष्ण! मुझे धन दीजिये; क्योंकि मेरे स्वजन दुःखी हैं!

कहेहुँ सुसीला तब सिरु नाई। मैं जाचन कबु रही पठाई॥
पिय उन्ह दरसहि सब सुख मूला। पाइअ आपु मिटिहि सब सूला॥

तब सुशीला ने सिर नवाकर कहा कि मैं आपको कुछ माँगने के लिये कहाँ भेज रही हूँ? हे प्रियतम! उन श्रीकृष्ण का तो दर्शन ही समस्त सुखों का मूल है। आप तो केवल वहाँ जाकर उनका दर्शन कर लीजिये; इससे हमारे सारे कष्ट स्वतः ही मिट जायेंगे।

सुमिरि प्रभुहि मूरति सुखधामा। भए ब्रह्ममुद मगन सुदामा॥
पुनि प्रभु दरसन पृह हिय लाई। हरषे दृग रस सरि उमगाई॥

प्रभु की सुखदायक मूर्ति को याद करके, सुदामाजी ब्रह्मानन्द में मग्न हो गए। फिर हरिदर्शन की इच्छा हृदय में लाकर वे हर्षित हो गए और उनके नेत्रों से प्रेम की सरिता बह निकली।

प्रिये हरिहि भेंटन मैं जैहौं। भेंट परन्तु काह उन्ह देहौं॥
सुनि तें ताँदुर कछु लै आई। माँगि परोसनि तें अतुराई॥

(तब उन्होंने कहा कि) हे प्रिये! मैं अवश्य ही उन श्रीहरि से भेंट करने जाऊँगा; किन्तु वहाँ जाकर उन्हें उपहार में क्या दूँगा? यह सुनकर सुशीला अपनी पड़ोसिन से कुछ चावल माँग लाई।

बसन बाँधि पुनि पति कर दीन्हें। सकुचेहुँ अति दरिद्र जब चीन्हें॥
जाना जब प्रभु परम उदारा। मिटेहुँ सोच भइ हरष अपारा॥

फिर एक वस्त्र में बाँधकर वे चावल उसने अपने पति को दे दिये। जब दरिद्र सुदामाजी ने उन चावलों को देखा तो अत्यन्त सकुचा गए। फिर जब उन्होंने यह जाना कि भगवान तो अत्यन्त उदार है, उनकी सारी चिन्ता मिट गई और वे परम प्रसन्न हो गए।

पुनि उन्ह गाँठ सो बगल दबाई। बिदा माँगि तिय तें हरषाई॥

फिर वह गठरी अपनी बगल में दबाकर उन्होंने अपनी पत्नि से प्रसन्नतापूर्वक विदा माँगी।

दोहा- **भगत तदुप धरि आपन रुअँ रुअँ मूरति स्याम।**
भेंटन अनुपम अमल रस हरषि चलेउँ प्रभुधाम॥३६॥

तदुपरान्त अपने रोम-रोम में श्रीकृष्ण की सुन्दर मूर्ति बसाकर प्रभु को अपना अनुपम और निर्मल प्रेम भेंट करने के लिये भक्त सुदामाजी प्रसन्नतापूर्वक उन श्रीकृष्ण के धाम द्वारिका चले।

चौ.- **कृष्न कृष्न नृप कहत सुदामा। चलि परेउँ आपन सख धामा॥**

सिरा निरखि पर भल उन्ह चामा। जा महुँ बहहि भगति सुखधामा॥

हे परीक्षित! कृष्ण-कृष्ण इस प्रकार कहते हुए वे सुदामाजी अपने सखा श्रीकृष्ण के धाम द्वारिका की ओर चल पड़े। उनकी चमड़ी पर उभरी हुई शिराएँ स्पष्टरूप से दिखाई देती है, जिनमें समस्त सुखों की धाम भक्ति बहा करती है।

गर उपबीत रही कटि धोती। कृस तनु तदपि बदनु अजजोती॥
चलहि मंदगति लकुट सहारा। एहिंभाँति पथ कीन्ह बिचारा॥

उन्होंने गले में जनेऊ और कमर में धोती पहनी हुई है। उनका सारा शरीर क्षीण है, किन्तु फिर भी उनके मुख पर ब्रह्मतेज विद्यमान है। वे लकड़ी के सहारे धीरे-धीरे चल रहे हैं। इस प्रकार जाते हुए वे मार्ग में विचार करने लगे कि,

भजइ त्रिपुर पद पंकज जोई। कवन उपाउ देखि सकु सोई॥
सोच जानि उन्ह कर एहिंभाँति। हरिहिं द्वारिका धरकिसि छाती॥

तीनों लोक जिन चरणकमलों का भजन करते हैं, मैं उन्हें किस प्रकार देख पाऊँगा? उनकी इस चिन्ता के विषय में जानकर द्वारिका में श्रीहरि की छाती धड़क उठी।

तब उन्ह माय धाइ अतुराई। द्विजहिं द्वारिका सन लै आई॥
नगर पैठि पुनि सोभा देखी। भयऊँ चकित सुदाम बिसेषी॥

उसी समय उतावली से दौड़कर उनकी माया सुदामाजी को द्वारिका के सन्मुख ले आई नगर में प्रवेश करके और उसकी शोभा को देखकर वे अत्यधिक चकित हो गए।

कनक भवन सब उच्च अटारी। बस जहँ देव तुल्य नर नारी॥
चकित ससंकित करत बिचारा। जब सुदाम गवने एक द्वारा॥

सारे भवन स्वर्णनिर्मित और ऊँची अटारियों से युक्त हैं, जिनमें देवताओं जैसे सुन्दर स्त्रीपुरुष निवास करते हैं। चकित और आशङ्कित सुदामाजी विचारते हुए जब एक भवन के द्वार पर गए,

द्वारपाल तब उन्ह सिरु नाई। पूछा रहे खोजि किन्ह भाई॥
तब सुदाम निज नाउँ बताई। कहि निज अरु हरि प्रीति मिताई॥

तो वहाँ खड़े द्वारपाल ने सिर नवाकर पूछा- हे भाई! आप किसे खोज रहे हैं। तब सुदामाजी ने उसे अपना नाम बताकर अपने प्रति श्रीकृष्ण के प्रेम और मित्रता का वृतान्त कह सुनाया।

बंधु बसहि कत जगतपुनीता। उन्ह तें मिले सवँउ अति बीता॥
परिछित सोउ भवन सुखदाता। प्रमुदित बसइ रमउ संघाता॥

फिर उन्होंने पूछा कि जगत को पवित्र करनेवाले श्रीकृष्ण कहाँ रहते हैं? उनसे मिले बहुत समय हो गया। हे राजन! श्रीकृष्ण रुकमिणी के साथ उसी भवन में बड़े आनन्द से बसते थे।

पटपति सुनत दसा उन्ह जानी। चकरानेहुँ अति अचरज मानी॥
हरिहि गूढ़ लीलहि भय पाई। जाइ प्रभुहि पुनि लाग सुनाई॥

उनकी दशा देखते हुए द्वारपाल उनकी बात पर महान आश्चर्य से चकरा गया। फिर भगवान की गूढ़ लीला के अनुमान से भयभीत होकर वह प्रभु के पास जाकर इस प्रकार कहने लगा-

जगपति आवा द्विज एक द्वारा। मैं जेहिं प्रथम न कबहुँ निहारा॥
अलप बसन बिरहित पदत्राना। तनु दुरबल जनि जाइ बखाना॥

हे स्वामी! द्वार पर कोई ब्राह्मण आया है, जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा। उसके वस्त्र फटे, मैले हैं, न उसके पैरों में जूतियाँ हैं और उसका शरीर ऐसा दुर्बल है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

दोहा– **कृष्न कृष्न पुनि पुनि जपत पूछा तेहिं प्रभु धाम।**
तोहि सखा आपन कहत निज कहँ कहइ सुदाम॥३७॥

बार-बार कृष्ण-कृष्ण इस प्रकार जपते हुए उसने आपका निवास पूछा है। वह आपको अपना सखा और स्वयं को सुदामा कहता है।

चौ.– **सुनत सुधामय नाउँ सुदामा। जगसुखकर सुख लहेहु ललामा॥**
सखाबछल कर आनँदु भारी। हृदय परिधि सबभाँति बिसारी॥

'सुदामा' यह अमृतमय नाम सुनते-ही सारे जगत को सुख देनेवाले श्रीकृष्ण को महान सुख हुआ और उन सखावत्सल का वह आनन्द उनके हृदय की परिधि को सब प्रकार से पीछे छोड़कर,

झिर झिर करि दृग तें उमगाई। उन्ह कपोल दुहुँ लाग सिंचाई॥
रहि रुकमिनि उन्ह पद पलुटाई। पियहिं दसा लखि अति अचराई॥

झिर-झिर करके, नेत्रों से उमड़ पड़ा और उनके कपोलों को भिगोने लगा। रुक्मिणीजी उनके चरण दबा रही थी। अपने प्रियतम की यह दशा देखकर उन्हें अत्यधिक आश्चर्य हुआ।

सुमिरि बालपनु निज अनुरागे। हरि आतुर उन्ह सन कहि लागे॥
सत्य कि मोर चबेनउँ चोरा। आवा सखा सो बाँवर मोरा॥

अपने बालपने का स्मरणकर, प्रेममग्न हुए श्रीकृष्ण उनके सन्मुख ही इस प्रकार कहने लगे कि मेरे चने चुराकर खा जानेवाला, मेरा वह पगला सखा, क्या सचमुच ही आ गया है?

प्रिये बेगि आरती सजावहुँ। भवन सकल दिसि चौक पुरावहुँ॥
तियन्ह बोलि घृत दीप बराई। सख स्वागत करु मंगल गाई॥

हे प्रिये! तुम शीघ्र ही आरती सजाओ और भवन में सब ओर चौक पुरा दो। फिर स्त्रियों को बुलाओ और घी के दीपक जलाकर मङ्गल गीत गाते हुए मेरे सखा का स्वागत करो।

दोहा– **आवा लरिकइ सखा मम आवा मोर सुदाम।**
भुज पसारि पुनि पुनि कहत पट धाए सुखधाम॥३८॥

मेरा बालसखा आ गया, मेरा सुदामा आ गया, बार-बार इस प्रकार कहते हुए भुजाएँ फैलाकर सुखधाम भगवान श्रीकृष्ण द्वार की ओर दौड़े।

चौ.– **ठाढ़ देखि पुनि सख कहँ द्वारा। मुदनिधि उर भा मोद अपारा॥**
बंधु सखा निज इष्ट निहारी। भा सुदामही परम सुखारी॥

फिर सखा को अपने द्वार पर खड़ा देखकर उन आनन्दसागर श्रीकृष्ण के हृदय में अपार आनन्द हुआ। अपने भाई, सखा और इष्ट को देखकर सुदामाजी भी परम सुखी हो गए।

सखहि खींचि हरि अति उल्लासा। बाधेहुँ तुरत गाढ़ भुज पासा॥
निज निज प्रियन्हँ परस सुख पाई। सजल नयन पुलके गुर भाई॥

उस समय भगवान श्रीकृष्ण ने बड़े उल्लास से अपने सखा उन सुदामाजी को खींचकर तुरन्त ही प्रगाड़ बाहुपाश में बाँध लिया। अपने-अपने प्रिय मित्रों का स्पर्श सुख पाकर वे दोनों गुरुभाई पुलकित हो गए और उनके नेत्रों में जल भर आया।

पूछि परसपर पुनि हरषाई। पुर परिवार केरि कुसलाई॥
एहिबिच आइ द्वार सब रानी। कुसुम बरषि करि लगि अगवानी॥

फिर उन्होंने बड़े ही हर्ष से परस्पर एक-दूसरे के नगर और परिवार की कुशल पूछी। इसी बीच भगवान की सब रानियाँ द्वार पर आई और पुष्पवृष्टि करके, सुदामाजी की अगवानी करने लगी।

तब गहि सखहुँ हाथ निज हाथा। आहु आहु अस कहि जगनाथा॥
हरषि राजमंदिर उन्ह ल्याई। निज आसनहि दीन्ह बैठाई॥

उस समय अपने मित्र का हाथ अपने हाथों में लेकर 'आओ मित्र आओ' ऐसा कहते हुए श्रीकृष्ण सुदामाजी को प्रसन्नतापूर्वक राजभवन में ले आए। फिर उन्हें अपने आसन पर बैठा दिया।

तदुप माँगि हरि कंचन थारी। सखहि चरन जब लाग पखारी॥
तेहिं सव प्रिय पद सूल फफोरा। देखि हृदय उन्ह भा दुख घोरा॥

तदुपरान्त भगवान ने सोने की परात मँगाई। फिर जब वे अपने सखा के चरण पखारने लगे उस समय उनके चरणों में लगे हुए काँटे और छाले देखकर उनके हृदय में घोर दुःख हुआ।

लाइ हृदय दयनिधि सोउ पादा। सजन नयन करि लाग बिषादा॥
मैं भ्रमि रहा राजगृह बैसी। सख पुनि दसा भइ तव कैसी॥

तब दयानिधान प्रभु ने उनके चरणों को हृदय से लगा लिया और नेत्रों में जल भरकर विषाद करने लगे। हाय! मैं भ्रमवश राजमहल में बैठा रहा और हे सखा! तुम्हारी क्या दशा हो गई?

मैं अति निठुर कुटिल गति मोरी। जतन किएउँ नहिं सुधि हित तोरी॥
तदपि मोहि गनि निज भगवाना। तैं न हृदय तें मोहि बिसराना॥

मैं अत्यन्त निष्ठुर हूँ और मेरी गति कुटिल है। हे मित्र! मैंने तुम्हारी सुधी पाने के लिये जरा भी प्रयत्न नहीं किया। इतने पर भी अपना इष्ट समझकर तुमने मुझे अपने हृदय से दूर नहीं किया।

अस कहि रुदन करत अति भारी। हरि लागे पद सूल निकारी॥

यह कहकर अत्यधिक रुदन करते हुए भगवान सुदामाजी के चरणों से काँटे निकालने लगे।

दोहा– **ररत जात करुनानिधि सूल निकारत जात।**
नृपति सुदामा देखि अस भा उन्हँ धीर बँधात॥३९॥

वे करुणानिधान प्रभु रोते जाते थे और काँटे निकालते जाते थे। हे परीक्षित्! उस समय प्रेम में आतुर हुए सुदामाजी उन्हें धैर्य बँधाने लगे।

चौ.– **तदुप दीनहितु भरि सुख भारी। सखहि पदाम्बुज लाग पखारी॥**
पुनि पादोदक सो सिरु लावा। उन्ह बहुभाँति स्वभाग सिहावा॥

यह देखकर दीनहितैषी भगवान अत्यन्त सुख में भरकर सखा के चरणकमल पखारने लगे। फिर उस चरणधोवन को सिर पर चढ़ाकर उन्होंने बहुत प्रकार से अपने सौभाग्य की सराहना की।

तदुप सखहि असनान कराए। उन्ह अति उत्तम बस्त्र धराए॥
पुनि केसर मलयादि सुगंधा। चरचि स्वकर सुदाम भुज कंधा॥

तदुपरान्त उन्होंने सुदामाजी को स्नान कराकर उत्तम वस्त्र पहनाये। फिर उन्होंने सुदामाजी के कन्धों और भुजाओं पर अपने हाथों से केसर, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ लगाए।

धूप दीप गहि पुनि रसु भारी। पूजे पद आरती उतारी॥

धेनु भेंटि उन्ह पुनि उर लाए। प्रभु कहि लाग सखा भल आए॥

फिर बड़े प्रेम से उनके चरणों की पूजा करके, धूपदीप आदि उपचारों से उनकी आरती उतारी। फिर उन्हें हृदय से लगाकर गाय दान करते हुए भगवान ने कहा- हे सखा! भले पधारे।

निज प्रति प्रीति देखि प्रभु केरी। भइ सुदाम उर हरष घनेरी॥
सखापेमु अस पतिहि निहारी। भइ अचरात सकल हरिनारी॥

अपने प्रति भगवान का ऐसा प्रेम देखकर सुदामाजी को अत्यन्त हर्ष हुआ। सखा के प्रति ऐसा वात्सल्य देखकर भगवान की समस्त रानियाँ भी आश्चर्य करने लगी।

स्वकर रमा तब बरजत चेरी। करि रसोइ पिय सखरसु हेरी॥
भोजनु सवउँ उचित तब चीन्हा। मिलि सप्रेम उन्ह भोजनु कीन्हा॥

उस समय अपने स्वामी का वही सख्यप्रेम याद करके, रुक्मिणीजी ने दासी को रोकते हुए अपने हाथों से भोजन तैयार किया। भोजन का समय हो गया है, यह जानकर भगवान श्रीकृष्ण और सुदामाजी ने मिलकर बड़े प्रेम से भोजन किया।

दोहा- **जदपि जान तिय सुतन्हँ दुख तदपि बिप्र मन मारि।**
कीन्ह सोइ जस प्रभु चहेहु कछुहि न कहेहु उघारि॥४०॥

यद्यपि सुदामाजी को अपनी स्त्री व पुत्रों का दुःख विदित था, फिर भी उन्होंने मन मारकर वही किया जैसा श्रीकृष्ण चाहते थे, किन्तु खुलकर कुछ न कहा।

चौ.- **जब सरबग्य भगति उन्ह हेरी। तृप्ति तुरंत अखिल जग फेरी॥**
तदुप पलंग सखहि बैठाई। प्रभु बैठे उन्ह पद दिसि जाई॥

सर्वज्ञ प्रभु ने जब सुदामाजी की ऐसी भक्ति देखी तो उन्होंने तुरन्त ही सम्पूर्ण संसार को तृप्त कर दिया। तदुपरान्त सखा को पलङ्ग पर बैठाकर, वे प्रभु उनके चरणों की ओर जाकर बैठ गये।

चापत पद पुनि पुलकित गाता। हेरि लाग गुरकुल कइ बाता॥
महालच्छि तेहिं सवँ मुद पागी। द्विज पइ मंद पवन करि लागी॥

फिर पुलकित शरीर हो वे सुदामाजी के चरण दबाते हुए गुरुकुल की बातों का स्मरण करने लगे। उस समय रुक्मिणीजी आनन्दित होकर धीरे-धीरे उन ब्राह्मण पर पवन करने लगी।

परिछित नर सो मूढ़ महाना। बूझि भज न जे अस भगवाना॥
एहिबिधि प्रिया सहित भगवंता। हरषि सेव करि लग सोउ संता॥

हे परीक्षित्! वह मनुष्य महामूर्ख है, जो जानकर भी ऐसे भगवान का भजन नहीं करता। इस प्रकार अपनी प्रियतमा रुक्मिणीजी सहित भगवान प्रसन्नतापूर्वक उन संत की सेवा करने लगे।

कछु सवँ चरन चाँपि भगवाना। पूछा सखहि मधुर मुसुकाना॥
कहु सुदाम मम प्रिय भौजाई। भेंट मोर हित कवन पठाई॥

कुछ समय तक सखा के चरण दबाकर फिर भगवान ने मीठी मुस्कान से उन्हें पूछा- हे सुदामा! कहो तो मेरी प्रिय भाभी ने मेरे लिये भेंट में क्या भेजा है?

प्रेम सहित जब मम जन थोरे। अरपहि होहि बहुत तें मोरे॥

पै दुरजन अति भेंटहि जेऊ। तद्यपि सखा गहउँ नहिं तेऊँ॥

जब मेरे भक्त मुझे प्रेम से थोड़ा भी समर्पित करते हैं, तो वह मेरे लिये बहुत हो जाता है। किन्तु यदि कोई दुर्जन बहुत अधिक भी देता है, तब भी हे सखा! मैं उसे ग्रहण नहीं करता।

दोहा- **सुष्क पात जे अरपहि मोहि सप्रेम सख कोउ।**
तद्यपि बार किए बिनु हरषि गहउँ मैं सोउ॥४१॥

हे सखा! प्रेम सहित यदि कोई मुझे सूखा पत्ता भी अर्पित करता है, तो मैं उसे भी विलम्ब किये बिना प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर लेता हूँ।

चौ.- **परिछित प्रभु सरबग्य सुजाना। जन जुड़ाउ निज सखहि बखाना॥**
पै सँकोचबस सिरु निज ढारी। उर सुदाम अस लाग बिचारी॥

हे परीक्षित्! भगवान श्रीकृष्ण सुजान और सर्वज्ञ हैं। उन्होंने भक्त के प्रति अपनी ममता सुदामाजी को कह सनाई। किन्तु सङ्कोच के कारण अपना सिर नीचा किये हुए सुदामाजी हृदय में इस प्रकार विचार करने लगे कि,

प्रभु त्रिलोकपति रमानिवासा। हर बिरंचि सुर पुनि जिन्हँ दासा॥
उन्ह कउँ कस यह ताँदुर सोई। भौजि तोर तहि पठए जोई॥

जो प्रभु लक्ष्मी सहित त्रिलोक के स्वामी हैं और शिवजी, ब्रह्माजी व देवता जिनके सेवक हैं। उन्हें ही मैं कैसे कहूँ कि लो ये वे चावल है, जो आपकी भाभी ने आपके लिये भेंटस्वरूप भेजे हैं?

प्रभु उदार अस जानत आही। चिउरे बिप्र दीन्ह जब नाहीं॥
तब सरके सख निकट कन्हाई। पुनि हठि ग्रंथि सो लीन्ह छराई॥

भगवान उदार है, ये जानते हुए भी जब सुदामाजी ने उन्हें तांदुल नहीं दिये। तब कन्हैया स्वयं अपने सखा के निकट सरके और बलपूर्वक तांदुल की वह गठरी उनसे छीन ली।

तदुप खोलि तेहिं ताँदुर देखी। प्रभुहि ब्रम्हमुद भयउँ बिसेषी॥
तब उन्ह गठरि सो हृदय जुड़ानी। पुनि सप्रेम अस कहि लग बानी॥

तदुपरान्त उसे खोलकर और उसमें चावल देखकर भगवान श्रीहरि को महान ब्रह्मानन्द प्राप्त हुआ। तब उन्होंने उस पोटली को हृदय से लगा लिया और प्रेमपूर्वक इस प्रकार कहने लगे।

भेंट सुधोपम भौजि पठाई। भल न कीन्ह तुम राखि दुराई॥
जस रुचिरता अहहि एहि माहीं। एहि तें अछत त्रिपुर मिल नाहीं॥

हे सखा! भाभी ने यह अमृततुल्य भेंट पहुँचाई है, किन्तु तुमने यह ठीक नहीं किया जो इसे छिपाए रखा। जैसा स्वाद इसमें है, इसके अतिरिक्त वैसा त्रिलोक में कहीं नहीं मिल सकता।

बहुरि रमा सन तिन्ह रुचिराई। पुनि पुनि कहि गहि लाग कन्हाई॥

फिर बारम्बार लक्ष्मी के सन्मुख उनके स्वाद की प्रशंसा करते हुए भगवान उन्हें खाने लगे।

दोहा- **दुइ मुठि गहि पुनि तीसरहि जसहि गहे प्रभु लाग।**
तसहि सभय उन्ह कर धरेहुँ रमा सहित अनुराग॥४२॥

दो मुट्ठी चावल खाकर फिर जैसे ही प्रभु तीसरी मुट्ठी भी खाने लगे, वैसे ही भयभीत हुई रुक्मिनीजी ने प्रेमसहित उनका हाथ पकड़ लिया।

चौ.- तुम्हहु नाथ अह इन्हहि समाना। चह अकेल यह अमिय जुड़ाना॥
पुनि पाए दुइ लोक अहेतू। तीसर अब राखिअ निज हेतू॥

फिर उन्होंने कहा- हे नाथ! आप भी इनके ही जैसे हैं, जो यह अमृत अकेले ही पा लेना चाहते हैं। फिर इन अहैतुक ने दो लोकों का राज्य तो पा ही लिया, अब तीसरा अपने लिये भी रखिए।

सुनि अस बचन मंद मुसुकाई। कहन लाग हरि अस नरराई॥
प्रिये बिप्र मम दास महाना। सुख अरु दुख पुनि गनहिं समाना॥

हे परीक्षित! रुक्मिनी के ऐसे वचन सुनकर प्रभु ने धीरे से मुस्कुराकर कहा कि हे प्रिये! ये ब्राह्मण मेरे महान भक्त हैं और सुख-दुःख को एक समान समझते हैं।

मैं इन्ह तनु निज अरपउँ जोई। एहि भगति सम तेपि न होई॥
सुनि अस रुकमिनि अति अचरानी। बहुरि गहे ताँदुर सुखमानी॥

यदि मैं इन्हें अपना शरीर भी अर्पित कर दूँ, तो वह भी इनकी भक्ति के बराबर नहीं होगा। यह सुनकर रुक्मिनी अत्यन्त चकित हुई, फिर उन्होंने सुख मानकर वे चावल ग्रहण किये।

बीति पहर भर निसि अस पावा। हरि सुदाम कहँ सयन करावा॥
पुनि प्रभु सोचि लाग मनु माहीं। जदपि द्विजहि धन इच्छा नाहीं॥

पहरभर रात्रि बीत गई है यह जानकर भगवान ने सुदामाजी को शयन कराया। फिर प्रभु सोचने लगे कि यद्यपि इन ब्राह्मण को धन की इच्छा नहीं है,

तदपि देउँ इन्ह बिभव घनेरा। अस बिचारि सुरसिल्पिहि प्रेरा॥

फिर भी मैं इन्हें महान वैभव दूँगा, ऐसा विचारकर उन्होंने विश्वकर्मा को प्रेरित किया।

दोहा- तब उन्ह जलनिधि निकट रचि पुरि एक सुन्दर भब्य।
बहुरि बसानेहुँ उन्ह तुरत सुर दुरलभ तहँ द्रब्य॥४३॥

तब उन्होंने समुद्र के निकट एक सुन्दर और भव्य नगरी का निर्माण किया। फिर उन्होंने तुरन्त ही उस नगरी में देवदुर्लभ सम्पदा भी बसा दी।

चौ.- पुनि सब ग्राम बासि उन्ह केरे। गए सोउ पुर कौतुकि प्रेरे॥
तदुप सुतन्हँ समेत द्विजनारी। हरि माया सोउ पुर संचारी॥

फिर उनके समस्त ग्रामवासी भी कौतुकप्रिय प्रभु की प्रेरणा से उस नगरी में चले गए। तदुपरान्त पुत्रों सहित विप्रपत्नि को भी भगवान की माया ने सुदामापुरी में भेज दिया।

कछु दिनु बिगत सखा सन जाई। माँगि बिदा सुदाम हरषाई॥
नयन नीर पुलकित भगवाना। तब सुदाम कहँ हृदय जुड़ाना॥

फिर कुछ दिन बीतने पर सुदामाजी ने जाकर प्रसन्नतापूर्वक अपने सखा से विदा माँगी। तब नेत्रों में जल भरकर पुलकित हुए भगवान ने सखा सुदामाजी को हृदय से लगा लिया।

पुनि कह तोहि लखि मनु अस राता। मिले मोहि जनु गुर सुखदाता॥
मोपर राखेसु नित छतछाई। पठवत रहुँ पुनि निज कुसलाई॥

फिर भगवान ने कहा- हे सखा! तुम्हें देखकर मेरा मन ऐसे प्रसन्न हो उठा था, मानों स्वयं गुरुदेव सांदीपनि ही मुझे मिल गए हों। अब तुम मुझ पर सदैव अपने आशीर्वाद की छत्रछाया बनाए रखना और मुझे अपने कुशल समाचार भेजते रहना।

बहुरि सखा दुहुँ अति अनुरागे। लगे हृदयँ निज धीरजु त्यागे॥
प्रभु तें बिदा तदुप द्विज पाही। चले बिषाद हरषु कमु नाहीं॥

फिर वे दोनों सखा महान प्रेम में उमगकर और धैर्य त्यागकर एक-दूसरे के कण्ठ से लग गए। तदुपरान्त प्रभु श्रीकृष्ण से विदा माँगकर सुदामाजी अपने गाँव की ओर चले, उस समय उनके हृदय में प्रभु से मिलन की प्रसन्नता और बिछड़ने का दुःख कम न था।

पंथ जात उन्ह कीन्ह बिचारा। रमानाथ प्रभु तदपि उदारा॥
लखतहि सख कहि हृदय जुड़ाना। स्वकर सेव मम करि सुख माना॥

मार्ग में जाते समय उन्होंने विचार किया कि प्रभु लक्ष्मीपति हैं, फिर भी उदार हैं। देखते-ही सखा कहकर उन्होंने मुझे हृदय से लगा लिया और अपने हाथों से मेरी सेवा करके, सुख माना।

दोहा- **माँगा कछु नहिं कीन्ह भल मँगतेउँ देते तोभि।**
किन्तु बूझते मोहि प्रभु हृदय माँझ अति लोभि॥४४॥

मैनें यह बड़ा ही अच्छा किया जो उनसे कुछ माँगा नहीं। यदि कुछ माँगता तो वे अवश्य दे देते। किन्तु तब प्रभु मुझे अपने मन में बड़ा ही लोभी समझते।

चौ.- **कायहि धन अभाव दिनुराती। जारिहि मोर कहाँ लौ छाती॥**
मोहिं संतोषि किन्तु उन्ह जाना। एहि मम भगति प्रसाद महाना॥

शरीर के निमित्त धन के लिये दिन-रात का यह अभाव कब तक मेरी छाती जलायेगा। किन्तु उन्होंने मुझे संतोषप्रिय समझा यही मेरे लिये मेरे द्वारा की गई उनकी भक्ति का फल है।

एहिबिधि हृदय बिचारत राऊ। जब द्विज आइ गए निज गाँऊ॥
पुरट भवन तहँ सोभा देखी। तब कहि लग अचरात बिसेषी॥

हे परीक्षित! इस प्रकार विचार करते हुए जब सुदामाजी अपने गाँव आ गए तब वहाँ के स्वर्णभवनों की शोभा देखकर विशेषरूप से चकित होकर कहने लगे कि,

अहो गाँउ यह की सोउ मेरा। दारिद कर जहँ संतत डेरा॥
अथवा भ्रमबस अरु अतुराई। अनत गाँउ मैं पैठेउँ आई॥

अहो! क्या यह मेरा वहीं गाँव है, जहाँ दरिद्रता निरन्तर अपना डेरा डाले रहती थी, अथवा भ्रमवश, शीघ्रता के कारण मैं किसी अन्य गाँव में आ पहुँचा हूँ?

अस सोचत तें गवने तहवाँ। रहि जर्जर कुटि उन्ह कइ जहवाँ॥
देखेहुँ उन्ह तहँ भवन बिसाला। कनक रतनमय सुन्दर आला॥

ऐसा सोचते हुए वे वहाँ गए जहाँ उनकी टूटी-फूटी कुटिया थी। किन्तु उन्होंने वहाँ रत्नमय, स्वर्णनिर्मित, विशाल और विचित्र भवन देखा।

थल पहिचानि कुटि न तहँ पाई। तब सुदाम अस कह अकुलाई॥
हाँ मैं लोभ बिबस अति भारी। अज गँवाइ बैठा सुत नारी॥

तब उस स्थान को पहचानकर और वहाँ अपनी कुटिया न पाकर सुदामाजी व्याकुल हो इस प्रकार बोले- हाय मैं अत्यधिक लोभ के वश होकर आज अपने पुत्र और स्त्री को खो बैठा।

दोहा- **जब सुदाम एहि भाँति तहँ भूप रहे पछिताइ।**
तबहि नारि उन्ह आइ तहँ करन तेन्ह अगुआइ॥४५॥

हे परीक्षित! जब सुदामाजी इस प्रकार उस स्थान पर खड़े होकर पछता रहे थे, उसी समय उनकी पत्नि सुशीला वहाँ उनकी अगवानी करने के लिये आई।

मासपारायण उन्तीसवाँ बिश्राम

चौ.- **तिहि सुरसिल्पिहि चरित बखाना। सुनि सुदाम अति अचरज माना॥**
सकुसल पाइ निजउँ परिवारा। भयउँ हृदय तिन्ह हरष अपारा॥

उसने देवशिल्पी विश्वकर्मा का वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया, जिसे सुनकर सुदामाजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस प्रकार अपने परिवार को सकुशल पाकर, उनके हृदय में अपार हर्ष हुआ।

तदुप बिभव निज गनि हरि माया। उन्हहि पदाम्बुज हृदय जुड़ाया॥
परिछित दीनबंधु जग माहीं। सम्भुनाथ हरि सम कोउँ नाहीं॥

तदुपरान्त अपने वैभव को श्रीहरि की माया जानकर, उन्होंने अपना मन उन्हीं के चरणों में लगा दिया। हे परीक्षित्! संसार में शिवजी के स्वामी श्रीकृष्ण के समान दीनजनों का बन्धु अन्य कोई नहीं है।

कथ सुदाम अरु हरिहि मिताई। सुन्दर बिमल परम सुखदाई॥
इहि सप्रेम कह सुन जे लोगा। भोग न करमबंध कर रोगा॥

सुदामाजी और श्रीकृष्ण की मित्रता की यह कथा सुन्दर, विकाररहित और महान सुखदायिनी है। जो लोग इसे प्रेम सहित कहते सुनते हैं, उन्हें कर्म-बन्धनरूपी रोग नहीं व्यापता।

भानुगहन अवसर एक बारा। लखि नृप नृप सन स्याम उचारा॥
तरनिगहन अवसर कुरुखेता। नृप असनान पुन्य अति देता॥

हे परीक्षित्! एक बार सूर्यग्रहण का अवसर आया देखकर, भगवान ने महाराज उग्रसेन से कहा- हे राजन! सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में किया गया स्नान अत्यन्त पुण्यदायक होता है।

दोहा- **एहि अवसर तहँ दान किए सहस गुनित फल होत।**
महापाप सब छूटहीं उपजहिं निरमल जोत॥४६॥

इस अवसर पर वहाँ दान करने पर उसका सहस्रगुणा फल प्राप्त होता है। समस्त महान पातक छूट जातें है और निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है।

चौ.- तातें पावन महि कुरुखेता। जदुपति चलिअ समाज समेता॥
उग्रसेन सुनि अति सुख माना। सबन्हँ संग तहँ कीन्ह पयाना॥

इसलिये हे यादवेन्द्र! आप समाजसहित कुरुक्षेत्र की पवित्र की भूमि पर चलिये। यह सुनकर उग्रसेन को अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ और उन्होंने समस्त यादवों के साथ वहाँ प्रस्थान किया।

इत कुरु पाँडौ दुहुँ परिवारा। न्हावन हित तहँ आइ पधारा॥
लघु गुरु देस सबनि के राजा। आए एहि मिस सहित समाजा॥

इधर कुरु व पाण्डु परिवार भी स्नान के निमित्त वहाँ आ पहुँचा। छोटे-बड़े समस्त देशों के राजागण भी इसी उद्देश्य से वहाँ आ पधारे।

महिभर बिप्र सहित तपखाना। आए तहाँ करन असनाना॥
एहिबिधि भूप सबनि तहँ आई। सिविर आपनें दीन्ह उबाई॥

पृथ्वीभर के ब्राह्मण और तपनिधान मुनिगण भी वहाँ स्नान करने के लिये आ पहुँचे। इस प्रकार समस्त राजागणों ने कुरुक्षेत्र पहुँचकर अपने-अपने शिविर खड़े करवा दिये।

तदुप हेरि तें हरिहिं प्रभाऊ। आइ भेंटि लग उन्ह अति चाऊ॥
प्रभु सनमान कीन्ह उन्ह नीका। लखि रस भरेहु हृदय सबही का॥

तदुपरान्त भगवान के प्रभाव का स्मरण करके; वे सब आकर अत्यंत रुचिपूर्वक उनसे भेंट करने लगे। भगवान ने उनका उत्तम सम्मान किया; यह देखकर सबके मन प्रेम से भर गए।

दोहा- कुरु पाँडौ तें भेंटे बहुरि जाइ दुहुँ भाइ।
दरस पाइ उन्ह कर सुखद रहे सबनि हरषाइ॥४७॥

फिर वे दोनों भाई जाकर कौरवों और पाण्डवों से मिले। उनका सुखदायक दर्शन पाकर, वे सब भी हर्षित हो उठे।

चौ.- समाचार ब्रजबासिन्ह पाए। नंद सँघात तेपि तहँ आए॥
उन्ह अनुसरत गोपि सब बृन्दा। राध सँघात अए सानंदा॥

जब यह समाचार व्रजवासियों को मिला; तो नन्दरायजी के साथ वे भी कुरुक्षेत्र आ गए। उन्हीं का अनुशरण करते हुए गोपियों के सब समुदाय भी राधाजी के साथ आनन्दपूर्वक वहाँ आए।

दूसर दिनु सब लाग नहाहीं। परसुरामकृत कुंडन्हि माहीं॥
निबरे न्हाइ जब सबनि राजा। आवा तब तहँ गोपि समाजा॥

दूसरे दिन सवेरा होने पर वहाँ पधारे समस्त लोग परसुरामनिर्मित कुण्डों में नहाने लगे। जब समस्त राजा स्नान से निवृत्त हुए, तब गोपियों के समुदाय भी स्नान के लिये वहाँ पधारे।

जेन्ह मध्य सिबिका असवारा। रहि राधा छबिरासि अपारा॥
प्रगट बिभव जनु धरे सरीरा। आइ गयउ सो कुंडन्हि तीरा॥

जिनके बीच में पालकी पर सवार हुई, सुन्दरता की अपार राशि श्रीराधाजी विद्यमान थी। जैसे साक्षात् वैभव ही शरीर धरकर, उन कुण्डों के तट पर आ गया हो।

अमित गोप बेतायुधधारी। चहुँ दिसि करत चलहिं रखवारी॥
न्हावन राध आइ रहि जहवाँ। रहे कछुक जादव तब तहवाँ॥

अनेक गोप हाथ में बेंत लिये चारों ओर से उन्हें घेरकर रखवाली करते हुए चल रहे थे। जिस स्थान पर स्नान करने के लिये राधाजी आ रही थीं, उस स्थान पर उस समय कुछ यादव भी उपस्थित थे।

किन्तु सोउ रखवारन्हँ धाई। बेतन्हि बल उन्ह दीन्ह बेडाई॥
जदु बापुरे दूर भए ठाढ़े। राधहि प्रदुति लखहि दृग फाड़े॥

किन्तु उन्हीं रखवालों ने दौड़कर, अपनी बेंतों के बल पर, उन्हें वहाँ से खदेड़ दिया। तब बेचारे यदुगण दूर जाकर खड़े हो गए और (वहीं से) आँखे फाड़कर राधाजी की महाकान्ति को देखने लगे।

संग किए सो सवँ निज नारी। निकसि रहे तहँ तें बनवारी॥
जदुन्हँ देखि ठागे एहिभाँती। पतिहि पूछि लगि तिय अचराती॥

उस समय अपनी पत्नियों को साथ किये, बनवारी उस स्थान से होते हुए जा रहे थे। यादवों को इस प्रकार ठगे-से खड़े देखकर; वे सब स्त्रियाँ चकित हो अपने स्वामी से पूछनें लगी-

पिय छबिरासि कौन यह नारी। बिभव बिचित्र जासु अस भारी॥
जाहिं समुख जदुपुंगव भारी। भै असहाय गरुअ सब हारी॥

हे प्रियतम! सौन्दर्य की राशि यह कौन स्त्री है, जिसका अद्भुत वैभव कुछ इस प्रकार विशिष्ट है कि, जिसके सन्मुख ये बड़े-बड़े यदुश्रेष्ठ भी अपनी सारी गुरुता गँवाकर, असहाय हो गये हैं।

केन्ह रानि पुनि अह का नामा। महि ऊपरहिं अह कि इन्ह धामा॥
अथवा बसहिं लोक केउ आना। बेगि उघारिअ भेद महाना॥

ये किनकी रानी हैं और इनका नाम क्या है? क्या ये पृथ्वी पर ही निवास करती हैं अथवा किसी अन्य लोक की रहनेंवाली हैं? आप शीघ्र-ही इस महान रहस्य को प्रकट कीजिये।

तब हरि कह अति पुलकित गाता। पिय तुम्हार जिहि भज दिनुराता॥
जासु अहैतु समरपनु पाई। प्रीति बिमल परिभाष जुड़ाई॥

तब शरीर से अत्यन्त पुलकित हो श्रीकृष्ण ने कहा- तुम्हारा प्रियतम दिनरात जिनका भजन किया करता है और जिनके निष्काम समर्पण का आश्रय पाकर, प्रेम ने निर्मल परिभाषा पाई है;

ए सोइ सरित सान्ति कल्यानू। सुता अहहि कीरति बृषभानू॥
एहि मोर स्वामिनि ब्रज सोभा। इन्हहि प्रीति मनु मम रह लोभा॥

ये शान्ति और कल्याण की वही सरिता 'राधा' हैं, जो माता कीर्ति और वृषभानूजी की पुत्री है। ये ही मेरी स्वामिनी और व्रज की शोभा है; इन्हीं की (अनुपम) प्रीति पर मेरा मन लुब्ध रहता है।

दोहा- इन्हहि गरुअ अरु बिभव कर अह अस परम प्रभाउँ।
जाहिं समुख सब जादव ठाढ़े चुप निरुपाउ॥४८॥ (क)

इन्हीं के गौरव व वैभव का प्रभाव ऐसा महान है कि, जिसके सन्मुख समस्त यादव निरुपाय हुए से चुपचाप खड़े हैं।

नृपति रहा सतभामहि कुल छबि मान अगाह।
पिय मुख सौति प्रसंस सुनि भा उन्ह हिय अति डाह॥४८॥ (ख)

हे परीक्षित्! सत्यभामा को अपने कुल और सौन्दर्य पर बड़ा मान था; इसी कारण प्रियतम श्रीकृष्ण के मुख से अपनी सौंत की प्रशंसा सुनकर, उनके मन में बड़ी ईर्ष्या हुई।

चौ.- पुनि मानिनि भइ बिमुख मुकुंदा। सौतन्हि बीच बोलि रव मंदा॥
की राधेहि अह सब छबि खाना। मैं कि अहुँ न छबिवंति महाना॥

फिर भगवान मुकुन्द के विरुद्ध मान धारण करके; सौतों के मध्य बैठी हुई वे सत्यभामा धीरे से बोली- क्या राधा ही सब सुन्दरताओं की खान है? क्या मैं महान सुन्दरी नहीं हूँ?

पूरब मोहि जाँचि बहु लोगा। पाइ रूप गुन मुहि सब जोगा॥
प्रतिदिनु पुरट बीस मन देई। पितु दइ चहि दाइज मनि तेई॥

पूर्वकाल में रूप व गुणों के आधार पर, मुझे सब प्रकार से योग्य जानकर; बहुतों ने मेरी याचना की थी। जो प्रतिदिन बीस मन स्वर्ण दिया करती है, वही स्यमंतक मणि मेरे पिता ने मेरे दहेज में देना चाही थी।

सुरतरु पुष्प नाथ सन माँगा। तरुहि आन उन्ह मम अनुरागा॥
सो सवँ मैं इन्ह नयनन्हि देखी। हरि अरु नरकहि रारि बिसेषी॥

मैंने प्रियतम से कल्पवृक्ष का पुष्प माँगा था; किन्तु मुझसे (विशेष) प्रेम के कारण, उन्होंने मुझे कल्पवृक्ष ही लाकर दे दिया। उस समय मैंने अपने इन्हीं नेत्रों से श्रीकृष्ण और नरकासुर का महायुद्ध देखा था।

मैं निज पतिब्रत धरम महाना। करतल करि राखे भगवाना॥
ते मम रुचि राखहि दिनुराता। अनुपम तेन्ह मोर रसु नाता॥

मैंने अपने महान पतिव्रत धर्म के बल पर परमात्मस्वरूप श्रीकृष्ण को अपने वश में कर रखा है। वे दिन-रात मेरी रुचि का ध्यान रखते हैं और मेरा व उनका प्रेमसम्बन्ध अनुपमेय है।

दोहा- पिय पद रति जस मोरि तस खोजि त्रिपुर मिल नाहिं।
तब गवाँरि होइ राधिका कस बस पिय मन माहिं॥४९॥

प्रियतम के चरणों में जैसा प्रेम मेरा है, वैसा तो तीनों-लोकों में खोजनें पर भी नहीं मिलेगा; तो फिर एक अनपढ़ स्त्री होकर, राधा प्रियतम के मन में कैसे बसती है?

चौ.- सिसुपालादिक लहिबे जाहीं। हरि सन जूझि परे रनु माहीं॥
छबिनिधानि उन्ह रुकमनि केरा। कहु कि अहहि कमु बिभव घनेरा॥

जिन्हें प्राप्त करने के लिये शिशुपाल आदि राजागण भगवान श्रीकृष्ण से युद्ध में जूझ पड़े थे; हे बहिनों! कहो तो! उन सौन्दर्यनिधानि रुक्मिणी का घना वैभव क्या (किसी से) कम है?

राजसुता हम सकल कुलीना। पुनि राधिका ग्वालि अति दीना॥
हम सब धन्य मानवति माहीं। छबिनिधानि हम सम कोउ नाहीं॥

उच्च कुल में उत्पन्न हुई हम सभी राजकुमारियाँ हैं और राधा एक अत्यन्त साधारण ग्वालिन। मानवती स्त्रियों में हम सब धन्य हैं और हमारे समान सौन्दर्यसम्पन्न अन्य कोई नहीं है।

हम समान हरिपेमि महाना। होइ सक न पुनि जग महुँ आना॥
उन्ह सतभाम कहा अस जबही। तिय सब मानवती भइ तबही॥

हम जैसा महान कृष्णप्रेमी इस संसार में पुनः दूसरा नहीं हो सकेगा। सत्यभामा ने उन सब रानियों से जब इस प्रकार कहा; तब वे समस्त श्रीकृष्णपत्नियाँ भी मानवती हो गई।

पुनि निज कुल छबि धन कहँ गाई। हरि सन सबन्हँ कहा गरुआई॥
पिय तैं अधिक प्रसंसेहु जाही। निकट जाइ हम लखि चह ताही॥

फिर अपने कुल, सौन्दर्य और वैभव को बखानकर, गर्वित हो सबनें श्रीकृष्ण से कहा- हे प्रिय! आपनें जिनकी इस प्रकार प्रशंसा की है; उन राधा को हम सब निकट से देखना चाहती हैं।

तब सरबग्य बूझि उन्ह डाहा। कहा अवसि पुरवउँ तव चाहा॥
पुनि बरनत ब्रज बिबिध प्रसंगा। फिरे सिविर निज हरि उन्ह संगा॥

तब सर्वज्ञ भगवान उनकी ईर्ष्या को जान गये और बोले कि, मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा। फिर व्रज के विविध प्रसङ्गों का वर्णन करते हुए, वे उन सबको साथ लेकर अपने शिविर में लौट आए।

दोहा- **परिछित तहँ कौतुकप्रिय हरन स्वजन अभिमान।**
पुनि थापन रति काचित लीला बिरचि महान॥५०॥

हे परीक्षित्! वहाँ कौतुकप्रिय भगवान ने अपने उन स्वजनों का अभिमान हरनें के लिये और राधा के प्रेम को प्रतिष्ठा दिलाने के लिये एक महान लीला रची।

चौ.- **कौतुकि प्रभु रानिन्ह दिसि देखी। धरि ललाट मुखु कीन्ह बिसेषी॥**
पुनि कह सिसु सम भए अधीरा। होति मोर सिरु अतिसय पीरा॥

उन कौतुकी ने अपनी रानियों की ओर देखकर, अपना ललाट पकड़ लिया और विशेष मुखमुद्रा बना ली। फिर बालकों के समान अधीर हो वे कहने लगे कि मेरे सिर में अत्यंत पीड़ा हो रही है।

सुनि अस रुकमिनि अरु सतिभामा। मित्रबिन्द सत्यादिक बामा॥
चिंतति बिकल भई अति भारी। करि पुनि जतन पीर लग टारी॥

ऐसा सुनकर रुक्मिणी, सत्यभामा, मित्रवृन्दा और सत्या आदि कृष्णपत्नियाँ चिन्ता से अत्यधिक व्याकुल हो उठी और यत्न करके, उनकी पीड़ा मिटाने लगी।

कोउ सिरु दाब पवन कर कोई। सिरु कोउ मूरि लेप कर दोई॥

किंतु पीर जब कमु भइ नाहीं। सबनि भयातुर भइ मनु माहीं॥

कोई उनका सिर दबानें लगी, कोई पवन करने लगी, तो कोई दोनों हाथों से उनके सिर पर औषधि का लेपन करने लगी। किन्तु फिर भी जब पीड़ा कम न हुई, तब वे सब मन-ही मन भय से अधीर हो गई।

हरि प्रेरित नारद तेहिं काला। आए तहँ मुख तेज बिसाला॥
उन्ह बिलोकि हरषी हरिनारी। पुनि उन्ह सन पिय पीर उचारी॥

उस समय भगवान की प्रेरणा से देवर्षि नारद वहाँ पधारे; उनके मुखमण्डल पर अपार तेज था। उन्हें देखते-ही कृष्णपत्नियाँ हर्षित हो उठी और उनके समक्ष उन्होंने अपने पति की पीड़ा कह सुनाई।

तब नारद उन्ह धीर बँधाई। कहन लाग एहिंभाँति बुझाई॥
इन्ह केउ जन पद रेनु मँगाई। इन्ह कपारु तल देहुँ लगाई॥

तब नारदजी धैर्य बँधाकर, समझाते हुए उन्हें इस प्रकार कहने लगे- तुम इनके किसी भक्त के चरणों की धूल मँगाकर, इनके ललाट स्थल पर लगा दो।

मिटिहहि अवसि तुरत इन्ह पीरा। होइहि परम सान्ति अरु धीरा॥
आन उपाय अहहि कोउँ नाहीं। सुनि सब चकित भई मनु माहीं॥

तब अवश्य ही इनकी पीड़ा तुरन्त मिट जायेगी और इन्हें परम शान्ति व धैर्य प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है; यह सुनकर वे सब मन-ही मन चकित हो उठी।

दोहा- **पुनि मुनि कह उन्ह तियन्हँ सन तुम त प्रभुहि प्रिय नारि।**
उन्ह भगतन्ह महुँ सबनि बिधि परथम लीक तुम्हारि॥५१॥

फिर नारदजी ने उन स्त्रियों से कहा- तुम सब तो भगवान श्रीकृष्ण की प्रिय पत्नियाँ हो; उनके भक्तों में तुम्हारी गणना तो सब प्रकार से पहले होती है।

चौ.- **तातें प्रभु कर पीर मेटावन। देहुँ तुमहि केउ पद रज पावन॥**
सुनि सतभाम पाप भय पाई। कहन लागि मुनि पद सिरु नाई॥

इसलिये प्रभु की पीड़ा मिटाने के लिये, तुममें से ही कोई अपनी पावन चरणरज दे दो। यह सुनकर सत्यभामा पाप की भागी बनने के भय से मुनि के चरणों में सिर नवाकर कहने लगी-

मुनिवर हरि मम प्रान पिआरे। रहि मैं उन्ह पद रज सिरु धारे॥
जे निज पद रज इन्ह सिरु धरऊँ। अवसि महारौरव मैं परऊ॥

हे मुनिवर! श्रीकृष्ण हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं; मैं सदैव ही उनकी चरण-रज अपने मस्तक पर धारण करती आई हूँ। अब यदि मैं अपने चरणों की धूल इनके सिर पर डालती हूँ; तो अवश्य ही मुझे घोर रौरव नर्क में पड़ना पड़ेगा।

तातें देउँ न मैं पग धूरी। माँगु अनत निज सम्मत मूरी॥
नारद तब रुकमिनि सन गयऊ। उत्तर किंतु इहइ उन्ह दयऊ॥

इसलिये मैं अपने चरणों की धूल नहीं दूँगी; आप अपने द्वारा सुझाई गई यह औषध, अन्यत्र जाकर माँगिये। तब नारदजी रुक्मिणीजी के सन्मुख गए और उनसें चरणरज माँगनें लगे; किन्तु उन्होंने भी यही बात कही।

तदुप माँगि पद रज मुनिराई। पृथक पृथक हरितिय सन जाई॥
किंतु पाप भय मनु उन्ह डोला। सुनि पर नाहिं नाहिं अस बोला॥

तदुपरान्त मुनि ने पृथक-पृथक जाकर, प्रत्येक कृष्णपत्नि से चरणरज माँगी; किन्तु पाप के भय से उनका मन विचलित हो उठा और सब ओर उनके द्वारा कहे गये 'मैं नहीं दूँगी'-'मैं नहीं दूँगी' यही शब्द सुनाई पड़नें लगे।

तब कुरु पाँडव जदुगन पासा। गए देवरिषि धरि एहि आसा॥

तब देवर्षि नारद इसी आशा के साथ (भीष्मादि) कौरवों, (अर्जुनादि) पाण्डवों और (उद्धवादि) यादवों के पास गए।

दोहा- किंतु हरिहि परब्रह्म कहि उन्हपि दीन्ह रजु नाहिं।
तब निरास मुनि तहँ तें गए तुरत राधिका पाहि॥५२॥

किन्तु श्रीकृष्ण को परब्रह्म परमेश्वर कहकर, उन्होंने भी अपनी चरण-रज नहीं दी। तब निराश हुए नारदजी तुरन्त ही वहाँ से राधाजी के पास गए।

चौ.- जातहि मुनि कहि उन्ह हरि पीरा। सुनि राधा भइ परम अधीरा॥
पुनि कह मुनि तोहि चाहिअ जेती। लै जैहहुँ मम पद रज तेती॥

मुनि ने जाते ही उनसे भगवान की पीड़ा के विषय में कहा; जिसे सुनते-ही राधाजी अत्यन्त अधीर हो उठीं। फिर वे बोली- हे मुनिराज! आपको जितनी चाहिये, उतनी मेरे चरणों की रज ले जाईये।

ललितादिक सखि निकर बिसाला। रहा उपस्थित तहँ तेहिं काला॥
सबन्हँ जोरि निज निज पग धूरी। मुनि कहँ दीन्हि गठरि करि भूरी॥

ललिता आदि गोपियों का विशाल समूह भी उस समय वहीं था। इसलिये उन्होंने भी अपने-अपने चरणों की रज इकट्ठी कर ली और उससे एक बड़ी गठरी बनाकर मुनि को दे दी।

मुनि बिसाल अघ भय देखरावा। बच बिचित्र पै गोपि सुनावा॥
सुररिषि तब सो गठरि उठाए। हरिहि सिविर प्रमुदित मनु आए॥

यद्यपि मुनि ने उन्हें पाप का बड़ा भय दिखाया; किन्तु गोपियों ने उन्हें कुछ विचित्र सी बात कही। तब देवर्षि उस गठरी को उठाकर, बड़े आनन्द से भगवान श्रीकृष्ण के शिविर में आ गए।

पुनि प्रभु भाल लगाइ सो छारा। भा ब्रजपति उर मोद अपारा॥
तब कह अहो मोहि मुद कैसे। अमिअ धार मम सिरु परि जैसे॥

फिर उन्होंने (गोपियों की दी हुई) वह चरणधूलि भगवान के मस्तक पर लगा दी; जिससे उन व्रजराज श्रीकृष्ण को अपार आनन्द हुआ। तब वे कहने लगे- अहो! मुझे कैसा आनन्द प्राप्त हो रहा है; जैसे अमृत की धारा मेरे मस्तक पर आ पड़ी हो।

अकथ सान्तिदायक यह छारी। सबबिधि पीर मोर जेहिं टारी॥

सुनि सब हरितिय अति अचरानी। मुनि सन पूछि लागि मृदु बानी॥

यह रज तो अकथनीय शान्ति देनेवाली है; जिसनें सब प्रकार से मेरी पीड़ा हर ली। यह सुनते-ही समस्त कृष्णपत्नियाँ अत्यन्त चकित हो गई और नारदजी से कोमल वाणी में पूछनें लगी-

मुनि अह यह किन्ह कर पद रेनू। बूझि कि कीन्ह नरक तेहिं ऐनू॥
तब मुनि कह इहँ तें रजु आसा। गयउ मैं जदु कुरु पांडउ पासा॥

हे मुनिराज! यह किसकी चरणरज है? क्या सब कुछ जानकर भी उसनें नर्क में अपना स्थान निश्चित किया है? तब मुनि ने कहा कि रज की आशा लिये मैं यहाँ से कौरवों, पाण्डवों और यादवों के सन्मुख गया था।

पैं उन्ह हरि कहँ कहि भगवाना। अघ भय रीतहुँ मोहि फिराना॥
तब मैं गयउ राधिका पाहीं। जदुपति पीर कही पुनि ताहीं॥

किन्तु उन सबनें श्रीकृष्ण को परमेश्वर बताकर, पाप के भय से मुझे रीते हाथ ही लौटा दिया। तब मैं राधा के पास गया और यादवेन्द्र की पीड़ा उनसे कह सुनाई।

जदपि कहा अति तव पद छारा। अवसि मेट हरि पीर अपारा॥
किंतु करत अस अघ जे होई। नरक माँझ तुहि पठवहि सोई॥

यद्यपि मैंने उन्हें बहुत कहा कि, तुम्हारे चरणों की रज उनकी पीड़ा तो अवश्य मिटा देगी; किन्तु ऐसा करने पर जो पाप उत्पन्न होगा, वह तुम्हें नर्क में भेज देगा।

सुनि राधादिक गोपकुमारी। सुनु बिचित्र जे बात उचारी॥
हरिहि हमहिं अह प्रान अधारा। उन्ह सुख जीवनु लच्छ हमारा॥

ऐसा सुनकर राधा आदि गोपकुमारियों ने जो अद्भुत बात कही थी; वह अब आप भी सुनिये- (उन्होंने कहा था) हे मुनिराज! कन्हैया ही तो हमारे प्राणों के आधार हैं; उनका सुख ही हमारे जीवन का लद्दय है।

दोहा- सिर धरि जे पद रज हमहि मिटि सक दुख उन्ह केर।
तब त अवसि रज देहिं हम लहि अपि नरक घनेर॥५४॥

जो यदि हमारे चरणों की रज अपने सिर पर धारण करके, उनका दुःख मिट सकता है; तब तो घोर नर्क में पड़कर भी, हम अपनी चरण रज अवश्य देंगी।

चौ.- होन हेतु उन्ह सुख आधारा। जुग जुग नरक हमहि स्वीकारा॥
अस कहि सबन्हँ परम हरषाई। निज निज पदरज कन्हहि पठाई॥

उनके सुख का आधार होनें के लिये तो हमें युगों-युगों तक नर्क में पड़े रहना स्वीकार है। ऐसा कहकर बड़े ही हर्ष के साथ उन सभी ने कन्हैया के लिये अपनी चरणरज भेजी है।

धन्य धन्य उन्ह पेमु महाना। कन्हँ सुख जिअँ जिन्हँ मोह न आना॥
चर अरु अचर अखिल जग माहीं। गोपिन्हँ सम हरिजन कोउ नाहीं॥

उन गोपियों का प्रेम धन्य है, धन्य है; जो केवल श्रीकृष्ण के सुख के लिये ही जी रही हैं और जिन्हें किसी अन्य वस्तु का मोह नहीं है। चर और अचर जीवों सहित इस सम्पूर्ण संसार में गोपियों के समान कृष्ण-प्रेमी अन्य कोई नहीं।

गोपि प्रेम महिमा सुनि पाई। सतभामादिक परम खिसाई॥
गरुअ तेन्ह गरि श्रद्धा होई। गोपिन्हँ पद लागा छलु खोई॥

मुनि के मुख से जब गोपियों के कृष्णप्रेम की महिमा सुनी; तो सत्यभामा आदि कृष्णपत्नियाँ अत्यधिक लज्जित हो उठी। उनका सम्पूर्ण अभिमान गलकर, श्रद्धा के रूप में परिवर्तित हो गया और कपट त्यागकर गोपियों के चरणों में जा लगा।

गत अभिमान देखि निज नारी। भए भगतहितु परम सुखारी॥
पाइ प्रदोष दाउ जगदीसा। गए नंद पहि लेन असीसा॥

अपनी पत्नियों को अभिमान रहित हुई देखकर, भक्त का हित करनेवाले भगवान अत्यन्त सुखी हुए। फिर सवेरा होने पर बलरामजी को साथ लेकर, श्रीकृष्ण नन्दरायजी के पास उनका आशीर्वाद लेनें गए।

बसु आदिक जदु निकर बिसाला। सतिय संग भयऊँ तेहिं काला॥
इहाँ नंद कह करि अभिलाषा। मोर प्रानधन नयन प्रकासा॥

उस समय वसुदेवजी और अन्य यादवों का विशाल समूह भी स्त्रियों सहित उनके साथ हो गया। इधर नन्दजी मन में इच्छा करके, कहने लगे कि मेरे प्राणधन, मेरे नेत्रों के लिये प्रकाशरूप

कान्हँ दाउ इहँ न्हावन आए। दरस मोद उन्ह लेउँ जुड़ाए॥
जब अस सोचि रहे ब्रजराजा। तबुहि अएहुँ तहँ जदुन्ह समाजा॥

कन्हैया और दाऊ भी यहाँ स्नान करने आए हैं; इसलिये मैं उनके दर्शनों का आनन्द प्राप्त कर लूँ। नन्दजी जब इस प्रकार सोच रहे थे कि, तभी यादव-समाज वहाँ आ पहुँचा।

सुतन्ह देखि जसुमति नँद हरषे। तोष लहत भए लोचन तरषे॥

अपने पुत्रों (कृष्ण, दाऊ) को देख नन्दजी व यशोदा मैय्या के तरषे हुए नेत्र संतोष पाने लगे।

दोहा- **चितवतही उन्ह कान्हँ बल परे पदाम्बुज धाइ।**
पुलकि नंद जसुदा दुहन्हँ लए हरषि उर लाइ॥५५॥

उन्हें देखते-ही कन्हैया और बलदाऊ दौड़कर उनके चरणकमलों पर गिर पड़े। तब नन्दजी और मैय्या यशोदा ने पुलकित होकर उन्हें उठाया और अपने हृदय से लगा लिया।

चौ.- **भयउँ दंपतिहि सुख तब कैसे। बिपिन सेइ लौटे सुत जैसे॥**
रहे तहाँ तब जे ब्रजबासी। मिले तेपि पाएहुँ सुखरासी॥

उस समय मैय्या व बाबा को कैसा सुख प्राप्त हुआ; जैसे उनके पुत्र वनवास पूर्ण करके, लौटे हों। उस समय जो व्रजवासी वहाँ उपस्थित थे, वे सब भी उनसे मिले और अत्यंत सुखी हुए।

बसुद्यौ नंदहि गनि कुलत्राता। मिले आँकु भरि पुलकित गाता॥

उग्रसेन आदिक जदुबृंदा। तदुप मिला उन्ह तें सानंदा॥

नन्दरायजी को अपने कुल का उद्धारकर्ता समझकर, पुलकित हुए वसुदेवजी उनसे अँकवार भरकर मिले। तदुपरान्त महाराज उग्रसेन आदि यादवों का समूह भी आनन्द सहित उनसे मिला।

तेहिं सवँ बालसखन्हँ उर लाए। उभय भ्रात अति भाउन्ह छाए॥
बहुरि जादवन्ह सन उन्ह केरा। कहा नाउँ अरु नेह घनेरा॥

उस समय अपने बाल्यकाल के सखाओं को हृदय से लगाकर वे दोनों अत्यन्त भावुक हो गए। फिर उन्होंने यदुवंशियों के सन्मुख उनका नाम और अपने प्रति उनकी महान प्रीति कही।

बलतिय सहित तदुप हरिनारी। दंपति पद परसे रसु भारी॥
सुतबधु जानि उभय तब तेहीं। दीन्हि असीस पुलक अति देही॥

तदुपरान्त बलरामजी की पत्नि (रेवतीजी) सहित, सब कृष्णपत्नियों ने बड़े प्रेम से मैय्या और बाबा के चरण स्पर्श किये। तब उन्होंने उन्हें अपनी पुत्रवधुएँ जानकर अत्यन्त पुलकित शरीर से आशीर्वाद दिया।

कुसल पूछि एहिंभाँति परसपर। दुहँ समाज रहे संग दिवसभर॥
किंतु कछुक सवँ तहाँ बिताई। राध दरस हित गए कन्हाई॥

इस प्रकार एक-दूसरे की कुशल-क्षेम पूछकर, वे दोनों समाज दिवस पर्यन्त साथ ही रहे; किन्तु कन्हैया कुछ समय वहाँ बिताकर, राधाजी का दर्शन पाने के लिये चले गए।

तेहि सवँ भामादिक हरिनारी। भईं संग एहिंभाँति बिचारी॥
सिखि सिखंड सिरु आपन बाँधे। पुनि नटबेष रुचिर अति साधे॥

उस समय सत्यभामा आदि कृष्णपत्नियाँ भी अपने मन में इस प्रकार विचार कर उनके साथ हो गई कि अपने शीश पर मयूरपङ्खयुक्त मुकुट बाँधकर और अत्यन्त मनोहारी नटवेष धारण करके,

दोहा- जाहिं रिझावन नाचत फिरत रहे ब्रज कुंज।
आपन सोउ प्रेयसि तें अज मिलिहि हमहि सुखपुंज॥५६॥

कन्हैया, जिन्हें रिझानें के लिये, व्रज की कुञ्जों में जिनके पीछे-पीछे नाचते-फिरते थे; आज हमारे सुख के पुञ्ज श्रीकृष्ण अपनी उन्हीं प्रियतमा से मिलेंगे।

चौ.- जब तें राध प्रति भा उन्ह डाहा। दरस पृहा भइ सबन्हँ अगाहा॥
तातें एहिबिधि करत बिचारा। पियहि पाछ चलि रहि सब दारा॥

जब से राधाजी के प्रति उनके मन में डाह हुआ, तभी से उनके दर्शन की इच्छा उन्हें बढ़ गई थी। इसलिये इस प्रकार विचार करते हुए, वे कृष्णपत्नियाँ श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे चली जा रही थी।

इहाँ पुरटमय चारु बिताना। आबृत सखि समुदाय महाना॥
रसनिधानि हरि प्रानपिआरी। बैठि जपत रहि कन्हँ गिरिधारी॥

इधर स्वर्णनिर्मित सुन्दर मण्डप में भगवान श्रीकृष्ण की प्राणप्रिया, प्रेमनिधानी, श्रीराधाजी सखियों के विशाल समुदाय से आवृत्त होकर बैठी हुई 'कन्हैया', 'गिरिधर' इस प्रकार जप रही थी।

अंग श्रवहि अस अदभुत आभा। सूझि न पर जहँ भूषन चाभा॥
गोपि भाँति बहु करि उपचारा। करि रहि सेव तेन्ह छल छारा॥

उनके अङ्गों से ऐसा अद्भुत तेज झर रहा था; जिसमें खोए हुए उनके आभूषणों की चमक दिखाई ही नही पड़ती थी। गोपियाँ अनेक प्रकार के साधनों किये निष्कपट भाव से उनकी सेवा कर रही थी।

एहि बिच रानिन्ह संग लगाए। सिविर द्वार राधापति आए॥
तेहिं सवँ दूरहिं तें सब नारी। अकथ महाछबि रधहिं निहारी॥

इसी बीच अपनी रानियों को साथ लिये राधावल्लभ श्रीकृष्ण राधाजी के शिविर के द्वार पर पधारे। उस समय दूर से ही राधाजी का अकथनीय महान सौन्दर्य देखकर, समस्त श्रीकृष्णपत्नियाँ

भई बिमोहित अरु मुरुछानी। सिरु थाँबेहु मुख आव न बानी॥
राध तेजरबि सनमुख पाई। रानिन्ह द्युतिसरि मनहुँ सुखाई॥

विमुग्ध होकर मूर्छित-सी हो गई। उनका मस्तिष्क स्तब्ध रह गया और उनके मुख से कोई बात नही निकलती। राधाजी के तेजरूपी सूर्य को अपने सम्मुख पाकर; उन कृष्णपत्नियों की आभारूपी नदी मानों सूख ही गई।

छबि अभिमान तेन्ह अति भारी। भयउँ तिरोहित रही निहारी॥
सबन्हि दसा अस देखि कन्हाई। लगे मनहिं मन अति मुसुकाई॥

अपने सौन्दर्य पर उन्हें जो महान अहङ्कार था, वह जाता रहा और वे उन्हें देखती ही रह गईं। उन सबकी ऐसी दशा देखकर, कन्हैया मन-ही मन अत्यन्त मुस्कुरानें लगे।

दोहा- **तेहिं सवँ प्रस्तुत देखि पिय गोपि परम हरषानि।**
जय जय करि लगि उच्च रव प्रमुदित अति पुलकानि॥५७॥

उस समय अपने प्रियतम को वहाँ उपस्थित देखकर; समस्त गोपियाँ अत्यन्त हर्षित हो उठी और महान आनन्द से अत्यंत पुलकित हुई वे उच्च श्वर से जय-जयकार करने लगी।

चौ.- **पियहिं देखि सहसा उठि राधा। पदुमोपम दृग पेमु अगाधा॥**
झरझर उभय कपोलन्हि छाई। मनहुँ लाग करि पिय अगुआई॥

प्रियतम को आया देख राधाजी सहसा उठीं; उनके कमलोपम नेत्रों में स्थित अगाध प्रेम, झरझर करता हुआ उनके कपोलों पर उमड़ आया और मानों प्रियतम की अगवानी करने लगा।

पुनि प्रमुदित मन धीरज पागी। करि परिकम पिय केर सुभागी॥
पियहिं हाथ गहि आपन पानी। भले पधारे कहि मृदु बानी॥

फिर मन में परम आनन्दित होकर, श्रीराधाजी ने धैर्यपूर्वक प्रियतम श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा की। फिर प्रियतम का हाथ अपने हाथों में लेकर 'भले पधारे' (अच्छा हुआ कि आप पधारे) इस प्रकार मधुर वाणी कहते हुए,

काचित सबनि रानि संघाता। सिबिर माँझ आनेहु सुखदाता॥
दीन्ह सुआसन दृग भरि बारी। पिय बिरहिनि एहिभाँति उचारी॥

श्रीराधाजी समस्त रानियों सहित सुखदायक भगवान को अपने शिविर के भीतर ले आई। फिर नेत्रों में जल लिये प्रियतम को उत्तम आसन देकर, प्रियविरहिणी राधाजी इस प्रकार बोली-

नाथ प्रानधन मम कस आही। तव बिनु दिनु गै बहुत बृथाही॥
किन्तु पाइ पुनि दरसन नाथा। सारथ भा मम बिरहु अनाथा॥

मेरे प्राणधन! स्वामी (आप) कैसे हैं? आपके बिना कितने ही दिन व्यर्थ बीत गए; किन्तु हे स्वामी! पुनः आपका दर्शन पाकर; मेरा यह अनाथ विरह यथोचित अर्थ पा गया।

पिय बिधुवदनु अमिअ अन्हवाई। भई तिरोहित जरनि अथाई॥
सीते नयन हृदय हरषाना। मुद भा जे जनि जाइ बखाना॥

प्रियतम के चन्द्रमुख से झरते हुए अमृत में नहाकर, मेरे हृदय की अथाह जलन दूर हो गई। नेत्र शीतल हो गए, हृदय हर्षित हो उठा और ऐसा आनन्द मिला है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

सुनि अस रसिकेस्वर बिचलाने। प्रेयसिहि हिय लाएहुँ उमगाने॥
उभय परसपर बदनु निहारी। पुलकित तनु मोचत भए बारी॥

यह सुनते ही रसिकेश्वर श्रीकृष्ण भावावेग से विचलित हो उठे और उन्होंने प्रियतमा राधाजी को उमड़कर हृदय से लगा लिया। वे दोनों एक-दूसरे के मुख को देखते हुए, पुलकित शरीर होकर अश्रु बहाने लगे।

थाह परसपर लेन बिषादा। नयन दुहुन्हँ करि लग संबादा॥
देखि चकित हरितिय मृदुबानी। सिबिर आपनेहु राधहि ल्यानी॥

एक-दूसरे के विषाद की थाह पाने के लिये; उनके नेत्र परस्पर सम्वाद करने लगे। यह देख सब रानियाँ चकित हो गई और मधुर वचन कहती हुई राधाजी को अपने शिविर में ले आई।

तहँ उन्ह सेव कीन्हि बहुभाँती। उन्ह प्रति श्रद्धा तिन्ह न कहाती॥

वहाँ उन्होंने राधाजी की बहुत सेवा की; उनके प्रति उनकी श्रद्धा कही नहीं जाती।

दोहा- **बसि तहँ कछु दिनु भाँति एहिं सारत सुकृत नहान।**
नृपति सबनि अरु गोप सब निज ठवँ कीन्ह पयान॥५८॥

इस प्रकार कुछ दिन वहाँ (कुरुक्षेत्र में) निवास करके; स्नान व सत्कर्म करते हुए समस्त राजा व गोपगण अपने-अपने स्थानों को लौट गए।

चौ.- **नृप सवँ साथ मुनिन्ह मत पाए। हरि पितु कर मख बिबिध कराए॥**
ब्रह्मग्यान उपदेसि बहोरी। उन्ह मानसहिं ग्रंथि सब छोरी॥

हे परीक्षित्! समय के साथ मुनियों की सम्मति पाकर, भगवान ने पिता वसुदेवजी के हाथों अनेक यज्ञ करवाये। फिर ब्रह्मज्ञान का उपदेश देकर, उन्होंने उनके मन का समस्त संशय हर लिया।

ब्रह्मसरूप हरिहिं जब हेरा। भा बसुद्यौ हिय ज्ञान घनेरा॥
एक बार अति पुलकित गाता। गई स्यामसुन्दर पहि माता॥

जब वसुदेवजी ने श्रीकृष्ण का ब्रह्मस्वरूप देखा; तब उनके मन में महान ज्ञान उत्पन्न हो गया। एक बार माता देवकीजी अत्यंत पुलकित हुई-सी अपने पुत्र श्यामसुन्दर के पास गई।

पुनि कह सुत सुनेउँ मैं काना। गुरुसुत मृत तुअ जिअत फिराना॥
पूरब सुत जे मोर बधाए। सबनि जतन करि देहुँ फिराए॥

फिर वे बोली- हे पुत्र! मैंने अपने कानों से सुना है कि तुम अपने गुरु के मृत पुत्र को जीवित लौटा लाये थे। अतः पूर्वकाल में मेरे जो पुत्र मारे गए हैं, उन सबको तुम यत्नपूर्वक मुझे लाकर दे दो।

जननिहिं आयसु तब सिरु लाई। हरि दए जिअत आनि सब भाई॥
कछु सवँ बसि उन्हँ जननिहिं पासा। जाइ लहेहुँ बैकुंठ निवासा॥

तब माता की आज्ञा सिरोधार्य करके, भगवान ने अपने सारे भाईयों को उन्हें जीवित लाकर सौंप दिया। तब कुछ समय तक माता देवकीजी के पास रहकर; उन कृष्णबन्धुओं ने वैकुण्ठ लोक का निवास पाया।

एहिबिधि बसत द्वारिका माहीं। जदुन्ह देइ सुख स्याम अथाहीं॥
प्रभु नित ब्रह्म मुहूरत उठहीं। गुर पितु मात धेनु पद पूजहिं॥

इस प्रकार श्यामसुन्दर द्वारिका में रहते हुए यादवों को अगाध सुख देते थे। वे प्रभु श्रीकृष्ण नित्य ही ब्रह्ममुहूर्त में उठकर गुरु, माता-पिता व गायों के चरणों का पूजन किया करते थे।

दइ सुपातरन्हि बहुबिधि दाना। तदुप करहिं तें कारज आना॥
कछु सवँ बिगत भई तइआरी। कुरु पांडउन्ह मध्य अति रारी॥

फिर सत्पात्रों को अनेक प्रकार से दान देकर, तदुपरान्त वे अन्य सब कार्य करते थे। फिर कुछ समय बीतनें के उपरान्त कौरवों व पाण्डवों में महायुद्ध की तैयारियाँ आरम्भ हो गई।

हितुन्हँ कलह जिअँ पाइ कलेसा। गए तीरथन्हि सेवन सेषा॥

स्वजनों के इस अंतर्कलह से मन-ही मन दुःखी हुए बलरामजी तीर्थयात्रा पर निकल गए।

दोहा- **पुनि नैमिषबन अए जब तीरथ करत अनेक।**
कथा सुनात रहेउ तहँ सिष्य ब्यास कर एक॥५९॥

फिर अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए जब वे 'नैमिषारण्य' नामक स्थान पर आए; तब वहाँ व्यासजी का एक शिष्य कथा सुना रहा था।

चौ.- **सौनकादि उन्ह आवत पाई। थलहिं उठे सादर हरषाई॥**
किन्तु रोमहरषनु सो चेरा। अचल रहा थल गरुअ घनेरा॥

उन्हें आते देखकर शौनकादि ऋषि हर्षित हो आदरपूर्वक अपने स्थान पर खड़े हो गए; किन्तु 'रोमहर्षण' नामक (व्यासजी का) वह शिष्य अत्यन्त अभिमानवश अपने स्थान पर अचल बैठा रहा।

देखि ब्यालपति रिसए भारी। कहन लाग कर कुसा सुधारी॥
केहिं ऐहि सठ पातर पाई। दीन्ह ब्यास गादिका चढ़ाई॥

यह देखकर (शेषावतार) बलरामजी अत्यन्त कुपित हो उठे और अपने हाथों में कुशा लेकर इस प्रकार कहने लगे- इस मूर्ख को किसनें योग्य समझकर व्यासपीठ पर चढ़ा दिया?

यह निज हृदय धरत बर ग्याना। होइ रहा आँधर अभिमाना॥
जिमि कलि बुध कहि धरम न धरहीं। तिमि आचरन मूढ़ यह करहीं॥

अपने हृदय में उत्तम ज्ञान धारण करते हुए भी, यह अहङ्कार में अन्धा हो रहा है। जैसे कलियुग के विद्वान धर्म का बखान करके भी, तदनुसार आचरण नहीं करते; यह मूर्ख भी ठीक वैसा ही कर रहा है।

तातें छमउँ न अघ एहि भारी। अस कहि तापर कुसा प्रहारी॥
जातें भयउँ तासु सिरु छेदा। देखि मुनिन्ह उर भा अति खेदा॥

इसलिये मैं इसके इस घोर अपराध को क्षमा नहीं करूँगा; ऐसा कहकर उन्होंने उस पर कुशा से प्रहार किया, जिससे उसका मस्तक कट गया; यह देख वहाँ उपस्थित मुनियों के मन में बड़ा दुःख हुआ।

दोहा- **तदुप मुनिन्ह मत प्रासचित ब्रह्मदलन बल कीन्ह।**
बहुरि रोमहरषन सुतहिं कथ बाचक पद दीन्ह॥६०॥

तदुपरान्त उन मुनियों के मतानुसार, बलरामजी ने ब्रह्म-हत्या का प्रायश्चित किया; फिर उन्होंने रोमहर्षण के स्थान पर उसके पुत्र को वक्ता का पद दे दिया।

चौ.- **पुनि मुनि कह इलबल एक दानव। इहँ कर कपितनु नित्य उपद्रव॥**
सो करि कृपा बधिअ प्रभु ताहीं। पर बिश्राम सबन्हि उर माहीं॥

फिर मुनियों ने कहा कि 'इल्वल' नामक एक दैत्य है, जो वानर-शरीर धरे, यहाँ नित्य उपद्रव किया करता है। अतः आप कृपा करके, उसका वध कर दीजिये, ताकि सबको मन में शान्ति प्राप्त हो।

तब तहँ बसत कछुक दिनु रामा। सान्ति थापि मर्दत अघधामा॥
तदुप गए कुरुखेत मँझारी। महानास लखि भए दुखारी॥

तब बलरामजी ने कुछ दिन वहाँ रहकर, पाप के धाम उस दैत्य को मारकर शान्ति स्थापित की। तदुपरान्त वे कुरुक्षेत्र को गए और वहाँ हुए महान संहार को देखकर अत्यन्त दुःखी हो उठे।

भीम तेन्ह निरखत रिस भारी। गदाजुद्ध कलि जाँघि बिदारी॥
तब कलि कह बल देखु अनीती। किए समर पांडउ गै जीती॥

भीम ने उनके देखते हुए, अत्यधिक क्रोध के वशीभूत होकर गदायुद्ध में दुर्योधन की जङ्घा तोड़ दी। तब दुर्योधन ने कहा- हे दाऊ! देखिये! अनीति करके, पाण्डवों ने इस युद्ध को जीता है।

होइ धरमधुज पँडवन्हँ केरा। लीन्ह पच्छ जुगपति इकसेरा॥

तब बल कहेउ सान्ताकारा। तुअ इहँ भा कस अस संघारा॥

धर्म के ध्वजस्वरूप होकर भी, इन योगेश्वर कृष्ण ने पाण्डवों का इकहरा पक्ष लिया है। तब बलरामजी ने कहा- हे शान्ताकार! तुम यहाँ थे, फिर ऐसा (भीषण) संहार कैसे हो गया?

दोहा- **दुसासनहिं उपटानि भुज तैं निरदयता आनि।**
पुनि अनीति करि समर अज कलिहिं जाँघि तोरानि॥६१॥

तुमनें बर्बरतापूर्वक दुःसासन की भुजा उखड़वा दी और आज पुनः युद्ध में अनीति करके, तुमनें दुर्योधन की जाँघ तुड़वा दी।

चौ.- **अबलहि अपमानत सुख पाई। जेहिं निलज्जपनु सींव लँघाई॥**
टूटत जाँघि सोउ अतिमानी। दाउ भई कस धरम गलानी॥

(तब श्रीकृष्ण ने कहा-) एक 'निर्बल नारी' का अपमान करके सुख पानेवाला जो (दुर्योधन) निर्लज्जता की सीमा तक को लाँघ गया हो; ऐसे अभिमानी की जाँघ टूटने से, हे दाऊ! कहिये! धर्म की हानि कैसे हो गई?

धरमहिं महानिरादर होई। अबलहिं चीर परा सभ जोई॥
कर सो तूल धरमउर सूला। बल उपटाइअ कस न समूला॥

'धर्म' के घोर अपमान का प्रतीक होकर, जो भरी सभा में एक अबला के वस्त्र पर पड़ा; धर्म की छाती के लिये शूलतुल्य उस हाथ को, हे दाऊ! जड़ सहित, कैसे न उखाड़ दिया जाये?

सुनि अहिपति मुख उतरु न आना। मौन कीन्ह द्वारिका पयाना॥
तदुप चंद्रबंसिन्ह सिंघासन। बैठे धरम हरिहिं अनुसासन॥

यह सुनकर दाऊ के मुख से कोई उत्तर नहीं निकल सका और वे चुप हो द्वारिका चले गए। तदुपरान्त श्रीकृष्ण का अनुशासन पाकर, धर्मराज युधिष्ठिर चन्द्रवंशियों के सिंहासन पर आरूढ़ हुए।

धरम थापि एहिबिधि महिलोका। हरि तेहिं सबबिधि कीन्हि असोका॥
बैठि राजमन्दिर एक बारा। एहिभाँति प्रभु कीन्ह बिचारा॥

इस प्रकार पृथ्वी पर धर्म की स्थापना करके, भगवान श्रीकृष्ण ने सब प्रकार से उसे शोकमुक्त कर दिया। अपने राजभवन में बैठे-बैठे एक बार उन प्रभु ने यह विचार किया कि,

महि जेहिं हित मैं नर तनु धारा। उतरि गयउ अब सो महिभारा॥
जदु परन्तु मोरे छतछाई। रहे बिभव अतिसय गरुआई॥

मैंने इस पृथ्वी पर जिस कारण से मनुष्य शरीर धरा था; पृथ्वी का वह भार अब उतर चुका है। परन्तु मेरी छत्रछाया में सुरक्षित हुए यादव; अपने वैभव पर अत्यन्त गर्वित हुए जा रहे हैं।

जे गा इन्ह मैं इहहिं बिसारी। करइ बिडम्बनि कलि इन्ह भारी॥
जदु सब मम कुटुम्बि संताना। स्वकर बधे अघ होहिं महाना॥

यदि मैं इन्हें यहीं छोड़कर चला गया तो, 'कलि' इनकी बड़ी ही विडम्बना करेगा। यद्यपि ये सब मेरे कुटुम्बी व सन्तान हैं; अपने ही हाथों इनका वध करने पर मुझे महान पाप लगेगा।

केउ मिस इन्ह गोलोक पठावौं। पाछे मैं सरीर बिसरावौं॥

अतः कोई कारण बनाकर, इन सबको गोलोक धाम में पहुँचा दूँ; तदुपरान्त मैं अपना शरीर त्यागूँगा।

दोहा- **हरि प्रेरित कछु दिनु बिगत मुनि बसिष्ठ दुरवास।**
आन मुनिन्हँ निज संग किए आए जगपति पास॥६२॥

फिर कुछ दिन बीतनें पर भगवान श्रीकृष्ण की ही प्रेरणा से महर्षि वशिष्ठ, दुर्वासा आदि मुनि अन्यान्य मुनियों को साथ लिये, जगत्पति भगवान श्रीकृष्ण के पास पधारे।

चौ.- **प्रभु उन्ह बहुबिधि करि सेवकाई। भए प्रतुष्ट सबनि मुनिराई॥**
पुनि सादर कह रमानिवासा। पुरहिं करिअ मुनि कछु दिन वासा॥

श्रीहरि ने बहुत प्रकार से उनकी सेवा की, जिससे सब मुनि परम सन्तुष्ट हो गए। फिर रमानिवास ने उनसे आदरपूर्वक कहा- आप सब मुनिगण कुछ दिन मेरे नगर में ही निवास कीजिये।

तब बिहँसत कहि लाग मुनीसा। पुर बहु बिघन भजन जगदीसा॥
थल एकान्त पिंडारक नाऊँ। पुरहि निकट सब करु तहँ ठाऊँ॥

तब वे मुनि मुस्कुराकर कहने लगे कि हे जगदीश्वर! नगर में रहते हुए भजन करने पर अनेक विघ्न उपस्थित होंगे। तब भगवान ने कहा- हे मुनिगण! इस नगर के निकट ही पिण्डारक नाम का एक एकान्त स्थान है; अतः आप सब वहीं निवास कीजिये।

परम पबित्र अहहिं सो थाना। बिघन बिगत प्रसान्त सुभखाना॥
हरषे सुनि मुनि आसिष देता। आइ गए पिंडारक खेता॥

वह स्थान परम पवित्र, विघ्नों से रहित, परम शान्तिमय और मङ्गलों की खान है। ऐसा सुनकर वे मुनिगण हर्षित हो उठे और उन्हें आशीर्वाद देते हुए पिण्डारक क्षेत्र में आ पहुँचे।

हरिहि पदाम्बुज तहँ चित लाई। करि लग तप आसन महि छाई॥
तेहिं सवँ हरिमाया कर प्रेरा। हरि कर तनय समूह घनेरा॥

वहाँ भगवान के चरणकमलों में अपना चित्त लगाकर वे मुनिगण भूमि पर आसन लगाकर तपस्या करने लगे। उसी समय श्रीकृष्ण की माया से प्रेरित कृष्णपुत्रों का घना समूह;

साम्ब प्रदुम्नादिक अगुआई। करत सिकार अवा सो ठाई॥
जटाधारि मुनि कछु तहँ देखी। भइ दुबिधा उन्ह हृदय बिसेषी॥

साम्ब, प्रद्युम्नादि की अगुआई में, शिकार करता हुआ उसी स्थान पर आ पहुँचा। वहाँ जटाधारी कुछ मुनियों को उपस्थित देखकर, उन सब राजकुमारों के मन में बड़ी दुविधा हुई।

कोउ कह अह ए मुनि गतरागा। कोउ कह निपट करहि ए स्वाँगा॥
तब प्रदुम्न कहि लग मुसुकाई। चलि परिखिअ बिबाद बिसराई॥

(उस समय उन्हें देखकर कोई कहने लगा कि,) ये विषयों से विरक्त हुए मुनि हैं, तो कोई कहने लगा कि ये सब तो केवल ढोंग कर रहे हैं। तब प्रद्युम्न ने मुस्कुराकर कहा कि परस्पर विवाद का त्याग करके, चलो और परीक्षा लेकर देख लो।

दोहा- किए मंत्र अस सबनि मिलि साम्बहिं सारि धरान।
मुख गभीर महुँ बाँधि हँसि गवनें मुनि समुहान॥६३॥

ऐसी मन्त्रणा करके, सबनें मिलकर जामवन्तीनन्दन साम्ब को साड़ी पहना दी। फिर अपनी गम्भीर मुखमुद्रा में अपनी हँसी को छिपाकर वे सब राजकुमार उन मुनियों के सन्मुख गए।

चौ.- बहुरि कहा उन्ह पद सिरु नाई। मुनि तुम्हार तप तेज अथाई॥
तुम सरबग्य सुना हम काना। तातें जुरे तोर समुहाना॥

फिर उनके चरणों में सिर नवाकर उन्होंने कहा कि हे मुनिगण! आपका तप और तेज अथाह है। हमनें अपने कानों से सुना है कि आप सर्वज्ञ हैं; इसलिये हम आपके सन्मुख एकत्र हुए हैं।

प्रभु यह नारि गरभवति अहहीं। तुम्ह तें बात पूछि एक चहहीं॥
प्रसवकाल एहि कर निअराना। कहु सुति जाइ कि सुत संताना॥

हे प्रभु! यह स्त्री गर्भवती है और आपसे एक बात पूछना चाहती है। इसके प्रसव का समय निकट आ चुका है; अतः आप बतलाईये! इसकी सन्तान पुत्री होगी अथवा पुत्र?

तब मुनिबृन्द कहा समुझाई। तुम सब तनय पौत जगराई॥
उचित न तोर मुनिन्ह सौं हासा। मुनि रिस करि सक कालहिं नासा॥

तब मुनियों ने समझाते हुए कहा- तुम सब भगवान के पुत्र-पौत्र हो; अतः मुनियों से तुम्हारा यह ठठौल उचित नहीं है; क्योंकि मुनियों का कोप स्वयं काल को भी नष्ट कर सकता है।

किन्तु उद्दंड सुना कछु नाहीं। हठि पूछा पुनि पुनि उन्ह पाहीं॥
तब दुरवास कुपित भए भारी। हरिहि मायबस लाग उचारी॥

किन्तु उन उद्दण्ड बालकों ने कुछ नहीं सुना और हठपूर्वक उनसे बार-बार यही पूछा। तब मुनि दुर्वासा अत्यन्त कुपित हो उठे और श्रीहरि की माया के वशीभूत हो इस प्रकार बोले-

दोहा- सठहुँ नारि यह जाईहिं मूसल एक अति भारि।
जे सब जदुन्हँ बिनासिहिं कछुकहि दिवस मँझारि॥६४॥

रे मूर्खों! यह स्त्री एक बड़े भारी मूशल को जन्म देगी; जो कुछ ही दिनों की अवधि में समस्त यादवों को नष्ट कर देगा।

चौ.- साप सुनत अति भीत कुमारा। तुरत साम्ब कर उदर उघारा॥
मूसल तहाँ लौहकृत भारी। पावा लखि कह सबनि दुखारी॥

श्राप सुनते-ही अत्यन्त भयभीत हुए कुमारों ने तुरन्त साम्ब के पेट से साड़ी हटाकर देखी, तो वहाँ उन्होंने लोहनिर्मित एक भीषण मूशल पाया, जिसे देख ते ही वे सब दुःखी होकर कहने लगे-

अहो अकृत का हम यह कीन्हा। हठि उपारि हिमगिरि पद लीन्हा॥

तदुप गए सब अति भय पागे। मूसल कथा कही नृप आगे॥

अहो! हम लोगों ने यह क्या अनर्थ कर डाला? हठ में हिमालय ही उखाड़कर अपने पैरों पर पटक लिया! तदुपरान्त अत्यन्त भयभीत हुए वे सब वहाँ से चले गए और मूशल का वृत्तान्त उग्रसेनजी से कह सुनाया।

बोलि लोहारन्हँ तब जदुपाला। लाग घसाइ सो बिपति बिसाला॥
एहिबिधि भयउँ मूसलहि घेंसा। केवल खंड रहा लघु सेषा॥

तब उन यदुपालक उग्रसेन ने लोहारों को बुलवाया और मूशलरूपी उस महाविपत्ति को घिसवानें लगे। इस प्रकार घिसकर मूशल चूर्ण हो गया और केवल उसका एक छोटा-सा टुकड़ा ही शेष रह गया।

तब नृप चूर सँघातहिं ताहीं। पबवारा सरितापति माहीं॥
ज्वारहिं संग सिंधुतट आई। पाछ घास भइ सोउ घसाई॥

तब राजा ने उस टुकड़े को भी चूरे के साथ ही समुद्र में फिंकवा दिया। बाद में ज्वार के साथ बहते हुए समुद्र तट पर आकर, मूशल की वह घिसावन, घास होकर उग आई।

दोहा- **लौहखंड कहँ सिंधु महुँ झख एक खाएहुँ धाइ।**
झखहिं मारि पुनि केवट गा सो भागहिं पाइ॥६५॥ (क)

समुद्र में लोहे के उस टुकड़े को दौड़कर, एक मत्स्य ने निगल लिया; फिर उस मत्स्य को एक केवट मार डाला; जिससे वह लौहखण्ड उसे मिल गया।

आखेटक तेहिं पाछ एक तेहिं केवट तें पाइ।
बिसिख फलक करि आपन सरमुख लीन्ह लगाइ॥६५॥ (ख)

इसके उपरान्त एक आखेटक ने, उस केवट से वह टुकड़ा पा लिया और उसे वाण का अग्रमुख बनाकर, अपने वाण पर लगा लिया।

चौ.- **तदुप द्वारिका कलि आराती। असकुन होन लाग बहुभाँती॥**
लखि जिन्हँ जदुन्हँ कहा भगवाना। देखिअ ए उतपात महाना॥

हे कलियुग के शत्रु परीक्षित्! तदुपरान्त द्वारिका में अनेक प्रकार के अपशकुन होने लगे; जिन्हें देखकर भगवान ने समस्त यादवों से कहा कि इन भयङ्कर उपद्रवों को देखो!

ए सब जदुन्ह अनिष्ट चताहीं। अब इहँ रहहिं अधिक हम नाहीं॥
बाल बृद्ध तिय सब एकठैहीं। संखोद्धार खेत चलि जैहीं॥

हम यादवों के लिये ये सभी अनिष्ट की सूचना दे रहे हैं; अतः अब और अधिक समय तक हम यहाँ नहीं रुकेंगे। सब बच्चे, बूढ़े और स्त्रियाँ इकट्ठे होकर; शङ्खोद्धार नामक स्थान पर चले जायँ और

पुरुष चलिअ सब खेत प्रभाषा। करिहिं तहाँ पूजन उपवासा॥
सुनि हरि मंत्र भए सब राजी। तुरत धाइ तरनी बहु साजी॥

समस्त पुरुष प्रभाषक्षेत्र को चलें; वहाँ हम सब पूजन व उपवास करेंगे। श्रीकृष्ण का निर्देश सुनकर वे सब सहमत हो गए और तुरन्त दौड़कर उन्होंने बहुत-सी नौकाएँ सजा ली।

तरि जलनिधि एहिबिधि अतुराई। खेत प्रभास गए सब आई॥
तहाँ कीन्ह सरसुति असनाना। स्वस्तिपाठ करि हिय सुखमाना॥

इस प्रकार उतावली से समुद्र पार करके, वे सब प्रभाष-क्षेत्र में आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने सरस्वती नदी में स्नान किया और स्वस्तिवाचन करके, मन-ही मन सुखी हुए।

सैन बहोरि पाइ भगवाना। देन लाग जदु बिप्रन्हँ दाना॥

फिर भगवान का सङ्केत पाकर, वे यादवगण ब्राह्मणों को दान देने लगे।

दोहा- **देवबस्य इहि मध्य जदु मद्य लाग करि पान।**
मैरेयक सो मद्य नृप बुद्धि सबन्हि भरमान॥६६॥

इसी बीच होनी के वशीभूत हुए वे यदुवंशी मदिरा का सेवन करने लगे। हे परीक्षित्! 'मैरेयक' नाम की उस मदिरा ने; उन सबकी बुद्धि को भ्रमित कर दिया।

चौ.- **तब प्रमत्त जदुपुंगव जोधा। भए बस्य अहमिति अरु क्रोधा॥**
गरजि मेघ सम पुनि परचारी। सबनि परसपर करि लग रारी॥

तब मद्य के प्रभाव से मस्ती में आ चुके वे यादव योद्धा, क्रोध व अहङ्कार के वशीभूत हो गये और मेघ के समान गर्जना करते हुए, ललकार कर आपस में ही युद्ध करने लगे।

सब दिसि असि तोमर धनुबाना। चलहिं भल्ल अरु गदा महाना॥
भायप पेमु किए परित्यागा। जूझि जलधितट जदुकुल लागा॥

वहाँ सभी ओर से खड्ग, तोमर, धनुष-बाण, भाले और भीषण गदाएँ चलनें लगी। इस प्रकार भाइपनें व प्रेम को सर्वथा त्यागकर, सम्पूर्ण यदुकुल समुद्र के तट पर ही युद्ध करने लगा।

कछु सवँ भै सब आयुध खंडा। तब सो जादव भट्ट प्रचंडा॥
तट तें ऐरक घाँस उपारी। एक दूसरेन्हि लाग बिदारी॥

कुछ ही समय में उनके सारे शस्त्र टूटकर नष्ट हो गए; तब वे प्रचण्ड योद्धा, तट पर से 'ऐरक' नाम की घास उखाड़-उखाड़कर, उसी से एक-दूसरे को विदीर्ण करने लगे।

नरपति परसतही पचसाखा। होति बज्र सम दृढ़ गतसाखा॥
एहिबिधि जूझत ताहिं बिलोकी। लाग प्रबोधि दाउ हरि रोकी॥

हे परीक्षित्! उनके हाथों का स्पर्श पाते ही, वह वनस्पति (घाँस) वज्र के समान अत्यन्त कठोर हो जाती थी। उन्हें इस प्रकार झगड़ते देखकर, जब दाऊ व श्रीकृष्ण समझाकर उन्हें रोकने लगे,

तब धीगत सो जदु उदभट्टा। उन्हहिं हतन धाए करि ठट्टा॥
अस बिलोकि बिलगे दुहुँ बीरा। बल बैठे तट सोक गभीरा॥

तब बुद्धि गवाँ चुके वे उद्भट् यादव समूह बनाकर, उल्टा उन्हें ही मारनें के लिये दौड़े। यह देखकर उन दोनों भाईयों ने स्वयं को वहाँ से अलग कर लिया। गहरे शोक से व्याकुल हो रहे बलदाऊ (उस समय) समुद्रतट पर बैठ गए।

तदुप चित्त करि हरि पदकंजा। तनु तजि गै निज ठव बलपुंजा॥
सापबस्य इत जदुकुल भारी। बिनसेहुँ करत परसपर रारी॥

तदुपरान्त श्रीहरि के चरणकमलों को चित्त में धरकर, बल के वे पुञ्ज अपने लोक (पाताल) को चले गए। इधर विशाल यदुवंश भी श्राप के प्रभाव से आपस में युद्ध करते हुए नष्ट हो गया।

देखि जगतपति हृदय बिचारा। अब गरि गयउ सकल महिभारा॥

यह देखकर जगत्पति भगवान ने मन में विचार किया कि अब पृथ्वी का सम्पूर्ण भार उतर चुका है,

छन्द- **महिभार सब गरि गयउ अब कलि आव सबबिधि दुर्मती।**
स्वारथ निरत संतत मनुज अघ करिहिं पावहिं अवनती॥
अस जानि जिअँ निरबाधगति जगनाथ बृन्दाबन गए।
पुनि नंद जसुदहिं राध आदिक गोपि सँग बोधत भए॥

पृथ्वी का सम्पूर्ण भार उतर चुका है और अब आगे चलकर सब प्रकार से खोटी बुद्धिवाला कलियुग आयेगा; जिसमें निरन्तर स्वार्थप्रवृत्त रहकर पाप करता हुआ मनुष्य, पतन को प्राप्त हुआ करेगा। अपने जी में ऐसा जानकर निर्बाधगति भगवान जगन्नाथ वृन्दावन को गए। वहाँ राधा आदि गोपियों के साथ नन्दरायजी व यशोदाजी को ज्ञान का उपदेश करने लगे।

सो.- **दिब्य बिमान चढ़ाइ पुनि उन्ह सँग ब्रजबासिन्ह।**
गोपुर दीन्ह पठाइ हरषि हृदय भवहरन हरि॥६७॥

फिर उन भवहर्ता श्रीहरि ने हर्षित होकर, अन्य सब व्रजवासियों के साथ, उन सबको अपने दिव्य विमान में बैठाकर, गोलोक-धाम को भेज दिया।

चौ.- **तदुप पबित्रकीति भगवाना। आए जलधिहिं सोउ मुहाना॥**
पीपर देखि निकट तहँ एका। तासु छाह बैठे करि टेका॥

तदुपरान्त पवित्रकीर्ति भगवान श्रीकृष्ण समुद्र के उसी तट पर आ पहुँचे और वहाँ निकट ही पीपल का एक वृक्ष देखकर, उसकी छाया में (उसके तने से) पीठ टिकाकर बैठ गए।

एतनहुँ ब्याध सोउ तहँ आवा। मूसरांग जिहि सरमुख छावा॥
नृप सो तहँ करि रहा सिकारा। हरि पदतल जब तेहिं निहारा॥

इतनें में वह व्याध वहाँ आ पहुँचा, जिसनें मूशल के बचे हुए टुकड़े को अपने बाण के मुख पर लगाया था। हे राजन! वह व्याध वहाँ शिकार कर रहा था और जब उसनें भगवान का चरणतल देखा,

भ्रमबस तिन्ह कुरंगमुख जाना। तेहिं पिनाक सोउ सर संधाना॥
तानि पनच पुनि श्रवन प्रजंता। भेदि दीन्ह पदतल भगवंता॥

तो भ्रमवश उसे हिरण का मुख समझकर, उसनें अपने धनुष पर वही बाण चढ़ाया। फिर प्रत्यञ्चा को कानों तक खींचकर, उस बाण से उसने भगवान का चरणतल भेद दिया।

तदुप धाइ खल तरु तर गयऊ। प्रभुहिं पाइ अति बिसमित भयऊ॥
पुनि बिचारि आपन अपराधा। उपजेहुँ भय तिन्ह हृदय अगाधा॥

तदुपरान्त वह दुष्ट दौड़कर वृक्ष के नीचे गया और वहाँ भगवान को उपस्थित देख अत्यन्त चकित हुआ। अपने अपराध का विचार करके, उसके हृदय में अगाध भय उत्पन्न हो गया।

तब जगपति तिन्हँ धीर बँधाई। पठवा सरग बिमान चढ़ाई॥
हरिहिं चलन सवँ निकट निहारा। प्रगटेहुँ नभ सुरबृन्द अपारा॥

तब भगवान ने उसे धैर्य बँधाया और विमान में बैठाकर स्वर्गलोक भेज दिया। इधर भगवान के प्रस्थान का समय निकट जानकर, आकाश में देवताओं का अपार समूह प्रकट हो गया।

दोहा- **सिव ब्रह्मादिक संग जुरे रिसि मुनि तेज महान।**
दिसिप लोकपति प्रजापति आए बैठि बिमान॥६८॥

शिवजी व ब्रह्माजी के साथ अनेक महान तेजस्वि मुनिगण भी वहाँ आ पहुँचे और प्रजापति, दिक्पाल व लोकपाल भी अपने-अपने विमानों में बैठकर वहाँ उपस्थित हुए।

चौ.- **बिद्याधर चारन अहि जच्छा। प्रगटे हिय हरि दरसन इच्छा॥**
इहइ पृहा हिय आपन लाए। गरुड़लोक कर खग बहु आए॥

विद्याधर, चारण, सर्प और यक्ष भी भगवान के दर्शनों की इच्छा से वहाँ प्रकट हुए। इसी इच्छा को अपने हृदय में लिये, गरुड़लोक के अनेक पक्षि भी वहाँ उपस्थित हुए।

गगन सघन भा अमित बिमाना। सब दरसन लहिं लग भगवाना॥
नृपति कमलदृग पलिकन्हि ढारी। अधर दलन्हि मृदु हास पसारी॥

आकाश अनेक विमानों से भर गया और सब कोई भगवान का दर्शन पाने लगे। हे परीक्षित्! अपने कमलसदृश नेत्रों की पलके बन्द किये, अधर दलों पर कोमल हास्य का विस्तार करके,

आतम चिंतन करत गभीरा। स्याम चतुर्भुज धरेउँ सरीरा॥
देखि अनिरबच भरे अनंदा। सुमन बरिसि लागे मुनिबृन्दा॥

आत्मचिन्तन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने चतुर्भुज स्वरूप धारण कर लिया। यह देखकर अनिर्वचनीय आनन्द से भरे हुए मुनिगण पुष्पवर्षा करने लगे।

किन्नर हरिहिं सुजसु कर गाना। नर्ति रही अपछरा महाना॥
महि तें नभ लौ जयधुनि छाई। लोकप दुंदुभि लाग बजाई॥

किन्नर भगवान का सुन्दर यश गा रहे थे व अप्सराएँ अत्यन्त सुन्दर नृत्य कर रही थी। पृथ्वी से लेकर आकाश तक जय-जयकार की ध्वनि भर गई और लोकपाल दुन्दुभी बजाने लगे।

छन्द- **बजि लागि दुंदुभि इन्द्र आदिक लोकपालन्हि धुनि महा।**
देवर्षि नारद सम्भु अज मृदु बानि बर हरि जसु कहा॥
देखत सबन्हि ससरीर जगपति तदुप गै पुर आपने।
अवलोकि अस उन्ह सुजसु गावत सबन्हि निज निज पुर तने॥

इन्द्र आदि लोकपालों की दुन्दुभियाँ महान ध्वनि से बजनें लगी और देवर्षि नारद, शिवजी व ब्रह्माजी ने कोमल वाणी से उन भगवान का सुन्दर यश गाया। तदुपरान्त सबके देखते हुए ही शरीर सहित भगवान श्रीकृष्ण अपने लोक को चले गए। यह देखकर उनके सुन्दर यश का गान करते हुए वहाँ उपस्थित सब कोई (वहाँ से जाकर) अपने-अपने लोकों में स्थित हो गये।

दोहा- **हरिहिं स्वधाम गमन कइ कथ यह सब सुखखान।**
सुमन गाव सुन जेइ एहि पावहिं सान्ति महान॥६९॥

भगवान श्रीकृष्ण के स्वधामगमन की यह कथा, समस्त सुखों की खान है। जो मनुष्य प्रसन्नमन से इसे गाता व सुनता है, वह महान शान्ति प्राप्त करता है।

चौ.- **नरपति ऐहि पवित्र पुरानहिं। पुनि पुनि सब जघ कथ भगवानहिं॥**
हरि पबित्र कथ जलधि अपारा। सेष सइत नहिं लहिं सक पारा॥

हे परीक्षित्! इस पवित्र पुराण में सब जगह, बार-बार भगवान श्रीहरि का ही कथन है। श्रीहरि की पवित्र कथा अपार समुद्र है; जिसका पार स्वयं शेषजी व सरस्वतीजी भी नहीं पा सकते।

मम बानिहिं रहि समरथ जेती। अवधि माँझ मैं कहि कथ तेती॥
बरनि कथा मैं भूपन्हँ जेई। मम मम महिहिं कहत रहे तेई॥

मेरी वाणी में जितनी क्षमता थी, इन सात दिनों में, मैंने भगवान की, उतनी ही कथा, आपसे कह सुनाई। मैंने जिन-जिन राजाओं का चरित्र कहा है; वे सब इस पृथ्वी को मेरी-मेरी कहते रहे,

किन्तु काल जब अवसर पावा। गहिं गहिं सब कहँ धूरि मिलावा॥
एहिं तनुहिं भल कह कोउँ भूपा। तदपि परहिं यह मीचुहिं कूपा॥

किन्तु जैसे ही काल ने अवसर पाया, पकड़-पकड़कर उन सबको धूल में मिला दिया। इस शरीर को भले ही कोई राजा कह ले, किन्तु फिर भी यह मृत्यु ही के कुएँ में गिरता है।

काल कुठार जेहिं जेहिं लागी। गै सब इहहिं राज तनु त्यागी॥
कीन्हें भल उन्ह अकथ बिलासा। सेष कथा अब उन्ह इतिहासा॥

काल की कुल्हाड़ी जिस-जिसको भी लगी; वे सभी राजपाट और शरीर यहीं छोड़ गए। भले ही उन्होंने अकथनीय भोगविलाश किये हों; किन्तु अब इतिहास में उनकी कथा ही शेष रह गई।

किएहुँ होत जे उन्ह हरि भजना। अजसु पावते एहिबिधि अज ना॥

यदि उन्होंने श्रीहरि का भजन किया होता, तो वे आज इस प्रकार अपयश के भागी न होते।

दोहा- **तदपि भजेहुँ जेहिं प्रभुहिं पद अमर सुजसु अह तासु।**
काल बिनासेहुँ बपुष उन्ह भा न नाउँ उन्ह नासु॥७०॥

फिर भी जिन्होंने भगवान के चरणों का भजन किया है; उन राजाओं की कीर्ति अमर है। काल ने उनके शरीरों को तो नष्ट कर दिया; किन्तु फिर भी उनका नाम नहीं मिटा।

चौ.- **तातें तुअपि अमर नरराऊ। बिनसि न सक तोहिं काल कुठाऊ॥**
मीचु होइ मम यह अबिबेकू। तजि चित प्रभुपद पंकज टेकू॥

इसलिये हे राजन! तुम भी अमर हो और काल की कुठार तुम्हें नष्ट नहीं कर सकती। "मेरी मृत्यु हो जायेगी", अब इस अविवेक को त्यागकर तुम उन भगवान के चरणकमलों में अपना चित्त लगाओ।

तनु उपजहिं जीअहिं मिटि जाई। पै आतम सास्वत नरराई॥
तातें आतम कहँ तुम आपन। परमातमहिं देहुँ रह ताप न॥

हे परीक्षित्! शरीर उत्पन्न होकर, जीता है और मिट जाता है; किन्तु आत्मा अनश्वर होती है। इसलिये तुम अपनी आत्मा को, उन परमात्मा को समर्पित कर दो, जिससे की तुम्हें कोई कष्ट न रह जायँ।

बुद्धि बिसुद्ध आपनि भुआला। फेरि बिकारन्हँ तें एहिंकाला॥
उतरि देखु आतम गहनाई। मिलिहिं दरस प्रभु कर सुखदाई॥

हे राजन! तुम अपनी विशुद्ध-बुद्धि को इसी समय विकारों की ओर से विमुख कर लो और अपनी आत्मा की गहराई में उतरकर देखो! तुम्हें वहाँ भगवान श्रीहरि के सुखदायक दर्शन प्राप्त होंगे।

पुनि जब गहन होइ तव ध्याना। लगहिं तोहिं तुअहीं भगवाना॥
तब तोहिं रहब मीचु भय नाहीं। मिलिहिं सान्ति हिय अखय अथाहीं॥

फिर जब तुम्हारा ध्यान प्रगाढ़ हो जायेगा, तब तुम्हें लगनें लगेगा कि तुम स्वयं ही भगवान हो। तब तुम्हें मृत्यु का भय नहीं रहेगा और हृदय में तुम्हें अक्षय व अथाह शान्ति प्राप्त होगी।

तच्छक केरि बातही काहीं। कालहि तोहि न सकहि नसाहीं॥
तातें ध्यान करहु मनु ऐहीं। सब समरथ परमातम मैंहीं॥

फिर तक्षक की तो बात ही क्या; स्वयं काल भी तुम्हें नष्ट नहीं कर सकेगा। इसलिये तुम अपने मन में यही ध्यान करो कि मैं ही सर्वसमर्थ परमात्मा हूँ।

दोहा- मैंहि मूल सब जगत कर मैंहि मायपति ब्रह्म।
होइ जाब तब ब्रह्म तुअ परसि न सक तोहिं जम्म॥७१॥

मैं ही इस सम्पूर्ण जगत का मूल (कारण) और मैं ही मायापति परब्रह्म हूँ; तब तुम स्वयं ही ब्रह्मस्वरूप हो जाओगे और फिर यम तुम्हारा स्पर्श भी नहीं कर सकेंगे।

चौ.- सुनि अस बचन नीक मुनि केरा। भूप लहेहुँ आनंद घनेरा॥
सुनेहुँ सचित उन्ह सब उपदेसा। हृदय रहा भय तनक न सेषा॥

शुकदेवजी के ऐसे हितकारी वचन सुनकर महाराज परीक्षित् को अत्यन्त आनन्द हुआ। उन्होंने उनका समस्त उपदेश, चित्तपूर्वक सुना था, जिससे उनके हृदय में मृत्यु का तनिक भी भय न रहा।

नयनपोर श्रद्धाकन बाँधी। चित बिकारगत हरिपद साधी॥
सरके मुनि पदकंज समीपा। बिनवत कह कर जोरि महीपा॥

अपने नेत्रों की पलकों पर श्रद्धारूपी अश्रुबूँदों को रोके हुए; अपने विकारमुक्त चित्त को श्रीहरि के चरणों में लगाकर, वे पृथ्वीपति परीक्षित मुनि के चरणकमलों के समीप सरके और विनयपूर्वक हाथ जोड़कर बोले-

प्रभु तुम करुनानिधि सुखखाना। छाहिं कीन्हि सिरु मोर महाना॥
अकल अखंड अनादि अनंता। नित्य एकरस श्रीभगवंता॥

हे प्रभु! आप करुणा के सागर और सुख की खान हैं; आप ने (हरिकथा सुनाकर) मेरे शीश पर महान छाया कर दी। भगवान श्रीमन्नारायण सदैव सम रहनेंवाले, कलाओं से रहित, अखण्ड, अनादि और अनन्त हैं।

मोर समुख जे अमल अनूपा। बरनेहुँ तुम बर चरित सरूपा॥
सुनि तिहि मोर मनहिं अग्याना। मुनिवर सबनि भाँति बिनसाना॥

हे मुनिराज! भगवान के जिस निर्मल व अनुपम स्वरूप और चरित्रों का, आपनें मेरे सन्मुख वर्णन किया है; उसे सुनकर मेरे मन का अज्ञान सब प्रकार से मिट चुका है।

अब मोहि कवन मीचु भय नाहीं। प्रभुपद तुम मोहि दीन्ह जुड़ाहीं॥
अब मैं अभय सुआसिस देऊ। आतम निज प्रभुमय करि लेऊ॥

अब मुझे किसी मृत्यु का भय नहीं रहा; क्योंकि आपनें मुझे भगवान के चरणों से जोड़ दिया है। अब मैं निर्भय हूँ; आप मुझे उत्तम आशीर्वाद दीजिये; ताकि मैं अपनी आत्मा को उन प्रभु में स्थित कर लूँ।

अस कहि श्रद्धा सहित भुआला। पूजे मुनि पदकँज तेहिं काला॥
मुनि श्रोतन्हँ समाज बिच जाई। पूजन सबन्हँ कीन्हँ सिरु नाई॥

ऐसा कहकर राजा परीक्षित् ने उसी समय श्रद्धासहित शुकदेवजी के चरणकमलों का पूजन किया। फिर श्रोताओं के समूह के मध्य जाकर, उन्होंने सिर नवाकर उन सबका भी पूजन किया।

लखि सुक सबनि मुनिन्हँ संघाता। लहेहुँ ब्रह्ममुद पुलकित गाता॥
हरषि बहुरि उन्ह सबन्हँ समेता। गै मुनि नृप कहँ आसिस देता॥

यह देखकर सब मुनियों के साथ शुकदेवजी शरीर से पुलकित होकर ब्रह्मानंद में डूब गये। फिर उन सबके साथ राजा परीक्षित् को आशीश देते हुए, वे हर्षपूर्वक (स्वलोक) चले गए।

दोहा- **भइ कथ पूरन मंगला सुक मुनिगनन्हि सँघात।**
गए धाम आपन हरषि तन आतम पुलकात॥७२॥

भगवान श्रीहरि की मङ्गलमय कथा का समापन हो गया; तब श्रीशुकदेवजी समस्त मुनिगणों के साथ मन व आत्मा से पुलकित होते हुए, आनन्दपूर्वक अपने धाम को पधार गए।

चौ.- **तदुप राय दुहुँ पलकन्हि ढारी। भगवत्ता हरि केर बिचारी॥**
तनु धनु स्वजन राज अनुरागा। सहित बिकार मनहिं करि त्यागा॥

तदुपरान्त राजा परीक्षित् ने दोनों पलकें बन्द कर ली और श्रीहरि की भगवत्ता का चिन्तन करते हुए, वे शरीर, धन, स्वजनों व राज्य की आसक्ति के साथ ही, मन के समस्त विकारों को त्यागकर,

पदमासन गंगहि सुचि तीरा। करन लाग हरि ध्यान गभीरा॥
रहि न तेहि सवँ तनु सुधि ताहीं। भै पाहन चल स्वासउ नाहीं॥

गङ्गाजी के पावन तट पर पद्मासन लगाए, भगवान का सघन ध्यान करनें लगे। उस समय वे पत्थर जैसे जड़ हो गए; न तो उन्हें शरीर की सुध रही और न ही उनका श्वास चलता था।
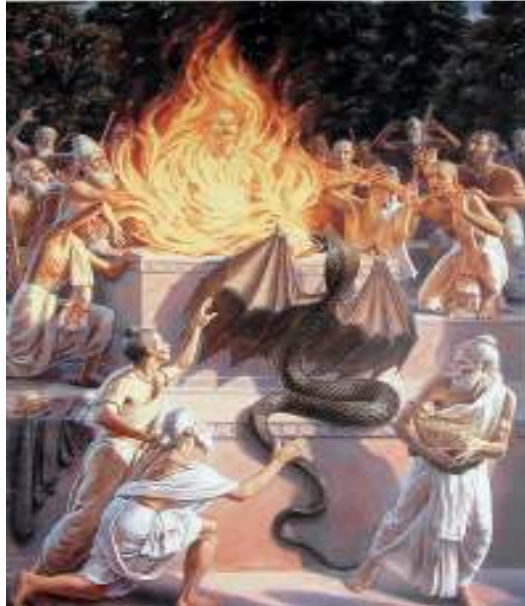
ध्यान करत कछु छिन एहिभाँती। भए ब्रह्ममय कलि आराती॥
तच्छक तदुप साप अनुहारा। लागेहु तनु उन्ह देखत जारा॥

इस प्रकार कुछ क्षण ध्यान करने पर कलियुग के शत्रु महाराज परीक्षित् ब्रह्म में स्थित हो गए। तदुपरान्त शाप के अनुसार तक्षक नाग ने उन्हें डँसकर; देखते-ही देखते उनके शरीर को भस्म कर दिया।

नभ अरु गगन माँझ सब आसा। हाय हाय धुनि भई निरासा॥
असुर बिबुध अरु नर सब काहूँ। नृप गति अचरज भयउ अगाहू॥

आकाश और पृथ्वी पर सब ओर निराशा के कारण हाय-हाय की ध्वनि मच गई। असुर, देवता और मनुष्य सब किसी को परीक्षित् की इस परमगति पर महान आश्चर्य हुआ।

साधु साधु एहिभाँति उचारी। बिबुध दुंदुभि बजाई भारी॥
गाइ अपछरा मंगलगाना। सुमन बरिसि लागी सो थाना॥

देवताओं ने साधु, साधु इस प्रकार कहते हुए सघन ध्वनि से अपनी दुन्दुभियाँ बजाई। अप्सराएँ मङ्गलगीत गाकर, उस स्थान पर (जहाँ परीक्षित् बैठे हुए थे,) पुष्पवर्षा करनें लगी।

हरिहिं चरित अह अकथ अथाहीं। एहि कहन अवसिकता नाहीं॥
मानउँ हृदय बात मैं याहीं। नर तनु बार बार मिल नाहीं॥

भगवान श्रीहरि का चरित्र अकथनीय और अथाह है; इस बात को कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं मन में इस बात को स्वीकार हूँ कि यह मनुष्य शरीर बार-बार नहीं मिलता।

पुनि जे मिल त भरोष न ऐही। तात मात अस हरि पुनि देहीं॥
जिन्हँ आसीस केर छतछाई। हरि मम कर यह कथा लिखाई॥

और जो यदि मिले भी तो इस बात का कोई भरोषा नहीं कि ऐसे माता-पिता भगवान पुनः दे दें; जिनके आशीर्वाद की छत्रछाया में भगवान श्रीहरि ने मुझसे यह कथा लिखवाई।

तातें मैं रचना यह पावन। तात मात पितरन्हँ करुँ अरपन॥
बुधि बिपुलाइ नाहिं गुर जैसी। रहि समरथ रचि बीतेउँ तैसी॥

इसलिये यह पवित्र रचना मैं अपने माता-पिता और पितृदेवताओं को समर्पित करता हूँ। मेरे पास अपने गुरु (तुलसीदासजी) जैसी महान बौद्धिक क्षमता नहीं है; किन्तु जैसी सामर्थ्य मुझमें थी, वैसी मैंनें रच दी।

छन्द- **रचि दीन्ह मैं कथ तैसि मोरिउ बुद्धि रहि समरथ जथा।**
बिस्वास पुनि मोहि अहहि हरिजन आदरिहि लखि हरिकथा॥
परिछित सुकहि सम्बाद यह सुखखान हरिजन सम्पदा।
एहि पाइ प्रमुदित धनिक अनुभव करिहि निज कहँ ते सदा॥

मेरी बुद्धि की जैसी सामर्थ्य थी, इस कथा को मैं वैसी ही रच चुका हूँ और मुझे विश्वास है कि इसे भगवान श्रीहरि की कथा जानकर, हरिभक्त इसका आदर करेंगे। महामुनि शुकदेवजी व महाराज परीक्षित् का यह सम्वाद, सुखों की खान व हरिभक्तों की सम्पदा है। इसे पाकर वे सदैव ही स्वयं को कुबेर के समान धनसम्पन्न अनुभव करेंगे।

दोहा- **पाँच मास दुइ सम्बत अवधि पंचदस वार।**
बिगत आज लिखि बीतेउँ यह हरि चरित अपार॥७३॥ (क)

दो वर्ष, पाँच माह और पन्द्रह दिन की अवधि बीतने के उपरान्त आज मैं इस अपार हरिकथा को लिखकर पूर्ण कर चुका हूँ।

सब बिकारजुत हौं प्रकृत जब न बढ़ौं हरि आस।
बढ़ि तब मम दिसि आपु हरि मम हरि लेहिं निरास॥७३॥ (ख)

समस्त विकारों से युक्त मैं साधारण मनुष्य जब भगवान की ओर न बढ़ूँ; तब वे भगवान स्वयं ही मेरी ओर बढ़कर मेरी निराशा का हरण कर लें।

सब मंगल सब सुखनि कर यह हरि कथ आगार।
एहि सप्रेम जे कहहि सुन हरि उन्ह कर उद्धार॥७३॥ (ग)

भगवान श्रीहरि का यह चरित्र समस्त मङ्गलों व समस्त सुखों का धाम है; इसे जो भी व्यक्ति प्रेमसहित कहे व सुने, वे परमेश्वर श्रीहरि उनका उद्धार करे।

मासपारायण तीसवाँ विश्राम

श्रीमद्‌भागवतजी की आरती (श्रीमद्गीताप्रेस के सौजन्य से)

आरति अति पावन पुरान की। धरम भगति विज्ञान खान की॥

महापुरान भागवत निरमल। शुकमुखविगलितनिगमकल्पफल॥
परमानंद सुधा रसमय कल। लीला रति रस रस निधान की॥

आरति अति पावन पुरान की। धरम भगति विज्ञान खान की॥

कलिमलमथनित्रितापनिवाभरनि। जन्ममृत्यमय भवभय हारिनि॥
सेवत सतत सकल सुखकाभरनि। सुमहौषधि हभरचभरत गान की॥

आरति अति पावन पुरान की। धरम भगति विज्ञान खान की॥

विषय विलास विमोह विनासिनि। विमल विराग विवेक विकासिनि॥
भगवत्तत्व रहस्य प्रकासिनि। परम ज्योति परमात्मज्ञान की॥

आरति अति पावन पुरान की। धरम भगति विज्ञान खान की॥

परमहंस मुनि मन उल्लासिनि। रसिकहृदयरसरासविलासिनि॥
भुक्ति मुक्ति रतिप्रेम सुदासिनि। कथा अकिंचनप्रिय सुजान की॥

आरति अति पावन पुरान की। धरम भगति विज्ञान खान की॥

रामेश्वर पाटीदार– एक परिचय

1- सामान्य परिचय और पारीवारिक पृष्ठभूमि- भगवान श्रीकृष्ण के पवित्र चरित्रों को काव्यबद्ध करनेवाले महाकवि रामेश्वर पाटीदार का जन्म 19 जुलाई 1987 को मध्यप्रदेश के जिला व तहसील खरगोन के एक छोटे-से गाँव रजूर में एक कृषक परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री लखनलाल पाटीदार और माता का नाम श्रीमति झनुकाबाई है। रामेश्वर पाटीदार के एक छोटे भाई भी हैं, जिनका नाम रामकरण पाटीदार है।

2- शिक्षा- रामेश्वर पाटीदार ने शिक्षा सत्र 2002 में 10वीं उतीर्ण करके, जीवविज्ञान विषय से 11वीं में प्रवेश लिया। प्रथम श्रेणी से 11वीं उत्तीर्ण करने के उपरान्त, कुछ परिस्थितियों से उत्पन्न मानसिक वेदना के कारण 12वीं में परीक्षा से कुछ समय पूर्व शाला त्याग दी। इसके पश्चात् वे कभी विद्यालय नहीं गये, किन्तु आज भी स्वाध्याय के रूप में वे निरन्तर ज्ञान-साधना में संलग्न हैं।

3- व्यवसाय- रामेश्वर पाटीदार के पिता एक सामान्य किसान हैं, जिनके पास 2 बीघा कृषि भूमि है। वे अपने परिवार के साथ कृषि और मजदूरी करके अपना निर्वाह करते हैं।

4- श्रीकृष्णचरितमानस की रचना यात्रा- रामेश्वर पाटीदार के गाँव में भगवान श्रीराम का एक मंदिर है, जिसमें प्रतिवर्ष श्रावण माह में श्रीरामचरितमानस का पारायण होता है। उस पारायण में वे अपने पिता के साथ तब से सम्मिलित होने लगे, जब उनकी आयु मात्र 3 वर्ष थी। श्रीरामचरितमानस के संगीतबद्ध गायन ने उन्हें अत्यधिक आकर्षित किया और उन्होंने 3 ही वर्ष की आयु में शाला में प्रवेश ले लिया। यद्यपि उन दिनों शिक्षकों ने उन्हें कम आयु के कारण प्रवेश देने से मना कर दिया था, किन्तु उनके पिता के विशेषाग्रह पर उन्हें प्रवेश मिल गया। साथ ही उनकी माता ने उन्हें घर पर भी पढ़ाया। इस प्रकार अपनी माँ के आशीर्वाद, सतत स्वाध्याय और रामचरितमानस के प्रति विशेष लगाव के कारण वे वर्ष भर में साक्षर हो गये। तब से वे प्रतिवर्ष श्रीरामचरितमानस के पारायण में सम्मिलित होनें लगे। इस बीच वे गाँव में होनेवाले प्रत्येक भगवतोत्सवों में भी श्रोता के रूप में भाग लेते थे। मित्रों के साथ श्रीरामचरितमानस का पारायण करते समय उन्हें बार-बार यह प्रेरणा होती थी कि जिस प्रकार भगवान श्रीराम के चरित्रों को वे अपने मित्रों के साथ बैठकर पारायण के रूप में गाते हैं, वैसे ही भगवान श्रीकृष्ण के चरित्रों को भी मित्रों के साथ सामुहिक रूप से पारायण के रूप में गाया जाय। किन्तु उस समय उन्हें ऐसा कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं हुआ। अंततः परमात्मा की इच्छा और भगवत्कृपा से प्रेरित हो, तुलसीदासजी को अपना गुरू मानकर 16 जनवरी 2004 को उन्होंने स्वयं ही ऐसे ग्रंथ की रचना आरम्भ कर दी। इस महाकाव्य के लिये उन्होंने गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित श्रीकृष्ण-विषयक (श्रीमद्भागवत

महापुराण, गर्ग-संहिता, हरिवंश पुराण, देवी-भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण, सूर-पदावलियाँ आदि) साहित्य का गहन अध्ययन किया। दिन में खेती-मजदूरी और रात्रिकाल में मानस-रचना; इस दिनचर्या के साथ, उनका यह प्रयास 31 जुलाई 2007 को 2 वर्ष, 5 माह 15 दिन की समयावधि में श्रीकृष्णचरितमानस के रूप में पूर्ण हुआ। श्रीकृष्णचरितमानस की उनकी अब तक की यह रचना-यात्रा अत्यधिक संघर्षमयी रही। किन्तु इस सम्बन्ध में उनका कहना यह है कि "जिस सर्वशक्तिमान परमात्मा ने इस ग्रंथ को मुझे माध्यम बनाकर इस संसार में प्रकट किया है, वे स्वयं ही इस संसार में इसे स्थापित भी करेंगे। . . . .

डा. अशोक चौरे

रचयिता का सम्पर्क सूत्र एवं पता-
रामेश्वर पाटीदार
आत्मज- श्री लखनलाल पाटीदार
ग्राम- रजूर, पोस्ट- सिनगुन, जिला व तहसील- खरगोन
मध्यप्रदेश 451 001 (मोब. 08518099418)

मेरे परम पूज्य मातापिता

श्री लखनलालजी पाटीदार एवं श्रीमति झनुकाबाई पाटीदार

निर्दलीय | आज | एफ ३४/१ दक्षिण तात्या टोपे नगर, भोपाल www.nirdaliya.com १६ से २२ नवंबर २०१४

निर्दलीय

साहित्य समीक्षा

संग्रहणीय ग्रंथ है श्री कृष्णचरित मानस महाकाव्य

हरि जोशी

श्री रामेश्वर पाटीदार ने कृष्णचरित मानस महाकाव्य लिखकर अनेक लोगों में संवेदना जगाने और धार्मिक भावना का समावेश करने का सदप्रयास किया है। यह एक स्तुत्य कर्म है। कहा गया है कि किसी भी देवता को नमस्कार किया जाए वह एक ही भगवान द्वारा ग्राह्य होता है। सर्व देवो नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति। भगवान के प्रति आस्था ही भारत देश की संस्कृति का मूल मंत्र है जो भीतर से व्यक्ति को श्रेष्ठ मनुष्य और अनुशासित बनाती है।

आज के अर्थप्रधान युग में धर्मप्रधान ग्रंथ की रचना स्वयमेव साहसिक एवं आश्चर्य से भरी घटना है। अंतस्फूर्त शुद्ध अंतः करण से श्री रामेश्वर पाटीदार ने कृष्ण जी पर लिखकर कृष्णकथा का पुनर्लेखन किया है। चौपाईयाँ, दोहे, सोरठा व छंद सभी मात्रा दोषों से मुक्त हैं, यह अच्छी बात है। इस महाकाव्य में आठ काण्ड हैं, जिनमें बालकाण्ड, गोवर्धनकाण्ड, माधुर्यकाण्ड, मथुरा काण्ड, वियोग काण्ड, द्वारिका काण्ड, दिग्विजय काण्ड एवं उत्तरकाण्ड है। समस्त काण्डों में उनकी बाल लीलाओं से लेकर उनके गोलोक गमन तक की कथा विस्तार से समझाई गई है। किशोरावस्था की लीलाएँ, गोवर्धन पर्वत उठाना, रासलीला आदि का दिग्दर्शन कराते हुए मथुरा कांड में कंस वध है तो गोपियों का विरह भी है। बाद में बाणासुर वध तथा सोलह हजार एक सौ रानियों से विवाह का वर्णन भी अच्छा बन पड़ा है।

कुछ पंक्तियाँ सार्वकालिक लिखी गई हैं जो अनेक ग्रंथों में भिन्न भिन्न तरीकों से कही गई हैं। एक जगह वह लिखते हैं -

काल कुठार जेहिजहि लागी
गै सब इहहिं राज तनु त्यागी।
कीन्हे भलि उन्ह
अकथ विलासा
शेष कथा अब उन्ह इतिहासा।

यही बात उर्दू में कही गई है -

जिनके महलों में हजारों
रंग के फानूस थे,
झाड़ उनकी कब्र पर है
और निशां कोई नहीं।

कृष्णजी ने धनुष को देखकर उसके पास जाकर सहज रूप से उठाया और तोड़ दिया। रामायण में भी परशुराम जी धनुष टूटने पर क्रोध करते हैं और कृष्णचरित मानस में भी। यहाँ कंस को वह आगाह करते हैं कि जिसने भी यह धनुष तोड़ा है वही तुम्हारे लिए काल सिद्ध होगा यानी कंस के लिए

देखि धनुहु कन्ह गै तेहि पासा,
सहजहि लाग हिय तनिक न त्रासा।
सब देत धनु कहा बुझाई, टूटिहि
यह जिन्ह कर कर पाई।
सो निश्चय होइहि तव काला,
सुमिरि प्रसंग प्रवेश तेहि बाला।

जब प्रहलाद और हिरण्यकश्यप का वाकयुद्ध चल रहा था, हिरण्यकश्यप ने प्रहलाद भगवान को छोड़ हिरण्यकश्यप (उसकी स्वयं की) की पूजा करने के लिए दबाव डाला। जब प्रहलाद नहीं माना तो राजा ने गदा से उस खंबे पर प्रहार कर दिया, जिसे प्रहलाद भगवान का अंग ही मानता था क्योंकि भगवान तो कण कण में वास करता है।

तब त खंभि मैं खंब देहि
अबहिं देउं मोहि मारि
अस कहि मद मदाई
सठ तापर दीन्हि प्रहार।

और उस खंभे में से ही भगवान नृसिंह प्रकट होकर हिरण्यकश्यप का वध करते हैं। सबसे अंत में कवि ने सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः को अपनी भाषा में लिखा है -

सब मंगल सब सुखाने कर
यह हरि कथा अपार
एहि सप्रेम जे कहहि सुन
हरि उन्ह कर उद्धार।

कुल मिलाकर रामेश्वर पाटीदार ने दो वर्ष साढ़े पाँच महीनों में ८८० पृष्ठ के इस वृहद ग्रंथ की रचना कर असाधारण कार्य कर दिखाया है। विश्वास करता हूँ कवि इसे लिखकर ही पूर्ण संतोष नहीं कर लेंगे, आगे भी वे एक से एक अच्छे ग्रंथ की रचना करेंगे। इस संस्करण में कुछ अशुद्धियाँ हैं जो दूर की जा सकेंगी। भगवान श्री कृष्ण की जीवन भर की लीलाओं का यह पुष्प गुच्छ है। भोपाल में इसे जन जन तक पहुँचाने का काम डॉ. अशोक चौरे के अथक परिश्रम से हुआ है। अतः वह भी धन्यवाद के पात्र हैं।

रचना प्रेषण से पहले

कृपया निर्दलीय का पृष्ठवार पूर्व निर्धारित खाका/ढाँचा या उसकी प्रस्तुति सूक्ष्मता से देखिए। इससे स्पष्ट होगा कि आप जब रचना भेजें तो उसके शीर्षक के ठीक नीचे अपना नाम इंद्राज करें और अंत में अपने संक्षिप्त पते के साथ निवास शहर या कर्मस्थल दर्ज करें। साथ ही एक स्तंभ या पृष्ठ की रचना अलग और अन्य स्तंभ अथवा पेज की सामग्री पृथक रखकर भेजें अर्थात उन्हें एक ही पन्ने पर न मिलायें या घालमेल न करें।

- संपादक, निर्दलीय
फ ३४/१, दक्षिण तात्या टोपे नगर
राममंदिर के पास, भोपाल

www.nirdaliya.com

निर्दलीय

विविधा मध्या

महाकाव्य श्रीकृष्ण चरित मानस और उसके रचयिता रामेश्वरजी

एक निर्दलीय प्रस्तुति

म.प्र. के पश्चिम निमाड़ (खरगोन) जिले के सिनगुन कस्बे के एक छोटे से ग्राम रजूर में स्व. सदाशिव पाटीदार के पुत्र लखनलाल एवं पुत्रवधु श्रीमती झुनुका बाई के चिरंजीव रामेश्वर पाटीदार ने एक प्रबंधात्मक महाकाव्य "श्री कृष्ण चरितमानस" की रचना मात्र बीस वर्ष की आयु में कर न केवल अपने कुल बल्कि निमाड़ अंचल के साथ साथ संपूर्ण प्रदेश के लिए गौरवपूर्ण स्थिति निर्मित की है। युवा कवि श्री पाटीदार रचित इस महाकाव्य पर गायत्री शक्तिपीठ के सहयोग से जगसंगठन दृष्टि ने परिचर्चा आयोजित की है। जोन-एक, महाराणा प्रताप नगर स्थित गायत्री शक्तिपीठ के भोपाल स्थित सभागार में यह परिचर्चा आगामी सत्रह अगस्त को श्री कृष्ण जन्माष्टमी की पूर्व संध्या पाँच बजे आरंभ होगी।

कार्यक्रम समन्वयक अशोक चौरे और दृष्टि निदेशक प्रिंस अभिशेख अज्ञानी ने बताया कि आईसेक्ट के कुलपति श्री संतोष चौबे, अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री मोहनलाल छीपा तथा समाजसेवी शिवकुमार पांडे के मुख्य आतिथ्य में इस समारोह की अध्यक्षता प्रमुख सचिव श्री मनोज श्रीवास्तव करेंगे। कार्यक्रम के संयोजक गायत्री शक्तिपीठ भोपाल के शंकरलाल पाटीदार हैं। इस अवसर पर विशेष अतिथि उप संचालक पं. कुंजीलाल दुबे राष्ट्रीय संसदीय विद्यापीठ श्री बृजराजेश्वर शर्मा, केन्द्रीय पुस्तकालय की ग्रंथपाल श्रीमती वंदना शर्मा तथा प्रवचनकार मुकेश प्रधान रहेंगे।

उन्होंने बताया कि श्री बसंत निरगुणे, डॉ. हरि जोशी व श्री श्याम बिल्लौरे लगभग आठ सौ पृ. के इस महाग्रंथ की समीक्षा प्रस्तुतकरेंगे। अशोक चौरे, अभिशेख अज्ञानी तथा गायत्री शक्तिपीठ के कार्यालय प्रमुख कैलाश नारायण शर्मा ने समारोह को सफल बनाने के लिए विनम्र निवेदन किया है।

श्री पाटीदार का जन्म १९ जुलाई १९८६ को हुआ था। बाल्यकाल में श्री रामचरित मानस का पाठ करते हुए उन्होंने महाकवि गोस्वामी तुलसीदास से अलौकिक प्रेरणा पाकर १६ जनवरी २००४ को अपनी लेखनी से श्रीकृष्ण की जीवनी की लोकगाथा के रूप में ढालने का श्रीगणेश किया। रामेश्वरजी एक सामान्य कृषक परिवार के सदस्य हैं तथा उनकी शिक्षा उच्चतर प्रमाणपत्र तक हुई है। उन्होंने केवल १८ वर्ष की आयु में १२वीं कक्षा में अध्ययनरत रहते हुए महाकाव्य के सृजन में तल्लीनता के चलते अपनी शैक्षणिक गतिविधि को पूर्णतः विराम दे दिया। उनके पिताश्री के पास भरण पोषण के लिए केवल ढाई एकड़ कृषि भूमि है जो उनके पूरे परिवार की आय का एकमात्र साधन है। ऐसी चुनौतीपूर्ण परिस्थिति में भी उनकी उक्त कृति का सृजन लगभग ढाई वर्ष की तपस्या ३० जुलाई २००६ को पूर्ण हुआ। उन्होंने महाकाव्य की रचना कर छः वर्ष तक उसके प्रकाशन हेतु निरंतर प्रकाशकों से संपर्क किया। १६ मार्च २०१२ को उन्होंने अंततः अपने पितामह के नाम से प्रकाशन प्रारंभ कर स्वयं ही इस ग्रंथ को प्रकाशित कराया जो कि आज जनमानस में भक्ति का संचार करने में निरंतर प्रवाहमान है।

उनके परिवार की आर्थिक परिस्थिति सामान्य होने के कारण इस ग्रंथ के प्रकाशन हेतु लागत के बड़े भाग की उन्होंने ऋण राशि लेकर व्यवस्था की परंतु मानव समाज के कल्याण हेतु इस ग्रंथ पर आर्थिक लाभ की इच्छा का परित्याग करते हुए आपने इसे मात्र लागत राशि पर ही भक्तों एवं श्रद्धालुओं को उपलब्ध कराने का निर्णय लिया और एक भक्त कवि की श्रेष्ठता अर्जित कर हम सभी को गौरवान्वित किया है।

ग्रंथ का परिचय एवं महत्ता

श्री कृष्ण चरित मानस (आनंद सागर) नामक इस ग्रंथ का मूल कथानक श्रीमद् भागवत महापुराण, गर्ग संहिता, ब्रह्मवैवर्त पुराण, सूर साहित्य एवं अन्य अनेक प्रकार की रचनाओं से लिया गया है। यद्यपि मानव समाज के कल्याण के लिए इस हरिकथा में अपनी कल्पनाशीलता का समावेश करते हुए कवि ने प्रबुद्ध वर्ग के स्नेह की कामना करते हुए लिखा है -

मनुज जातिहित कल्पित
हरिहि कहिह कछु भाग।
सो परहित आचरत,
बुध देखि मोहि अनुराग।

(बालकाण्ड)

संपूर्ण महाकाव्य आठ काण्डों में विभाजित है, जिनमें प्रथम बालकाण्ड के प्रारंभ में ईश एवं गुरुवंदना के पश्चात दशावतार का वर्णन करते हुए कृष्ण जन्म तथा बाल लीलाओं का काव्यमह मोहित चित्रण किया गया है। द्वितीय गोवर्धन काण्ड में गोवर्धनजी की महिमा का वर्णन निहित है। तृतीय माधुर्य काण्ड में श्री राधाकृष्ण के दिव्य प्रेम का अद्भुत शैली में चित्रण करते हुए महारास के वर्णन में रसों से ओत प्रोत मनमोहक काव्य शैली का परिचय मिलता है श्री रामचरित मानस में जितना महत्व सुंदरकांड का है, इस महाकाव्य में उतना ही महत्व माधुर्य काण्ड को मिलता है। वर्तमान युग में प्रेम की परिभाषा का जो विकृत स्वरूप हमें देखने तथा सुनने को मिल रहा है और जो कि एक 'आसुरी प्रवृत्ति' का परिचायक है, उसके निर्मूलन एवं निष्काम प्रेम की समाज में पुनर्स्थापना हेतु इस काण्ड का पारायण अत्यंत सहायक होगा। चतुर्थ मथुराकाण्ड कंस वध पर केन्द्रित है तथा इसमें मानव धर्म की महत्ता की प्रभावी काव्य प्रस्तुति है। पंचम वियोग काण्ड में श्री उद्धवजी के ज्ञानमार्ग पर प्रेम और भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता की प्रतिस्थापना अत्यंत ही भावनात्मक काव्य शैली में गायन करने योग्य है। षष्ठम द्वारिका काण्ड है जिसमें जरासंध, कालयवन, राजा मुचुकुन्द, रेवती, रुक्मणी, शिशुपाल, रुक्मी, प्रद्युम्न, सत्राजित, जामवंती, सत्यभामा, नरकासुर, पारिजात वृक्ष, बाणासुर, राजा नृप आदि से संबंधित प्रकरणों का विस्तार से वर्णन प्रस्तुत किया गया है। सप्तम दिग्विजय काण्ड में महाराजा उग्रसेन जी के राजसूय यज्ञ के माध्यम से राजधर्म, राजनीति, युद्धनीति को समझाते हुए वर्तमान युग में की उपयोगी नारी उत्थान, बाल श्रम उन्मूलन, गर्भपात निरोधक, भ्रष्टाचार उन्मूलन, कन्या भ्रूण संरक्षण, नशा निरोधन आदि ज्वलंत नीतियों का अत्यंत रोचक एवं प्रभावी रूप से काव्यमय कथा प्रस्तुत की है। जिसका पारायण समाज कल्याण में स्थायी प्रभावकारी होगा। अंत में उत्तरकाण्ड में सुदामा चरित्र, गोपी चरणरज एवं कृष्ण जी के गोलोकगमन के अलावा अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं की भावपूर्ण अभिव्यक्ति का काव्यात्मक स्वरूप का आनंद अनुभव होता है, जो इसके आनंद सागर के उप शीर्षक को प्रमाणित करता है।

महाकवि श्री वाल्मीकीजी के महान ग्रंथ रामायण की उपलब्धता होने पर भी गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरित मानस की जनोपयोगिता एवं लोकप्रियता स्वप्रमाणित है, उसी तरह इस महाकाव्य का गायन भी जनमानस पर अपना प्रभावी असर छोड़ेगा, क्योंकि मूल कथानक सर्वज्ञात होते हुए भी गायन शैली से आत्मा झंकृत हो उठती है, जिसमें भावपूर्ण स्थिति में स्फुरण, अश्रुपात एवं कण्ठ अवरोध होकर भक्ति के जागृत स्वरूप का स्पष्ट अनुभव होता है तथा शांति एवं आनंद का संचार होता है।

संपूर्ण ग्रंथ में कुल तेरह हजार पाँच सौ छंद हैं, जिनमें दोहे, चौपाईयाँ, हरिगीतिका, कवित्त, सवैया, सोरठा व पद की रचना की गई है। पूर्व मुख्यमंत्री पं. द्वारका प्रसाद मिश्र का कृष्णायन नामक ग्रंथ सन २००२ में प्रकाशित हुआ था, जिसमें दोहा, चौपाईयाँ एवं सोरठा हैं। भाषा तथा काव्य में समरसता की दृष्टि से श्री पाटीदारकृत स्व अनुवाद युक्त श्रीकृष्ण चरितमानस अधिक ग्राह्य सिद्ध होगा यह सुनिश्चित है। इस महाकाव्य की भाषा एवं उसका व्याकरण अवधि तथा श्रेष्ठ हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किए जाने से सामान्य भक्त को भी सरल और सुलभ अनुभव प्रतीत होगा।

श्री कृष्ण चरितमानस में खेतों की सौंधी महक, बैलों की घंटी की मधुरता, भौंरों की गुंजन, गायों के रंभाने की वात्सल्य, ग्रामीण परिवेश की सौम्यतापूर्ण उन्मुक्तता और एक साधारण कृषक की संतुष्टि का भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, जो कि भविष्य में प्रत्येक गाँव की चौपाल पर अधिकारिता की उद्घोषणा करता है।

यह ग्रंथ अपनी श्रेष्ठ छंदबद्धता के कारण साहित्यिक जगत में स्थापित होने के लिए संपूर्ण योग्यता रखता तथा भक्ति को भी जागृत करने की क्षमता के कारण धार्मिक जगत में लोकप्रियता का स्वयं आधार बनाने में सक्षम है। अतः विश्व के महाकवियों की श्रृंखला में इस ग्रंथ के रचयिता रामेश्वर पाटीदार जी का स्थान सुनिश्चित करने में यह ग्रंथ पर्याप्त सहभागिता एवं योग्यता प्रमाणित होगा।

धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, गौ माता की जय हो,

॥ हर हर महादेव ॥
भारत अखंड हो
हर हिन्दू सनातनी हो, ... हर हिन्दू सेना हो।

प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो, गौहत्या बंद हो।

धर्मसङ्घ पीठ परिषद

आदित्य वाहिनी – आनन्द वाहिनी

पंजीयन क्र. : 140

संस्थापक : श्री मज्जगद्गुरु – शङ्कराचार्य अनन्त श्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज
गोवर्द्धनमठ, शङ्कराचार्य मार्ग, पुरी – ७५२ ००१ (उड़ीसा)
निज सचिव – स्वामी निर्विकल्पानन्द सरस्वती जी, फोन – 0675-231716, मोबाईल – 94379-31716

॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीगोपालाय नमः ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात्
सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर हैं।
उनका यशोगान सर्वविध उत्कर्ष में
हेतु है। श्रीमद्भागवतादि आर्ष ग्रन्थ
सद्ग्रन्थों का अनुशीलन करके
उनके सगुण-निर्गुण सर्वहितप्रद
स्वरूप का ज्ञान सम्भव है। तदर्थ
परम्पराप्राप्त गुरुओं का सम्यक्
मार्गदर्शन अपेक्षित है। श्री रामेश्वर
पाठक द्वारा विरचित छन्दोबद्ध
'श्रीकृष्णचरितमानस' का अध्ययन
सुखप्रद हो, ऐसी भावना है।

— निश्चलानन्द सरस्वती
श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य पुरीपीठ

শুভেচ্ছা শুভকামনা

Well Wishes

শ্রী রামেশ্বর পাটীদার খুব ভাল
মহাকাব্য শ্রীকৃষ্ণচরিত মানসের
রচনা করেছেন
লেখকের লোক কল্যান ভাবনা
পূরো হোক

Shri Rameshwar Patidar composed a very nice epic by name Shri Krishna Charit Manas in Tulsi Ramayan style. Let it be prosperedas a devotional Poetry.

स्वामी [illegible]
89639 68789
wtsp
(सतत नर्मदा परिक्रमा)

16-1-016

c/o
Raju Parmar, Indus Town EM/47, Phase I Bhopal

श्री सीतारामाभ्याम नमः ! धर्म !

ॐ परम श्रद्धेय पूज्य सद्गुरु आचार्य स्वामी भागवतानंद सरस्वती परमार्थ आश्रम ॐ
सप्तसरोवर हरिद्वार आनंद वृंदावन मथुरा के वरद् कृपा पात्र शिष्य

श्रीमद् भागवत कथा एवं श्रीराम कथा के
अन्तर्राष्ट्रीय कथाकार एवं समाज सुधारक

आचार्य मनोज अवस्थी जी महाराज

आवास :-

मो. 8439125010

सम्बद्ध आश्रम :-

मो0 : 9793291233, 9794950069

28.11.2012

प्रभु कृपा स्नेही रामेश्वर पाटीदार

हरिस्मरण

आपका प्रयास अकथनीय प्रयास है इस काल में कृष्ण तुलसी " मैं आपको सभी शुभकामनाएं आप, स्वस्थ रहें मस्त रहें व्यस्त रहें सदा बिहारी जी के भक्त रहें

आपका आभारी

आचार्य मनोज अवस्थी

स्वामी अखण्डानंद आश्रम आनंद धाम

वाराणसी

—: जय श्री सीताराम :—

कृष्ण चरित मानस लिखा
दिया बहुत आनन्द ।
भक्तों के हिरदय बसें
राजेश्वर के छन्द ॥

[illegible]
५/१२/२०१५

श्री गणेशाय नमः

प्रति,
आदरणीय,
मान्यवर, श्री राधेश्यामजी खेमका,
श्री शरद्‌जी अग्रवाल,
श्री प्रभातशंकरजी शुक्ला
तथा
सम्पूर्ण सम्पादक संरक्षक मण्डल
गीताप्रेस गोरखपुर,
आप सबको सादर नमन,

परमात्मा की जितनी कृपा मुझ पर है, उससे लक्ष गुणा आप सब पर हो। अपरिचित होते हुए भी आप सबसे मुझे जो और जितना स्नेह मिल रहा है, उसे ठीक प्रकार से रेखांकित करने के लिये मेरे पास कोई यथोचित शब्द नहीं है। इसलिये मैं केवल इतना ही कहूँगा कि यह उन मुरलीमनोहर का आशीर्वाद ही है; जो आप सबके स्नेह के रूप में मुझ पर बरष रहा है। इस अनुकम्पा के लिये मैं उन परमात्मा और आप सब भगवद्‌भक्तों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। इस भगवत्कर्म में मैं एक माध्यम मात्र हूँ और मेरे हाथों जो कुछ भी शुभ घटित हुआ है; वह सब उन प्रभु के बल से ही हुआ है। वास्तव में भगवान जो भी करना चाहते हैं; उसके लिये वे इस संसार से कुछ लोगों को चुन लेते हैं और फिर उनके माध्यम से वे स्वयं ही सबकुछ किया करते हैं और हम पृथ्वीवासियों को यह अनुभव होता है कि यह हम ही ने किया है। श्रीकृष्णचरितमानस की रचना के मूल में भी यही सत्य कार्य कर रहा है।

इस महाकाव्य में संशोधन करते हुए मैंने विशेषरूप से इसके छन्दों (दोहा, चौपाई व अन्य) को केन्द्र में रखा है। इसके उपरान्त भी इसमें त्रुटियाँ सम्भव है; विशेषकर अनुवाद में। उन त्रुटियों के लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ और इस सम्बंध में आप जो भी आदेश देंगे, मैं तत्परतापूर्वक उसका पालन करूँगा।

आपका स्नेहपात्र
रामेश्वर पाटीदार